निघण्टुना विना वैद्यो विद्वान् व्याकरणं विना ।
अनभ्यासेन धानुष्कस्त्रयो हास्यस्य भाजनम् ॥

एकन्तु नाम प्रथितं बहूनाम् एकस्य नामानि तथा बहूनि ।
द्रव्यस्य जात्याकृतिवर्णवीर्यरसप्रभावादिगुणैर्भवन्ति ॥

नाम श्रुतं केनचिदेकमेव तेनैव जानाति स भेषजं तु ।
अन्यस्तथान्येन तु वेत्ति नाम्ना तदेव चान्योऽथ परेण कश्चित् ॥

बहून्यतः प्राकृतसंस्कृतानि नामानि विज्ञाय बहूंश्च पृष्ट्वा ।
दृष्ट्वा च संस्पृश्य च जातिलिंगैर्विधाद्भिषग्भेषजमादरेण ॥

मुद्रक—
ठाकुर नाथूसिंह वर्मा
श्रीगोपाल मुद्रणालय, कालेडा

निवेदन

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
तं ह देवमात्म बुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥

वर्तमान युगमें शहर वासियोंके समान ही ग्रामीण जनताके दिमागमें भी ऐलोपैथिक विपत्ति उग्र औषधियों और विदेशी इन्जेक्शनोंका मोह दिनोंदिन बढताही जा रहा है। आये दिन देखा जाता है, कि कई ग्रामोंमें छोटी छोटी दुकानोंपर भी कुछ अंशमें आधुनिक प्रचलित विषाक्त ऐलोपैथिक औषधियां रख छोडते हैं और वे दुकानदार भोली जनताका हित-अहितकी कुछ भी परवाह न करते हुए मात्र बिक्रीका उद्देश्य सामने रखकर मुंह मांगे दामोंपर बेचते हैं। जिसका असर आज भारतके प्रत्येक ग्रामपर पडा है और जनता अपनी प्राचीन रूढ़ी (लंघन, शोधन एवं सामान्य उपचार) को भूलती जा रही है। रोज-रोज पैसा खर्च करके कई रोगी अपनी अज्ञानता अथवा भ्रमवश मौतके शिकार होते दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

इस प्रकार कई अस्थाई एवं तात्कालीन लाभसे होने वाली हानिको न समझते हुए इन्जेक्शन द्वारा तत्काल लाभ प्राप्त करनेके हेतु डाक्टरोंकी शरण लेते हैं और अपनी रोग निरोधक शक्तिको खो बैठते हैं। जो आगे चलकर मृग-तृष्णाके समानही धोखा-रूप बनते हैं।

सामान्य जनताकी भ्रमवाली मिथ्या भावनाको जानकर दुःख होता है और विशेष कर दुःख इस बातका है कि, जनताको उन गुमराह करनेवाले दुकानदार जो मात्र अपने अल्प लोभके कारण अपने चक्करमें फांस लेते हैं और जनताके स्वास्थ्यकी कुछभी परवाह नहीं करते हैं। श्रीहरि उन दुकानदारोंको एवं भोलीजनताको सुबुद्धि दें, यही प्रार्थना है।

यदि वास्तवमें देखा जाय तो कई रोगशामक औषधियां उन ग्रामवासियों के पडोस वाले जंगलमें ही प्राप्त हैं, उन्हें अन्यत्र जानेकी कोई आवश्यकता नहीं रहती है। मात्र थोड़ी बुद्धिके उपयोग और थोड़ी जानकारीकी आवश्यकता है।

कई औषधियोंका परिचय न होनेसे पसारियोंसे लेनी पडती हैं। पसारी सामान्यतः अपरिचितोंको सड़ी-गली दे देते हैं और समझमें न आने या न होने पर भलती औषधि दे देते हैं। परिणाममें उस औषध प्रयोगमें उचित लाभ नहीं मिलता, क्वचित् रोगीको हानि भी पहुंच जाती है। वे सज्जन यदि इस "ग्रामीण औषधरत्न" से औषधिका सच्चा परिचय प्राप्त करेंगे और उसके अनुरूप प्रयोग बनाकर रोगियोंकी सेवा करेंगे तो श्रीस्वामीजी अपना प्रयत्न सफल मानेंगे।

वनौषधियां जंगलमेंसे लाकर या पसारियोंमें मोल लेकर उनको साफ करनी चाहिये। मिट्टी कूड़ा-कचरा दूर करना चाहिए। मकडीका जाला लगी हुई, सडी, गली हुई तथा अपरिपक्वको निकाल देनी चाहिए। अधिक मिट्टी लगी हो, तो मूल, शाखा, फल आदिको उबलते जलमें डाल थोडा चला कर तुरन्त जल निकाल, छायामें या मंद तापमें सुखाकर फिर चूर्ण कराना चाहिए। इस प्रकार साफ करनेपर मजदूरी बढ जाती है, वजन भी कम हो जाता है, किन्तु औषध प्रयोग सत्वर और सफल गुणदायी बनता है।

मानस शास्त्र कहता है कि मन और तनका घनिष्ट सम्बन्ध है। इस हेतुसे मनके सदसद् विचारोंका शरीरपर और शरीरकी स्वस्थ–अस्वस्थ स्थिति का मनपर प्रभाव पड़ता है। एवं दृढ संकल्प बल द्वारा इतर जीव और जड वस्तुओंको भी प्रभावित किया जाता है। यह नियम नव्य मानस शास्त्रने भी स्वीकार किया है। इसके अनुरूप वेदोंमें वनौषधियां तोड़नेके पहले निमन्त्रण देनेका विधान किया है। इसी अनुसार प्राचीन कालमें पहले निमन्त्रण देते थे और फिर जनताके कल्याणके निमित्त प्रार्थना करके तोडते थे। परिणाम में मानस प्रेरणा और श्रद्धाके हेतुसे वह औषधि दिव्य गुणप्रद बनती थी।

वर्तमानमें नास्तिकता और स्वार्थ-भावना अधिक फैल जानेसे उक्त हितकर रिवाजका त्याग हो गया है। जो चिकित्सक उक्त प्राचीन नियमको सम्मान देकर योग्य समय पर, पवित्रतापूर्वक, शास्त्र मर्यादा अनुसार वनस्पति संग्रह करता है वह उन वनौषधियोंसे इच्छित लाभ उठाता है, ऐसा अनुभव मिला है।

चिकित्सक आदिको चाहिए कि चूर्ण आदि हो सके तब तक ताजा आवश्यकतापर अपने चिकित्सालय या गृहमें तैयार करें। बाहरसे न मंगावें।

अष्टवर्ग, सोम, ब्रह्मसुवर्चला आदि कई वर्तमानमें अज्ञात होगई हैं। ब्राह्मी, रास्ना, प्रियङ्गु, मूसाकर्णी, मूर्वा, काकजघा, प्रसारणी, शखाहुली, हेमक्षीरी, ज्योतिष्मति, रोहितक, एलवालुक, अम्लवेत, हिलमोचिका, जीवन्ती, सोमराजी, जयन्ती, तालीसपत्र, नागबला, रेणुकबीज आदि देश भेदसे पृथक् पृथक् ली जाती हैं। इनका निर्णय अभी तक नहीं हो सका है। इस हेतुसे भी आयुर्वेदके चिकित्सक, देश और समाजको हानि पहुँच रही है। उनका अन्वेषण करनेके लिए विद्वानों और वैद्यसमूहको लक्ष्य देनेका निवेदन है।

वर्तमानमें आयुर्वेदिक वनौषधियाँ, जो देशमें होती हैं, इनके अतिरिक्त यूनानी वनौषधियाँ एवं कई एलोपैथीने श्रेष्ठ मानी हुई-यूरोप अमरिकाकी वनौषधियां भी प्रयोगोंमें आ रही हैं। इनमेंसे कुछ इस ग्रन्थमें ली हैं।

प्राचीन युगमें अपनेही बुजुर्गोंद्वारा सुना जाता है कि, पूर्वकालमें ग्रामोंके भीतर न तो कोई विशेष वैद्यही थे और न कहीं डाक्टरही देखनेको मिलतेथे। अपना निदान स्वय अथवा कोई ग्रामके बुजुर्गद्वारा पूछकर कर लेते थे और जंगल की अथवा पंसारीद्वारा प्राप्त ओषधियोंसे रोग निवारण कर लेते थे। आजके जवानोंकी तन्दुरुस्तीको देखते हुए उन लोगोंकी काफी सुदृढ रही थी। आजभी इस आधुनिक युग में बचे खुचे वयोवृद्ध जनोंसे सुना जाता है कि "जितने दवाखाने (hospitals) अथवा डाक्टर बढ़े हैं, उतनेही नये नये रोग फैलते जाते हैं। कुछ अशमें उनका कहना सच्चा माननाही पडता है। रोग उत्पन्न होतेही यदि सत्वर सच्चा उपचार कर लिया जाय और सयम और नियममें रहकर जीवन सरल पूर्वजोंके जीवनकी तरह बना लिया जाय, तो किसी वैद्य अथवा डाक्टरकी शरणमें जाने की आवश्यकता ही नहीं रहती है। रोग बढे और उपचार कराना पड़े, उससे रोग उत्पन्न होनेपर तुरन्त दूर करसके इस भावनासे श्री पूज्य स्वामीजी महाराजने "गांवोंमें औषधरत्न" पुस्तकका तृतीय खण्ड प्रस्तुत किया है।

यह ग्रंथ अपने ढगका निराला ही बना है, जिसके द्वारा वैद्य समाज, विद्यार्थी और आयुर्वेद प्रेमी गण ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे और निःसहाय जनता की सेवा वनौषधियोंसे करके जनता जनार्दनका आशीर्वाद प्राप्त कर सकेंगे, ऐसा मुझे विश्वास है।

इस ग्रन्थके प्रकाशनका मूल उद्देश्य आयुर्वेद, वैद्यसमाज और जनताकी सेवाही मात्र है। इसी विचारको आगे रखकर, अल्प मूल्यमें ही पुस्तक वितरण की जा रही है। इस ग्रंथका प्रथम भाग सन् १९४९ में और द्वितीय भाग सन् १९५३, में छपाया गया था। उन दोनों को, जनताने अपने दिलोंमें स्थान देकर हमारा उत्साह बढ़ाया था। उसी उत्साह द्वारा आज फिर इस तृतीय खण्डको प्रकाशित किया है।

पहलेके दोनों भागोंकी अपेक्षा इस ग्रन्थमें विशेष देखनेको मिलेगा। प्रारम्भिक और अन्तिम सूचीके साथ साथ तीन भागोंकी सस्कृत-हिन्दी मिश्र और तीनों भागों की लेटिन नामोंकी सूची बढाई है सदेहात्मक और सर्वत्र न मिलने वाली वनस्पतियोंके परिचयदर्शक ४६ चित्र भी बढ़ाये गये हैं।

औषध परिचयमें विशेषत इण्डियन मेडिसिनल प्लाण्ट्सके आधारसे ग्रन्थ लिखा गया है। फिर भी आवश्यकतानुसार फ्लोरा ऑफ ब्रिटिश इण्डिया, विभिन्न प्रान्तोंके फ्लोरा, वेल्थ ऑफ इन्डिया, आदि कई ग्रन्थोंकी सहायता भी ली गई है।

गुणधर्म, परिचय और उपयोग विवेचन लिखनेमें पहलेके, समान प्राचीन आयुर्वेदके ग्रन्थ एवं नव्य शैलीसे वर्त्तमानमें लिखे हुये ग्रन्थोंकी सहायता ली गई है।

मूल लेखकी प्रतिलिपि एक नये कर्मचारी द्वारा लिखवाई गयी थी। इस समय मूल लेखका पता नहीं चला, अतः दोनोंका मिलान नहीं होसका है। सरसरी तौरसे पढकर अशुद्धियाँ सब सुधार ली हैं। न्यूनताके सम्बन्धमें विद्वानों द्वारा जो सूचना प्राप्त होगी, उस अनुसार सुधार कर लिया जायगा। एवं तीनों भागों में जो वनोषधियाँ बीच बीचमें छूट गयी हैं, वे नये संस्करणमें यथा स्थान बढा ली जायगी।

इस ग्रन्थके प्रकाशन कार्यमें जिन सज्जनों द्वारा सहायता मिली है, उनका एवं जिन ग्रन्थोंसे सहायता मिली है, उनके लेखक और प्रकाशकोंका हम कृतज्ञ हैं। इसतरह जिन सज्जनोंने हमें इसके प्रकाशनार्थ रकम उधार देकर अनुगृहीत किया है, उनका हम हृदयसे आभारी हैं उनके नाम निम्नांकित हैं —

१०००) श्री हरमान भाई झवेर भाई पटेल-मोम्बासा (अफ्रिका)

१०००) संस्थाके एक हितचिन्तक सज्जन

५००) वैद्यराज पं॰ हरिप्रसादजी सी॰ भट्ट आयुर्वेदाचार्य-बडौदा

इस प्रकार २५००) रुपये उधार मिले हैं। शेष रकम संस्था ने पूरी करके इस ग्रन्थ को प्रकाशित किया है।

ग्रन्थकी छपाईका कार्य पूर्ण रूपेण कृष्णगोपाल मुद्रणालय, पो॰ कालेडा-कृष्णगोपाल (अजमेर) में ही हुआ है। मुद्रणालयकी स्थापना इस ग्राममें होजाने से ग्रन्थ प्रकाशन, स्वास्थ्य मासिक प्रकाशन आदि कार्योंमें अधिक सुविधा मिली है। यह प्रकाशन कार्य भी संस्थाके हितैषियों एवं सहायकोंके सहयोग से ही हुआ है, एतदर्थ इसके सहायकोंके हम ऋणि हैं।

अन्तमें संस्थाके हितचिन्तक पाठकोंसे नम्र निवेदन है, कि प्रमादवश जो भूल रही हों, और न्यूनता प्रतीत हों, उनके लिए क्षमा करेंगे, एवं तन, मन, धनसे इस संचालित सेवा यज्ञमें—रोगियों की सेवा, औषध-पुस्तक विक्री, और आयुर्वेद महाविद्यालयके निर्माणार्थ सहायता देकर तथा परिचितोंसे दिलाकर हमारे उत्साहको बढ़ायेंगे, यह निवेदन है।

कालेडा-कृष्णगोपाल
(अजमेर)
दिनांक १६-१०-५५

विनीत
ठा॰ नाथूसिंह
मैनेजिंग ट्रस्टी

संस्कृत नाम सूची

हिन्दी सूची

वंगाली सूची

गुजराती सूची

मराठी सूची

चित्रसू, प्रयोगसू अन्तभागमें लेटिनसू. के आगे, रोगानुसार सू० के पहले दे हैं।

❀ श्री धन्वन्तरये नमः ❀

गांवोंमें औषधरत्न

तृतीय-भाग

(१) पंवाड़ ।

सं० चक्रमर्द, मेषाक्षि, दद्रुघ्न, दृढवीज । हिं० पंवाड़, पमार, चकवड़ । व० चाकुन्दा चाटकाटा, एडाची । पं० पंवार । म० तरोटा, टाकला । गु० कुंवाडियो, पुंवाडियो । क० तेक्करिके, तगचे । ता० तगरै । ते० तगिरिस । मला० तकर । को० तायकिलो । अं० Foetid Cassia ले० Cassia Tora

परिचयः—केसिया-यह ग्रीक संज्ञा इस जातिको अंग्रेजीमें दी है । फीटिड—दुर्गन्धयुक्त । तोरा—सिंहाली भाषाका इस क्षुप का नाम है । यह वर्षा ऋतुमें निकल आता है । ऊंचाई २ से ५ फीट । उत्पत्तिस्थान समशीतोष्ण कटिबन्धमें सर्वत्र । सींकपर पत्तियोंकी ३ जोड़ी होती है । इन पत्तियों की लम्बाई १ से १॥ इञ्च । पुष्प लगभग वृन्तरहित, तेजस्वी पीले । फली ६ से ९ इञ्च लम्बी, गोल नलिकाकार इस क्षुपमें से कसौंदीके समान अप्रिय वास निकलती है । औषधरूपसे इसके मूल, वीज, फूल और पानोंका उपयोग होता रहता है ।

गुणधर्मः—पंवाड़ रसमें चरपरा, उष्णवीर्य, लघु, सारक, हृदयपौष्टिक, श्वास, कफप्रकोप, कुष्ठ, पामा और विष नाशक है । इसके वीज कुष्ट, कण्डु, दाद, विष और वातको दूर करनेके लिये विशेष प्रयुक्त होते हैं ।

सुश्रुत संहिताकारने इसके पानोंके सागको कफहर, रूक्ष, लघु, शीतल और वातपित्तप्रकोपक तथा इसके वीजोंको ऊर्ध्वभागहर कहा है ।

नव्य शैलीसे विश्लेषण करनेपर इसके बीजोंमेंसे थोडा क्राइसोफेनिक एसिड मिलता है। इस हेतुसे दद्रु आदि रोगोंपर लाभ पहुँचाता है।

उपयोग—ग्रामवासीलोग दीर्घकालसे पवाडका उपयोग घरेलू औषधि रूपसे करते रहे हैं वर्षाऋतुमें जब यह उत्पन्न होती है, तब इसके कोमल पानोंका साग बना करके भी खाते रहते हैं। स्त्रियोंको कमरका दर्द होनेपर इसके बीजोंके लड्डू बनाकर खाती हैं।

डाक्टर खोरीने लिखा है कि पवाड रक्तप्रसादन होनेसे सब प्रकारके त्वचा (दाद, विसर्प, कुष्ठादि) रोगोंपर लाभ पहुँचाता है। यदि भिलावाके रससे त्वचापर फाला हुआ हो तो इसके पानोंका रस लगानेपर दूर हो जाता है। इसके बीजोंके चूर्णको करजके तैलमें मिलाकर लेप करते रहनेसे दाद दूर हो जाता है। ब्युचीपर बीजोंका चूर्ण खट्टे मट्ठेमें पीसकर लगाया जाता है। प्लेगकी गाठ और दादपर इसके बीजोंके चूर्णको बडे खट्टे नींबूके रसमें पीसकर लगाया जाता है। (प्लेगकी गाठपर लेप विशेषत त्रिधारे थूहरके दूधमें पीसकर लगाते हैं नींबूवाला लेप २-२ घण्टेपर बदलना पडता है) बच्चोंको दाँत निकलनेके समय पंवाडके पानोंका क्वाथ उदरशुद्धि (हरे पीले दस्तोंको कम कराने) के लिये पिलाया जाता है। फोडेका जल्दी पाक होनेके लिये इसकी पुल्टिस भी लगायी जाती है इसके बीजोंको भूनकर किये हुये चूर्णका उपयोग काफीके स्थानमें हो सकता है (यह काफी चर्मरोगवालोंके लिये हितकर है)

१ प्रमेह—पवाडके फूल और शक्कर १-१ तोला मिलाकर रोज सुबह खिलाते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें पचनक्रिया सुधरजाती है। मूत्रका गँदलापन और क्षारजाना आदि बन्द हो जाते हैं तथा मूत्रका रग सुधर जाता है।

२ चर्मरोग—इसके पानोंका साग बनाकर खिलाया जाता है एवं गुड और खटाई मिलाकर पानोंका रायता बनाकर दिया जाता है (राई नहीं मिलानी चाहिये) इस तरह १५-२० रोजतक पानोंका सेवन करानेमे पंचांगके क्वाथसे दाद आदिको धोते रहने या स्नान कराते रहनेसे सब चर्मरोगदूर हो जाते हैं। दाद हो तो उसपर बीजोंको करजके तैलमें मिलाकर लेप भी किया जाता है। चर्मरोगमें, जिनमें त्वचा मोटी हो गई हो, उनपर इसका अधिक उपयोग होता है।

३ विद्रधि—फोडेका पाक होनेके समय उसमें वेदना होती है या शूल चलता है। किसी किसीको बुखार भी आ जाता है और निद्रा नहीं आती। ऐसी स्थितिमें इसके फूलोंको चटनीके समान पीस गरमकर पुल्टिस बनाकर बाँधते रहनेसे वेदना शान्त होती है और पाक जल्दी होता है।

४. कराडू—सूखी खुजली सारे शरीरमें होनेपर इसके भुने हुये बीजोंकी काफी वनाकर पिलायी जाती है। काफीमें आधा दूध और आधाजल मिला ५-७ मिनटतक उबालना चाहिये। शक्कर स्वाद आवे उतनी मिला लेवें।

(२) पतंग।

स० कुचदन, पतंग, रक्तकाष्ठ, पट्टरजन। हि० पतग, बकम, आल। ब० वक्रमकाष्ठ, बोकम। गु० म० पतंग। क० सपग। ते० कपूरमदी, वकानु, ओक्रानु। ता० वरटगी, सपगु। मला० सपन। ओ० वकोमो। फा० अ० बकम। अ० Bucum wood, Sappan Wood ले० Caesalpiniae Sappan.

परिचय—सेपन=कनाडी सपंग नामपरसे शास्त्रीयसज्ञा। छोटे, थोड़े कांटेदार वृक्ष। कचिन् काटे नहीं होते। ऊँचाई २० से ४० फीट। तनेका घेरा ६ से १० इञ्च। नयी शाखाए कुछ लोहेके जंग जैसी रुएदार। पान ८ से १५ इञ्च लवे। ८ से १२ जोडी विभागवाले। विभाग ४ से ६ इञ्च लम्वे, लगभग वृन्तरहित। तलभागके पान छोटे काटेयुक्त। पर्ण १० से १८ जोडी लगभग वृन्तरहित ॥ से १ इञ्चलम्वे, ऊपर चिकने, नीचे रुएंदार। पुप ।॥ से १ इञ्च व्यासके, १२ से १६ इञ्च-लम्वी, विभाजित पुष्प रचनामें, तेजस्वी गधकी पीलेरगके। पुष्प वाह्यकोष चमडे जैसा, चिकना। पुष्पान्तरकोपकी पखडिया ऊपर पीली, तलेमें लाल दागवाली। फली ३ से ४ इञ्च लम्वी, १॥ से २ इञ्च चौडी, कठोर, टेढी-लम्वगोल, दबी हुई, तेजस्वी, अविकासी और कठोर, ॥ से ।॥ इञ्चलम्वी वीजाशयनालका लगा हुआ। बीज ३-४।

उत्पत्तिस्थान मद्रासप्रान्त, क्वचित विहार, वंगाल। बाजारमें पतगकी लकडी ३ प्रकारकी मिलती है। सिंगापुरी धुनसरी और सिलोनी लकडी, काली आभ वाली लाल। इसमें से लालरग निकलता है। इसकी लकडीको कूट अरारूट (Cuncuma Angustifolia) मिलाकर गुलाल तथा हरड़ मिलाकर कालीस्याही वनाते हैं। विहार में पुष्प वर्षाऋतुमें।

गुणधर्म—पतंग रसमेंकडुवा, शुष्क, विपाक मधुर, शीतवीर्य, व्रणशुद्धिकर और वर्णसुधारक है। वातप्रकोप, पित्तप्रकोप, उन्माद, ज्वर, विस्फोट, मूत्र-कृच्छ्र, कफवृद्धि, अश्मरी, रक्तविकार, और भूतबाधाको दूर करता है।

यूनानी मतमें इसकी लकडी, अतिकड़वी, उरःक्षतके रक्तको वन्द करने-वाली। व्रणरोपण, त्वचाके रगको सुधारनेवाली और आमवातमें हितावह है।

नव्यचिकित्साके मतानुसार पतंगकी क्रिया लागवुड (Log wood) के समान होती है, अर्थात् ग्राही, रक्तसंग्राहक, गर्भाशय उत्तेजक और संकोचक, श्लेष्म हर और व्रणरोपण है।

उपयोग—प्राचीन ग्रन्थोंमें इसका औषध प्रयोग नहीं मिलता। गुणदृष्टिसे

इसका क्वाथ बालक और बडे मनुष्यके सौम्यजीर्ण अतिसार, रक्तातिसार और जीर्ण पेचिशपर हितावह है। इसके सेवनसे अन्त्रकी श्लैष्मिक कलाकी उग्रता शमन होती है। फिर रक्तस्राव कम होकर दस्त बन्ध जाता है और उदरपीडा दूर होजाती है। रक्तस्राव होता हो, तो वह भी बन्द होजाता है। इसके सेवन काल-में मूत्रका रग लाल होजाता है।

श्वेतप्रदरपर इसका क्वाथ दिनमें २ वार कुछदिनोंतक देतेरहनेपर पतला और गरम जल सदृश स्राव होता हो, वह बन्द होजाता है। यदि जल गाढा और दुर्गन्धयुक्त बनगया हो, तो इसके क्वाथको डूशमें भरकर गर्भाशयको धोते रहना भी चाहिये। गर्भाशयकी शिथिलताके हेतुसे मासिकधर्ममें अवरोध होता हो, या साफ न आता हो, तो इसके क्वाथका सेवन कराया जाता है।

फूटे हुए व्रणोंको इसके क्वाथसे धोनेसे और फोहा रखनेसे पूय और रसो-त्पत्ति कम होती है और दुर्गन्ध दूर होती है।

फुफ्फुस यन्त्र, अन्त्र और गर्भाशय मार्गसे रक्तस्राव होता हो तो बन्द करानेके लिये इसका क्वाथ दिया जाता है।

(३) पद्माक।

स० पद्मक, पीतरक्त, शीतवीर्य हिम। व० पद्मकाष्ठ। गु० पद्माक। पं० पद्म, चमियारी, अमलगुन्छ। अ० Mild Himalayan Cherry लै० Prunus, Puddum

परिचय—प्रनस=लेटिनसंज्ञा जातिवाचक दी है। पदम=पंजाबी और हिमालयका वृक्षवाचक नाम है। सुन्दर तेजस्वी पुष्पवाला बडा वृक्ष। उत्पत्ति स्थान हिमालयमें गढवाल, तथा सिक्कीमसे भूटान तक। पान २ से ५ इञ्च बड़े, दातेदार, कोमल, भिन्न भिन्न आकारके। पानका डण्ठल ।। से ||| इञ्च लम्बा। पुष्प गुलाबी, लाल या सफेद। फल लम्बेगोल, पीला या रक्ताभ, स्वादमें खट्टे। लकड़ी बाहरसे सफेद, भीतरसे लाल।

वक्तव्य—औषध रूपसे बाजारमें शाखाओंके छोटे छोटे टुकडे मिलते हैं। छालका रग काला होता है। उसे हाथसे घिसनेपर सुगन्ध आती है। टुकडे पुराने होनेपर गुणहीन हो जाते हैं।

ताजे बीजोंका तैल कोल्हूसे निकालते हैं। उसमें आयोडीन जैसा गुण है। इसमें अन्य प्रवाही औषधियोंको सुखानेका उत्तम गुण रहा है। इसमें प्रुसिक (हाइड्रोस्टेनिक) एसिड होनेसे इसका उपयोग खानेमें नहीं किया जाता।

मात्रा—३ से ४ माशे।

गुणधर्म—पद्माक शीतल (शीतवीर्य), स्निग्ध रस कडवा, रक्तपित्तनाशक और गर्भस्थिर करनेवाला है। श्लेष्मप्रकोप, ज्वर, वमन, विष, भ्रान्ति, कुष्ठ,

विस्फोट, विसर्प, दाह, व्रण और तृषाका नाश करता है।

डाक्टर देसाईके मतानुसार पद्माक कडवा, पौष्टिक, स्तम्भन, उबाक और वमनको बन्द करनेवाला तथा वेदनास्थापक है। आमाशयमें श्लैष्मिककलाकी क्रिया बढाकर आमरस उत्पन्न कराता है, तथा आमाशयको सबल बनाता है। उस समय इसका स्तम्भनगुण दृष्टिगोचर होता है। इनके साथ वेदनास्थापन गुणभी देखनेमें आता है। इन तीनों (रसोत्पत्ति, स्तम्भन और वेदनाशमन) गुणोंका उपयोग अपचन या कुपचन रोगमें आमाशयकी श्लैष्मिक कलाका प्रदाह होकर वमन-विरेचन होने या आमाशयमें क्षत होनेपर होता है स्तम्भन (ग्राही) और कटुपौष्टिक गुण लकड़ीमें है, किन्तु वेदना स्थापन गुण विषैले द्रव्यमें है। इसका फाण्ट देनेपर उबाक और जम्भाई दूर होते हैं।

इसके विषैले द्रव्यकी शामक क्रिया शरीरके भीतर सब अवयवोंपर या मुख्यत जीवनीय केन्द्र स्थानपर होती है। श्वासोच्छ्वासकेन्द्रपर शामक असर होनेपर शुष्क कास और (राजयक्ष्मामें) अति प्रस्वेद कम हो जाते हैं। हृदय-केन्द्रके शमनसे हृदयके स्पन्दन, हृदयके बाये हिस्सेमे कपाटके रोगसे रक्तका प्रत्यावर्त्तन (पीछेकी और लौट जाना) तथा हृदयपर मेदवृद्धि होकर एक प्रकारकी खासी आना, इन सबपर लाभ पहुँचता है।

सूचना—पद्मकाण्ठका क्वाथ नहीं करना चाहिये। कारण, उबालनेपर सत्त्व उड़ जाता है। इसके चूर्ण को सर्वदा निवाये जलमें मिला, फाण्ट बनाकर उपयोग करना चाहिये।

उपयोग—पद्माकका उल्लेख चरकसहिता और सुश्रुतसहितामें मिलता है। चरक-सहितामें वर्ण्य और वेदनास्थापन दशेमानियोंमें, कषाय स्कधमें तथा अनेक रोगोंके प्रयोगोंमें इसकी योजना की है। सुश्रुत सहितामें गुडूच्यादि वर्गमें पद्माकका उल्लेख है। आचार्य वृन्दने गर्भपातसे रक्षणार्थ पद्माकको जलमें घिसकर पिलानेका विधान किया है।

१. रक्तपित्त—पद्माक और सफेद चन्दनका चूर्ण ३ से ४ माशेको शक्कर मिले हुये चावलोंके धोवनके साथ दिनमें २ बार या ३ बार देते रहनेसे ४-६ दिनमें लाभ हो जाता है।

२. हिक्का और श्वास :—पद्माकका चूर्ण घी के साथ २-२ घण्टेपर २-३ बार देने या फाण्ट देनेमे हिक्का और श्वासके दौरेका निवारण हो जाता है।

३ योनिकण्डू :—जननेन्द्रियके शुष्क कण्डूपर पद्मकाष्टको शीतल जलमें घिसकर लेप करे इसकी त्वचापर क्रिया होती है। सूखी खुजलीमें पद्मकाष्टके लेपसे त्वचा शुद्ध होकर पुन कान्ति आ जाती है।

(४) पहाड़ी पीपल ।

स० नन्दीवृक्ष, क्षीरी, अश्वत्थभेद, क्षयतरु । हि० पहाड़ी पीपल । काठि० डुंगरीपीपलो । म० अष्ट । मुण्डारी–दूरगा हेसा । सताली–सुनाम–जो ।

ले० Ficus Arnottiana

परिचय—पीपल सदृश छोटावृक्ष या झाड़ी । पान ३ से ८ इञ्च लम्बे, २-६ इञ्च चौड़े, ७ नसयुक्त (३ मोटी २-४ मन्द), सुन्दर जालीदार । पान पीपलसे कुछ मोटे, तेजस्वी, चिकने । किनारा तरंगदार । कर्णिका (फल) लगभग आध इञ्च व्यासकी लगभग वृन्त रहित, पहले सफेद, फिर लाल अन्तमें बैंजनी या काली, अनेक बीजयुक्त । विहारमें फलपाक मार्च-एप्रिल और दूसरी वार डिसेम्वर जनवरी । पान वसन्तारम्भ (मार्च-एप्रिल) में पतन शील । नये पान तेजस्वी, लाल । पुराने पान डिसेम्बरमें ताम्बे जैसे रंगके उपपान लम्बगोल, आध से एक इञ्च लम्बे, सूखनेपर लालभूरा । पानके डण्ठल २ से ६ इञ्च लम्बा ।

उत्पत्तिस्थान—विहार, सी० पी०, राजपुताना, दक्षिण, सरहद, सिलोन तनेपर घाव करनेसे दूध जैसा रस निकलता है, पान और छाल औषधरूपमें व्यवहृत होते हैं । इन वृक्षोंपर लाख अच्छी होती है । फल मधुर होते हैं ।

गुणधर्म—फलमें रस मधुर, अनुरस कड़वा और कसैला, लघु, उष्णवीर्य विपाक चरपरा, ग्राही तथा विष, पित्तप्रकोप, कफविकार और रक्तविकारको दूरकरता है ।

उपयोग—इस औषधिका वर्णन सुश्रुतमें अवष्ठादिगण, न्यग्रोधादिगण और शीतपूतना प्रतिषेध अध्यायमें मिलता है । एवं कुछ वर्णन भावप्रकाशमें मिलता है । भावप्रकाशमें भी कोई प्रयोग नहीं लिखागया । इसकी छालका उपयोग दुष्टव्रणोंको धोनेके लिए होता है । पानका चूर्ण और छालका क्वाथ अतिसारमें दियाजाता है । लाखका उपयोग पीपलकी लाखके समान होता है विशेष वर्णन पीपलमें देखें ।

(५) पाखर ।

स० प्लक्ष, वटप्लव, क्षीरी, वरोहशाखी, दृढप्ररोह । हिंदी० पाखर, पिलखन, पकरिया । गु० पीपरी, पीपर । म० पिम्परी । व० पाकुड़गाछ । क० वित्त वसरी, दोदावसरी । मला० कोयाली, चेल । ता० इची, कल्लीची । ते० जुव्वि आ० जारा । ल० Ficus Tsiela

परिचय :—सिला=वृक्षकी छालमेंसे वस्त्र वन सके वह । वड़ा छायेदार क्षीरीवृक्ष (वड़, पीपलसे छोटा) । कभी कभी कटी हुई शाखामें से वड़की जटा

के सदृश मूल नीचे उतरता है। शाखा पीली भूरी, (कहीं सफेद, हरी आभा-वाली). बडी शाखा ऊपर चढने वाली, प्रशाखाएं टेढ़ी और कभी कभी नीचे मुड़ी हुई। पान अन्तरपर, मोटे लम्बेगोल, नीचेकी ओर सकडे होकर अतीक्ष्ण नोकवाले, ३॥ से ५॥ इञ्च लम्बे। उपपान अण्डाकार, नोकदार, ॥ से १ इञ्च लम्बा। कर्णिका (फल) शाखाओंके अन्तमें वृन्तरहित, पत्रकोणमें से और गिरेहुये पत्रके स्थानसे निकलती है। व्यास लगभग ॥ इञ्च। कर्णिकाके नीचे ३ सूक्ष्म पुष्प पत्र। फल पहले पीला हरा, पकनेपर बैंजनी फल एप्रिल से अक्टोबर तक।

उत्पत्ति स्थान :—महाराष्ट्र, गुजरात, कच्छ, काठियावाड, विहार। इस की शाखाको काटकर बोनेसे वृक्ष लग जाता है। छालमें से दृढ रेसा निकलता है, उसकी डौरी वनती है। लकड़ी कठिन है। इसके सब भागों में से दूध के सदृश रस निकलता है। पान वसत के आरम्भ में झड जाते हैं।

गुण धर्म :—इसकारस कसैला,शीतवीर्य तथा व्रण,योनिरोग,दाह,पित्तप्रकोप कफप्रकोप, शोथ और रक्तपित्त नाशक है। मूर्च्छा, श्रम और प्रलापको दूर करता है। इसकी छालमें कीटाणुनाशक गुण है। इस हेतुसे इसके क्वाथसे दुष्ट व्रण धोया जाता है। शिरपर इन्द्रलुप्त (गंज) होनेपर इसका दूध लगाया जाता है।

उपयोग :—प्लक्षका उल्लेख चरक सहितामें मूत्रसंग्रहण वर्ग और पञ्च वल्कलके भीतर तथा सुश्रुतसंहितामें न्यग्रोधादि वर्गमें मिलता है। इनके अति-रिक्त इन दोनों संहिताओं के भीतर रक्तपित्त, योनिस्राव, विसर्प, शोफ और व्रणरोगके प्रयोगों में इसकी छाल और पानको मिलाया है।

१ **योनिस्राव :**—पाखरकी छालके कपड़छान चूर्ण को शहदमें मिला गरमकर शिखराकार गोली वनालें। उसे पतले कपडेमें सिलाई करके योनिमार्ग में धारण करावें। कपडे की पोटली का लम्बा डोरा लटकता रहने देवें। जिससे इच्छानुसार उसे वाहर निकाल सकते हैं।

२. **विसर्प :**—पाखरके कोमल पान और ताजी छालको चटनी की तरह पीस घी मिला कर लेप करें, यह लेप अन्य शोथ पर भी किया जाता है।

३ **जखम :**—पीपलकी छालके क्वाथ से जखम धोवे। फिर इस कषाय में रूई डुबोकर उसपर रखें और पट्टी बाध देने से घाव मिट जाता है।

(६) पान रसोन

हि॰ पान रसोन, झाडी का लहसुन। अं. Garlickwort, Hedge garlick. Alliaria Officinalis

परिचय :—मूल द्विवर्षायु। तना खड़ा, १ से २ फूट तक ऊंचा, सादा,

ऊपर में छोटी शाखाओं युक्त। वर्फ कण जैसी रज से आच्छादित, नीचे वाल युक्त, ऊपरमें चमकीला। मूलोद्भूत पान लम्बे डण्ठलवाले, वृक्काकार। तने के पान वडे किन्तु छोटे डण्ठलवाले, त्रिकोणाकार–अण्डाकार। मंजरी तुर्रे जैसी १२ से ३० पुष्पोंकी। पुष्प सुगन्धित सफेद हरे। फली $\frac{1}{10}$ इञ्चलम्बी, दृढवृन्तयुक्त बीज लम्बेगोल, रेखाचिह्नित।

उत्पत्ति स्थान —हिमालय कुमाऊन से काश्मीर तक ६००० से १०००० फीट ऊंचाई तक। अफगानी स्थानसे पश्चिमकी ओर, भूमध्यसागर, मध्य और कुछ उत्तर यूरोप।

गुणधर्म :—पान स्मोल पञ्चाङ्ग और बीज उष्ण, अग्नि प्रदीपक, मूत्रल. स्वेदल, उत्तेजक। देह के बाहर में किसी स्थानपर मास सडता हो. तब इसके पानों का लेप लगाया जाता है। एव व्रणकी शुद्धि के लिए इसकी पुल्टिस बांधी जाती है।

उपयोग —पहाड में शाक दालको छौंक देने के लिए इसके बीज और पानोंका उपयोग करते हैं। वास लगभग लहसुन जैसी आती है। एव लहसुन के समान गरम माना जाता है। बाहर कोथवाले (सडे हुए) भागपर तथा फोडे को पकाने के लिए यह लगाया जाता है। रक्त दवाव वृद्धि के रोगी के लिए यह अति हितकारक औषधि है।

यह कफ को बाहर निकालता है। इसके क्वाथ की पिचकारी मूत्रेन्द्रिय में लगाने से शर्करा या अश्मरी के अणु बाहर निकाल देता है। यह जलोदर और शोथ रोग में हितकारक है।

इसके बीजों के चूर्ण का नस्य देने से नासास्राव होकर शिरदर्द और नासिकाका दर्द दूर हो जाता है। यह उदरशूल, अश्मरी, गर्भाशयशूल और अन्य स्थानों की वेदनापर भी व्यवहृत होता है।

(७) पाषाण भेद

सं पाषाणभेद, अश्मघ्न। हि पाषाण भेद, पखानभेद, पत्थरचूर। म पानाचा औवा। व पाथरचूर। पहाड। म गु पाषाणभेद। ले० Bergenia Ligulata (पुराना नाम Saxifraga)

परिचय —सेक्सीफ्रास=मूत्राशयस्थ अश्मरीभेदक। लिगुलेटा=चौडाई से ४-६ गुने लम्बे पानयुक्त। बहुवर्षायु क्षुप। खडा मूल (Rootstock) अति दृढ तुलसी वर्ग का सुगन्धिदार काण्ड छोटा, मोटा, मासल और जमीन पर फैला हुआ। पान लट्वाकार या गोल, तेजस्वी, अपक्वावस्थामें हरे, पक्व होनेपर लाल, २ से ६ इञ्च लम्बे, अखण्ड, दोनों ओर वालों वाले। पुष्प सफेद, गुलाबी या बैंजनी रंग के १। इञ्च व्यास के। पुष्पदण्ड ४ से १० इञ्च लम्बा।

उत्पत्ति स्थान :—हिमालयके समशीतोष्ण प्रदेश में ७००० से १०००० फूट ऊंचाई पर। काश्मीरसे भूटानतक और खासिया।

गुणधर्म :—भावप्रकाशकारके मतानुसार पाषाणभेद रसमें कडवा कसैला शीतवीर्य, बस्तिशोधक और अश्मरी भेदक है तथा वातादि दोष प्रकोप, अर्श, गुल्म, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, हृद्रोग, योनिरोग, प्रमेह, प्लीहावृद्धि, शूल और व्रणविद्रधि नाशक है। इनके अतिरिक्त, फुफ्फुसरोग, प्रवाहिका और क्षत आदिमें भी उपयोगी है।

यूनानी के मतानुसार उपर्युक्त पाषाणभेद का मूल कडवा, ग्राही, ज्वरहर, मूत्रल, रक्तस्रावरोधक, गर्भपातरोधक, पौष्टिक, कामोत्तेजक, आमनाशक तथा श्वान विष, प्लीहावृद्धि, अतिरज स्राव, गर्भाशय के अति रक्तस्राव, पित्तप्रकोप और नेत्रव्रण आदि में हितावह है। और यकृत् के रोगोंमें भी यह व्यवहृत होता है।

रासायनिक पृथक्करण :—पाषाणभेद में चूना ११. ५ %, कषायाम्ल १५ ५ %, शक्कर ५ ५ %, गोंद २ २५ %, एल्युमिन ७ ७५%, श्वेतसार १९ % और क्षार १५ ५ % मिलता है। जलानेपर राख १३ % होता है उस में चूना विशेष मात्रा में मिलता है।

(२)

व० पाथरचूर। हि० पाषाणभेद। ते० कर्पूरवल्ली। म० पान ओंवा। ले० Coleus Amboinicus (प्राचीन नाम-Coleus Aromaticus)

परिचय—बहुवर्षायु क्षुप या निम्न भागमें झाडीदार, कठोर बाल या रुएंदार। काण्ड १ से ३ फूट ऊंचा, मांसल। पान १ से २ इन्च लम्बे, मांसल, अति सुगन्धित, चौडाई में अण्डाकार या हृदयाकार, कंगुरीदार। पुष्प सघन, छोटे पुष्पदण्ड पर, हल्के बैंजनी रंगके, छोटी नली और चपटे कण्ठयुक्त। फलकी पखडी ¼ इञ्च, विशेपाशमें विभक्त। पुष्पकाल वसन्त और फलकाल ग्रीष्मऋतु।

उत्पत्तिस्थान—मूल मलाका। वर्तमानमें भारत, सिलोन आदिके अनेक स्थानों में बोया जाता है।

गुणधर्म—पान वेदनानिवारक, श्वास और प्रतिश्यायमें फलप्रद है। अनेक विद्वानोंके मतानुसार यह मूत्राशय विकार और योनिरोगपर विशेष औषधि मानी गयी है। किन्तु प्रयोग सिद्ध नहीं है। पानोंका रस मिश्रीके साथ मिलाकर बालकोंको शूलमें दिया जाता है। यह प्रबल उदरपीड़ानाशक औषधि है।

लंकामें इसके पानोंका क्वाथ श्वास और जीर्ण कासरोगमें व्यवहृत होता है। कोचीन चीनमें इसके पानों का रस उदरपीड़ाहर माना गया है और

वालकोंको उदरशूल होनेपर दिया जाता है। इसका क्वाथ श्वास, जीर्ण कास, अपस्मार और आक्षेपपर भी दिया जाता है।

(३)

अ० Yellow flag ले० Iris Pseudocorus.

परिचय—यह बहुवर्षायु सुगन्धित मूलयुक्त क्षुप वचा वर्ग (Iridaceae) का है। इसके मूल विदेशसे भारतमें आते हैं। इसके मूल वचके साथ मिला देते हैं। गुजरातके कतिपय विद्वान् पाषाणभेदके स्थानपर इसका उपयोग करते हैं।

यह यूरोप के सामान्य आर्द्र भूमिमें होता है। इसके बीज भुनकर काफीके समान पेयरूपसे व्यवहृत होते हैं।

मूलमें श्वेतसार विशेष मात्रामें मिलता है। मूल उष्ण, रजस्रावी, ग्राही, मूत्रल, शीतवीर्य, वामक और रेचक गुण अवस्थित हैं। यकृतका आकुञ्चन होना, पित्तप्रकोप, उदरपीडा, विषप्रकोपजविकार, कामला, कष्टार्तव, नष्टार्तव अत्यार्तव और प्रदररोगपर यह उपयोगी है।

इसका उडयनशील तैल सुगन्धित होनेसे दन्तमंजन और केश तैलमें मिलाया जाता है।

इसके धावनका फोहा योनिमार्ग में रखनेपर दुर्गन्ध दूर होती है, कीटाणुओंका नाश होता है और योनि आकुञ्चित होती है।

रासायनिक पृथक्करण—चरपरे कडवे स्वादवाला काला भूरा तैली राल (Iridin) २५%इसोपथेलिकएसिड, सेलिसिलिक एसिड, कपूर, गोंद, कषायाम्ल, शक्कर और उडयनशील तैल आदि मिलते हैं। इनमेंसे इरिडिन यकृतपित्तविरेचनार्थ व्यवहृत होता है। इसमें कोई अश्मरी भेदक विशेष द्रव्य प्रतीत नहीं हुआ।

(४)

व० चाया। हि० गोरखबूटी, कपूरीजडी। गु० कपूरीमधुरी। मी० गोरखगाजो, भोंयजड़ी। कच्छ-गोरखडी, मनीबूर। म० कुरु कपूर-मधुरी। प० बूइकला। रा० बुई। ता० सिरुपुलै। ते० पिण्डीकुमदा। ले० Aerua Lanata.

परिचय—लेनेटा रुँआँसे आच्छादित। वर्षायु, श्वेतबालोंसे आच्छादित; खड़े या जमीनपर फैले हुये अति शाखावाला क्षुप। ऊंचाई १ फुट तक। मूल गहराईतक बैठा हुआ, चारों ओर फैले हुये रेशेयुक्त, कुछ सुगन्धयुक्त, स्वादमें ऊपर-मधुर और फिर कुछ कडवा। शाखाएँ ऊनके रुए जैसे बालोंसे आच्छादित धूम्रपान अन्तर, । - से ।।। इञ्च लम्बे और १ इञ्च चौडे वृन्तके पास सकडे,

ऊपर चौड़े, दोनों ओर रुएंदार। पुष्प बहुत छोटे, हरे-सफेद। फल सूक्ष्म, काले बीजयुक्त।

उत्पत्तिस्थान–भारतमें सर्वत्र, अरबस्थान, अफ्रीकाका उष्ण कटिबन्ध, जावा, फिलिपाइन।

औषधोपयोगी अंश–फल, बीज, मूल,।

गुणधर्म–कफघ्न, मूत्रल, और अश्मरीभेदक। मूल स्निग्ध, मूत्रल और कृच्छ्र मूत्रस्राव (Strangury) में उपयोगी।

उपयोग–इसके मूल शिरदर्दमें प्रयोजित होता है। माला बारमें इसका उपयोग स्नेहन गुणके लिये होता है। सिलोनमें कफघ्न और बालकोंके लिये कृमिघ्न रूपसे देते रहते है।

मल्लविषमें यह मूत्रमार्गसे विषको बाहर निकालने और श्लेष्मिक कलाकी रक्षाके लिये व्यवहृत होता है।

श्वास-कास–कफ श्वास और कफकासके रोगीको इसके फूलोंका धूम्रपान करानेसे घबराहट दूरहोती है और सरलतासे कफस्राव होता है।

वक्तव्य–पाषाणभेद रूपसे ऊपर ४ औषधिया लिखी हैं। जो भिन्न भिन्न विद्वानोंद्वारा पाषाणभेद रूपसे व्यवहृत होती है। इसके अतिरिक्त महामहोपाध्याय गणनाथसेनके अनुयायी पर्णबीज Bryophyllum Claycinum (नयानाम Kalanchoe Pinnata) का उपयोग करते हैं एवं किसी यूनानी ग्रन्थकारने Linaria Ramosissims. का अनुमोदन किया है। इनमेंसे अधिक गुणदायी पाषणभेद किसे कहना, यह भविष्य पर रहा है।

महाराष्ट्रमें एक खनिजको पाषणभेद कहते हैं। उसमें भी मूत्रल गुण है, तथापि वह खनिज होनेसे पृथक् होजाता है।

(८) पिंवड़।

स० तूणी, कुठेरक, नंदिवृक्ष। हि० पिंवड। बं० कामरूप, जिर। म० नांदरूख, तूणी। गु० नादरूखी वड। ते० विल्लजुव्वी, हेमतु। मला० इत्तियाल। ता० इचि, काल्लीची। संता० जिली। कोल बुटीहेस, चुमनहेस। क० हिलाला हिनाला, पिनाला। कु० अजन, जेजवी। नेपा० जमू। ले० Ficus Retusa

परिचय.—मध्यम या बड़ा, बिना रुएंवाला, सर्वदा हरा, छायेदार, क्षीरीवृक्ष। इसमें बड़के समान नये मूल लगजाते हैं। शाखा छोटी छोटी दूरीपर संधियुक्त। पान २ से ४ इञ्च लम्बे, अन्तरपर, लम्बगोल, किनारे पर कुछ अणीदार, वड़के सदृश चिमड़े और मोटे, तेजस्वी, चिकने। डण्ठल ॥ इञ्च लगभग लम्बा। उपपान ॥ इञ्चसे छोटे, ऊपर सकड़े पकनेपर पीला या रक्ताभ।

कर्णिका (फल) वृन्तरहित, छोटे, गोलाकार, लगभग। से ॥ इञ्च श्यामके पकनेपर सफेद या बैंजनी।

उत्पत्ति स्थान —विहार सी पी, दक्षिण, मद्रास, पूर्व हिमालय आसाम, वम्बई।

इसके सब भागोंमें से दूध जैसा रस निकलता है। यह छायादार वृक्ष होने से सडकोंके किनारे लगा सकते हैं।

इसकी एक उपजाति चम्पारण्यमें है। उसे फाइकस रेट्युसा वार निटिडा (Var Nitida) संज्ञा दी है।

वक्तव्य —भिन्न भिन्न काल और देशोंमें "नदीवृक्ष" संज्ञा भिन्न भिन्न वृक्षों को दी है। राजनिघण्टुमें सुगंध गुण दर्शाया है, वह तगर (Ervatamia Coronaria) है इसे तेलगुमें नदीवर्धनमु तथा तामिलमें नदी आवर्तम कहते हैं। यह मद्रासका नदीवृक्ष है। भाव प्रकाशमें पहाडी पीपल (Ficus Arnothiana) को नदीवृक्ष कहा है। गुजरात महाराष्ट्रका नंदीवृक्ष पिंवड है।

गुणधर्म —त्रिदोषघ्न, वल्य, कामोत्तेजक तथा कण्डू, कुष्ठ, व्रण गण्ड-माल, शिरोरोग, रक्तविकार, पित्तविकार और दाहनाशक है। इसके सब भाग उद्दीपक (Pungent) और कडवा है।

इसकी जड और पानों को जलके साथ चटनीकी तरह पीस ४ गुने तैलमें उबाल, उस तैलका उपयोग घाव और चोटपर लगाने में करते हैं। दांतोंका दर्द होनेपर छालका चूर्ण नमक मिलाकर दांतों के लगाते हैं।

उपयोग —शास्त्रीय ग्रन्थों में इसका उपयोग नहीं मिलता। ग्रामवासी इसका उपयोग अनेक रोगोंमें करते हैं।

१. यकृद्वृद्धि —छालका रस १ तोलेको दूधमें मिलाकर रोज सुबह पिलाते रहें। भोजन हलका, जल्दीपचन होने योग्य देवें। घी और शक्कर कमसे कम देना चाहिये।

२ आमवातज सन्धि शोथ —पान और छालको जलमें पी.स. पिसवाकर के मोटा मोटा लेप करने या पुल्टिस बाधनेसे वेदना सह शोथ दूर हो जाता है।

३ आध्मान —पिंवड के पानोंका रस ४ सेर, काली तुलसीके पानोंका रस ४ सेर और एरण्डतैल १ सेरको मिलाकर गरम करें। तैल मात्र शेष रहने पर उतारकर तुरन्त छानलें। इस तैलकी उदरपर हलके हाथसे ५–७ मिनिट मालिश करें। फिर ऊपर कपडा रखकर सेक करने से उदरशूल और अफारा दूर हो जाता है।

(६) पिप्ति।

सं रक्तवल्ली। हि पिप्ति, राई, वनी। सता० कोल—चोग-सजोंम। खारवी

केओण्टी। व. राई रुई, रक्तपित्त। म कानवेल. खाद्द वेल, लोखंडी। गोंडी-पेम। ओरि० रोक्तोपित्तो, साजुमालो, पित्तचले। ते एरासीरतलतिव्वा एरा-सुरु गुड्डु, पुतिक, मुरव्वी। ता कुरुल, पप्पिली। क हरुगे, कव्वितु, मलमैत्र, पप्पली। सी पी के ओति, पित्ति। अ० Red creeper ले Ventilago Madraspatana

परिचय :—वेण्टिलेगो—ऊपरके हिस्सेमें सीध पांखवाला फल। मद्रासपटन मद्रासमें उत्पन्न। लम्बी, अनेक शाखाओ वाली. सर्वदा हरी, कठोर, वृक्षपर चढनेवाली वेल। नयीशाखा और पुप रचना कुछ रूपदार। पान २ से ६ इञ्च लम्बे, १-१॥ इञ्च चौड़े, लम्ब गोल—नोक वाले, अखण्ड या कुछ (कंगुरेदार)। उपपान छोटे, सुएके सदृश नोकदार (Svbulate) पुष्प ॥। इञ्च व्यास के, हरिताभ (या पीले हरे), दुर्गन्ध युक्त। कली ५ कोनयुक्त वीज जैसा फल (Nut पाख युक्त पीताभ लगभग गोल, वाह्य कोष नालिकामें चिपका हुआ। पाख १॥ २ इञ्च लम्बी, चिमड़ी चिकनी।

उत्पत्ति स्थानः—मद्रास, महाराष्ट्र, सी पी, विहार, गुजरात, सामान्यत उष्णप्रदेशोंमें सर्वत्र, विहार, में छाल गहरी धूसर, लालभुर्रीयुक्त। तनेका घेरा २ फीट। छालमें से अच्छे रेसे निकलते हैं। वीज भूनकर खाये जाते हैं; एव उसका तैल भी खाया जाजा है। फूल सप्टेम्वरसे मार्च तक। फल मार्च में।

द्वितीय जाति :—इसकी एक और जाति (Ventılago Catyculate) सहायक पुष्प वाह्य कोपयुक्त होती है, वह मद्रास, विहार, कुमाऊं (हिमालय), नेपाल, चांदा (सी पी), देहरादून, पजाव, आदि उष्ण प्रदेशोंमें होती है, देहरा काली वेल, वम्वई—कानवेल। ओरि० पित्तोली।

छालमें से लाल रग मिलता है। भूतकालमें पक्के लालरगके लिये इसका उपयोग होता था, नारगी रग करने के लिये चिरवल (Oldenlandıa umbellata), पक्के काले रग के लिये माजूफल और पक्के लालके किये मजीठके साथ मिलाते थे। मद्रासमें इसके रग को पप्पिली कहते हैं।

गुणधर्म :—मूलकी छाल दीपन-पाचन, उत्तेजक. वातहर, त्वचारोगनाशक और आध्मानहर है। अपचन, निर्वलता, मद ज्वर और त्वचारोगपर यह दी जाती है।

उपयोग :—शारीरिक श्रमके हेतुसे रात्रिको मद मद ज्वर आ जाता है, हाथ-पैर टूटते हैं, उसपर ३-३ माशे छालका चूर्ण जल या दूधके साथ १०-२० दिनतक दिया जाता है। इससे पचनक्रिया सुधरती है. दूषित आमोत्पत्ति वन्द होती है। फिर ज्वर निवृत्त होकर शारीरिक वल वढ जाता है।

पामा आदि त्वचारोगपर इसकी छालके चूर्णको (१६ वा हिस्सा नीलाथोथा

मिलाकर) वेसलीन या धोये घृतमें मिलाकर दिनमें २-४ वार लगाते रहनेसे पामा, कण्डू, व्यूची आदि रोग शमन होते हैं। रोगीको नमक, मिर्च कमसे कम खिलाना चाहिये। पेटको साफ रखना चाहिये।

(१०) पीपल।

सं० अश्वत्थ, पिप्पल, पवित्रक, शुचिद्रुम, श्रीमान, क्षीरद्रुम। हि० पीपल। व० आशुद, अशोथ गाछ, अश्वत्थ। म० पिपल। गु० पीपलो। कच्छी० पीपरो। क० अरली, ब्रह्मदारु, पिप्पल। ता० असुवतम, नारायणम, अत्तिक। ते० अश्वद्धधमु, वोधि। मला० अश्वत्थम, देवतरु, मांगल्यम्। गोण्ड-अली। पं० भोर पीपल। सि० पिपर। ओरि० ओश्वत्थो, पिप्पोलो।

ले० Ficus Religiosa

परिचय—रिलिजियोस्का=पवित्र। वहुत वड़ा, दीर्घजीवी, क्षीरिवृक्ष। तना अति अनियमित। ऊँचाई ५० से ७५ फ़ीट। शाखा लम्वी, मोटी, ऊँची चढनेवाली, चारों ओर फैली हुई। पान पतले, दोनों और चिकने, चमकीले लम्वी नोकवाले, ४। से ७ इञ्च लम्वे, ३ से ४॥ इञ्च चौड, पिछली ओर नस लगभग ४ जोडी। पान वसन्तारम्भमें पतनशील। डण्ठल २-४ इञ्च, कोमल। उपपान छोटे लम्वगोल, अणीदार, तलमें चौडे तुरन्त पतनशील। पुष्पोंके धारण-करनेवाली कर्णिका (फर्नो) के भीतर नर और मादाफूल रहते हैं। कच्ची कर्णिकामें ये फूल वृहद्दर्शक काचसे दीखते हैं। पुष्पपत्र ३ कर्णिकाके नीचे लगेहुए। कर्णिका (फल) वृन्तरहित कच्ची होनेपर हरी, पकनेपर रक्ताभ या सफेद, मुखपर वैंजनी छाया, ॥ इञ्च व्यास। फल किसी वृक्षपर एप्रिलमें और किसी वृक्षपर अक्टोम्बर, नवेम्वरमें पकते हैं।

उत्पत्ति भारतमें सर्वत्र। उपयोगी अग सर्वाङ्ग। इस वृक्षमें ब्रह्मा, विष्णु, और महेशका वास मानागया है. इसहेतुसे सनातन धर्ममें इसे अश्वत्थ, शुचिद्रुम, पवित्रक, केशवावास, श्यामल, शुभद, सत्य, सेव्य, अच्युतवास, आदि अनेक उपनाम दिये हैं। वौधोंने इसे वोधी वृक्ष सज्ञादी है। इसकी अन्तरछालके रेशे अति दृढ होते हैं। इसलिये उसमेंसे डोरी वनाते हैं। इस वृक्षपर लाख होती है, उसका उपयोग वेरकी लाखके साथ होता है। इसकी लकडी यज्ञमें व्यवहृत होती है।

गुणधर्म—रसमें कसैला अनुरस मधुर, शीतवीर्य, कफपित्तनाशक, रक्तपित्त, शामक, योनीशोधन, वर्णकारक,। पक्केफल हृद्य, सारक, आक्षेपहर, रक्त-शोधक, और शीतवीर्य तथा पित्तविकार, रक्तविकार, विषप्रकोप, तृषा, दाह, वमन, शोप, और अरुचि नाशक। लाख कडवी, कसैली, स्निग्ध, लघु, वल्य, भग्नसंधानक, वर्णप्रद और शीतल है तथा कफ, पित्त, शोष, विष, रक्तविकार

विषमज्वर, हिक्का, कास, उरःक्षत, नासारोग, विसर्प, कृमि, कुष्ठ, व्रण, त्वचा-रोग और दाहके नाशक है। छाल रक्तस्तम्भन, ग्राही। कोमल पान पहले मारक, फिर ग्राही। पीपलकी छाया सूर्यकेतापसे थके हुएको शान्तिप्रद। पीपलकी राखमें हरताल दबाकर उसकी भस्मकी जाती है।

हिस्टीरियाहरपिल्स—ताजी, कोमल सुखाई हुई पीपलकी जटा ८ तोले, जटामांसी और जावित्री ४-४ तोले और कस्तूरी १ तोला लेवें। सबके बारीक चूर्ण को मिला जलके साथ ३ घण्टे खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनालेवें। इनमेंसे २ से ४ गोली दिनमें ३ बार शीतल जलकेसाथ देवें। आध घण्टे बाद थोडा दूध पिलावे या दूधमें बनाईहुई चावलोंकी पेया पिलावे। इस तरह १-२ मासतक प्रयोग चालू रखने पर जीर्ण और दृढ हिस्टरीया रोग भी दूर होजाता है। (जंगलकी जडी बूटी से)।

उपयोग—पीपलका उयोग आयुर्वेदमें अति प्राचीन कालसे हो रहा है। चरक संहिता, सुश्रुत सहिता, अष्टाग सग्रह आदि ग्रन्थोंमें अनेक स्थानपर पीपलके उपयोगका वर्णन किया है। व्रणोंको और गर्भाशयको धोनेकेलिये पंच वल्कलके क्वाथका उपयोग होता है, वह आगे बड़के वर्णनमें लिखा जायगा।

डाक्टर देसाई लिखते हैं कि, "सुजाकमें पीपलके कोमल पानोंको दूधमें उबाल कर देते हैं। उससे शौच शुद्धि तथा मूत्रमें दाह और पूयका ह्रास होता है। इसतरह छालका क्वाथ भी सुजाकमें देतेहैं। कोमलपान और लाख शहद्के साथ रक्तस्रावपर देतेहैं। कामलापर पक्का आधा पान नागरवेलके पानमें देतेहैं। हिक्का और वमन बन्द करानेकेलिये छालकी राखको जलमें मिला, फिर जल नितरजानेपर थोडा थोडा देते हैं।"

"मूत्रेन्द्रियके घाव छालकी राख लगानेपर जल्दी भरजाते हैं। त्वचा रोगमें छालका फाण्ट देतेहैं। शोथको कम करानेकेलिये छालका लेप करते हैं। पञ्च-वल्कल (पीपल, बड, गूलर, पाखर और पारस पीपल) का क्वाथ व्रणको धोने. कुल्ले करने, तथा प्रदरमें उत्तर बस्ति देनेकेलिये व्यवहृत होताहै। इससे शोथ दूर होता है तथा घाव, दाग और व्रणका संकोच होता है। बालकोंके मुखरोगमें मूलकी छालको शहद्में घिसकर लेप करतेहैं। एव बढ़नेवाले व्रणोपर लगाते हैं। भगंदरमें छालका चूर्ण भरते हैं।"

असि० सर्जन नवीनचन्द्रजी लिखतेहैं कि "भगदररोगमें बांसकी नलिका द्वारा पीपलकी छालका चूर्ण फूंकते रहनेसे कुछदिनोंमें लाभ हो जाताहै। सडेहुए किसी व्रणपर यह चूर्ण हितावह हैं। कण्ठमालमेंभी अच्छा काम देता है।"

१ पित्तप्रमेह—पित्तप्रकोपसे होनेवाले नील, पित्त, रक्त, आदि प्रमेहोंपर

पीपलकी छाल १-१ तोलेका क्वाथ दिनमें २ वार सुवह और रात्रिको कुछ दिनोंतक देते रहें।

२ वमन—आमाशयका पित्त तेज होजानेसे होनेवाली खट्टी खट्टी वमन और अपचन जनित वमनमें पीपलकी छालकी राखको ८ गुने जलमें भिगो फिर नितरा हुआ जल आध आध घण्टेपर थोडा थोडा देते रहनेसे वान्ति रुकजाती है।

३ वालकोंका मुखपाक—पीपलकी छाल और पानके चूर्णको शहदमें लेप करें।

४ गर्भधारणार्थ—मासिकधर्मके ४ से ७ दिनतक रोज सुवह पीपलपर उत्पन्न वादेको दूधमें उबालकर पिलावें। यह प्रयोग गर्भाशय शुद्ध होनेपर करना चाहिये। गर्भाशयमें दोष हो तो पहले दूर करना चाहिये। फलोंका चूर्ण और फलोंका पाकभी गर्भधारणार्थ दियाजाता है।

५ जखम—ताजे जखमपर पीपलकी छालका कपडछानचूर्ण दवा देनेपर घाव भरजाता है। यह चूर्ण फटे हुए अग्निदग्ध व्रणपरभी छिडका जाता है।

६ वातरक्त—२-२ तोले पीपलकी छालका क्वाथ शहद मिलाकर दिनमें २ वार पिलाते रहनेसे १-२ मासमें दारुण दाह और रक्तविकारके ददौरे सह त्रिदोषज वातरक्तभी दूर होजाता है।

७ वाजीकरणार्थ—पीपलके फल, मूल, छाल, और अङ्कुरसे सिद्ध किया हुआ दूध, शक्कर और शहद मिलाकर पीते रहनेसे कामोत्तेजक शक्ति सबल रहती है।

८ वालकोंके आक्षेप—(अ) १–१ रत्ती पीपलकी लाखका चूर्ण दूधमें मिलाकर दिनमें २ वार कुछ दिनोंतक देते रहनेसे विष नष्ट होकर धनुर्वात दूर होजाता है।

(आ.) वालकोंके आक्षेपपर वडके समान पीपलमें निकलीहुई जटा १-२ रत्ती आध-आध घण्टेपर देनेसे तीव्र आक्षेप शमन होजाता है। फिर दिनमें २ वार सुवह शाम कुछ दिनोंतक देते रहनेसे रक्तमेंसे विष नष्टहोकर आक्षेप आना बन्द होजाता है।

(इ) कितनेक चिकित्सक पीपलकी जटामासी और केशर समभागमिलाकर चूर्ण करते हैं। इसमें से १-१ रत्ती चूर्ण जलकेसाथ देते रहते हैं।

९ शोथ—चोट लगने या जन्तुके काटनेसे शोथ आयाहो, तो पीपल की छालका चूर्ण घीमें मिलाकर लेप करे। नारूसे सूजन आई हो तो पीपलके पानपर एरण्ड तैल लगा गरमकर वाध देनेसे दाह और शोथ निवृत्त होते हैं, फिर नारु जल्दी वाहर आजाता है।

१० पशुओंके क्षत—पीपलकी छालका चूर्ण बार-बार भुरकते रहें।

११. उरःक्षत—पीपलकी लाखका चूर्ण १-१ माशा दिनमें ३ बार घी और शहद मिलाकर देते रहनेसे उर क्षतसे गिरताहुआ रक्त बन्द होता है, क्षत भरता है तथा कफ सरलतासे बाहर आजाता है।

१२. बदगांठ—फूटीहुई बदगाठपर गन्धाविरोजाको पीपलके दूधमें मिलाकर पट्टी बांधते रहें। पूयसे पट्टी खराब होनेपर बदलते रहें. तो वह मिट जाती है।

१३. श्वासरोग—पीपलके फलोंको छायामें सुखाकर कपडछान चूर्ण करें। उसमेंसे ४-४ माशे चूर्ण दिनमें २ बार १४ दिनतक सुबह और रात्रिको देते रहनेसे श्वास रोग दूर होता है।

कितनेक महात्मा पीपलकी अन्तर छालको छाहमें सुखाकर चूर्ण करते हैं, फिर रोगियोंको शरद् पूनमके दिन उपवास कराते हैं और गोदुग्धमें चावल और शक्कर मिलाकर खीर बनाते हैं. उस खीरको रात्रिके १२ बजेतक चांदनीमें रख देते हैं। फिर पिछली रात्रिमें १०-२० तोले खीर, ६-६ माशे पीपलकी छालका चूर्ण मिलाकर खिलाते हैं। रात्रिको रोगीको सोने नहीं देते, जागरण कराते हैं इसविधिसे प्रयोग करनेपर अनेकोंको लाभ पहुँचा है। यह प्रयोग शरद् पूर्णिमाके समान कार्त्तिककी पूर्णिमाकी रात्रिको तथा फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा को भी हो सकता है।

१४ हिस्टीरिया :—हिस्टीरियाहर पिल्सका सेवन १-२ मासतक पथ्य पालनसह करावें। रुग्णाको वातप्रकोपक पदार्थ, तेजखटाई और अग्निका अधिक सेवन न करावे। उसके मनको प्रसन्न रखें।

१५ सर्पदंशः—पीपलकी पतली पतली प्रशाखा लगभग कनिष्टिका जितनी मोटी और जिसके अन्तमें से अकुर फूटे हों, वैसी लगभग १-१ फूट लम्बी लावें। उसके ऊपर लगे हुये पान तोड डालें तथा अकुरकीओरकी छाल आध पौन इञ्च नाखुनसे निकाल डालें। फिर सर्पदंशितके दोनों कानमें एक एक प्रशाखाको प्रवेश करावे। हाथोंसे प्रशाखाको पकड रखे। जिससे विषका आकर्षण होने लगता है। उस समय रोगी उन्माद पीडितके समान चेष्टा और प्रलाप करने लगता है। विष शमन हो जाने पर प्रशाखा निकाल लेवें।

यदि रोगी मूर्च्छित हो. तो भी वह प्रयोग किया जाता है। जगलकी जडी बूटीमें डा. वी. एच. गुप्ता M. B B s का अनुभव दर्शाया है। उन डाक्टर साहिबके पास एक मूर्च्छित रोगी को लाया गया, तब रोगीका शरीर शीतल था, नेत्रका रंग विकृत होगया था, नाड़ी बन्द थी, हृदयकी धडकनभी स्पष्ट प्रतीत नहीं होती थी। ऐसी स्थितिमें डाक्टर साहिबने उक्त प्रयोग किया। थोडे ही समयमें नेत्रोंका देखाव सुधरनेलगा, आध घण्टे में रोगीके दात खुल

गये और टहनी कानमें से निकल गई, जो फिरसे कानमें नहीं चिपक सकी। फिर पीपलके कोमल पानोंका जलके साथ पीस स्वरस निकाल एक एक चम्मच (१।-१। तोले) वार वार देते रहे। पहले कण्ठ मे स्वरस नहीं जाता था। जिससे नौसादर और चूना मिलाकर पोली नलिकामें १-२ रत्ती भर नाकमें फूक दिया। फिर रस मुहमें डालने लगे, तब वह आमाशयमें जाने लगा। थोड़े ही समयमें मुंहसे कालेरगकी लार टपकने लगी। लगभग १००-१२५ चम्मच रस पिलानेपर रोगी बिलकुल स्वस्थ हो गया। फिर थोडा टहलाया, तथा बीचमें थकावट और तन्द्रा दूरकरनेके लिये थोडा थोडा गाय का दूध, घी शक्कर मिला हुआ पिलाया। इसतरह प्रयोग करनेपर ४ घण्टेमें रोगी घरपर चलागया। (जगलकी जड़ी बूटी से)

१६ काली खांसी :—यह खासी बालकों को होती है और दिनोंतक दुःख देती है। वेग उत्पन्न होनेपर २-४ मिनिटतक बालक पीडित होता है। वेगके हेतुसे बच्चा पूरा श्वास नहीं ले सकता और वांति होकर खाया हुआ अन्न भी निकल जाता है। इस वेग कालमें बालकका मुंह लाल हो जाता है, और कण्ठमें से विशेष प्रकारकी आवाज होकर थोडा झाग निकलता है। इसरोगपर २-२ रत्ती पीपलकी लाख ३-३ माशे मक्खनकी साथ मिलाकर दिनमें ३ वार देते रहनेसे थोडेही दिनोंमें खासी दूर हो जाती है।

१७ हिक्का :—लाखका चूर्ण १-१ माशा शहदमें मिलाकर वार वार चटाते रहनेसे हिक्का शमन हो जाती है।

१८ शुष्क कास :—लाखका चूर्ण १-१ माशे घी शक्करके साथ मिलाकर दिनमें ३ वार देते रहनेसे कासकावेग शान्त हो जाता है।

१९ रक्तकास :—लाखका चूर्ण ४-४ रत्ती घी शहद और शक्करके साथ मिलाकर दिनमें ३ वार देते रहनेसे कासका वेग और रक्तस्राव, दोनों दूर हो जाते हैं। और जीर्णज्वर निर्बलता, अग्निमांद्य, मलावरोध आदि रहते हो तो दूर होकर रोगी स्वस्थ और सबल बन जाता है।

२० निद्रानाश :—मस्तिष्कमें उष्णता आकर निद्रानाश होनेपर रात्रिको १-१॥ माशा लाखको शक्कर मिले भैंसके दूध के साथ देनेसे शान्त निद्रा आ-जाती है।

(११) पीलाचम्पा।

सं० चम्पक, स्वर्णपुष्प हिं० चम्पा, पीलाचम्पा। गु० पीलोचम्पो। म० पिवलाचम्पा। बं० चांपा फूलेर गाछ। ता० अमरियम्। ते० चम्पकमु। मला० चम्पककर। क० सपिगे चम्पक। अ० Golden Champa ले० Michelia Champaca

परिचय—मिचेलिया=इटालियन वनस्पति शास्त्री मिचेल के सम्मानार्थ संज्ञा। चम्पक=संस्कृत नाम वृक्ष सुन्दर, सरल. सर्वदा हरा पान ६ से १०इञ्च लम्बे, २ से ४ इञ्च चौडे अखण्ड पुष्प २ से २।। इञ्च व्यासके, देखने में सुन्दर, शीतल सुगन्धयुक्त और पीले रंगके। पुष्प विशेषत गर्मीके दिनोंमें आते हैं इसमें उड्डयनतैल (Volatile oil) और गाढातैल (Fixed oil) दोनों अवस्थित हैं। लकडी काले बैंजनी या पीले भूरे रंग की। फली गहरी भूरी, लगभग ।।। इञ्च लम्बी, फलपाक शीतकालमें।

मात्रा—छालका चूर्ण १।।से २ माशे पानोंका स्वरस १ से १।। माशे पुष्पों का चूर्ण १ से १।। माशे बीजतैल १० से २० बूँद।

गुणधर्म—छालमें रस चरपरी वीर्य शीतल, विपाक मधुर। छाल दीपन, पाचन, स्वेदजनन, नियतकालिक ज्वर प्रतिबन्धक, मूत्रल, वातहर, कफघ्न, गर्भाशय के लिए उत्तेजक, शोथहर, व्रणशोधन और रसायन।

पुष्प कडुवे, दीपन, उत्तेजक, वातहर, आक्षेपहर, मूत्रल, दाहशामक, कण्डूनाशक, व्रणशोधक व्रणरोपण और त्वचारोगहर है। मतान्तरमें रसमें कसैला, पाकमें मधुर, शीतवीर्य।

पान शीतल, कृमिघ्न, मूत्रल और कफहर है। कास, पित्तप्रकोप, मूत्रकृच्छ्र, शूल, और रक्तविकारमें लाभदायक है। पानका उपयोग स्वरस, हिम या फाण्ट रूपसे करना चाहिये।

बीजोंका तेल (कोल्हूसे निकालाहुआ) मूत्रल है। हाथ पैरों की त्वचापर लगाने में उपयोगी है।

छालका सेवन करने पर मुखशोष. कण्ठशोष, आमाशयमें दाह होकर अमाशय और अन्त्रके रसकी वृद्धि होती है। जिससे सेन्द्रिय विष दूर होताहै। कृमिस्थान च्युत होतेहैं। प्रस्वेद आताहै, मूत्रमार्ग प्रतिबन्ध रहित होता है। मूत्रकी वृद्धि होती है कामोत्तेजना होतीहै। वात और कफदूर होतेहैं। रक्त और पित्त-की शुद्धि होतीहै।

डाक्टर देसाई और कन्हैयालाल देसाईने चम्पेकी छालकी क्रिया चौवेहैयात (Guaicum officinalis) के समान कहा है। अत चौवेहैयात के प्रतिनिधि रूपसे पीलेचम्पेकी छालका उपयोग हो सकताहै।

सुगन्धित तैलमें जो कडवा द्रव्य है वह त्वचा और वृक्कद्वारा वाहर निकल-ताहै। इस हेतुसे चम्पेके सेवनसे उष्णता आकर स्वेद आता है तथा मूत्र परिमाण बढ़ जाताहै।

पुष्प और फलोंका उपयोग अपचन, उबाक और ज्वर पर होता है।

लकडी का उपयोग हाथी दांतके खिलौनेकी जडाई में होता है। एवं आलमारी और खिलौने बनाये जाते हैं।

चम्पक कल्प—चम्पकत्वक्फाण्ट छालका चूर्ण २॥ तोलेको ४०तोले उबलते जलमें मिलाकर ढक देवें। शीतल होनेपर छानलेवें। मात्रा २॥ से ५ तोले, दिनमें ३ बार। यह फाण्ट त्रिदोषशमन और रक्तप्रसादनके लिये ज्वर, कफप्रकोप मूत्रावरोध, मासिकधर्मके अवरोध और सुजाकमें व्यवहृत होता है।

२ चम्पकतैल—चम्पाके फूलों को १६ गुणे तिल तैल में मिला, अमृत-वानमें भर मुखमुद्राकर सूर्य के तापमें रक्खें। ७ दिनबाद फूलोंको निकालकर निचोड लेवें और दूसरे ताजे फूल मिलाकर पुन मुखमुद्रा कर सूर्य के तापमें ७ दिन रखें। ८ वें दिन छानकर तेल को बोतलों में भरलेवें।

उपयोग—छाल विषमज्वर पहाडीज्वर, उपदंश, कंठकी गांठें, शीतप्रधान एकाहिकज्वर, वातप्रकोप, कुष्ठ और मन्दाग्निरोग आदि रोगोंपर प्रयोजित होता है। फूल सुजाक, मूत्रकृच्छ्र, वृक्कविकार, उदरकृमि, ज्वर, और त्वचारोगों में मूत्रजनन और रक्तप्रसादनार्थ दिया जाता है। मुखकी श्यामता और वातरक्त-पर फूलोंका बाह्य उपयोग होता है। मूलकी छाल गर्भाशयके शोधनार्थ दी जाती है।

१ विषम ज्वर और दूषितजल जन्य ज्वर—शीत आनेके २ घण्टे पहले चम्पकत्वक्फाण्ट देवें। फिर १-१ घण्टेपर २ बार देवें। ज्वरावस्थामें ४-४ घण्टेपर दिनमें ३ बार देवें। फाण्ट पीनेसे तत्काल अमाशयमें दाह प्रतीत होता है, परन्तु वह थोडेही समयमें शान्त हो जाता है।

२ उपदंश—उपदंशकी द्वितीयावस्था में मांस सडताहै, और फोडे फुन्सियां होजातेहैं, सन्धिस्थानोंपर शोथ आजाताहै। उसपर छालका फाण्ट गन्धक और सोरा मिलाकर दिनमें ३ बार रक्तशोधनार्थ देते रहने से थोडे ही दिनोंमें रक्तप्रसादन होकर सब लक्षण शमन हो जातेहैं। एवं जीर्ण आमवातमें सन्धिप्रदाह हुआहो, उसेभी यह फाण्ट दूर करता है।

३ कण्ठकी गांठोंके शोथपर—वृद्ध मनुष्योंकी प्रसनिका ग्रन्थियों(Tonsils) की वृद्धि होजानेपर चम्पेकी छालकाचूर्ण मुहमें रखकर रसनिगलतेरहें। छालकी मात्रा पूरी देवें। जिससे १-२ दस्त लगजाय तो अच्छा। जिसतरह बालकोंके प्रसनिकावृद्धिमें वच्छनाग गुणकारी है। उसतरह वृद्धोंके लिए चम्पाकी छाल हितकर है।

४ वातप्रकोप—वातप्रकोप होनेपर भिन्न-भिन्न स्थानपर शूलचलता है, वेदना होती है और फिर शून्यता आजाती है। उसपर चम्पाके फूलोंके निकाले तैलकी मालिश करावें और फूलों का फाण्टकर दिनमें ३ बार पिलावें।

५ विद्रधि—(फोडा)—चम्पेका दूध लगानेसे वह जल्दी फूटजाता है। फूलों का कल्ककर पुल्टिस बांधदेनेपरभी फोडा फूटजाता है और भरभी जाता है।

६ मासिकधर्ममें अवरोध—मासिक धर्ममें कष्टहोनेपर या अवरोध होनेपर मूलकी छाल (या शाखाकी छाल) का फाण्ट ६-६ माशे घी मिलाकर दियाजाता है। फाण्टकी मात्रा पूरी देनी चाहिए।

७ बहुमूत्र—मूत्राशय अथवा मूत्रप्रसेक नलिकामें प्रदाहहोनेपर थोडा थोडा मूत्र आता रहता है या मूत्र एक एक बूँद टपकता रहता है। मूत्रको रोकनेकी शक्ति नष्ट होजाती है, उसपर मूलकी छालका फाण्ट दिनमें२ वार पिलानेसे सत्वर लाभ पहुँच जाता है।

८ कुष्ठ (विविध त्वचारोग)—छाल ३-३ माशे दिनमे ३ वार जलके साथ, २ से ६ मासतक सेवन करावें। इससे रक्तशुद्धि और कीटाणुनाश होकर सब प्रकारके त्वचारोग दूर होजाते हैं। दाद, व्युची, पामा, कच्छू, सिध्म (विभूति), की लास (सफेद कुष्ठ); विचर्चिका, कपालकुष्ठ (कालीत्वचा)चर्मदल (हाथपैरोंके तलवेंमें जलनसह खुजली), विपादिका आदि विकार इसके सेवनसे दूर होजाते हैं। यह सामान्य औषधि होतेहुए अति दिव्य गुणकरती है।

९. सुजाक—फूलोंका फाण्ट दिनमें ३ वार पिलाते रहनेसे मूत्रमें जलन दूर होती है, कीटाणु नष्ट होते हैं और भीतरका घावभरजाता है। रोग दूरहोने-परभी कुछ दिनोंतक इसका सेवनकरे। फिर गिलोय,गोखरू और आंवलेके चूर्ण (रसायन चूर्ण) का सेवन ४-६ मासतक करते रहना चाहिये। क्योंकि, सुजाक-की जड़ जल्दी दूर नहीं होती।

१ उदरकृमि—फूलोंका स्वरस शहद मिलाकर दिनमें २ वार देते रहें। इससे कृमि हो, वे निकलजाते हैं और भावी उत्पत्ति रुकजाती है।

११ अतिसार—चम्पेकी छाल और अतीसका चूर्ण मिलाकर थोडी मात्र में दिनमें ३-४ वार सेवन करानेपर ज्वरसह आमातिसार और पक्वातिसार दूर होजाते हैं।

१२. वहुमूत्र—चम्पाकीछालका क्वाथ पिलानेसे मूत्रप्रसेक नलिका प्रदाह और वसितप्रदाह दूरहोता है। फिर बूंद बूंद मूत्रस्राव होने (वहुमूत्र) का निरोध होजाता है। सुजाक जनित विकार हो, तो पुष्पोंका फाण्ट देना, यह विशेषहितावह मानागया है।

१३ व्रणपाकार्थ—चम्पेका दूधलगानेसे पच्यमान विद्रधिका जल्दी पाक होता है और वह सरलतासे फूट जाता है।

(११) पीलु ।

स० पील, गुडफल, विरेचनफल, तीक्ष्णतरु । हिं० पीलु, छोटा पीलु, जाल । वं० छोटापीलु, जाल, पीलु । गु० खारीजाल, पीलु पीलुडी । म० खाखीन, पीलु, । कना० गोना । ता० कालाख, कार्गोल । ते० घुनिया गोगु । कों० सारी, किंकण, सरजाल । अ० अरक,इराक । फा० मिस्वाक । प० अरक, झाल । राज० जाल । सिं० पीलु । ओ० कोटु गो, टोवोटा, पीलुगाछ। अ० Tooth brush tree ले० Salvadora percica

परिचय—छोटा, सर्वदा हराबृक्ष या बडी उलझी हुई, अनेक शाखावाली झाड़ी । ऊंचाई १० से २० फीट । मूल लम्बा, गहरा, अनेक शाखायुक्त । मूलकी छालका रंग भूरा-सफेद । वास और स्वाद राईके सदृश । शाखाकी छालकी वास राई सदृश, स्वाद नमकीन मीठा, चरपरा और फिर फीका । लकडी नरम, कुडकीली, सफेद-पीली । पान सामने सामने, मोटे लम्बगोलसे, १॥ से ३॥ इञ्च लम्बे, ॥। से १। इञ्च चौडे, गहरे हरे रगके, तेजस्वी, कुडकीले, स्वाद नमकीन, चरपरा, मीठा । पुष्प शाखाके अन्तमें पत्रकोणमेंसे २ से ५ इञ्च लम्बी सलाकापर, पीले-हरे । गध राइ जैसी । पुष्पवाह्यकोष और अन्तरकोषके ४-४ पत्र (पखड़ियां) । पुकेसर ४। स्त्री केसर १। फल गोल, चमकीले, चिकने, पकनेपर लाल, सफेद या काले लगभग । इञ्चव्यासके, १ बीजवाले वास तीक्ष्ण । स्वाद चरपरा मीठा ।

उत्पत्ति स्थान—गुजरात काठियावाड, कच्छ, पजाव, यू० पी०, सी० पी०, विहार । पंजाबमें ऊंचाई ३०-४० फीटतक और घेरा ६ से ८ फीट हो जाता है । पुष्प नवेम्बरसे मईतक । विहारमें फल फूल अप्रेल-मई में । नये पान मईमें । गुजरातमें फूल जनवरी फरवरी में और फलपाक अप्रेल मईमें । उपयोगीअग सर्वाङ्ग । इसके वीजोंमें से तैल निकलता है । उसका रग हरा पीला होता है । यह तैल थोडेही समयमें (एक दो दिनमें) जम जाता है ।

गुणधर्म—पीलुको सुश्रुतसहितामें रसमें चरपरा, अनुरस कडवा, पित्तकारक, सारक, विपाकमें चरपरा, तैलयुक्त तथा कफवातजित है (सू० अ० ४६-१९५) अन्य ग्रन्थकारोंके मतअनुसार रस मीठा-चरपरा. अनुरस कडवा नमकीन, विपाक चरपरा, उष्णवीर्य, रुचिकर, सारक, तीक्ष्ण भेदक, दीपन रक्तपित्तनाशक, स्निग्ध और विदाही है । तथा अर्श, गुल्म, कफ, वातरक्त, प्लीहा, मलावरोध, उदररोग, वायुरोग और विषप्रकोपको नष्टकरता है ।

यूनानी मतमें इसके पान कडुवे, आतोंके लिये सकोचक, यकृत् के लिये वल्य, कृमिनाशक और वेदनाहर है । पीनस आदि नासारोग अर्श, कण्डू और प्रदाहके नाशक तथा मसूढों के लिये हितकर है । पीलुके फूल उदर शोधन

मूत्रल, कामोत्तेजक, कृमिघ्न और वातहर है। शाखाकी छाल का फाण्ट या अर्क अनार्तवमें उत्तेजक रूपसे दियाजाताहै। इसवृक्षकी प्रशाखा का (छाल निकाल-कर) दतौन दंतरोग नाशकहै। रक्तपित्त (स्कर्वि) रोगके हेतुसे मसुढ़े में से रक्त आता हो, तो वह पीलु के पानों के रसके सेवनसे दूर होजाताहै। बीज चरपरा विदाही विरेचन और यकृत् बलवर्द्धक है।

सिंधमें इसके ताजे और सूखे फलोंका उपयोग सोहागा मिलाकर सर्प दंश पर सफलता पूर्वक करते रहतेहैं, किन्तु डा० म्हसकर और कैसके अनुसंधान अनुसार काले सर्पके विषपर असफल है।

डाक्टर देसाईके मतानुसार पीलुके पान सनायके समान रेचन। बीजोंका तैल राईके तैल समान कार्यकारी होनेसे संधिवातपर मर्दन किया जाताहै। मूलकी छाल दाहक, स्वेदजनन और कुछ मूत्रजनन है।

उपयोग—पीलुका उपयोग आयुर्वेदमें प्राचीनकालसे होरहाहै। चरकसंहिता और सुश्रुतसंहिता, दोनोंके भीतर इसका उल्लेख मिलता है। चरकने ज्वरहर और विरेचनोपयोगी दशेमानि, शिरोविरेचन पुष्पासव और प्रसवकालकी सामग्रीमे तथा मदात्ययकी तृषा और आनाह रोगपर पीलुकी योजना की है। सुश्रुतने कटुस्कन्ध, शिरोविरेचन, और गुल्मरोगमें पीलु लिया है।

गुजराती वनस्पति शास्त्रकारने लिखा है कि,"पीलुके मूल या तनेकी छाल-को कुचलकर त्वचापर बाधनेपर फाला होजाताहै। इसके कोमल शाखाका क्वाथ शहद मिलाकर कफकासमें पिलानेसे कफ सरलतासे बाहर निकलता है।"

"इसके पानों को कूट कपड़ेमें बांध अग्निपर तपाकर आमवातज वेदनायुक्त शोथपर सेक किये जाते हैं। एवं पानपर एरन्ड तैल लगा, तपाकर बांधा जाता है। अपचन और उदरशूलमें कोमल पान थोड़े नमक के साथ दियेजाते हैं। सूखे पानोंका चूर्ण तमाखुके साथ चिलममें भरकर कफ कास और श्वास पीडित रोगीको धूम्रपान कराया जाता है। जहरी जन्तु काटनेपर इसके पानोंका क्वाथ पिलाया जाता है।"

"इसके फल खानेसे शौचशुद्धि होती है, अग्नि प्रदीप्त होता है। यदि अधिक खानेमें आयगा, तो शिरमें भारीपन आजाता है और चक्कर आने लगता है। तैल (किंकणेल) को गरमकर संधिवातमें मर्दन कराया जाता है। इस तैलमें मोम मिलाकर हाथपैर फटे हों, उसपर लगाया जाता है। इसका विशेष उप-योग साबुन और मोमबत्ती बनानेमें होता रहता है।"

१ ज्वर :—डाक्टर देसाई लिखते हैं कि, पीलूकी छालका क्वाथ दशगुने जल मिलाकर किया हुआ ज्वरावस्थामें असावधानतापूर्वक प्रलाप और निर्वे-

लतामें चेतनावर्द्धक रूपसे दिया जाता है। यह औषधि सगर्भाको नहीं देनी चाहिये।

२ अर्श :—भोजनमें मात्र पीलुके फल लेवें। ऊपर तक्रपान करें। इस तरह एक दो सप्ताह तक पथ्य पालन करनेपर अर्शरोग शमन हो जाता है। इसके अतिरिक्त पीलु रसायन ग्रहणी, उदरकृमि, गुल्म इनरोगोंपर भी अमृतके समान उपकारक है।

३ कुत्तेका विष —कुत्ता काटनेपर पीलुके पानोंका रस ४ से ८ तोले अथवा मूलका घासा दिनमें २ बार ३ दिन तक पिलावें।

४ संधिवात —पीलुका तैल (गु० खारसण, म० किकणेल) की मालिश करावें अथवा पीलुको पानका रस और कडवी तोरई का रस मिलाकर मालिश करावें।

५ पशुओं के व्रण :—पीलुके पानोंको जला राखकर मूत्रमें मिलाकर व्रणपर लगाते रहनेसे व्रणमें उत्पन्न कृमि मर जाते हैं और घाव शुद्ध हो जाता है। फिर यह सरलतासे भरजाता है।

६ घोड़े की मंदाग्नि —पीलुके पानोंके रसको बाजरीके आटे और गुडके साथ मिलाकर लड्डु बनाकर खिलाते रहनेसे थोड़ेही दिनोंमें चारा अच्छी तरह चरने लगता है। और फिर बलवान बन जाता है।

(१२) पीलु बडा

सं० बृहत्पीलु, राजपीलु, महाफल, मधुपीलु। हि० पीलु, बडा पीलु। पं० जालवन, पीलु। म० गोडपीलु कारसण, किंकण। गु० मीठीजाल, मीठी पीलुडी। को० मिरजोली। द्रा० प्लावन। ता० कालव, करकोल।

लै० Salvadoa Oleoides

परिचय :—ओलियोइडस=तैल युक्त बीजवाला वृक्ष। बडी झाडी या छोटा सर्वदा हरावृक्ष। ऊंचाई १२ से १५ फीट घेरा पंजाबमें १२ फीट तक। तना और शाखाका देखाव सामान्यतः छोटे पीलु के समान, पानमें अन्तर। छोटे पीलुके पानकी अपेक्षा इसके पान मैले हरे लम्बे और सकडे। मूलकी वास और स्वाद कुछ चरपरे। तना और शाखा भूरे रंग के, छाल खुरदरी उस पर खडे चीरे। कोमल शाखा हरी चमकीली। पान सामने सामने, २ से ३ इञ्च लम्बे, । से ॥ इञ्च चौडे, नोकदार, मोटे, कुडकीले, चरपरी गंधवाले स्वादमें नमकीन, मीठे और चरपरे। फूल पीले हरे या सफेद, पत्रकोणमें से निकली हुई सलाका पर, कुछ मधुर वासवाले, सूक्ष्म, बाह्यकोष के ४ पत्र। अभ्यन्तर कोषके ४ पत्र (पखडी)। स्त्रीकेसर १। फल गोल कुछ चिपटे शिरपर सूक्ष्म नोकवाले, पकने

पर लाल काले और सफेद. चिकने, चमकीले, स्वादमें मधुर कुछ चरपरा; एक बीजयुक्त। लकड़ी हल्के पीले रंगकी।

उत्पत्ति स्थान :—गुजरात, काठियवाड़, कच्छ; महाराष्ट्र, सिंध, पंजाब. राजपूताना, गुजरातमें पुष्प जनवरी फरवरीमें, (पंजाबमें मार्च अप्रेल में) फल पाक अप्रेल मई। छोटे पीलुसे इस जातिके फल वडे, कम चरपरे और अधिक मीठे। बीजों में से तैल निकलता है। उपयोगी अंग सर्वाङ्ग।

गुणधर्म :—मधुररस विपाकमधुर. शीतवीर्य. कामोत्तेजक. विषनाशक. पित्तशामक, रुचिकर. आमनाशक, अग्नि प्रदीपक। तेल लघु और कफ वातनाशक।

डाक्टर देसाईके मतानुसार "पान उष्णवीर्य वायुनाशक, मूत्रजनन दुग्ध वर्द्धक और स्वेदजनन है। ये पान और निर्गुण्डी के पान समभाग मिला थोड़ा कूट मिट्टीके वरतनमें गरमकर वायुसे पीड़ित अंगपर सेक किया जाता है। छाल चरपरी, उष्णवीर्य, दाहजनक और उत्तेजक है। छालका क्वाथ ज्वरमें थकावट आनेपर उत्तेजक मानकर दिया जाता है। छालका यह उत्तेजक धर्म अति उत्तम है। मासिक धर्म शुद्धिकेलिये यह क्वाथ दिया जाता है।"

"फल उष्णवीर्य, लघु, दीपन. वातहर और मूत्रजनन है। पके फलों को सुखानेपर काली मुनक्काके समान प्रतीत होते हैं। इसमें शक्कर बहुत है। संधिवात और प्लीहावृद्धिमें फल खिलाते हैं। फलों के बीज आनुलोमिक और विषहर है। सिंध देशमें सर्पविषपर बीज देते है।"

"बीजोंमेंसे हरा, गाढा, और चरपरी वासवाला तेल निकलता है, उसे मराठीमें किकणेल कहते हैं। वह स्वेदजनन, उत्तेजक और चेतनावर्द्धक है। यह उग्र होनेसे ज्वरमें प्रस्वेद लाने और उत्तेजना बढ़ानेके लिये इसका मर्दन कराया जाता है। जीर्ण संधिवातमें सांधे पर मसलनेसे वेदना कम हो जाती है।"

उपयोग :—छोटी जातिकी अपेक्षा इस बड़े पीलुमें नमकीनपना और चरपरापन कम होनेसे इसके पानों का उपयोग कफ प्रयोगमें अधिक होता है। विशेष वर्णन (छोटे) पीलुके उपयोगमें लिखा गया है।

(१३) पुनर्नवा

नीली पुनर्नवा के सं. नाम :—नील पुनर्नवा, श्यामा, कृष्णा, नीलवर्षाभू।

सफेद पुनर्नवाके नाम.—सं. पुनर्नवा. शशिवाटिका, श्वेतमूला, दीर्घपत्रिका वर्षाभू। हि० विषखपरा. सांठी, गदहपूरना। बं० श्वेतपुण्या। म० नर्मा० वसु, पांढरी घेटुड़ी। गु. सफेद साटोडी। फा० दुन्न अस्पत। अ० हंदकूकी. गन्द-

कोका। ता चत्ता रनाई। ते गली जेरु। क० गज्जेरू। मला० तलुडामा। अ० Spreading hogweed

लाल पुनर्नवाके नाम :—स० पुनर्नवा, रक्तकाण्डा, रक्तपत्रिका, शोफघ्नी, मारिणी। हि० लाल विषखपरा, साठी, अलेही गदहपूरना। म तांबडी घेटुडी, लहान नर्मा,वसु। गु० साटोडी, वसेडो। कच्छी, रफेडी, टोकरी, आल। फा० इस्पिस्त सहराई। सि० उलरगुलर। ब० शेयापुण्या।

ले०

1	Trianthema Portulacastrum	(श्वेत वृहत्‌जाति)
2	,, ,, Pentandra	(श्वेत लघुजाति)
3	Boerhavia Verticillata	(श्वेत वृहत्‌जाति)
4	Trianthema Decandra	(रक्तपुनर्नवा वृहत्)
5.	,, ,, Crystallina	(रक्तपुष्पा श्वेतत्वचा)
6	Boerhauia Diffusa	(रक्तपुष्पा पुनर्नवा)

परिचय :—बोर्हे विया = बोर्हेव उच्च वनस्पति शास्त्रीके समानार्थ। पेण्टण्ड्रा = ५ तनेसह। वर्टि सिलेटा = क्षुपके चारों और गोल गुच्छ बनाहुआ। डेकण्ड्रा = १० तनेयुक्त। क्रिस्टलीना = श्वेतत्वचायुक्त। डिफ्युजा = चौडाईमें फैले हुए। ट्रायेन्थेमा और बोर्हेविया समूहमें पुनर्नवाको स्थान दिया गया है। वनस्पति शास्त्रकी दृष्टिसे इन दोनों वर्गमें पुनर्नवाकी अनेक जाति हैं। इनमेंसे ६ के नाम यहा लिखे हैं। इनका संक्षिप्त परिचय कराते हैं। क्योंकि, इनके गुणधर्ममें कुछ अन्तर है। गुजरातमें ट्रायेन्थेमा समूहकी जातियोंको साटोडी (पुनर्नवा) और वर्हेविया समूहकी जातियोंको वसेडो (वसु) संज्ञा दी हैं। किन्तु डाक्टर देसाई तथा मद्रास और बंगालके कविराजोंने बोर्हेविया जातिको सच्ची पुनर्नवा मानी है। डा. घोषने मेटेरिया मेडिकामें रक्त पुनर्नवा(बोर्हेविआ डिफ्युजा) कि सबल मूत्रल मानकर जलोदर, शोथ, यकृद्दाली और काला आजारमें हितकारक कहा है। विशेष फलदायक ओषधियोंका उपयोग हो सके, इसलिये दोनों समूह और पृथक् पृथक् जातिका संक्षिप्त परिचय यहा कराते हैं।

बोर्हेविया जातिके मूलमें से दूध जैसा गाढा रस निकलता है। वास उग्र और कड़वी, स्वाद पहले मधुरसा फिर जिह्वा काटेदार बनती है। ट्रायेन्थेमा जातिके मूलकी वास उग्र, स्वाद चिपचिपा फीका, फिर मधुरसा।

ट्रायेन्थेमा समूहमें पुष्पवर्हिकोप (पुष्पपर रहा हुआ बाहरका आच्छादन (Calyx) कफ (कटोरी) आकारका होता है। बोर्हेविया समूहमें बाह्य ओर अन्तर का आवरण (बाह्यान्तरकोष (Perianth) समान आकार और सम मुलायम होते हैं। ट्रायेन्मा समूहकी वनस्पतियोंमें बाहर और भीतरके २

आच्छादन नहीं होते। यह महत्त्वका अन्तर है।

अलग अलग जातिस्वनाममें प्रभेदः—

१ ली जाति–पुष्प एकाकी श्वेत, गुलाबी आभायुक्त, वृन्तरहित। पुंकेसर १० से २०। पान ॥ से १॥ इञ्च लम्बे।

२ री जाति–पुष्प वृन्त रहित या लगभग वृन्तरहित, गुच्छमें। पुंकेसर ५। पान १ से १॥ इञ्च लम्बे।

३ री जाति–पुष्प श्वेत गुलाबी। छत्रमें २ से ३ फूल। वृन्त $\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{2}$ इच लम्बा पुंकेसर ३। पान २ से ४ इच लम्बे।

४. थी जाति–पुष्प लगभग छत्राकार, गुच्छके भीतर। पुंकेसर १०। पान १ से १॥ इञ्च लम्बे।

५ वीं जाति–पुष्प सघन गुच्छके भीतर। पुंकेसर ५। पान ॥. से ०॥। इञ्च लम्बे।

६ ठी जाति–पुष्प अति छोटे लगभग छत्राकार। पुंकेसर २ से ३। पान ॥ से २ इंच लम्बे।

मात्रा :—बोर्हेविया वर्गके भीतर डिफ्युजा के पान ॥ से १॥ इञ्च लम्बे। प्रत्येक जोड़ीके पान अति असमान, पुष्प लगभग प्यालीके सदृश गुलाबी या बैंगनी होते हैं। वर्टि सिलेटामें पान १॥ से २॥ इञ्च लम्बे (चौडाई लम्बाई से अधिक), पत्रवृन्त छोटा (॥ से ॥। इञ्च लम्बा), पुप गुच्छोंसे सज्जित, लम्बी कलंगीमें, सामान्यत सफेद। यह वर्टि सिलेटा अजमेर–मेरवाड़ेमें अधिक प्रतीत होती है। डिफ्युजा जाति लगभग भारत के सब प्रान्तों में मिलती है।

बोर्हेविया वर्ग के भीतर ३ री जाति रेपण्डा (B Repanda) भी मिलती है। इसके पान प्रत्येक जोडीमें लगभग समान, १ से ३ इञ्च लम्बे, त्रिकोणाकार–अण्डकार, लगभग गहरे तरंगदार किनारेयुक्त (Repand–sinuate) पत्र वृन्त ॥ से १॥ इञ्च लम्बा। पुष्प छत्राकार रचनामें, गुलावी, लम्बी सलाकापर। छत्रमें ३ से ८ फूल। यह जाति गंगाजी के तटपर (यू० पी०), बलूचिस्थान और पश्चिमघाटमें मिलती है।

मात्रा—श्वेतपुनर्नवा (ट्रायेन्थेमा जातिकी वसु) के मूलका चूर्ण १५ से ६० रत्ती तक सोंठ मिलाकर देवें। रक्त पुनर्नवाके मूलके चूर्णकी आनुलोमिक मात्रा ४० रत्ती दिनमें ३ बार निवाये जलके साथ देवें।

गुणधर्म—पुनर्नवा उष्ण वीर्य रस कड़वा, विपाक चरपरा, अग्निप्रदीपक, सारक, रूक्ष, और कफहर। शोथ पाण्डु, हृद्रोग, कास, उदररोग, रक्तविकारको दूर करता है। गुणधर्म निर्णयार्थ ताजामूल, अथवा ताजा पञ्चाङ्ग लेना चाहिये।

सूख जानेपर पूरा लाभ नहीं मिलता।

डाक्टर देसाईके मतानुसार पहले प्रकारकी वसु (ट्रायेन्थेमा पोर्टुलेकस्ट्रम) तीव्र विरेचन है। इसके सेवनसे अन्त्रके भीतर तीव्र प्रदाह होता है। सगर्भाको वसु देनेसे अन्त्रके साथ गर्भाशयमें भी प्रदाह उत्पन्न हो जाता है। कभी कभी गर्भपात हो जाता है। इसके कोमल पानोंका शाक दीपन, वातहर और कफघ्न है।

वसु चौथी जाति (ट्रायेन्थेमा डेकण्ड्रा) जो दक्षिणमें अधिक होती है, वह यकृतप्रदाह और मासिक धर्मके प्रतिबन्धपर दी जाती है। उसके मूलको दूधमें घिसकर लेप करनेसे वृषणशोथपर अवश्य लाभ करता है। आधा शीशीपर पानोंका रस नाकमें डाला जाता है।

डाक्टर देसाईने लिखाहै, कि "रक्तपुनर्नवा (बोर्हेविया डिफ्युजा) में दीपन. विरेचन, मूत्रविरेचन, स्वेदजनन, कफघ्न, वामक और शोथहर गुण हैं। इसमें मूत्रजनन धर्म उत्तम है। कारण, मूत्रपिण्डोंको त्रास न होते हुए मूत्रकी मात्रा लगभग दुगुनी हो जातीहै। मूत्रपिण्डोंमें रक्तद्राव बढ जाताहै, और उसी हेतुसे जलस्राव अधिक होताहै। अलावा मूत्रपिण्डोंमें मूत्रजनन परमाणुओंपर उत्तेजक क्रिया होकर मूत्रमें क्षारकी मात्रा बढ जाती है। इन दोनों हेतुओंमें मूत्र परिणाम की वृद्धि होती है। यह मूत्रजनन धर्म आनुलोमिक (पूर्ण) मात्रा देनेपर ही प्रतीत होता है।

"यथार्थमें पुनर्नवा (बोर्हेविया) में आनुलोमिक धर्म बहुत कम है। कफघ्न गुण सूक्ष्म सूक्ष्म मात्रा बार २ देनेपर दृष्टिगोचर होता है। वमन करानेके लिये थोडे ही समयमें एक या दो आनुलोमिक मात्रा देनी चाहिये। परिणाममें वमन के साथ कोष्ठ शुद्धि होकर श्लेष्मा (कफ और आम) मुख और गुदासे बाहर निकल जाता है।"

"पुनर्नवामें स्वेदजनन धर्मभी अतिकम है।"

"पुनर्नवा की हृदयपर क्रिया अल्प परिणाममें सावकाश, किन्तु स्पष्ट होतीहै। इसके सेवनसे हृदयकी सकोच क्रिया बढ जाती है। रक्त बलपूर्वक, धमनीमें प्रवेश करताहै, रक्तद्राव बढ जाता है, और शिराओं द्वारा हृदयमें रक्तग्रहण अधिक मात्रामें होता है। यह क्रिया डिजीटेलीसके समान होती है। रक्तद्राव बढनेसे मूत्रके परिमाण वृद्धि होजाती है। परिणाममें देहमेंसे सचित जलकम हो जाता है। इस हेतुसे पुनर्नवाको शोथघ्न कहा है।"

"पुनर्नवा प्रत्यक्ष शोथहर नहीं है। जिस तरह बच्छनाग, सुरमा, नागदन्ती (बड़ी दन्ती-Croton oblongi folius), और शीतल जलमें भिगोई हुई कपड़ेकी तह या गरम जलका सेक प्रत्यक्ष शोथहर है। उस तरह पुनर्नवा नहीं

है। पुनर्नवासे मूत्रवृद्धि और कोष्ठशुद्धि होनेसे शोथका ह्रास होता है। मूत्रल और विरेचक औषधि सर्वदा शोथकर्म करती है।"

सामान्यतः डाक्टरी मत अनुसार पुनर्नवाके मूल द्रव्यमें मुख्य मूत्रलगुण है। उसकी मुख्य क्रिया ऋजुकाओं (Glomeruli of the kidney) अर्थात् वृक्कस्थानके सिराओंके गुच्छोंपर होतीहै, उस स्थानमें रक्तदबाव बंद हो जाताहै। यकृत् पर इसका प्रभाव गौण होताहै। इसका उपयोग वृक्कस्रावको बढानेके लिये होताहै। जब शोथ या जलोदर रोगमें वृक्कस्राव अधिक कराना इष्ट हो, तब पुनर्नवाका सेवन कराया जाता है।

हृदयकी निर्बलता से उत्पन्न शोथ और जलोदरमें पुनर्नवा का सेवन कराने पर वह हृदयको बल देता है। हृदय का आकुंचन बलपूर्वक होताहै तथा मूत्रल असर पहुँचकर शोथ और जलोदरमें लाभ पहुँच जाता है। हृदयके समान यकृद्दाली अथवा वृक्कविकृतसे उत्पन्न शोथ और जलोदरमें भी पुनर्नवा के उपयोगसे तुरन्त लाभप्रतीत होताहै।

सुजाक, अन्तर अवयवोंमें प्रदाह और उरस्तोय (Pleurisy) अथवा अन्य गुहाओंमें जलसंग्रह, इन सब पर पुनर्नवा हितावहहै। श्वास रोगपर इसका प्रयोग कम मात्रामें करना चाहिये। पुनर्नवाका उपयोग बड़ी मात्रामें करने पर वामक गुण दर्शाता है।

श्री पं० गंगाधर शास्त्रीगुणे आयुर्वेद पंचानन लिखते हैं कि, अहमदनगरके आयुर्वेदीय चिकित्सा मदिरमें श्वेत पुनर्नवाके मूलका द्रवार्क तैयार करा ३४ रोगियोंको औषधि देकर निम्नानुसार निर्णय किया गया है।

१. यकृतोदर और उदर्य्याकलाकी विकृतिके हेतुसे उत्पन्न जलोदरकी प्रारम्भावस्था में पुनर्नवाका अतिही उत्तम प्रयोग होता है।

२. पुनर्नवा द्रवार्कसे मूत्र सजनन अच्छा होता है। कितनेक रोगियोंका जलोदर बिल्कुल दूर होगया।

३ जलोदरमें उदर्य्याकलामेंसे जल न निकालनेपर भी कितनेक रोगियोंको मूत्रसजनन अच्छा हुआ और जलोदर कम होगया; किन्तु कितनेक रोगियों में जल निर्हरण करना पड़ा फिर मूत्रोपादक परिणाम हुआ। जल निर्हरणके पहले मूत्र बिल्कुल थोडा और उसमें लसीका (Albumin) अधिक जाताथा।

४. अन्यरोगोंके उपद्रव रोगियोंमें काला आजार, संग्रहणीके पश्चात्का उपद्रव या हृद्रोगसे उत्पन्न जलोदर होनेपर उसके शामके उपचारोंका अवलम्बन लेकर फिर पुनर्नवाका उपयोग करनेपर अच्छालाभ होताहै।

५. हृद्रोगसे उत्पन्न जलोदर रोगमें डिजीटेलीस या सोमका उपयोग पुनर्नवा की अपेक्षा अधिक होताहै। अधिक पुराने जलोदरमें और वृक्कादि अवयवोंमें

अत्यन्त विकृतिसे उत्पन्न जलोदर रोगमें पुनर्नवाका उपयोग मामूली होताहै, किन्तु फिरभी परिस्थिति सुधरती है। पुनर्नवाका मूत्र सजनन धर्म निश्चित है। इसमें अन्य हानि कुछ भी नहीं होती।

चिकित्सा मन्दिरमें सर्वांगशोफ और जलोदर, इन दोनों स्थितिपर श्वेत पुनर्नवाके ताजे मूलके द्रवार्क का उपयोग किया है, किन्तु आयुर्वेदके मतानुसार वनस्पतिका प्रभाव द्रव्य निकालकर उपयोग करनेकी अपेक्षा वनस्पति मूल या पञ्चाङ्ग या अग उपाङ्गका उपयोग करना विशेष लाभदायक माना गया है। कारण, केवल प्रभाव द्रव्यकी अपेक्षा वनस्पतियोंमें रहे हुए अन्य सब द्रव्य उपयुक्त होना शक्य है। इस हेतुसे आयुर्वेद कथित गुणधर्म और नूतन चिकित्सकों के अनुभवमें अन्तर हो जाता है।

अन्य रोगोंकी विविध अवस्थामें एकही वनस्पतिका उपयोग करनेका आयुर्वेद का आग्रह नहीं है। दोप-दूष्य-स्थान आदिके विविध सयोगोंसे रोग उत्पन्न होता है। उस संयोगको लक्ष्यमें लेकर उसके अनुरोधसे सहायक औषधियोंका सयोग कराना ही पडता है।

पुनर्नवाके रससे स्थानिक कार्य, विपाकसे पक्वाशय आदि स्थानोंमें कार्य, वीर्यसे रक्तमें प्रसापन गुण पहुँचकर शोधन कार्य और प्रभावसे वृक्कोंपर मूत्र सजनन कार्य होता है। यहा कार्य करनेमें वृक्कोंके सूक्ष्म घटक, उसके बाह्य भागोंकी रक्तवाहिनिया, कैशिकागुच्छ, इन सबपर पुनर्नवाका कार्य होता है। यथार्थमें वह कार्य मुख्यत वातवाहिनिया और मस्तिष्कस्थ वातवह केन्द्रपर होता है। फिर वातवाहिनियों द्वारा अवयवसमूहों को वही कार्य अधिक रूपमें करना पडता है।

विविध क्षारों के मूत्रल कार्य, गोखरू, मोलसरी बीज और सारिवा के मूत्रलकार्य तथा पुनर्नवाके मूत्रसजनन कार्य, इन सबमें अन्तर है। पुनर्नवाका मूत्रसजनन कार्य परम्परा प्रारम्भ होता है। पुनर्नवा बन्द करनेपर भी वह अनेक दिनोंतक टिक जाता है। जिससे सर्वाङ्ग शोथ और उदरकी श्लैष्मिक कलामेंसे उदर की त्वचाके भीतर सचय होनेवाला जल तथा त्वचाके नीचे सगृहीत होनेवाले जलका मूत्रमार्गसे वहिर्गमन हो जाता है। इस तरह क्रिया भेद होनेसे आवश्यकतानुसार पुनर्नवाके साथ अन्य कार्यकर ओपधियोंको मिश्रित करके इच्छित कार्य करा लिया जाता है।

पुनर्नवाके मूल और शाखा आदिमें उत्तान रस नहीं हैं, तथापि द्रव्यका रसकार्य आयुर्वेदने दिया है। एव पुनर्नवाका प्रथम होनेवाला परिणाम रसकार्य है। यह शरीरमें जानेपर प्रारम्भमें जिह्वा, तत्रस्थ वातकेन्द्र, आमाशय और उसकी श्लैष्मिककलापर होता है। यह कार्य पाचन और दीपन है, किन्तु

सोंठ, कालीमिर्चके समान चरपरे रससे होनेवाला या चित्रक,अजवायनके समान तीक्ष्णत्वसे होनेवाला अथवा नींबू, इमली आदिके अम्ल रससे होने वाला पाचन-दीपनकार्य और पुनर्नवाका पाचन दीपन कार्यमें अन्तर है। पुनर्नवाका कार्य दल्य है। इस हेतुसे जीर्ण अपचनसे उत्पन्न विविध रोगोंमें उपयुक्त होता है। इससे अलग अलग स्थानके पाचकाग्निको बलाधान प्राप्त होता है। जिससे जीर्ण अपचन विकारमें धातुपोषणोंको विविध व्यापारोंमें अग्निवर्द्धक रूपसे इसका उपयोग होता है।

विपाकमें पक्व शय और बृहदन्त्र आदि अवयव समूहोंको बल देनेका अर्थात् अग्निवर्द्धक कार्य करता है। नया कोष्ठशूल और अतिसार तथा पुराना संग्रहणी रोगमें पुनर्नवाका उपयोग होता है।

पुनर्नवाके वीर्यसे रक्तप्रसादन और शोथघ्न कार्य होता है। बाह्यशोथमें पुनर्नवा मूलको घिसकर लेप करनेपर शोथ दूर होजाता है। एवं अन्तर शोथ और विद्रधिमें भी इसका उपयोग होता है। सन्निपातज फुफ्फुस विकृतिमें पुनर्नवाका अच्छा उपयोग होता है। यकृद् विकृतिमें पुनर्नवा उत्कृष्ट कार्य करता है। यकृद् विद्रधिमें पुवर्नवा इसी गुणके हेतुसे उपयुक्त होता है। यकृद् विद्रधिमें ऊपर लगाने और उदर सेवन करानेमें पुनर्नवाके मूलका उपयोग होता है। चिकित्सा मन्दिरमें इस प्रकारके रोगीपर प्रयोग किया है। यकृद्-वृद्धिमें विशेषत· बालकोंके विकारमें पुनर्नवा उत्कृट औषध है। बिल्कुल प्रारम्भावस्थामें देनेपर अत्युत्तम कार्य करती है। इस औषधके साथ सरफोंका का मूल देनेसे अति ही उत्कृष्ट कार्य होता है।

पुनर्नवा शोफघ्नी है। शोफ और जलोदरमें पुनर्नवाके प्रभाव जनित विशिष्ट कार्य होता है। प्रभावज कार्यके कार्यकरणका सम्बन्ध कहां नहीं जाता। पुनर्नवा वृक्कोंपर कार्य करती है, जिससे मूलसंजनन होता है; तथापि उसके बाद जलसंचय न होने देनेका कार्य जो पुनर्नवासे होता है, वह प्रभावजहै।

जलोदर और शोथ उत्पादक कारण—

१ मलसंचय और अग्निमान्द्यादि रोग।

२ शीतपूर्वक ज्वर, काला आजार, संग्रहणी, क्षय, यकृत्प्लीहा वृद्धि तथा यकृत्प्लीहाके अन्य व्याधि आदि।

३. वृक्क, हृदय,हृदयावरण, इनके रोगोंमें, किन्तु अनेक समय कास श्वाससे सम्बन्ध होकर।

४. अनेक जीर्णरोगोंमें—उदा० कीटाणुजन्य क्षयके अन्तमें उपद्रव रूपसे।

५ वातोदर, पित्तोदर, कफोदर दूष्योदर, आदि रोगोंमें स्पष्ट (अव्यभिचारी) लक्षण रूपसे शोफ और जलोदर।

इनके अतिरिक्त विषसेवन, जल या भोजनमें कृमि छिपकलीके अण्डे आ जाना आदि हेतुसे भी जलोदर हो जाता है। इन सब बातोंका विचार करके पुनर्नवाके साथ अन्य ओषधिकी योजना करनेपर इच्छित लाभ मिल जाता है।

मलसचय और अग्निमान्द्य आदि कारणोंको दूर करनेके लिये लंघन, या तीव्र विरेचन, पाचन ओषध और जलनिर्हरण उपचार करना पड़ता है। निदानार्थक रोग मामूली होनेपर भी उसकी चिकित्सा स्वतन्त्र करनी पडती है। इस तरह अन्य रोगोंमें निम्नानुसार योजना की जाती है।

१ शीतज्वर होनेपर कुटकी, दारुहल्दी, पारिजातक के साथ।

२. काला ज्वर होनेपर सुरमाके साथ।

३ संग्रहणी होनेपर कूडेकी छाल, इन्द्रजव या सुवर्ण पर्पटीके साथ।

४ क्षय हो तो सुवर्णकल्प सह।

५. यकृत्प्लीहावृद्धि आदिमें सप्तपर्ण, कुटकी, दारुहल्दी, गिलोय, हरड आदिके साथ।

६ पाण्डुरोगमें लोह, मण्डूर, माक्षिक, आवले, यकृन्खण्ड आदिके साथ।

यहापर यह सशय उत्पन्न होता है कि इन ओषधियोंका सयोग कराना है, तो पुनर्नवाका फल क्या? उत्तर यह है कि, जिसका मिश्रण किया है, वही मात्र दी जाय तो शोफ—जलोदरमें लाभ नहीं होता। एवं केवल पुनर्नवा देनेपर भी चाहिये उतना निश्चित या स्थिर लाभ नहीं मिलता। उक्त सकर आदि न होनेपर केवल पुनर्नवा उपयुक्त होती है। यहा तककि शोफ और जलोदर विल्कुल साफ हो जाता है, किन्तु कारणरूप रोग मिश्रण होनेपर योगवाही औषधिका सयोग कराया ही जाता है। जिससे पुनर्नवाके अत्यन्त उत्कृष्ट फलकी प्राप्ति होती है। (श्री० गगाधर शास्त्री गुणे)

पुनर्नवा जलोदर, फुफ्फुसावरणका जलोदर (उरस्तोय प्लुरिसी), अन्तर शोथ, स्थानिक बाह्यशोथ और सर्वाङ्ग शोथ आदि जलसग्रहमय रोगोंपर उत्तम लाभदायक है। उरस्तोय शोथ ओर जलोदर, इन तीनोंपर पुनर्नवाके प्रभाव विशिष्ट कार्यसे लाभ पहुँचता है।

नूतन वृक्क विकार होनेपर पुनर्नवा अति लाभदायक है। दोषदूष्यका विचारकर पुनर्नवाको प्रयुक्त करना चाहिये। चन्द्रप्रभा, वकुल (मोलसरी) बीजकी गिरी, पत्थर बेरका चूर्ण, सोरा केलेका क्षार आदि मिला देनेसे सत्वर कार्य होता है। चन्द्रप्रभाको पुनर्नवा फाण्टके साथ देनेपर मूत्रमें लसीका (एल्ब्युमिन) जाना, और शोथ, दोनों विकार नष्ट होता है।

पुनर्नवा कल्प—वर्षा ऋतुमें जब तक ताजी पुनर्नवा मिल सके तब तक ताजे मूल, पान या पचागको उपयोगमें लेना चाहिये। शेष समयमें सुखाये

हुए मूलका चूर्ण या पंचांग या क्षारका उपयोग करना चाहिये। रक्त पुनर्नवा का क्षार उत्तम मूत्रल औषध है। श्वेत पुनर्नवा (वसु) के क्षारमें मूत्रलके साथ विरेचन गुण भी अवस्थित है।

आयुर्वेदमें पुनर्नवाका व्यवहार स्वरस, क्वाथ, फाण्ट, चूर्ण, गुटिका, गुग्गुलु, अवलेह, आसव, घृत, तैल, लेप आदि रूपसे किया है। अनेक सिद्ध प्रयोगोंमें पुनर्नवा मिलाया है। एवं आवश्यकतानुसार नव्य प्रयोग तैयार किये जाते हैं। शहरोंके लिये निम्न प्रयोग उपयोगी होते हैं।

१ पुनर्नवास्वरस—ताजे पुनर्नवा मूल या पचांगको कूटकर रस निचोड लेवें। फिर उसमें चौथा हिस्सा उत्तम देशी शराब मिला डाट वन्दकर एक सप्ताह रहने देवे। पश्चात् कपड़ेसे छानकर उपयोगमें लेवे। मात्रा—१० से ३० बूंद तक।

२. **पुनर्नवाक्वाथ**—सूखे पुनर्नवा मूलका चूर्ण २॥ तोलेको जल २० औंसमें मिलाकर मन्दाग्निपर उबालें। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छान लेवें। मात्रा—१ से २ औंस। ४-४ घण्टेपर दिनमें ३-४ समय देवे।

३ पुनर्नवाष्टक कषाय—रक्त पुनर्नवाके मूल, हरड़, नीमकी अन्तरछाल, दारुहल्दी, कुटकी, कडवे परवलके पान, गिलोय और सोंठ, इन ८ औषधियोंको समभाग मिला लेवें, इसमेंसे ४ तोलेका क्वाथ वना दो विभाग कर दिनमें २ वार देते रहें।

यह कषाय सर्वाङ्गशोथ (हृदयविकृतिजन्य शोथ) और जलोदर पर अच्छा कार्य करता है, आवश्यकता पर आरोग्यवर्द्धनीके साथ यह कषाय अनुपान रूपसे दिया जाता है।

४ पुनर्नवा अर्क—पुनर्नवाके ताजे मूल, जो अच्छे हो, सडे न हों, वैसे निकाल, उनको उबलते हुए जलसे अच्छीतरह धो, पोंछकर छायेमें सुखायें। फिर कूटकर चूर्ण करे। १ तोला चूर्णके साथ १ औंस मद्यार्क मिला, काचके डाटवाली स्वच्छ वोतलमें भरकर ८ दिनतक वन्द रखें। दिनमें ३-४ वार चला लेवें और ३-४ घण्टे सूर्यके तापमें रक्खें। फिर फिल्टरपेपरसे छानकर काचके डाट या रवरकी टोपीवाली स्वच्छ वोतलमें भर लेवें। फिर ३ गुना वाष्पजल मिलाकर अन्तःक्षेपणरूपसे प्रयोगमें लावें। वाष्पजल मिश्रित अर्ककी मात्रा ३ वर्षके वच्चेको १० बूंद, १० वर्षतक २० बूंद और वड़े मनुष्यको ४० बूंद (२ सी० सी०) देवें। यह अन्तःक्षेपण कुछ दिनों तक प्रतिदिन दे सकते हैं।

वाष्पजल मिश्रित छाने हुए अर्कको स्प्रिटलेम्प पर उबालकर पिचकारीमें भरें। फिर यथाविधि मांसपेशीमें अंतःक्षेपण करें। पहले मांसपेशीको स्प्रिटसे

अच्छीतरह धो, पोंछकर स्वच्छ करलेनी चाहिये। श्वास यकृद्वृद्धि, कामला, सर्वाङ्गशोथ और जलोदर पर यह व्यवहृत होता है।

यह विधि श्री० राजवैद्य यशवतराव गुणे ने लिखी है। इसका उपयोग श्री० डा० अप्पामहाराज पण्डित M B B S ने अनेक वार किया है और विशेष लाभप्रद दर्शाया है।

उपयोग—श्वेत और रक्त पुनर्नवाका उपयोग आयुर्वेदमें अति प्राचीनकाल से हो रहा है, चरकसहिताके भीतर स्वेदोपग, अनुवासनोपग, कासहर और वय स्थापन दशेमानियोंमें पुनर्नवाका उल्लेख है। शाकवर्गमें कठिञ्जक (पुनर्नवा) नाम दिया है एव अनेक रोगोंके प्रयोगोंमें पुनर्नवाका उपयोग किया है। सुश्रुतसहिताके भीतर विदारीगधादिगण और शाक वर्गमें उल्लेख है। सुश्रुताचार्य शाकवर्गमें पहले पुनर्नवाको उष्ण, स्वादु, कडवी और वातशामक कहते हैं। पुन लिखते हैं कि "तेपु पौनर्नव शाक विशेषाच्छोफनाशनम्" अर्थात् इनमें पुनर्नवाशाक विशेषत शोफनाशक है इनके अतिरिक्त अनेक प्रयोगोंमें पुनर्नवाको व्यवहृत किया है।

डा० देसाई लिखते हैं कि, तीव्र विरेचनकी जिन जिन रोगोंमें आवश्यकता हो, वहापर पहले प्रकारकी सफेद वस्तु दी जाती है। यकृत् की रक्ताभिसरण क्रियामें प्रतिबन्ध होनेसे उत्पन्न यकृतोदर जीर्ण मलावरोध और उससे उत्पन्नकण्डु आदि त्वचारोग तथा पाण्डुपर सफेद पुनर्नवाका उपयोग होता है।

विरेचन लगनेपर शोथ कम होता है। अत यकृत्प्लीहाके शोथमें, अपचनसे उत्पन्न शोथ या शोथसे उत्पन्न श्वास प्रकोपमें तथा गर्भाशयके प्रदाहसे उत्पन्न अनार्त्तवमें इस पुनर्नवाका उपयोग होता है। इन रोगोंपर एक बड़ी मात्रा नहीं देनी चाहिये, किन्तु पूर्ण मात्राके दो या तीन भागकर दो या तीन तीन घण्टेपर देते रहना चाहिये।

डाक्टर देसाईके मतानुसार रक्तपुनर्नवा (थोर्हविया) जलोदर, उरस्तोय, अन्तरशोथ, बाह्यशोथ और सर्वांगशोथपर व्यवहृत होता है। बाह्यशोथपर पानों को पीस निवायाकर बाधना चाहिये।

नेत्ररोगमें पुनर्नवा उत्तम औषध है। कण्डू आदि होनेपर श्वेत पुनर्नवाके मूलको दूधमें घिसकर अजन करें। अश्रुस्रावपर शहदमें घिसें। फूलपर घी या नींबू के रसमें घिसकर आजे। तिमिररोगपर तेलमें घिसें। मोतिया विन्दुमें पक्व मोटे मूलको भांगरेके रसमें घिसकर अजन करें। रतौंधीमें गायके गोबरका रस

या कांजीमें घिसकर डालें। इस तरह नेत्र विकारोंमें यह अति निर्भय और लाभदायक ओषधि मानी गई है।

१. हृद्रोगमें उत्पन्न कास, श्वास, जलोदर और पैरोंपर शोथ—इन उपद्रवोंको कम करानेके लिये पुनर्नवा दी जाती है। पुनर्नवाके साथ काली कुटकी, चिरायता और सोंठ मिलाना चाहिये। इन द्रव्योंका क्वाथ उत्तम गुणकारी है।

२. शोथ—इस रोगमें पुनर्नवाके साथ कालीमिर्च मिलानी चाहिये। सर्वाङ्गशोथ और पाण्डुरोगमें पुनर्नवा अमूल्य औषध है। हृदय विकार और सर्वांग शोथसह चाहे जितना पाण्डुरोग बढ़गया हो, उसे निःसन्देह निवृत्त करती है। पुनर्नवा, चिरायता, कुटकी और सोंठ मिला क्वाथकर दिनमें दो बार देते रहना चाहिये।

हृदय विकृति से उत्पन्न सर्वांग शोथ और जलोदरमें पाण्डु (निस्तेजता) शीतलता, अतिकमजोरी, अग्निमांद्य और कफ प्रकोप आदि होनेपर पुनर्नवादि क्वाथ अच्छा लाभ पहुँचाता है शार्ङ्गधर कथित रक्त पुनर्नवाके मूल, छोटी हरड, नीमकी अन्तरछाल, दारुहल्दी, कुटकी, पटोलपत्र, सोंठ और गिलोय, इन ८ ओषधियोंका क्वाथ दिनमें २ बार पिलाते रहनेसे थोडेही दिनोंमें रोग दूर हो जाता है। यदि गोमूत्र या गोमूत्रका अर्क अनुपान रूपसे मिला दिया जाय तो सत्वर लाभ होता है।

स्थानिक शोथमें पुनर्नवाके स्वरसको (या पुनर्नवाको पीस चटनीकी तरह बना) निवायाकर लेप करनेसे शोथ दूर हो जाता है। रोग अधिक फैला हो, तो पुनर्नवा, चिरायता, कुटकी और सोंठका क्वाथ बना, सोरा मिलाकर पिलाते रहना चाहिये। रोग बढ़ा हो, तो रोगीको केवल दूधपर रखें, या भोजनमें दूध भात देते रहें। नमक विल्कुल छुडा देना चाहिये।

हृदयविकृतिके समान वृक्कविकृति होनेपर भी सर्वाङ्गशोथ आजाता है, यह विकार बालकोंको भी होजाता है, वृक्कदाह होने पर मूत्रमें प्राय एल्ब्युमिन जाता है, इस विकार पर तथा हृदयविकृतिजन्य सर्वांगशोथ पर पुनर्नवाका अन्त क्षेपण अमृततुल्य लाभ पहुँचाता है। आशुकारी विकार होनेपर थोडेही दिनोंमें और चिरकारी पुराना विकार होनेपर अधिक दिनोंमें सफलता मिलती है, अन्त क्षेपण करनेपर भी उदरसेवनकी ओषधिका उपयोग करते रहना चाहिये।

३. कामला—इसरोगमें पित्तको विरेचनद्वारा बाहर निकालनेके लिये श्वेतपुनर्नवा निर्भय और उत्तम औषधि है, मूलका चूर्ण ४-४ माशे जलके साथ १-१ तोलेका क्वाथ दिनमें २ बार देतेरहनेसे ३-४ दिनमें रोगशमन हो जाताहै।

४ श्वास—अ इस रोगका दौरा होता है, तब रोगी अति बेचैन होजाता है। विशेषतः यह दौरा रात्रिको होताहै। रोगीको आगे झुककर बैठा रहना पडताहै। इस दौरेके विषको जलाकर वेग को शान्त करने के लिये पुनर्नवाका अन्त क्षेपण हितावह है। इस औषधि से वेग शनै. शनै शमन होजाता है। एफिड्रिन या अड्रिनलिन के समान वेगका दमन तत्काल नहीं होताहै, किन्तु इस पुनर्नवाके प्रयोगमें उन ओषधियों के उपद्रव सदृश आपत्ति कभी नहीं आती। यह बिलकुल निर्भय ओषधि है। उक्त डाक्टरी औषधियोंका प्रयोग अधिक कालतक होनेपर हृदयको शिथिलता, चक्कर आना, घबराहट आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। अत. इसे श्रेष्ठ माननी चाहिये। श्वास प्रकोपमें यदि कफ फुफ्फुस या श्वासनलिकामें सूख गयाहोतो वह पतला होकर बाहर निकलने लगता है। एव यह हृदय को भी बल प्रदान करती है।

अत इस रोग पर पुनर्नवा चूर्ण या स्वरस की मात्रा अधिक देनी चाहिये। कभी इससे वमन भी होजातीहै, किन्तु हानि नहीं होती (बल्कि कफ निकल जाने से लाभ ही होता है) यह जीर्ण तमक श्वासपर हितावह है, दोष-दूष्यका विचार कर अभ्रक भस्म, शृंगभस्म, भार्गी, मुलहठी या पुष्कर मूलमेंसे किसी सानुकूल या अन्य औषधिके साथ श्वेत या रक्त पुनर्नवाका सेवन दीर्घकाल तक करना चाहिये। छातीमें कफ भरगया हो, श्वास प्रणालिकाओंमें प्रदाह, श्वास कष्ट-पूर्वक चलता हो तब प्रदाहको दूर करने और कफका निःसरण कराने के लिये च चायके साथ रक्त पुनर्नवाका चूर्ण देना चाहिये। श्वासरोगमें पुनर्नवाकी मात्रा अधिक होनेपर वान्ति हो जाती है। किन्तु वहभी लाभदायक है।

५. जीर्ण अजीर्ण—अपचन रोगमें इसके पत्तोंका शाक दिया जाता है। शाक हृद्रोगमें भी हितकर है।

६ सुजाक—अति जलनकम करानेके लिये पुनर्नवाका सेवन करावें। इससे मूत्रका परिमाण बढकर पूय धुल जाता है, और मूत्रनलिकाका शोथ भी कम हो जाता है।

७ मूत्रोत्पत्तिमेंन्यूनता—मूत्र कम होनेसे शोथ उत्पन्न हुआ हो, तथा हृदय शिथिल हो गया हो, तो पुनर्नवाका उपयोग करना चाहिये।

८ फूला, जीर्णअभिष्यन्द, रोहे आदि नेत्ररोग—पुनर्नवाके ताजे मूलको घिसकर अंजन करनेसे, कुछ दिनोंमें नेत्र साफ हो जाते हैं।

९ अश्मरी—वृक्कोंमें पथरीके कण, सिकता (रेती) जानेपर पत्थर बेरकी पिष्टी के साथ रक्त पुनर्नवाका प्रयोग करनेसे तुरन्त लाभ पहुँच जाता है।

१०- मूत्रमें श्लेष्मस्राव—मूत्राशय और मूत्र-स्रोतोंमेंसे श्लेष्मस्राव होनेपर वकुलकी छाल या बीजकी गिरीके चूर्णके साथ पुनर्नवा देनेसे सत्वर लाभ पहुँचाता है।

११. मासिक धर्म विरति—गर्भाशयमें शोथ होनेपर मासिकधर्म बन्द हो जाता है, या कष्टपूर्वक आता है। ऐसी रुग्णाकोश्वेत पुनर्नवा कपासके मूलकी छालके क्वाथके साथ कम मात्रामें दिनम ३ बार देनी चाहिये। गर्भाशयके शूल और गर्भाशय शोथके शमनार्थ पुनर्नवाके क्वाथकी उत्तर वस्ति भी देते रहें।

१२. वृषणशोथ—अण्डकोषपर शोथ होनेपर रक्तवसु (वसु चौथे प्रकारकी) को दूधमें घिसकर लेप करते रहनेसे नि.सन्देह लाभ हो जाता है।

१३. आधाशीशी—वसुका रस नाकमें डालनेसे अनेकोंको लाभ होगया है।

१४. पागलकुत्तेका विष—कुत्ता काटनेके १० दिन हो जानेके बाद २० दिनके भीतर रक्त पुनर्नवाके मूलका चूर्ण और धतूराके बीज शीतल जलके साथ देनेसे विष निकलकर रोगशमन हो जाता है। विशेष विधि धतूरेके वर्णन में देखें।

१५ मूषिकविष—चूहेके विषपर श्वेत पुनर्नवा (वसु) के मूलका चूर्ण शहदके साथ दिनमें दोबार देते रहनेसे विष निवृत्त हो जाता है।

१६. वातबलासक ज्वर—वृक्कविकृति जनित शोथसे आनेवाले ज्वर में रक्त पुनर्नवाका दुग्धावशेष क्वाथ दिनमें २ बार पिलाते रहनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है। साथ साथ चन्द्रप्रभावटी दी जाय तो जल्दी लाभ पहुँचता है।

१७ निद्रानाश—तीव्र रक्त दबावकी वृद्धि, पित्तप्रकोप, मदात्यय, क्विनाइन का अतियोग, चाय या तमाखूका व्यसन आदि कारणोंसे उत्पन्न निद्रानाश को दूर करनेमें पुनर्नवा उत्तम ओषधि है। पुनर्नवा स्वरस या क्वाथका प्रातः सायं सेवन कराना चाहिये। आवश्यकतापर प्रवालपिष्टी भी साथ देनी चाहिये।

१८ जीर्ण आमवात—श्वेत पुनर्नवाके क्वाथमें सोंठ और कचूर मिलाकर दिनमें दो बार देते रहनेसे कुछ दिनोंमें रोग दब जाता है। एव हृदयविकृति, शूल और शोथमें लाभ पहुँच जाता है। यदि भोजनमें पुनर्नवाके पानोंका शाक भी देते रहें तो लाभ सत्वर होता है।

१९. प्रसव होनेमें कष्ट—रुके हुए गर्भको बाहर निकालनेके लिये श्वेत पुनर्नवाको तैलमें घिसकर, गुह्यस्थानमें लगाने या ड्रॉपरद्वारा तैलका प्रवेश करानेसे कम्पता हुआ गर्भ सत्वर बाहर आजाता है। या श्वेत पुनर्नवाके

मूलके चूर्णको तैलमें मिलाकर योनिमें लेप करनेसे भी सुख प्रसव हो जाता है।

२० योनिशूल—श्वेत पुनर्नवाके ताजे पत्तोंको कूट छोटी वात बना योनिमें धारण करनेसे योनिशूल शमन हो जाता है।

२१ श्लैष्मिक ज्वर—नया जुकाम होनेपर जब मंद मंद ज्वर रहता है, तब शिरदर्द, बेचैनी, ज्वरके हेतुसे हाथ पैर टूटना, नाक बहते रहना, किसी कार्यकी इच्छा न होना, वार वार छींकें आना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। रात्रिको नाकबन्द होजाता है। फिर मुखसे श्वास लेना पड़ता है। उसपर पुनर्नवाका दुग्धावशेष क्वाथ कालीमिर्च मिलाकर देनेसे प्रतिश्याय और ज्वर, दोनों दूर हो जाते हैं।

२२ कर्णशूल—पुनर्नवा स्वरसको निवाया कर कानमें डालनेसे पीडा निवृत्त हो जाती है।

२३ यकृद्वृद्धि—यह रोग बालकोंको अधिक होता है, इसकी प्रथमावस्थामें यदि पुनर्नवाके अर्कका अन्तःक्षेपण कियाजाय, तो लाभ सत्वर होता है। सामान्यत इसरोगमें रोज अन्तःक्षेपण कियाजाता है। या पुनर्नवाष्टक क्वाथ के चूर्ण के साथ शरपुंखा मूल और रोहितक छाल १ १ भाग मिला (अर्थात् १० औषधियों का) क्वाथकर दिनमें २ वार देते रहनेसे यकृद्वृद्धि और यकृद्विकारसे उत्पन्नशोथ, दोनों निवृत्त होजाते हैं।

(१४) पुष्करमूल।

सं० पुष्करमूल, पुष्करजटा, पद्मपत्र, काश्मीर। हिं० पुष्करमूल, पोहकरमूल, पोखरमूल। काश्मीर-पोष्कर। ब० गु० म० क० पुष्करमूल। अ० रसन। ले० Inula Racemosa

परिचय—रेसिमोसा–मुकुटाकार पुष्परचनायुक्त। यहां लेटिन नाम दिया है, उसके पान पद्मपत्र जैसे नहीं हैं। इस हेतुसे पद्मपत्रादि संज्ञा पर्याय रूपसे मानें तो इसे शास्त्रीय नहीं कह सकेंगे। गुणधर्मदृष्टिसे इसे पुष्कर मूल माना गया है। मूल देखनेमें कुष्ठके समान। ऊंचा, दृढ क्षुप। तना ३ से ५ फूट ऊंचा, खुरदरा, नालीदार। पान चमड़े जैसे, ऊपरखुरदरे, नीचे रुएदार, दांतेदार मूलोद्भव पान ८ से १८ इञ्च लम्बे, ५ से ८ इञ्च चौडे, लम्बे वृन्तयुक्त। तनेके पान नीचेके पानसे ३ रे हिस्सेके। पुष्पगुण्डी अधिक लम्बी, १॥-२ इञ्च व्यास की। पुष्पदण्डपर मुकुटाकार रचनायुक्त। बाहरके पुष्प पत्र चौडे, नोकदार, ऊपरसे त्रिकोणाकार। भीतरके पुष्पपत्र रेखाकार नोकदार। फल १ इञ्चका, चिकना और कोमल। फलके ऊपर बालोंकी रचना ॥ इञ्चकी, रक्ताभ।

उत्पत्तिस्थान—समशीतोष्ण पश्चिम हिमालय, काश्मीर ५००० से १०००० फुट ऊंचाई तक।

रासायनिक द्रव्य—इसके मूलमेंसे शर्करा प्रधान (Polysaccharide) श्वेतसाररूप द्रव्य इन्युलिन (Inulin) मिलता है। यह सुगन्धित और कफनि. सारक है। मात्रा आधसे १।। रत्तीतक। इसके अतिरिक्त उड़नशील तैल, कुछ दाहक राल, मोम और कड़वा द्रव्य मिलता है।

गुणधर्म—भावप्रकाशकारके मतमें पुष्करमूल रस में चरपरा-कड़वा (कडवा और दाहक), उष्णवीर्य, वातकफघ्न तथा ज्वर, श्वास, अरुचि, कास और पार्श्वशूल (Pleurisy) को नाश करता है। चरकसंहितामें "पुष्करमूल हिक्का-श्वास-कास-पार्श्वशूलहराणाम्" गुण दर्शाये हैं। अन्य आचार्योंने शोफहर, पाण्डुनाशक और भेदन (विरेचन) गुण अधिक दर्शाये हैं।

डाक्टर देसाईके मतानुसार पुष्करमूल कडवा-चरपरा, उष्ण (Sharp hot taste), पाचन, वातहर, उत्तेजक, कफघ्न, श्वासहर, कासहर, ज्वरघ्न, शोथहर, चर्म रोगनाशक, उदरवातहर और विषघ्न है। मस्तिष्क, आमाशय, वृक्क और गर्भाशयके ऊपर उत्तेजना दर्शाता है। एवं यह कीटाणुनाशक और पूतिहर है।

यूनानी मतानुसार पुष्करमूल दाहक और उष्ण, पौष्टिक, आमाशय पौष्टिक, जन्तुओंके आक्रमणसे संरक्षक (Alexiteric) और उदरशूलहर है। मानसिक आघातको दूर करता है। हृदयशूल तथा प्लीहा, यकृत् और संधिस्थानोंकी वेदनाको दूर करता है। एवं यह आधाशीशी (Hemicrania), त्वचापर लाली आकर फुन्सियां हो जाना, प्रदाह, कर्णशूल, कास और फोड़े के लिए लाभदायक है। बीज कड़वे और कामोत्तेजक है। बालोंको बल देताहै और बाल झड़नेसे रक्षण करता है।

वक्तव्य—(१) कई ग्रन्थकारोंने Orris root (Iris Germanica) को पुष्करमूल माना है। यह हैमवतीवचा (खुरासानीवच-इरसा, सोसन) की जातिकी ओषधि है। उसमें प्रधान द्रव्य (Iridin) है, जो पित्ताशयके पित्तका स्राव कराता है। इसे पुष्करमूल कहना अनुचित है।

(२) मध्यकालीन कई आचर्योंने पुष्करमूल को कुष्ठभेद माना है, यह भी उचित प्रतीत नहीं होता। कारण चरकसंहितामें कई रोगोंमें कुष्ठ है, पुष्करमूल नहीं है, पुष्करमूल है तो उनके प्रयोगोंमें कुष्ठ नहीं है। इस तरह दोनोंके गुण-धर्म पृथक् माने हैं। कफजमेहपर पुष्करमूल और कुष्ठ दोनों साथ लिखे हैं। एवं चरक और सुश्रुतसहिता दोनोंमें ये दोनों ओषधियां श्वासरोगके प्रयोगमें साथ ली गई है। इन प्रयोगोंपरसे भी दोनों पृथक् गुणधर्म युक्त ओषधियां मानी जाती हैं।

मात्रा—मूलका चूर्ण २ से ४ माशे तक घी और शहदके साथ।

उपयोग—पुष्करमूलका उपयोग चरकसंहिताकारने अत्यधिक रोगोंपर किया है। चरकसंहिताके भीतर श्वासहर और हिक्का निग्रहण दशेमानियोंमें तथा ज्वर, गुल्म, प्रमेह, यक्ष्मा, उदररोग, अर्श, हिक्का श्वास, कास, हृद्रोग शिरोरोग और वातरोग आदिपर कई प्रयोगोंमें पुष्करमूल किया है।

डाक्टर देसाई ने लिखा है कि पुष्करमूल पाचन है, अत अपचनरोगमें आम रसकी प्रधानता होनेपर दिया जाता है। एव वातहर होनेसे अफारा और उदरशूल परभी प्रयुक्त होता है।

पुष्करमूल फुफ्फुस संस्थानके सब रोगों—श्वास, जीर्णश्वास-श्वासनलिका प्रदाह क्षय, फुफ्फुसावरण प्रदाह (Pluriby) जन्य पार्श्वशूल आदिपर व्यवहृत होता है। इसके सेवनसे शोथ उतरता है, कीटाणु नष्ट होते हैं; ज्वर शमन होता है इस हेतुसे कफ वात, श्वास और कासपर यह उत्तम कार्य करता है। एवं बालकोंके कफ प्रकोपमें भी पुष्करमूलका फाण्ट शहद मिलाकर दिया जाता है।

सब प्रकारके वातरोग चाहे शीतप्रकोपसे हो या आम विषसे उत्पन्न हुए हों, पुष्करमूलके सेवनसे शमन हो जाते हैं। इससे ज्वर उतरता है, शोथ दूर होता है, और वेदनाका ह्रास होता है। शीतसे उत्पन्न सब प्रकारकी वेदना इससे कम हो जाती है।

पुष्करमूल चर्मरोगपर व्यवहृत होता है। खुजली प्रधान त्वचा पुष्करमूलके क्वाथसे धोते हैं। एव पामा, च्युची और दादपर इसे गोमूत्रमें घिसकर लेप किया जाता है।

क्षय कीटाणुओंसे विशिष्ट प्रकारका व्रण (Colb adscess) होता है (यह बहुत धीरे प्रगति करता है, इसमें प्राय प्रदाह नहीं होता), इसका शोधन और रोपण पुष्करमूलसे (इसके सिद्ध तैलसे) होता है।

अनार्तवमें पुष्करमूल लाभदायक है। इससे गर्भाशयकी वेदना कम होती है और मासिकधर्म आने लगता है।

१. श्वासकास—(अ) पुष्करमूल, सोंठी और आंवलेका चूर्ण शहदके साथ लेते रहनेसे कफ सरलतासे निकलकर श्वास वेगका दमन हो जाता है।

(आ) पुष्करमूल और पीपलका चूर्ण शहदके साथ लेनेसे व्याकुलता दूर होती है। कफ निकल जाता है, क्षुधाप्रदीप्त होती है और श्वासमें लाभ पहुँचता है।

२. पार्श्वशूल—पुष्करमूलका चूर्ण शहदसे दिनमें ३ बार देना चाहिये। पीड़ित स्थानपर गरम घी या तैलमें रूईकी पोटली डुबो १०-२० मिनट तक लोभा देवें

३. उदरपीड़ा—पुष्करमूल, वच, सोंठ और कचूरका क्वाथकर थोड़ा सैंधानमक और जवाखार मिलाकर निवाया पिलानेसे उदरमें काटने सदृश पीडा होती हो वह शमन हो जाती है।

४. कफज हृदयरोग—पुष्करमूल, हरड़, सोंठ, कचूर, रास्ना, वच और पीपल इन ७ औषधियों का चूर्ण निवाये जलके साथ पिलानेसे कफप्रकोपज हृदयरोगमें लाभ पहुँचता है।

५. कफवातज सन्निपात—पुष्करमूल, कटेलीमूल, सोंठ और गिलोय, इन ४ औषधियोंका क्वाथ करके दिनमें २-३ वार पिलाते रहने से सरलतासे कफ निकल जाता है फिर कास, श्वास और पार्श्वशूलसह ज्वर शमन होजाता है।

६ उदरदाह—पुष्करमूल, एरण्डमूल, जौ और धमासाका क्वाथकर पिलानेसे उदरगुल्मके कारणसे होनेवाला दाह शमन होता है।

७ कफप्रधान अपतानक (Tetanus)—पुष्करमूल, तुम्बरु, (कबाबा), हरड़, भूनी हींग, सैंधानमक, कालानमक, इनका चूर्ण जौ के यूषके साथ दिनमें ३ वार पिलानेसे मासपेशियोंका आक्षेप और कफ प्रकोपसह अपतानक शमन हो जाता है।

(१५) प्रियंगु

सं० प्रियंगु, गंधप्रियगु, नारीवल्लभ, गंधफला, कृष्णांगी। हि० प्रियगु। व० प्रियंगु, गंधप्रियगु। क० तोत्तिलकायी। मला० पुण्याव, शेम्पुली। ता० कन्निकोम्बु, कोक्लाई। ते० एरीदुग, कोंदनदुग। ओ० प्रियोंगो। ले० AGLAIA/Odoratissima,

परिचय—अगलेइया=सुंदर और मधुर सुगन्धयुक्त जाति। ओडोरेटिस्मा=अति सुगन्धित पुष्पयुक्त वनस्पति। उक्त संज्ञा ब्लूम ने दी है। हूकरके ग्रन्थमें संज्ञा ए रोक्सवुर्धियाना A Roxburghiana Miq है। वृक्ष २० से ४० फीट ऊँचा, लोहेके जंग जैसी छालसे आच्छादित। पान ३ से १० इञ्च लम्बे, विभाजित। पर्ण ५–७, कभी ९, अखण्ड, लम्बगोल या अण्डाकार, अतीक्ष्ण नोकदार, तल भागमें दोंतेदार। विभाजित पुष्प रचना ३ से ८ इञ्च लम्बी, शंकुआ कारकी, रुंएदार। पुष्प १ इञ्च व्यासके, हलके पीले, अति सुगन्धयुक्त। नरफूल और मादा फूल अलग अलग वृक्षपर। वाह्यकोषके ५ खण्ड, छिल्केदार। अभ्यन्तर खण्डमें ५ पखडी, छोटी, वालोंसे आच्छादित। पुकेसर नलिका सिरेपर कटी हुई, घण्ट आकार। फल अण्डाकार या लगभग गोल, ||| इञ्च व्यासके, सुंदर, वादामी रंगके। बीज १ या २, सुंदर सफेद कवचयुक्त। इन बीजोंको प्रियंगु कहा है। वंगाली कवियों ने इसे प्रियंगु माना है।

उत्पत्तिस्थान—आनू, कोंकण, महाराष्ट्र, पश्चिमघाट, मद्रास, सिलोन, ब्रह्मदेश, सुमात्रा, जावा। बिहारमें पुष्प नवेम्बर—डिसेम्बरमें और फल जूनमें।

द्वितीय उपजाति Aglaia odorata lour—इसका वर्णन हूकरके ग्रन्थपरसे लिखा है। पहली जाति और यह जाति स्थान भेदसे कालान्तरमें भेदवाली हो गयी है, ऐसा अनुमान है। मनोहर झाडी या छोटा वृक्ष। नया भाग लोहेके जग जैसी छालसे आच्छादित। पान २ से ६ इञ्च लम्बे। पर्ण १ से ३ इञ्च लम्बे, ।।। से १।। इञ्च चौडे। पुष्प पीले सुगन्धित। पुष्प रचनापर सघनपुष्प। पुष्पवृन्त बहुत छोटा।

उत्पत्तिस्थान—मूल सुमात्रा, जावा, सिंगापुर। मधुर सुगन्धके लिये बागोंमें बोया जाता है।

गुजरात की प्रियगु—उक्त प्रियगुके अतिरिक्त गुजरात, महाराष्ट्र आदिके कितनेक चिकित्सक Prunus Mahaleb (गु० घऊला, म० गह्वला, मिं० महालिब अ० महालिब) का उपयोग करते हैं। वह छोटी झाडी बलुचिस्थानमें होती है। उसमें पान दाँतेदार, पुष्प तोरेपर सफेद और फल छोटे अण्डाकार होते हैं। शास्त्रीय गुणधर्म अनेकाशमें इस ओषधिमें अधिक मिलते हैं। दोनों प्रकारकी प्रियगुके गुणधर्ममें कुछ भेद है। वह गुणधर्म वर्णनमें दर्शाया है। यह प्रुनस जातिकी प्रियगु है। अत: इसके फलोंमें बादाम, जरदालू सदृश, छालमें पद्माक सदृश और बीजोंमें जरदालू आदि के बीजोंसे मिलते जुलते गुण रहे हैं।

वक्तव्य—संस्कृत नामोंमें श्यामा, कगुनी, गौरवल्ली, फलिनी आदि नाम दिये हैं, इन नामोंको सच्चे मानलें, तो उक्त प्रियगुको सच्ची नहीं कह सकेंगे। किन्तु गुणधर्म दृष्टिसे ही स्वीकार कर लें, तो उक्त दोनों प्रकारकी प्रियंगुको सच्ची कह सकेंगे। सुश्रुत संहितामें लिखा है कि "गोध्र प्रियगु पुन्नागा पुष्पिता हिमसाह्वये।" अर्थात् लोध, प्रियंगु और पुन्नाग (नागकेशर) के वृक्ष हेमन्तमें पुष्पित होते हैं। इनमेंसे लोध और बंगाल की प्रियगुमें पुष्प नवेम्बर डिसेम्बरमें आते हैं। (पुन्नाग(Mesua Ferrea) में नहीं। इनको पुष्प वसन्तऋतुमें आते हैं।) इस वचनके अनुसार बगालकी प्रियगु (Aglaia Odoratissma) को सच्ची शास्त्रोक्त कह सकेंगे। किन्तु चरक संहिताकारने प्रियगुको रक्तपित्त आदि रोगोंपर हितावह कहा है, वह गुण गुजरातकी प्रियंगु में अधिक है।

उक्त प्रियगुके अतिरिक्त शास्त्रमें एक जातिके कुधान्य कंगुनीको भी प्रियगु उपनाम दिया है, इस हेतुसे तथा कोषकारोंके प्रमादवश संस्कृत नामोंमें भलते नाम मिल गये हैं, ऐसी विद्वानोंकी मान्यता है।

गुणधर्म—प्रियंगु शीतवीर्य, रस कड़वा, अनुरस कसैला, वातपित्तशामक

तथा मोह, दाह, ज्वर, वमन, रक्तपित्त, मुखकी जड़ता, दुर्गन्ध, स्वेद, अतिसार, तृषा, गुल्म और विष प्रकोपकी नाशक है। भावप्रकाशकारने इसके फलोंको मधुर, रूक्ष, अनुरस कसैला, शीतवीर्य, गुरु, विबंधकारक, आध्मानकर, बल्य, ग्राही और कफ-पित्तनाशक कहा है।

छाल वान्तिकर और कफपित्तनाशक। मूल रजःस्राव कराने वाला। मूल और छाल स्वादमें तेज, कडवी, तृषाशामक, कामोत्तेजक, वात-पित्त शामक तथा प्रवाहिका, श्वेतकुष्ठ, त्वचारोग और महाकुष्ठमें हितावह। दुर्गन्ध, अति स्वेदस्राव, ज्वरमें दाह, तृषा, गुल्म, प्रमेह, वमन, त्वचा आदिमें दाह और रक्त-विकार आदिको दूर करते हैं। पान वान्तिकर और उदरपीड़ाशामक। पुष्प महाकुष्ठमें उपयोगी। फल मीठे, तेज, गुरु, शीतल, बल्य, ग्राही, व्रणरोपण, कफघ्न और पित्तप्रकोप नाशक। गर्भाशय विकारपर उपयोगी। बीज मधुर, तेज, शीतल, शुष्क, ग्राही, बलवर्द्धक और पित्तकफ नाशक।

गुजरातकी प्रियंगुके पान और छाल कृमिघ्न, देहकी दुर्गन्ध और अति स्वेदके नाशक हैं। फल कड़वे, सुगंधयुक्त, मस्तिष्क और हृदयको पौष्टिक, वेदनाशामक, गर्भको स्थिर करने वाला, कृमिहर और कामोत्तेजक हैं। यह फुफ्फुसोंके लिये हितावह होनेसे श्वास रोगमें व्यवहृत होता है। एवं फोड़े, क्षत और प्रदाहको दूरकरता है।

रक्तपित्त, रक्तस्राव, रक्तातिसार, वमन, तृषा, अति स्वेद, दाह और गर्भस्राव इन रोगोंपर गुजरातकी प्रियगु बंगालकी प्रियगुकी अपेक्षा अधिक लाभदायक है। (हमें यहा पर पंसारियोंसे खरीद की हुई प्रियगुका उपयोग करना पड़ता है; अत पूरा निर्णय नही कर सकते)।

सूचना—गुजरातकी प्रियगुमें हाइड्रोस्येनिक अम्ल अवस्थित है। अतः उसका क्वाथ नहीं करना चाहिये। आवश्यकतापर फाण्ट देवें। यह प्रियंगु नयी होनेपर ही गुण दर्शाती है, पुरानी होनेपर गुण नष्ट हो जाता है।

उपयोग—प्रियंगुका उपयोग आयुर्वेदमें अति प्राचीनकालसे हो रहा है। चरकसहितामें संधानीय, पुरीष संग्रहण, मूत्रविरजनीय और शोणित स्थापन दशेमानियोंमें तथा पुष्प आसवयोनि द्रव्य, कषायस्कध, वमनोपग औषधिके भीतर प्रियगुका उल्लेख है। रक्तपित्त और योनिरोगनाशक अनेक प्रयोगोंमें प्रियंगुको मिलाया है। इनके अतिरिक्त सुगन्धित तैल, विषघ्नप्रयोग, नेत्रलेप, ग्रहणीपर प्रयोगों और वस्ति प्रयोगोंके भीतर प्रियंगुकी योजना की है। सुश्रुत संहितामें अंजनादि, प्रियंग्वादि और एलादिगणमें और व्रणरोपण प्रयोगोंमें प्रियगुको लिया है।

आमाशयमें क्षत (Ulcer) या कर्क स्फोट (Cancer) होनेपर भोजन कर

लेनेके कुछ समयके बाद उदरमें शूल चलना या वेदनाका आरम्भ होता है, अपचन होजाता हो, वमन होजाती हो, तो वेदना, वमन और अपचनका ह्रास करानेके लिये गुजरातकी प्रियंगुका उपयोग किया जाता है।

(१) रक्तपित्त—प्रियंगुके पुष्पोंका चूर्ण शहदके साथ २-२ माशे दिनमें ३ वार देते रहनेसे रक्तस्राव और दाह दूर हो जाते हैं। दुग्धादि लघु पौष्टिक भोजन लेना चाहिये।

(२) रक्तातिसार—२-२ माशे प्रियंगुके बीजोंको चटनी जैसा पीस शहद मिलावें। फिर चावलोंके धोवन या मट्ठेके साथ दिनमें ३ ४ वार लेनेसे रक्तस्रावसह अतिसार दूर हो जाता है।

(३) सगर्भाका रक्तस्राव—प्रियंगु (गुजरातकी), कमलकन्द और गूलरके फल, इनको समभाग मिला चूर्णकर ३-३ माशे दिनमें २ वार ३-३ माशे शक्कर मिलाकर देवें। ऊपर गरम करके ठण्डा किया हुआ दूध पिलावें। भोजनमें लाल चावलोंका भात और दूध।

(४) कफ प्रकोप—४ माशे बंगालकी प्रियंगुकी छालको चटनीकी तरह पीस शहद मिलाकर सुबहके समय चावलके धोवन, नितारे जल या प्रियंगुके पानोंके क्वाथके साथ लेनेसे वान्ति होकर कफ, आम पित्त और विष नष्ट निकल जाते हैं। फिर छातीकी घबराहट, कफप्रकोप अथवा अपचन, और उदर-शूल दोनों विकार दूर हो जाते हैं।

(५) अति स्वेद—गुजरातकी प्रियंगुका चूर्ण ४ से ६ रत्ती दूधके साथ दिनमें २ वार देते रहनेसे पसीना अधिक आता हो, वह कम हो जाता है। अति गरम गरम भोजन, चाय आदिका अभ्यास हो तो छोड देना चाहिये।

(६) ज्वरमें घबराहट—पित्तज्वर, मधुरा, विसर्पज्वर और विषमज्वरमें अति स्वेदस्राव, घबराहट, मानसिक बेचैनी, रक्तदबावबृद्धि, प्रलाप आदि लक्षणका ह्रास करानेके लिये गुजरातकी प्रियंगुका चूर्ण ६-६ रत्ती २-२ घण्टे पर २-३ वार दिया जाता है। इनके अतिरिक्त प्रियंगुको दूधमें चटनी बनाकर मालिश भी करायी जाती है।

(१६) फूट

सं० चिर्भट धेनु दुग्ध, चित्र फला। हि० फूट, बड़ी ककड़ी कंचड़ा। बं० फूटी कौंकुड। म० चिभुड़ शेंदाड़। गु० चिभड, फा० खियार्ज। क० अरसेक्के। ता० नुम्मटिकाय। तै० वुडरग पडु। लै० Cucumis Momordica

परिचय—फूट भी ककड़ी समूह की जाती है। स्वाद भेद से इसमें दो उप-जाति हैं। एक उपजाति के फल कच्चा होनेपर कडवा होता है। दूसरी उपजाति

मीठी है। अपक्वावस्थामें फल हरा और धारी काली होती है। फल पकने पर पीला और धारी सफेद हो जाती है। फलका वजन १ से ५ सेर तक। स्वाद मधुर कुछ खट्टा।

गुण धर्म— दीपन, पाचन, शुक्र, रूक्ष, रुचिकर, मधुराम्ल, ग्राही तथा श्लेष्म वात और अरुचिका नाशक है। कोमल होनेपर वातकर पका हुआ पित्तकर और उष्ण।

उपयोग—अश्मरी पर इसके मूलको ठण्डाईकी तरह पीस छानकर पिलाते हैं। एवं मूत्रकृच्छ्र अश्मरी और दाहपर इसके बीजोंकी गिरीको जलमें पीस छानकर पिलाते हैं।

(१७) वंदर रोटी

हि० वदररोटी। म० वादररोटी। बम्बई गैदर। ते० कुदेलुचेवियाकु। ले० Notonia Grandiflora

परिचय—मासल चिकनी छोटी बहुवर्षायु झाडी। ऊंचाई २ से ५ फीट। तना सीधा, मासल, अधिक शाखादार नहीं, गिरे हुए पत्तोंके चिह्न युक्त। पान २॥ से ५ इञ्च लम्बे १ से ३ इञ्च चौडे, वृन्तहीन या छोटे वृन्तवाले, लगभग गोलाकार या लम्बगोल वल्लमाकार, बिल्कुल अखण्ड, अति मासल (थूहर सदृश मोटे), विशेषत. नीचेकी ओर हलके नीले हरे (पुराना होनेपर पीले हरे)। फूलकी गुंडी ॥। से १। इञ्च लम्बी, गुच्छेमें, हलके पीले। पुष्पदण्डी ४ से ८ इञ्च लम्बी, कठोर, चिकनी। फल (Achenes) एकबीज वाले।

उत्पत्ति स्थान—कोंकण, दक्षिण, उत्तर महाराष्ट्र बम्बई इलाकेका पश्चिम-घाट और कर्णाटक।

गुणधर्म—वंदररोटीका उपयोग पागल कुत्तेके विष (Hydrophobia) पर होता है। ऐसा १८६० ई० में डाक्टर ग गिब्रसनने प्रयोग करके प्रकाशित किया था।

देनेकी विधि—ताजा तना या शाखा ४ औंसको कुचलकर १ पिण्ट (५० तोले) शीतल जलमें रात्रिको भिगो दें। सुबह मसलकर जल छान लेवें। यह चिपचिपा हरा-सा रस (जल) है। इसमें और आवश्यक जल मिलाकर एक बारमें पिला देवें। शामको १० तोले तनेका रस निकाल आटा सान ले। फिर बाटी बना सेककर खिला दें। इस तरह ३ दिन तक देनेसे लाभ हो जाता है।

काटनेसे जहां घाव हुआ हो वहापर कास्टिक लगा देना चाहिये। इस प्रकार का प्रयोग अनेक रोगियोंपर किया गया है। और सन्तोषप्रदफल मिला।

है कास्टिकका उपयोग साथमें होनेसे चंदररोटी कितना लाभ पहुँचाता है यह एलोपैथिक वाले निर्णय नहीं कर सके हैं। डा० डिमक आदिने इस औषधिका प्रवाही सत्त्व (Extract) बनाकर पागल कुत्तेके विषपर प्रयोग किया है। इसके पश्चात् १८६४ ई० में बम्बई की यूरोपियन होस्पिटलोंमें भी इसका उपयोग हुआ है। १ ड्रामसे मद सारक असर होता है। विशेष असर प्रतीत नहीं हुआ।

(१८) बकायन

स० महानिम्ब, पर्वत निम्ब, कैडर्य, रम्यक, द्रेक। हि० बकायन, बकाइन, महानीम। प० धरेक। म० बकाणनिम्ब। गु० बकान लींबडो। बं० महानिम्ब. घोड़ानिम। सिं० बकाईण निमु। काश्मीर-द्रेक। फा० आजाद दरख्त। अ० बान, हबुलबान, शज्रतुल् हर्र। मला० मल्लवेप्पु। ते० तुरक वेप, वेट्टिवेप्पा। ता० चिन्नरि निम्बम्। का० बेवु, हुच्चुबेवु, तुरुक बेवु। अं० Barbedos Lilac, Persian Lilae ले० Melia Azaderach.

पुराना नाम M Sempaervirens

परिचय—आभाडरच सज्ञा पर्सियन नाम परसे दी है। यह कुछ छोटा तथापि लगभग ४० फूट ऊंचा छाया वृक्ष है। पान १० से २० इञ्च लम्बा, २ विभाग वाले, सामने सामने या अन्तरपर। पर्ण नीमसे छोटे, ३ से ११, लगभग सामने। आधसे २ इञ्च लम्बे, ½ से १ इञ्च चौड़े, लम्ब गोलाकार, नोकदार, अतीक्ष्ण दांतेदार, कभी खण्डयुक्त, दोनों ओर चिकने, छोटे कोमल वृन्तयुक्त। पुष्प सुगन्धित, मधुरतिक्त वासवाले. हल्के बैंजनी, लम्बेवृन्तयुक्त। बाह्यकोष (Calyx) बाहरकी ओर रुएदार. मूलस्थानसे विभाजित। आभ्यन्तर कोषके दल (पखड़िया-Petals) लगभग आध इञ्च लम्बे। पुंकेशरनलिका बैंजनी ८ मिलीमीटर लम्बी, तीक्ष्ण २० दांतवाली, भीतर रुएदार। निंबोड़े लगभग आध इञ्च लम्बी, लम्बगोल, ४ बीजयुक्त। लकडी घर बांधनेमें उपयोगी है, फिर भी निम्बके सदृश दृढ नहीं है।

पुष्पकाल शिशिर ऋतु। फलकाल वसन्त ऋतु। निंबोई तोडनेपर दूध जैसा रस टपकता है। पुराने वृक्षपर छेद करनेपर नीम मदके समान बकायनसे भी मद (ताड़ी-Sweet sap) निकल आता है।

उत्पत्ति स्थान—मूल अरबस्थान और पर्सियामें नैसर्गिक। भारतमें सर्वत्र बोया जाता है। अभीतक नैसर्गिक नहीं बना। इसके अतिरिक्त ब्रह्मदेश, मलाई, पेनिस्युला और चीन आदिमें उत्पत्ति होती है।

गुण धर्म—भावप्रकाशकारके मतानुसार महानिम्ब कडवा (मतान्तरमें चरपरा कड़वा (Acrid-Bitter)। अनुरस कसैला, शीतवीर्य, रूक्ष, ग्राही तथा कफ, पित्त, भ्रम (चक्कर आना), वमन, हृल्लास (उबाक आना), रक्तविकार,

प्रमेह, श्वास, गुल्म, अर्श और मूषिका विष आदि विकारोंके नाशक है । अन्य आचार्योंने दाहरोग, व्रण, कृमिरोग, विषमज्वर, हृदयव्यथा विपूचिका, गुल्म, शीतपित्त और गृध्रसी आदि रोगोंका नाशक भी दर्शाया है।

यूनानी मतानुसार बकायन दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है। इसमें अर्शोहर कृमिघ्न, रक्तशोधक, वेदनाहर, व्रणोंके शोधन-रोपण आदि गुण हैं। इसके पान और निम्बोई कडवे और कफनि सारक है। बीजकी गिरी अर्शकी मुख्य ओपधि है। पानमें वमन कराने और रक्तस्रावको रोकने का भी गुण है। मसुढ़े को बल देता है। प्लीहावृद्धि और हृदयरोगपर दिये जाते हैं। प्रदाहका दमन करता है। व्रण और कण्डू आदि चर्म रोगोंको दूर करता है। इसके पानोंका रस सेवन करनेपर उदरकृमिघ्न, अश्मरीघ्न, मूत्रल और रज स्रावकारक गुण दर्शाता है।

गोंद प्लीहावृद्धिपर हितकर है। निम्बोईका तैल मस्तिष्क पौष्टिक, सारक, व्रणका जल्दीपाक करानेवाला तथा कर्णशूल, अर्श, प्लीहावृद्धि, यकृद्विकार और प्रदाहपर हितावह है। रक्तको शुद्ध करता है। फूल और पान मूत्रल और रजःस्रावी है। एवं वातज शिरदर्द और शीत शोथको दूर करते हैं। शिरपर लगानेपर जूंमर जाती है और अरुंसिका दूर होती है।

अमरिकामें वकायनका उपयोग विशेष रूपसे हो रहा है। यूनाइटेड स्टेट्स की फार्माकोपियामें इसके मूलकी छालका कृमिघ्न गुण दर्शाया है। पानोंका क्वाथ हिस्टीरियापर देते हैं। ग्राही और दीपन माना जाता है। पान और छाल का अन्तर और बाह्य दोनों प्रकारसे महाकुष्ठ और कण्ठमालमें उपयोग होता है। पुष्पोंमें कृमिघ्न द्रव्य होनेका माना गया है। इस हेतुसे चर्म रोगोपर इसकी पुल्टिस बांधी जाती है। फलोंमें विषैले द्रव्य हैं तथापि महाकुष्ठ, कण्ठमालोंकी गिल्टियां (Necklace) और अपची (Scrofula) पर व्यवहृत होता है।

डाक्टर वामन देसाईके मतानुसार बकायनके गुण सामान्यतः निम्बसे मिलते हैं। यह कृमिघ्न चर्मरोगनाशक, गर्भाशय आकुंचक, वेदना स्थापन और शोधन है। इसके सेवनसे गोलकृमि (केंचवे) मरते हैं।

डाक्टर खोरीने लिखा है कि बकायनकी छाल छोटी मात्रामें कड़वी पौष्टिक है, ग्राही, ज्वरहर और कृमिघ्न है। पान और फूल रक्तप्रसादक और मूत्रल हैं। पानोंका रस ज्वर, अपचन, सार्वाङ्गिक निर्बलता, कामला, कृमि, कण्ठमाल, दारुणक, अरुंसिका और महाकुष्ठ आदिपर पानों का रस दिया जाता है। फूल और पानोंका बाह्योपयोग गांठ या व्रणशोथके विलयनकर (Discutient) रूपसे होता है।

सूचना—इस वृक्षके विषोंमें मादक विष (Narcotic) अवस्थित है।

इनके पान या फलोंका अधिक मात्रा में उपयोग करनेपर मदोत्पत्ति हो जाती है। सेवन करनेपर चक्कर आना, आखोंपर अन्धेरा आना, मानसिक विकृति, वेहोसी, आखोंकी पुतली फैल जाना, श्वासोच्छ्वासमें घूर घूर आवाज आना (Stertor) आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। यह आमाशय और अन्त्रमें प्रदाह भी लाता है। फिर वमन और विरेचन भी कराता है। इसका यथा समय उपचार न किया जाय और अत्यधिक मात्राका सेवन किया हो तो मृत्यु भी हो जाती है।

मात्रा—अन्तरत्वचाका चूर्ण २ से ३ माशे। छाल क्वाथके लिए १। से २॥ तोले। पानोंका चूर्ण २ से ३ माशे। पानोंका रस १ तोले से २ तोले तक निम्बोईका तैल २ से ५ बूद। छालका प्रवाहीसार (Fluidextract) ६० बूद। अर्क (Tincture) ३० से १२० बूद तक।

उपयोग—महानिम्बका उपयोग सुश्रुत सहिताकारने पिप्पल्यादि गणमें निम्बोईका और अधोभाग द्रव्योंमें रम्यक (वकायन) का उल्लेख किया है। हारितसहिताकार, आचार्य वाग्भट और चक्रपाणीदत्त आदि ने भी अर्श पर लिखे हुए लवणोत्तमादि चूर्णमें महानिम्ब मिलाया है।

१ कृमिजन्य ज्वर—उदरमें कृमि वढ जानेपर पाण्डुता, निर्बलता, अरुचि, और ज्वर आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। उसपर वकायनकी छालका क्वाथ ७ दिन तक पिलाते रहनेसे कृमि नष्ट होते हैं और सब उपद्रव दूर हो जाते हैं। यह विल्कुल निर्भय उपाय होनेसे वच्चोंके उदरकृमिपर भी दिया जाता है।

२ अर्श—वकायनकी निम्बोईकी गिरी, एलवा और हरड़को समभाग मिलाकर कुकरोंधेके रसमें २-२ रत्तीकी गोलिया वना प्रात साय २-२ गोली जलके साथ सेवन करनेसे अर्शमेंसे रक्तस्राव वन्द हो जाता है और मलावरोध भी दूर हो जाता है।

३ गृध्रसीवात—वकायनके मूलकी छाल या वृक्षकी अन्तर छालका चूर्णका सेवन जल के साथ १-२ मास तक कराना चाहिये।

४ अपतन्त्रक—(हिस्टीरिया) पानोंका क्वाथ या रस २-४ मास तक देते रहनेसे गर्भाशयविकृति दूर होकर अपतन्त्रक दूर हो जाता है।

५ मूत्राश्मरी—४ रत्ती जवाखार मिलाकर ऊपर वकायनके पानोंका रस पिलाते रहनेसे थोडे ही दिनोंमें वृक्क और मूत्राशयमें सगृहीत अश्मरी कण या रेती निकल जाती है।

६ मासिक धर्मावरोध—वकायनके पान अथवा फूलोंका रस या छाल का क्वाथ २-४ मास तक पिलाते रहनेसे मासिक धर्म साफ आने लगता है।

७ कुत्तेका विष—वकायनके मूलकी छालका चूर्ण या पानोंके रसका

सेवन ३-४ मास तक कराते रहनेसे तीन विष नष्ट हो जाते हैं।

८. रक्तजमजाना—पानोंको पीस गरमकर पुल्टिस बनाकर बांध देनेसे गाठोंका रक्त बिखर जाता है। किसी स्थानपर सूजन आई हो तो ऊपर लेप लगाते रहनेसे सूजन भी उतर जाती है।

८. दारुणक—वकायनके फूलोंका रस या पानोंका रस मस्तिष्कपर लगाते रहनेसे दारुणक (छोटी छोटी फुन्सियां हो जाना, केशभूमि कठोर हो जाना, चमड़ी के टुकडे निकलते रहना) और अरुंपिका (पीपयुक्त फुन्सिया होना) आदि विकार दूर होते हैं।

(१९) वच

स० वचा, उग्रगन्धा, षड्ग्रन्था, जटिला। हि० वच, घोडवच। वं० वच। म० वेखण्ड। गु० वज, घोड़ावज। सि० किनी, काठी। अ० वज्ज, ऊदुल-वज्ज। फा० अगरे तुर्की, कारूनक। ता० वशुम्भू। ते० वडज। अ० Sweet flag root लै० Acorus Calamus

परिचय—केलेमस=संधिरहित काण्ड। सुगन्धित कन्दयुक्त क्षुप। कन्द मध्यमा सदृश मोटा, जमीनके भीतर सरकनेवाला, अरुण वर्णका, शाखायुक्त, मोटे रेशेमय। मूलोद्भव पान ३ से ६ फूट लम्बे, ॥। से १। इञ्च चौडे, किनारे तरंगदार, वीचमें मोटा, हरे, सामने सामने खड़ी पंक्तियुक्त, तलवार सदृश आकृतिवाले। पुष्प वृन्त पत्र जैसा। आच्छादक पुष्पकोष ६ से ३० इञ्च लम्बा। । इञ्च व्यासका। मंजरी आच्छादक पुष्पकोषके भीतर २ से ४ इञ्च लम्बी, ॥ से ॥। इञ्च व्यासकी, किञ्चित् मुड़ी हुई। परागकोष पीले। फल शुण्डाकार, पार्श्वयुक्त।

उत्पत्तिस्थान—भारत और सिलोनमें सर्वत्र नैसर्गिक और बोये जाने-वाला।

वक्तव्य—भाव प्रकाशकारने वचा (उपर्युक्त), पारसीक वचा (श्वेत वचा खुरासानी वच), महाभरी वचा (कुलञ्जन), द्वीपान्तर वचा (चोपचीनी), ये ४ प्रकार कहे हैं। सबका विवेचन इस ग्रन्थमें पृथक् पृथक् किया है।

गुणधर्म—भावप्रकाशके मतानुसार वच रसमें कड़वा उष्ण (Pungent) उष्णवीर्य, वान्तिकर, अग्निदीपक, मल मूत्रशोधक तथा आध्मान, शूल, अपस्मार, कफ प्रकोप, उन्माद, भूतग्रह, कृमि और वातप्रकोप आदिको दूर करती है। अन्य आचार्योंने स्वर सुधारनेवाली, बुद्धिवर्द्धक, हृद्य, विषघ्नहर, तृषाहर, पाकमें चरपरी, आमपाचन, जीवनी और वाक्प्रद गुण अधिक दर्शाये हैं।

धन्वन्तरि निघण्टु कारने भारतीय वच और खुरासानी वच दोनोंको गुणवाला माना है। राजनिघण्टु कारने खुरासानी वचको विशेष गुणप्रद

माना है। भावप्रकाशकारने खुरासानीको अधिक वातशामक कहा है।

यूनानी मतानुसार वच ३ रे दर्जेमें गरम और दूसरे दर्जेमें खुश्क है। एव वातहर, उदरकृमिघ्न, ज्वरहर (Alexipyretic), मस्तिष्क पौष्टिक, रजस्रावी, निर्बलतानाशक, दीपन तथा दंतशूल, प्रदाह, यकृद्वेदना, छातीका दर्द, वृक्कविकार और श्वेत कुष्ट, इन सबमें लाभदायक है।

वच गाढ़े और जमे हुए दोषोंको पतला करती है, कफ और रक्तमें उष्णता लाती है, विकारको फेंकती है और कान्तिको बढाती है। कफ प्रकोप से देह में खिंचाव होने लगे, तो वचको घिसकर लेप करनेसे लाभ हो जाता है। पक्षवध और वधिर अंगको भी यह हितावह है। स्मरण शक्ति बढ़ानेके लिए शहदके साथ दिया जाता है। इसके अंजनसे कफ प्रकोपज जाला दूर होता है। मुँहमें रखने से बोलनेमें रुकावट और जिह्वाका मोटापन दूर होता है। इसके सेवनसे शीत प्रकोपसे उत्पन्न कास दूर होती है, क्षुधा प्रदीप्त होती है और शक्ति बढाती है।

डाक्टर देसाईके मतानुसार वच उष्ण, स्वेदजनन, कासहर, कफघ्न, वामक, सुगन्धि, कड़वी, दीपन, वातहर, उत्तेजक, वेदनास्थापन और कृमिघ्न है। कफप्रकोप वातप्रकोप और पित्तप्रकोपमें दी जाती है। पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियों और वालकोंको अधिक अनुकूल है। इस ओषधिके सब धर्म स्पष्ट प्रतीत होते हैं फिर भी इसे प्रधान गुणदर्शक ओषधि नहीं मानी जायगी, यह दूसरे दर्जेकी ओषधि है।

वच बड़ी मात्रामें वान्तिकर और छोटी मात्रामे दीपन-पाचन और उदरवातहर है। यह अफारा, उदरशूल और अपचनकी घरेलू ओषधि है। इसे विरेचन ओषधिके साथ सुगन्ध लाने और बलदेनेके लिए मिलाते हैं। वने रहने वाले ज्वर और शीतज्वरपर तथा पिस्सू आदि जन्तुओंके नाशके लिए यह व्यवहृत होता है।

डाक्टर मुईदिन शेरीफके मतानुसार वच वान्तिकारक, अधिक उबाक लानेवाला, उदरवातहर, उत्तेजक और जन्तुनाशक है। इपिकाककी अपेक्षा यह अधिक उबाक लानेवाली और क्रिया शक्तिका ह्रास करानेवाली होनेसे प्रवाहिका आदि रोगों पर यह अधिक उपयोगी होती है। इस देशमें वमन करानेवाली प्रधान २ औषधिया हैं जो ३० ग्रेन (२ माशे) की मात्रामें देनेपर सफलतापूर्वक कार्य करती हैं, इनमेंसे एक वच है और यह ३५ ग्रेनसे अधिक मात्रामें नहीं देनी चाहिये। ४० ग्रेन देनेपर अति शीघ्र और प्रबल क्रिया दर्शाती है। यह तमक श्वासके दौरेको रोकनेके लिये उत्तम ओषधि है। पहले इसे बड़ी मात्रामें अर्थात् १५-२० ग्रेन मात्रामें और फिर २ या ३ घण्टे बाद १०-१० ग्रेन मात्रामें पूरा लाभ न हो तब तक देना चाहिये। इसके अतिरिक्त श्वासनलिका

प्रसेक (Bronchial Catarrh), हिस्टीरिया, वातनाड़ी शूल और कई जाति के अपचनरोगपर वच अति हितावह ओषधि है। मूल अर्क और फाण्टरूपसे भी प्रयोजित हो सकता है। (अर्ककी मात्रा १० से २० बूंद)।

मात्रा—२ से ५ रत्ती। वमन करानेके लिये २ से ४ माशे तक।

उपयोग—वचका उपयोग अति प्राचीन कालसे आयुर्वेदिक ओषधि और घरेलू उपचार रूपमें हो रहा है। चरकसंहिताके भीतर पक्वाशयगत मलविरेचन औषध सूची और लेखनीय, तृप्तिघ्न, अर्शोघ्न, आस्थापनोपग, शीतप्रशमन और सञ्ज्ञास्थापन महाकषायके भीतर तथा तिक्तस्कन्ध और शिरो विरेचन द्रव्यमें वचका उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त शोधन योग, दो प्रकारके ब्राह्म रसायन, ऐन्द्रीरसायन, इन्द्रोक्त रसायन आमलकायस ब्रह्म रसायन, त्रिफला रसायन और हरितक्यादि रसायनमें तथा ज्वर, गुल्म, प्रमेह, कुष्ठ, राजयक्ष्मा, उन्माद, अपस्मार, उदररोग, अर्श, ग्रहणी, हिक्का, श्वास, कास, अतिसार, तृषारोग, विषविकार, उद‌ावर्त, अश्मरी, हृद्रोग, पीनस, मुखरोग, कर्णस्राव, ऊरुस्तम्भ, वातरोग, वातशोणित, योनिरोग और स्तन्यविकारादिके प्रयोगोंमें वचाका उपयोग किया है। इसी तरह सुश्रुतसंहितामें भी अनेक स्थानोंमें वचाकी योजना की है। इनके अतिरिक्त आचार्योंने वचादि चूर्ण, वचादि क्वाथ, वचादि तैल (अनेक पाठ), वचाद्य घृत, वचादि योग, वचादि लेप, वचादि वटी, उग्रगन्धायोग, उग्रादि कषाय आदि प्रयोगोंमें वचाको प्रधान ओषधिरूप से ग्रहण किया है।

डाक्टर वामनदेसाईने लिखा है कि जुकाम और नया श्वासनलिकाप्रदाहपर वचका क्वाथ गुणदायक है। इसके सेवनसे शोथ आगे नहीं बढ़ता। एवं कण्ठ मेंसे कफ निकलकर आवाज सुधर जाती है। जुकाम करनेवाली अन्य २ ओषधियां अफीम और वच्छनाग हैं, किन्तु दोनों विष हैं। वचके समान उनको निर्भय रूपसे व्यवहृत नहीं कर सकते। वचके उपयोगमें हानिका भय नहीं है। इसकी क्रिया अफीमके समान श्लैष्मिककलापर होती है। वचका टुकडा मुँहमें रखनेसे त्रासदायक शुष्क कास और कण्ठ शोथका ह्रास होता है। कम मात्रामें देनेसे कफ मुक्त होता है। फिर भी वच के साथ अन्य कफ निसारक ओषधि देनी चाहिये। कफ और श्वासपर वमन करानेके लिए ४० रत्ती वच और १ तोला सैंधानमकको १ सेर निवाये जलमें मिलाकर पिलावें। इससे हानि हुए बिना कफ निकलकर दमेका त्रास कम हो जाता है। बालकोंके श्वासनलिका प्रदाहपर भी वचका क्वाथ लाभदायक है।

ज्वरावस्थामें वच देनेसे स्वेद आता है और पेशाब अधिक उतरता है; किन्तु स्वेद आनेके लिए कपडे ओढ लेना चाहिये। शीत ज्वरमें क्विनाइन, कांटेदार करंज और चिरायता आदि प्रयोजक औषधियोंके साथ वच देनेसे हड्डी हड्डीमें

होनेवाली पीडा दूर होती है और ज्वर शीघ्र उतर जाता है। जीर्ण ज्वरमें वच के योगसे मस्तिष्क और वातनाडियोंको उत्तेजना मिलती है। बालकोंको दांत आनेके समय ज्वर आता है उसपर भी वच हितावह है।

अपस्मार, उन्माद, पक्षाघात और सन्निपातमें वचका अच्छा उपयोग होता है। अपस्मारमें शहदके साथ सुबह और रात्रिको दिया जाता है। उन्मादमें कुष्माण्डके रसके साथ दिया जाता है। पक्षाघातमें बधिर अंगोपर वचका मर्दन होता है।

वच गर्भाशयका भी कुछ कुछ आकुंचन कराता है। इस हेतुसे प्रसव होने के पहले उत्पन्न वेग को बल देने के लिए वच, केशर और पीपलामूल मिलाकर दिया जाता है। प्रसूताको वच देनेसे आमाशयकी क्रिया सुधरती है और अपचन दूर होता है। क्वाथ देनेसे उदरवेदना और अफारा दूर होता है। अपचन जनित दस्त भी कम हो जाते हैं।

वच बालकोंके उदरवेदना और पेचिशपर अति लाभप्रद है। बालकोंको वच सेक कर दिया जाता है। वचसे उदरकृमि गिर जाते हैं।

उदररोगमें वच प्रशस्त ओषधि है। जमालगोटा से अधिक जुलाब लगनेपर वचको सेक जलके साथ दिया जाता है। संधि शोथ, वर्षाके भीगनेपर अंगोंमें वेदना, सरदी आदि रोगोंमें वच सेवनार्थ और बाह्योपचारार्थ (मर्दनार्थ) भी दिया जाता है। अर्शके मस्सेपर वच, भांग और अजवायनका धुआ दिया जाता है।

१ विषमज्वर (अ)—कमरेमें वच, हरड़ और घीका धुआ करें और नस्य करें।

(आ)—वच, कुटकी, पाठा, अमलतासका गूदा और कुड़ेकी छालका क्वाथ कर पिलानेसे मलावरोध और कफवातज विषमज्वर दूर होते हैं।

२ आमातिसार रक्तातिसार—वच, धनिया और जीरेका क्वाथ दिन में ३ बार पिलाने से लाभ पहुँच जाता है। यदि वातप्रकोप हो तो वच, अतीस नागर मोथा और इन्द्रजौका क्वाथ दिया जाता है।

३ मलावरोध—वच और सोया १-१ माशा घी शक्करके साथ मिलाकर सेवन करने पर उदरवायु दूर होती है, शौच शुद्धि होती है और मानसिक प्रसन्नता होती है।

४ आमाजीर्ण—अपचन होनेपर १ सेर निवाये जलमें वचका चूर्ण ४ माशे और नमक २ माशे मिलाकर पिला देनेसे वमन होकर आमाशयमें रहा हुआ सब विकार बाहर निकल जाता है, जलका कुछ अंश अन्त्रमें जाता है जिससे एक बार शौच होकर वह भी शुद्ध हो जाता है।

वक्तव्य—वमनकी आवश्यकता न हो तो वचकी मात्रा ६ रत्तीकी देनी चाहिये।

५. उदरशूल—वचका चूर्ण १ माशा नमक मिले हुए मट्ठेके साथ देनेसे उदरपीड़ा तुरन्त शमन हो जाती है।

६. उदरकृमि—बालकोंको १-२ रत्ती वच दूधमें घिसकर देनेसे कृमि गिर जाते हैं और नई उत्पत्ति बन्द हो जाती है। बालकोंको दूधकी वान्ति होती हो तो भी वच घिसकर दिया जाता है। बालकोंके लिए यह उत्तम घरेलू औषधि है।

७. अग्निमान्द्य—वच २-२ रत्ती दिनमें २ बार प्रात सायं गुड या शहद में मिलाकर जलके साथ सेवन करनेसे थोड़े ही दिनोंमें गुण प्रतीत होता है।

८ अम्लपित्त—वचका चूर्ण गुड़ या शहदके साथ लेते रहनेसे छातीमें जलन, खट्टीडकार, भोजन करनेपर उदरमें भारीपन आदि दूर हो जाते हैं।

९. जुकाम और शिरदर्द—वचके चूर्णकी पोटली बांधकर सूंघते रहनेसे १ दिनमें जुकामका कष्ट दूर हो जाता है और शिरदर्द भी शान्त हो जाता है।

१० सूर्यावर्त और अर्धावभेदक—प्रात कालको च और पीपलके चूर्णकी पोटलीकरके बार २ सूघते रहें। मलावरोध रहता हो तो उदरशुद्धि कर लेनी चाहिये। तथा वचका उदरसेवन भी करना चाहिए।

११. अपस्मार (१) वचका चूर्ण ४ से ६ रत्ती दिनमें २ बार शहदके साथ २१ दिनतक देते रहें। पथ्य, दूध, भात।

(२) वचके चूर्णको घीमें भिगो ७ दिन तक धूप में रखें। फिर पाताल यन्त्रसे घृत (तैल) निकाल लेवें। उसमेंसे २-२ बूंद नाकमें टपकाते रहें।

(३) बचका चूर्ण और शंखकीट ४-४ रत्ती दिनमें २ बार शहदके साथ २१ दिनतक सेवन करनेपर अपस्मार दूर हो जाता है।

१२. मूत्रावरोध—वचका चूर्ण २ माशे लेकर ऊपर दूध जलकी लस्सी पिलानेसे मूत्रशुद्धि होती है और व्याकुलता दूर हो जाती है। बालकोंको २ रत्ती वच शक्कर मिले दूधके साथ दी जाती है।

१३. मुखक्षत—वचका टुकड़ा मुँहमें रखनेसे क्षत नष्ट हो जाता है। कण्ठ में सूजन आई हो, तो वह भी दूर होजाती है।

१४. कर्णस्राव—तिलके तैलमें वचको पकावें। पक जानेपर नीचे उतार छान थोड़ा कपूर मिलाकर ढक देवें। उसमेंसे २-२ बूंद सुबह रात्रिको कानमें डालते रहनेसे वेदनासह कर्णस्राव दूर हो जाता है।

१५. कर्णमें कृमि—वचका चूर्ण डालने से कृमि नष्ट हो जाते हैं। पूयपाक हुआ हो तो वह भी शमन हो जाता है।

१६, मूर्च्छा (अ)—मूर्च्छित मनुष्यके नासापुटमें वचका चूर्ण एकाध रत्ती फूक देनेसे तुरन्त छींक आने लगती है और बेहोशी दूर हो जाती है।

(आ) वच, मन शिला और लहसुनका अंजन करानेसे रोगी तुरन्त सचेत हो जाता है।

१७ विष प्रकोप—भोजनमें विष या अशुद्ध हानिकर पदार्थ आ जानेपर ३ माशा वचका चूर्ण लेवें ऊपर १ सेर गरम जल पीवें। जलमें एकाध तोला नमक मिलावें। इससे तुरन्त वमन होकर विषसह अन्न निकल जाता है।

१८ धतूरेका विष—वचका चूर्ण निवाये जलसे दें या वचका फाण्ट दें। भोजन दही-भात।

१९ चूहेका विष :—चावलके धोवनके साथ वच रोज सुबह लेते रहें और दूध भातका भोजन करते रहें, तो १ सप्ताहमें विष नष्ट हो जाता है।

२० सगर्भाका उदरवात :—वच और लहसुन १-१ माशा शहदमें देकर ऊपर निवाया दूध पिलानेसे उदरवात, अफारा, मलकी गांठे बनना, मलावरोध और व्याकुलता आदि दूर होते हैं।

२१ सुखप्रसवार्थ —वचको जलमें पीस एरण्ड तैल मिलाकर नाभिके नीचे गर्भाशयपर लेप करें।

२२ प्रसवकष्ट :—वच ६ माशे और केसर १ माशेको गधीके दूध (न मिले तो गायके दूध) में आध पौन इञ्च लम्बी बत्ती बनाकर योनिमार्गमें रखवाने से तुरन्त विना कष्ट प्रसव हो जाता है।

२३ बालकोंका श्वासावरोध —वच दूधमें घिसकर पिलावें और वचको जलमें घिस निवायाकर छाती, कण्ठ और पिछली ओर मर्दन करें। फिर गरम वस्त्र पहना देवें।

२४ तालुपातन —वच, कुष्ठ और हरडको या वच और जायफलको दूधमें घिसकर पिलाते रहें और बारासिंगाके सींगको घी या दूधमें घिसकर तालु पर लेप करते रहें।

२५ बालकोंका धनुर्वात :—वच १-२ रत्ती दूधके साथ देनेसे आक्षेप शमन हो जाता है।

२६ वृषणवृद्धि :—वच और थोड़ी सरसोंको जलमें पीस रोज सुबह लेप करने और कौपीन बाधते रहनेसे वृषणमें उतरी हुई वायु निकल जाती है।

२७ क्षतकृमि —क्षतमें कृमि हो जानेपर वच और कपूरका चूर्ण डाल देनेपर कृमि नष्ट हो जाते हैं और घाव भर जाता है। मलहम लगानेकी आवश्यकता हो तो वच-कपूरको धोये घी या वेसलीनमें मिलाकर लगाया जाता है।

२८ उन्माद :—वचका चूर्ण ४-४ रत्ती दिनमें २ वार पेठे (कुष्माण्ड) के

रस या शर्बतके साथ देते रहनेसे वात प्रकोपज और पित्तप्रकोपज उन्माद शमन हो जाता है। साहस करना, जोर जोरसे चिल्लाना, निद्रा न आना आदि लक्षण युक्त उन्मादपर लाभ हो जाता है।

२९. पक्षाघात :—नया रोगमें उत्पन्न बधिर अंगपर वच और अजवायन (या सोंठ) के ताजे चूर्णका मर्दन प्रात साय करते रहनेसे शनै शनै चेतना आ जाती है। यह मर्दन विसूचिका प्रबल अवस्थामें शरीर शीतल हो जानेपर भी गुण दर्शाता है।

३०. कष्टार्तव :—मासिकधर्मके समय कष्ट होता हो और कमरमें दर्द बना रहता हो तो १-१ माशे वचका फाण्ट पिलाया जाता है। यदि सांधों सांधोंमें दर्द होता हो, तो वह भी इस फाण्टसे दूर होता है और रजःस्राव विना कष्ट होता है

(२०) वच्छनाग काला।

सं० वत्सनाभ, अमृत, महौषध, शृंगी,। हिं. बच्छनाग, कालाबच्छनाग, सिंगिया विष, मीठा तेलिया। बं. मीठा विष, काठविष। म. गु० कच्छी-वच्छ नाग। रा० सिगीमोरा। फा० विषनाग, जहर। अ० विष। ता० विषनावि। ते० वसनाभी। क० वत्सनाभि। सिक्किमविष, कालो विखमो। ने० अति सिंगियाविष। अं Aconite. ले० Aconitum Ferox

वर्णन :—फेरोक्स=अति विषमय क्षुप। मूल द्विवर्षायु, जोड़ा, कदरूप। पुत्रीकंद अण्डाकार, लम्बगोलसे लगभग गोल, लगभग १–१॥ इञ्च बड़ा, कुछ मूल तन्तुसह, बाहरसे गहरा भूरा, टूटनेमें कदाच चूर्णमय, पीताभ। स्वाद प्राय उदासीन, फिर दृढ़ झनझनाहट युक्त। माताकंद बहुत संकुचित झुर्रीदार, अति मूलतन्तुयुक्त, ३–४ इञ्च लम्बा, गाजर जैसे आकारका। तना खड़ा ३ से ६ फीट ऊंचा, ऊपरकी ओर पीले छोटे मुलायम रुएसे आच्छादित (Puberulous)। पान ३ से ६ इञ्च लम्बे। पुष्पव्यूहकी शिथिल कलंगी ६ से १२ इञ्च लम्बी, थोडे खड़े पुष्पयुक्त। पुष्पवृन्त १ से २ इञ्च लम्बा, शिरपरमोटा पुष्प हलके मैलेरंगके, पुष्पबाह्यकोषके पान रुएंदार, नीले। डोडी लम्बगोल आध पौन इञ्च लम्बी, विषम और कटे हुए किनारे वाली।

वच्छनागकी उत्पत्ति भारत, यूरोप, चीन और जापानमें होती है। वच्छनाग की अनेक उपजाति हैं। यूरोप और अमरिकामें विशेष उपयोग एकोनाइटम नेपेलस (Aconitum Napellus) का होता है। यह आलपाइन हिमालय में १०००० फीट से अधिक उंचाईपर होता है। भारतवर्षमें बच्छनागकी जितनी जाति हैं, इनमें एकनाइटम फेरोक्स, अर्थात् अत्र जिसका वर्णन किया है, वह जाति मुख्य है। यह जाति हिमालयमें सिक्किमसे गढवाल तक ८००० से १०००० फीट उंचाई तक होती है। होमियोपेथी, चीन और जापानमें भिन्न भिन्न

जातिका उपयोग हो रहा है। एलोपैथी और और होमियोपैथीने जिसतरह अपनी जाति निश्चितकी है, उसतरह आयुर्वेदमें न होनेसे औषध गुणधर्ममें वहुत अन्तर पड़ जाता है। ज्वरकी आयुर्वेद चिकित्सामें वच्छनागका उपयोग अत्यधिक (लगभग ९९%प्रयोगोंमें) हो रहा है। अत. इसका गुणधर्म और उपयोगका विवेचन कुछ विस्तारसे देखेंगे। डाक्टरीमें वच्छनागको विना शुद्ध किये उपयोगमें लेते हैं। आयुर्वेदमें शुद्धकरनेका आग्रहपूर्वक विधानकिया है। अशुद्ध वच्छनागमें उग्रता और हृदयको हानि पहुँचानेका जो दोष है, वह शुद्ध होने पर दूर हो जाता है या वहुत कम हो जाता है। वाहर लगाने के लिये वच्छ नागकी शुद्धिकी आवश्यकता नहीं है। जितना अधिक उग्र हो, उतना ही सत्वर लाभ पहुँचाता है।

लक्षण —सिन्धुवारसदृक् पत्रो वत्सनाभ्याकृतिस्तथा।
यत्पार्श्वे न तरोर्वृद्धिर्वत्सनाभ स भाषितः॥

जिस विष वृक्षके पत्र निर्गुण्डीके पानके समान हो, और जिसकी आकृति वछडेकी नाभिके समान हो, तथा जिसके विषमय वायुके हेतुसे चारों ओर वृक्ष समूहकी वृद्धि नहीं होती, उसे वत्सनाभ कहते हैं

काला वच्छनाग —बाजारमें काले वच्छनागके मूल कुछ मुडे हुए मिलते हैं। इसका आकार गाजरके समान किन्तु खुरदरा होता है। इसकी लम्बाई ३–४ इञ्च होती है। प्रारम्भमें इसका रग भूरा होता है। कुछ दिनों तक पड़ा रहनेपर काला हो जाता है। इन मूलोंको तोड़ने पर भीतरसे तेजस्वी लाल–काला रग प्रतीत होता है। वर्षाऋतुमें वे मूल नम्र और चिमडे हो जाते हैं। हाथोंसे मसलनेपर हाथ मैले हो जाते हैं। इसमें से उग्र वास निकलती है।

सूचना —वच्छनाग उग्र विष है। जिह्वाको स्पर्श कराने मात्र से झनझना हट होने लगता है, तथा लार छूटती है। फिर वधिरता आजाती है। और वह वहुत देर तक रहती है। अत सच्चे झूटेकी परीक्षाके हेतुसे कभी वच्छनाग जीभको नहीं लगाना चाहिये वच्छनागमें अनेक जाति होनेसे वाजारमें से जो वच्छनाग मिलता है, वह किस जातिका है, यह निर्णय करना कठिन है। यदि ए फेरोक्स या अन्य अच्छी जाति मिली, तो औषधि योग्य गुण दर्शा सकेगी। एव कमगुणवाली जाति या पुराना वच्छनाग मिला, तो योग्य लाभ नहीं हो सकेगा। तीव्र वच्छनाग हो, तो उसे शुद्ध करने लेना चाहिये, यदि सामान्य वलवाला है, तो विशेष शुद्धि न की जाय, वही अच्छामाना जायगा।

इण्डियनमेडिमिनिल प्लेण्टसकार लिखते हैं कि, कलकत्ताके वजारमें विशेषत एकोनाइटम स्पिकेटम (A Spicatum) तथा एकोनाइटस लेसी नियेटम (A Laciniatum), जो एकोनाइटम फेरोक्सकी उपजाति हैं वे मिलते हैं।

बाजारमें जो उबालेहुए और कसीस तथा तैल लगायेहुए टुकड़े मिलते हैं। उनको पुनः शुद्ध नहीं करना चाहिये। वच्छनागके टुकड़े जितने अधिक वजनदार और नयेहों, उतने अच्छे माने जाते हैं।

वच्छनागशुद्धि—वच्छनागके छोटे छोटे टुकडेकर ३ दिन तक गोमूत्रमें भिगोदेवें। रोज गोमूत्र बदल देवें। फिर छायेमें सुखालेनेसे वच्छनाग शुद्ध हो जाता है।

पदार्थ लगठन—वच्छनागमें क्षारीय सत्व-एकोनाईटिन (Aconitine) मुख्य हैं। दूसरा क्षारीय सत्व पिक्राकोनीटाइन-(Picraconitine) तथा तीसरा क्षारीय सत्व एकोनाइन (Aconine) हैं। शेष दोनों सत्व गौण हैं, इनके अतिरिक्त क्षारीय द्रव्य, एकोनिटिकएसिड (Aconitic acid)तथा अन्य स्टार्च आदि द्रव्य मिलते हैं। इनमेंसे वच्छनागके गुणोंका मुख्य आधार एकोनाइटिनपर है।

वच्छनाग सत्व—एकोनाइटिनके अतिरिक्त दूसरा सत्व पिक्राकोनीटाइन अतिकम विषवाला है, वह हृदयको मंद बनाताहै; किन्तु सवेदक वातनाड़ियोंके सिरेपर बिल्कुल क्रिया नहीं करता। तीसरा सत्व एकोनाइन अति निर्बल क्रियाशील है। वह हृत्स्पंदन और शक्तिहीन संचालक वातनाड़ियोंके सिरेको बलवान बनाता है।

मुख्य वच्छनागसत्व एकोनाइटिनका आभ्यन्तरिक प्रयोग नहीं होता। अन्यथा सुषुम्णापर इसकी क्रिया होकर ऐच्छिक मास पेशियोंका पक्षाघात उत्पन्न होता है। इसकी क्रिया संचालक वातनाडियोंपर प्रकाशित नहीं होती। त्वचामें इसका प्रयोग करनेपर इन्द्रियों से सम्बन्धवाली और स्पर्शबोध कराने वाली वातनाड़ियोंका पक्षाघात हो जाता है। मांस पेशियोंके तन्तुपर इसकी साक्षात् क्रिया प्रतीत नहीं होती।

आमवात, वातनाडीशूल और मासपेशियोंकी वेदनापर इसके मलहमका प्रयोग विशेष उपकारक है। नेत्रके पास लेप करनेमें खूब सावधानता रखनी चाहिये। चक्षुको लगजानेपर अत्यन्त वेदना होती है।

गुणधर्म—वत्सनाभोऽतिमधुर सोष्णो वातकफापहः।
कण्ठरुक्सन्निपातघ्नः पित्तसंशोधनोऽपि च ॥ रा० नि०

वच्छनागका रस और विपाक अतिमधुर, उष्ण वीर्य वातकफनाशक कण्ठरोधक, त्रिदोषजित् और पित्तसशोधक है।

मतान्तरमें वच्छनाग रसायन और बलदायक है। वात और कफरोगका नाशक है। यह रसमें चरपरा। अनुरस कडुवा-कसैला, मादक, आनन्दप्रद और व्यवायी है। विधिपूर्वक सेवन करने से कुष्ठ, वातरक्त, अग्निमांद्य, श्वास,

कास, प्लीहोदर, भगदर, गुल्म, पाण्डु, व्रण और अर्श आदि रोगोंका नाश करता है।

वच्छनागका सेवन युक्तिपूर्वक हो तो प्राणदायी और रसायन है, पथ्य पालनपूर्वक सेवन करनेपर तीनों दोषोंको सम करनेवाला बृंहण (देहको मोटा बनानेवाला) और वीर्यवर्द्धक है।

जो वात-कफात्मक दुष्ट रोग नाना प्रकारके रस आदि औषधियोंसे नष्ट न हुए हों, वे सब विषप्रयोगसे सरलतापूर्वक नष्ट होजाते हैं। इन रोगोंको दूर करनेकेलिये किसीभी ऋतुमें योग्यमात्रामें विधिपूर्वक विषका प्रयोग करना चाहिये। जो घी, हितकारक अन्न और दूध, इन पदार्थोंका भोजन करने वाले हों, रसायनमें विश्वास रखता हो, ब्रह्मचर्यका पालन करता हो उसे विष सेवन कराना चाहिये। पथ्य पालन करनेवाले और शान्त मनवाले श्रद्धालुको निःसन्देह गुण होता है। विष सब रोगोंके शामक, दृष्टिवर्द्धक और शरीरको पुष्ट करनेवाला है।

डाक्टर घोस मेटेरिया मेडिकामें लिखते हैं कि, क्लोरोफार्म या घृत, तैल आदिमें मिलाकर वच्छनागकी त्वचापर मालिश करनेपर शोषण होजानेके पहलेही त्वचाको उत्तेजना देता है। फिर सवेदना नाडियों (Sensory nerves) के सिरेको मूर्छित बनाता है। वहा झनझनाहट पैदा करता है, और शून्यता लाकर चेतना नष्ट करदेता है। श्लैष्मिक कलामेंसे इसका अति जल्दीसे शोषण होता है।

जब वच्छनाग जिह्वापर लगायाजाय तब थूकसे मिलजानेपर प्रतिक्रिया रूपसे जिह्वामें रहेहुए सचेतना नाडियोंके सिरे पीडित होते हैं। उबाक उपस्थित होती है। एव झनझनाहट, शून्यता और चेतनालोप उपस्थित होते हैं। यदि मात्रा अधिक हो, तो आमाशय और अन्त्रमें उग्रता लाकर उबाक वमन और अतिसार उत्पन्न करादेता है।

डाक्टर मिच्चेलबुसने मेटेरिया मेडिकामें लिखा है, कि वच्छनाग सेवन करनेपर उसमें रहा हुआ विष द्रव्य (Aconitine) त्वरित रक्तमें प्रवेश कर जाता है। फिर रक्ताभिसरण सस्थापर अपना प्रभाव दर्शाता है। मेंढकपर प्रयोग करनेपर प्रारम्भमें हृदयकी गति मांसपेशियोंकी उत्तेजना के हेतुसे प्रत्यक्ष वढादेता है, और फिर प्राणदानाडी (Vague nerves) की क्रिया द्वारा मंद हो जाती है। पश्चात् हृदय अतिक्रम करता है। और स्पन्दन अति जल्दीसे होने अगता है, किन्तु तुरन्त पूर्ण रूपसे तालका भग हो जाता है। दूध पीनेवाले पशु बालकोंमें एकोनाइटिन प्रारम्भमें प्राणदा नाडी केन्द्रपर उत्तेजना दर्शाता है, जिससे हृदयके विश्राम काल (प्रसारण) की वृद्धिद्वारा

हृदयस्पन्दन अत्यन्त मंद हो जाता है, और हृदयकी आकुंचन क्रियाभी मंद हो जाती है। परिणाममें रक्त दबाव गिर जाता है।

अधिकमात्रामें देनेपर प्रारम्भमें हृदयपेशी उत्तेजित होते है। हृदय स्पन्दन और बलकी इसीतरह वृद्धि होती है। ओर रक्तदबाव भी बढजाता है। फिर मांसपेशीकी उत्तेजना की ग्रहण शक्ति बढ़जाती है। अलिंद विभागके अतिरिक्त स्पन्दनोंकी वृद्धि होती है, फिर आगे निलय स्पन्दन भी बढ जाते है। किन्तु उस स्थितिकी प्राप्ति तब होती है कि जब अलिन्द-निलय सेतुके अवसादग्रस्त होनेके हेतुसे अलिन्द उत्तेजना निलय स्थानको नहीं पहुँचती और उससमय अत्यन्त उत्तेजित निलय अपने निजके तालको चलाता है। इस अवस्थाके भीतर रक्त दबाव शीघ्र आदोलनके अधीन हो जाता है।

हृदयकी शिथिलताके अनुरूप पहले रक्तदबाव गिर जाता है, फिर सचालक नाड़ी केन्द्र (Vaso motor Centre) मृत-सा बन जाता है। परिणाममें हार्दिक ताल पूर्णांशमें टूट जाता है और हृदय बन्द हो जाता है।

वच्छनागकी उक्त क्रिया मनुष्यों केलिये ओषधीयमात्रासे प्रकाशित नहीं होती। वह नाडीकी गतिको मद करना और दृढ़ताको कमकरनेके इस किञ्चित् व्यापारके अतिरिक्त हृदयपर थोड़ासा असर पहुँचाता है। इस हेतुसे वातनाड़ियों की क्रियाके हेतुसे या वृद्धिसे हृत्स्पन्दन और नाड़ीकी दृढ़ताको कम करानेके लिये समय समय पर वह प्रयोजित होता है।

वच्छनाग सत्वके प्रयोगसे प्रारम्भमें केन्द्रियक्रिया द्वारा श्वासोच्छ्वास क्रिया उत्तेजित होती है, उसके पुन पुन सघटन और गहराईकी वृद्धि होती है। तथापि यह सभव है कि, अत्यन्त मंद और कष्ट पूर्वक श्वासोच्छ्वास क्रियाके हेतुसे आक्षेप द्वारा अवसादकता सत्वर प्रकाशित होती है, और केन्द्र स्थानके निश्चेष्ट होनेसे मृत्यु हो जाती है।

वच्छनाग सत्व शारीरिक उत्तापको कम करता है, यह क्रिया विशेषत ज्वरमें त्वचागत नाड़ियाँ प्रसारित होकर और स्वेदकी वृद्धि होकर प्रकाशित होती है। यह व्यापार, जो विश्वसनीय नहीं है, फिर वह भी संभवत उष्णता उत्पादक केन्द्रको अवसादित करता है। यह सभव है कि, वच्छनागका असर त्वचापर होनेपर त्वचागत कैशिकाए प्रसारित होती है, जिससे प्रस्वेद वढ़ता है, और फिर त्वचाद्वारा उष्णता बाहर फेंकी जाती है। कभी कभी वच्छनागके हेतुसे त्वचापर विसर्पके सदृश लाली आ जाती है।

वातनाड़ी शूल (Neuralgia) तथा वातनाड़ियां और मासपेशियोंसे सम्बन्धवाली वेदनात्मक क्रिया उपस्थित होनेपर वच्छनागका वाह्य उपचारके साथ उदर सेवन भी कराया जाता है। आक्षेपसह मुखमण्डल की वातनाड़ियों

के शूल (टिकडूलूरे-Tic douloureux) परभी वच्छनाग अच्छा लाभ पहुँचाता है।

वच्छनाग विष विशेषत रक्तगत विष या मलोंको वृक्कोंद्वारा बाहर निकाल देता है, एव त्वचामें रही हुई स्वेद ग्रन्थियों की उत्तेजना करता है, जिससे त्वचा द्वाराभी कितनाक मल बाहर फेंका जाता है। इनके अतिरिक्त वृक, आमाशयके रस और यकृत्के पित्तमें मिल जाता है।

डाक्टर देसाई लिखते हैं कि काला वच्छनाग स्वेदल, मूत्रल, ज्वरहर, पीडाशामक, हृदयावसादक, धमनी (नाडी) अवसादक और शोथहर है। दूधिया वच्छनाग काले वच्छनागकी अपेक्षा अति सौम्य और सेवन करनेमें विशेष योग्य है। उसका लेप त्वचापर करनेसे उस स्थानके स्पर्शज्ञान और वेदना ज्ञान दूर होते हैं।

वच्छनाग मुहसे सेवन करनेपर आमाशयकी वातनाड़िया बधिर हो जाती है। आमरस कम हो जाता है, नाडीके वेग और बल कम होते हैं हृदयको शान्ति मिलती है। स्वेद और पेशाब अधिक होकर शोथ दूर होता है। वच्छनागमें अवसादक, ज्वरहर, और शोथनाशक, ये धर्म उत्तम है; किन्तु यह प्रबल विष है।

वच्छनाग रक्तमें त्वरित प्रवेश करता है, और रक्ताभिसरणपर उसकी अति प्रबल क्रिया होती है। डिजिटेलिसके समान वच्छनाग हृदयपेशीको और हृदयमें जानेवाली वातनाडियोंका उत्तेजक है। प्रारम्भमें वातनाडियोंको अधिक उत्तेजना मिल जानेसे हृदयकी गति मंद होती है। हृदयका विश्राम काल बढता है, फिर रक्तदवाव कम हो जाता है। तत्पश्चात् (मात्रा अधिक हो तो) हृदय अनियमित कार्य करने लगता है, और नाडी बिगड़ती है। औषध मात्रामें नाडीकी गति और बल तथा रक्तका दवाव, ये सब (जो बढ़ गये हों वे) कम होते है। श्वसनकेन्द्रको उत्तेजना मिलनेसे श्वासोच्छ्वास नियमित चलने लगते हैं, परन्तु (मात्रा अधिक होनेपर) श्वासोच्छ्वास क्रिया मंद होती है, घबराहट होती है, तथा वच्छनाग वृक्क और त्वचाद्वारा मूत्र और स्वेदके साथ बाहर निकलता है।

वच्छनागके सेवनसे आमाशयकी वातनाडिया शून्य होती हैं, तथा आमाशय रस और श्लेष्मा कम होते हैं। इस हेतुसे आमाशयके पीडा, दाह और सगर्भाकी वान्ति, इनको बन्द करानेके लिए वच्छनाग दिया जाता है। सगर्भाको वच्छनाग कुछ अधिक मात्रामें दे सकते हैं। अल्प मात्रामें देनेसे आमाशय की पचनक्रिया बढती है।

वच्छनागका विष रक्तमें जल्दी प्रवेश करता है। फिर हृदय, हृदयकेन्द्र,

श्वसनकेन्द्र, त्वचा और वृक्कोंपर त्वरित क्रिया दर्शाता है। वच्छनागसे नाड़ीके वेग और वल कम होते हैं। त्वचा गीली होती है, और पेशावका परिमाण वढ़ जाता है। हृदयपर इसकी अवसादक क्रिया अधिक होती है, जिससे हृदय-स्पन्दन और वल कम हो जाते हैं। नाड़ी शिथिल होती है, श्वासोच्छ्वास क्रिया मंद होती है, अति स्वेद आता है, पेशाव अधिक उतरता है, और वात नाड़िया न्यूनाधिक अशमें वधिर होती है। इन गुणोंके हेतुसे वच्छनागका उपयोग ज्वर और पीड़ाको दूर करने के लिये होता है।

देहमें किसीभी स्थानमें थोड़ा वहुत प्रदाह होनेपर ज्वर आजाता है। उस प्रदाह और ज्वरको दूर करने वाली औषधियोंमें वच्छनाग, पारा, और सूरमा (एन्टीमनी) मुख्य हैं। इन तीनोंको मिला सकते हैं।

वच्छनागमें पीड़ा शामकगुण है, किन्तु वह औषधीय मात्रामें अति सौम्य है। अत वच्छनागके साथ आवश्यकतापर पीड़ाशामक द्रव्य अफीम या धतूरा या खुरासानी अजवायन मिला देना चाहिये।

वच्छनागका शोथघ्न गुण वालकोंमें दृष्टिगोचर होता है, वृद्धोंकेलिये उसका विलकुल उपयोग नहीं होता। वालकके प्रदाहके प्रारम्भमें वच्छनाग देने से आगे वढ़ने वाली अवस्था उत्पन्न नहीं होती। उदा० कण्ठमें शोथ, गालका शोथ श्वासनलिकाका शोथ, फुफ्फुस शोथ, फुफ्फुसावरण शोथ, हृदय शोथ, अन्त्रावरण शोथ इन सव शोथ (Inflammation) तथा नया पूयमेह, कर्ण-पूय, विद्रधि और सन्धिशोथ, आदि रोगोंपर १८ वर्षकी आयु तक वच्छनाग अच्छा कार्य करता है।

वच्छनागकी एक मात्रा देनेसे जो गुण मिलता हो, उसके स्थानपर १ मात्रा का ८ हिस्साकर थोड़े थोड़े समयपर देनेसे गुण अधिक होता है।

वच्छनागकी मात्रा अधिक होनेपर चक्कर आना, शिरदर्द, कण्ठशोष और घवराहट उपस्थित होते हैं। ऐसा होनेपर यह औषध वन्द कर देना चाहिये।

मधुमेह, वहुमूत्र, तन्तुमेह, स्वप्नमें वीर्यस्राव और पेशाव होना, इन रोगोंमें सफेद वच्छनाग वहुत गुणकारी है। उससे पेशाव और शर्कराकी मात्रा दिन प्रतिदिन कम होती है। वह आमवात, वातरक्त आदि रोगोंपर व्यवहृत होता है।

सफेद वच्छनाग उत्तम शोथहर है। अत कण्ठस्थ गांठोंका आशुकारी प्रदाह (कण्ठरुक् Acute Tonsillitis) को जल्दी कम कराता है। रोमान्तिकामें वच्छनाग देनेसे रोमान्तिकाकी पिटिकाएं वाहर निकलती हैं। फिर वालक को त्रास नहीं होता।

नूतन कफ ज्वर और वातप्रधान रोगोंमें वच्छनाग प्रधान ओषधि है। निम्नानुसार औषधियोंको मिश्रित करके उपयोगमें ले सकते हैं।

१ अभिष्यन्दयुक्त—साम ज्वरमें क्विनाईन, कपूर, वच्छनाग।
२ कफज्वर—वच्छनाग, सुरमा, सोरा, नौसादर, अर्कमूलत्वक्, वासास्वरस।
३ प्रादाहिक—वच्छनाग, हिंगुल, सोहागा, दंतीमूल, निर्गुण्डीका स्वरस।
४ वातविकार—वच्छनाग, मैनशिल, धतूरा, पारिजातक रस।
५ अपचनसे ज्वर—वच्छनाग, प्रवाल, जायपत्री, लौंग, भागरेका रस।
(देसाई)

त्वचापर वच्छनाग लेप, मलहम आदिके रूपमें लगानेपर या श्लैष्मिक कला पर सौम्य प्रवाहीरूपसे लगानेपर वहा झनझनाहट और उष्णता उत्पन्न होकर स्पर्शबोध और वेदना दूर होते हैं। इस हेतुसे आमवातकी तीक्ष्ण और जीर्ण अवस्थामें दर्द, वातनाडी शूल (Neuralgia); गृध्रसी शूल (Sciatica), आमवातिक मासपेशियोंकी वेदना (Muscular heumatism) और सन्धि प्रदाहको शमन करनेकेलिये इसके तैलकी मालिशका उपयोग किया जाता है। इस मालिशको नेत्रके पास खूब सम्हालना चाहिये। अन्यथा नेत्रोंको हानि पहुँचाती है।

सूचना—अत्यन्त शारीरिक निर्बलता रक्तदबावकी अति न्यूनता, शिरदर्द मांसपेशियोंकी शिथिलता और दुर्बलता तथा हृदय और फुफ्फुसके रक्त संचालन में व्याघात, ये लक्षण हों तो वच्छनाग मिश्रित औषध नहीं देना चाहिये।

८० वर्षसे अधिक और ४ वर्षसे कम आयुवालेको विष नहीं देना चाहिये। अति आवश्यकता होनेपर सम्हाल पूर्वक देवें। एव क्रोधित, पित्तप्रकृति, नपुसक, राजयक्ष्मापीडित, क्षुधातुर, तृषातुर, श्रमपीडित, मार्ग चलनेसे थका हुआ और सगर्भा, इनमेंसे किसीको विष सेवन नहीं कराना चाहिये।

उपयोग—डाक्टर राधागोविन्दकर लिखते हैं कि "वच्छनाग (मृत्युञ्जय रस) आशुकारी आमवातिक ज्वरकी महोषधि है। इसके द्वारा वेदनाका सत्वर निवारण होता है; और अति शीघ्र आरोग्य लाभ होता है। यह आभ्यन्तरिक और बाह्यप्रयोगमें व्यवहृत होता है। वच्छनाग द्वारा आमवातकी चिकित्सामें विशेष फल यह मिलता है कि, आमवातज हृदावरण प्रदाह प्राय नहीं होता, एवं रोग शमन होनेपर अति शीघ्र सम्पूर्ण आरोग्यकी प्राप्ति होती है। सब सन्धियाँ थोडे ही दिनोंमें स्वाभाविक नमन शील बनजाती है।"

"जीर्ण आमवातमें स्थानिक प्रयोगद्वारा सत्वर लाभ होता है, इसके अतिरिक्त तीव्रावस्थाका शमन होनेपरभी वच्छनाग (गदमुरारि) का आभ्यन्तरिक प्रयोग कर सकते हैं।"

"प्रदाह (Inflammation) और प्रादाहिक ज्वरके दमनार्थ वच्छनाग (आनन्दभैरव, त्रिभुवनकीर्ति, अभ्रकचुकी) के समान अन्य औषध नहीं है।

यह विशुद्ध प्रदाहघ्न औषध है। समयानुसार प्रयोग करनेपर इसका फल अति आश्चर्य कारक मिलता है। बहुत थोड़े समयमें ही प्रदाहका निःसन्देह दमन होता है। प्रदाहके प्रारम्भकालमें ही प्रयोग करनेपर इसका फल उत्तम प्रकाशित होता है। यदि प्रदाहवश यान्त्रिक विधान नष्ट हो गया हो और रस-रक्त आदि घनीभूत हो गये हों, तो उनका प्रतिकार वच्छनागसे नहीं होता। फिरभी वच्छनागसे प्रदाहका दमन होता है, एवं आगे होनेवाली अधिक हानिसे रक्षण होता है।"

"प्रदाह जीर्ण होनेपर रोगी अत्यन्त दुर्बल होता है। विशेषत. यदि हृदय का स्पन्दन क्षीण हो तो सावधानतापूर्वक प्रयोग करना चाहिये। अन्यथा विपत्ति उपस्थित होती है। सामान्य प्रदाह, गलग्रन्थि प्रदाह, कण्ठक्षत, कर्णमूलप्रदाह, उत्कट प्रतिश्याय, स्वरयंत्र प्रदाह, जिसमें मुर्गेकी सी आवाज निकलती है। (Catarrhal Croup) आदिकी प्रथमावस्थामें ही वच्छनागद्वारा चिकित्सा प्रारम्भकी जाय, तो १-२ दिनके भीतर ही रोगका प्रतिकार हो जाता है। यद्यपि घातक कीटाणुजन्य फुफ्फुसप्रदाह, फुफ्फुसावरण प्रदाह विसर्प (Erisipelas) आदि प्रवल रोगोंमें इस तरह सत्वर उपकार नहीं होता। तथापि इसका फल अवश्यही मिलता है। वर्त्तमानमें डाक्टरीमें भी फुफ्फुसावरण प्रदाह (Pleurisy), उदर्य्याकला प्रदाह और गलग्रन्थि प्रदाहपर वच्छनागका विशेष रूपसे उपयोग होरहा है।"

"आमप्रधान नानाप्रकारके ज्वरोंमें वच्छनागका सेवन करानेपर शारीरिक उत्ताप और वेदनाका ह्रास तुरन्त होता है। इस हेतुसे आयुर्वेदने ज्वरोंपर वच्छनागका अत्यधिक उपयोग किया है।"

संक्रामक ज्वरोंकी आक्रमणावस्थामें इसका उपयोग सफलता पूर्वक होता है, किन्तु इसकी सबल क्रिया हृदय और रक्ताभिसरणपर होकर हृदयको हानि न पहुँचजाय, इसबातका सर्वदा सम्हाल रखना चाहिये। अत. मात्रा सर्वदा कम देनी चाहिये।"

"मोतीझरा (Typhoid Fever) और अन्य प्रकारके ज्वरोंपर वच्छनाग (लक्ष्मीनारायणरस, संजीवनीवटी,) अति उपकारक हैं। इन ज्वरोंकी प्रथमावस्थामें ज्वरीय उत्तापको कमकराने और नाड़ीकी तेजगतिका ह्रास कराने एवं शनैः शनैः लीन विषको जलानेकेलिये वच्छनागका प्रयोग कदापि निष्फल नहीं होता। आयुर्वेदमें सविराम ज्वर (Intermittent fever) पर वच्छनाग प्रधान औषध (शीतभंजीरस) का उपयोग होता है। डाक्टरीमें भी जब किनाइन निष्फल जाता है, या रोगीकी अवस्था किनाइन देने योग्य नहीं होती, तब वच्छनागका आश्रय लेते हैं। वच्छनागसे ज्वरीय उत्तापका ह्रास होता है; नाड़ी

मद सबल और पूर्ण होती है, जिह्वा मल रहित बनती है; पचन क्रिया नियमित होती है; शान्त निद्रा आती है, पेशाव बढ जाता है, तथा प्रस्वेद आकर विष बाहर निकल जाता है।"

"सूतिका ज्वरमें वच्छनाग (प्रतापलंकेश्वर) उत्कृष्ट औषध है। योग्य मात्रा में देना चाहिये। मात्रा अधिक हो जायगी तो रक्त सचालन क्षीण हो जायगा (जिससे उपकारके स्थानपर अपकार हो जायगा) यदि नाडी क्षीण या सविराम हो जाय तो वच्छनागका प्रयोग तत्काल बन्द कर देना चाहिये। (ऐसी अवस्थामें सूतिकारि और सूतिकाभरण हितावह है) नाडी क्षीणता और असमता होनेपर यदि न सम्हाला जाय, तो नाडी सूत्रवत् हो जाती है; तथा प्रस्वेद अधिक आकर हाथ पैर शीतल हो जाते हैं। फिर अति निर्बलता उपस्थित होती है।"

"लसीका मेह (पेशावके साथ शुभ्रग्रथिन जाना—Albuminuria) में शारीरिक उत्ताप अधिक हो, तो वच्छनाग (त्रिभुवनकीर्ति) का प्रयोग करना चाहिये एव वृक्कोंके प्रदाहमें भी वच्छनाग लाभदायक है।"

"मस्तिष्कमें विषसग्रह होकर होनेवाला सन्यास (Apoplexy) रोगमें नाडी पूर्ण और प्रबल हो,तो वच्छनाग(सूतराज) उपयोगी होता है। वच्छनागसे रक्त संचयका ह्रास होकर लाभ पहुँचता है। (मधुमेहमें सन्यास हो तो अनुपान रूपसे नारियलका जल देवें। एवं पीनेकेलिए सोडा मिश्रित जल देवें। यकृत के पित्तस्रावकी अधिकतासे उत्पन्न विविध प्रकारके विकार (Biliousness) में वच्छनाग (मृत्युञ्जय आदि ओषधि निसोत आदि पित्त विरेचक औषधके साथ) व्यवहृत होता है।"

"ज्वरसह तमक श्वासमें वच्छनाग द्वारा सतोषजनक फल प्राप्त होता है। रोगी विशेषत शिशु हो, प्रारम्भमें प्रतिश्यायसे पीडित हो, बारम्बार छींकें उपस्थित होती हो, फिर प्रदाह क्रमश विस्तृत होकर श्वासनलिका पर्यन्त फैला हो, एव गलक्षत हो गया हो, तथा रोगकी जीर्णावस्थामें तमक श्वास उपस्थित हुआ हो, और कभी कभी प्रतिश्यायके लक्षण भी उपस्थित होते हों, तो ऐसे तमक श्वासका रोगी आजीवन बार बार प्रतिश्यायसे पीडित होता रहता है। जब प्रतिश्याय होता है, तब ज्वर भी स्पष्ट लक्षित होता है। ऐसी स्थितिमें वच्छनागका प्रयोग करने से प्रदाह और ज्वरका दमन होता है, फिर सरलतासे तमक श्वासका निवारण होता है।"

"तरुण प्रतिश्याय प्रारम्भमें कम मात्रामें वच्छनाग (नागगुटिका, आनन्द भैरव) अमोघ औषध है। प्रतिश्यायके साथ कण्ठ नलिकामें वेदना होनेपर वच्छनागके साथ सूचीबूटी का प्रयोग करना विशेष लाभदायक है। नियमित समयपर वारंवार (Periodic) छींकें आना और प्रतिश्याय होना, इस विकारमें

नासिकाके ऊपर वच्छनाग मिश्रित प्रवाही मलहम (Liniment) की मालिश की जाती है।"

"बालकोंके विसूचिका (Cholera infantum) में ज्वर अधिक हो, बार बार वेदनापूर्वक दस्त होते हों, तो वच्छनाग महोपकारक है। यदि मात्रा अधिक हो जायगी, तो हानि पहुँचेगी; अत कम मात्रामें दिनमें ३-४ बार प्रयोग करें।"

"बालकोंको टीका (Vaccination) निकालनेपर टीका क्षत शुष्क होनेके समयमें क्रमश. समस्त हाथ और वक्षके कितनेक भागतक प्रदाह जनित विसर्प (Erisipelas) उत्पन्न होता है। ये सब स्थान अतिशय वेदना युक्त, कठिन और उज्जवल प्रतीत होता है। एकही समयमें सब स्थान लाल नहीं होते, एक स्थानमें आरोग्य होनेपर दूसरा स्थान, दूसरे स्थानमें लाभ होनेपर तीसरा स्थान विसर्प ग्रस्त होता है। इस तरह पैरतक भी विसर्प होता है। कभी क्षुद्र स्फोटक होकर आरोग्य होता है। ऐसे स्थानपर वच्छनागद्वारा प्रदाहका दमन होकर उपकार होता है।"

"युवा मनुष्यको टीका निकालनेसे प्रदाह हुआ हो, तो वच्छनागका उदर-सेवन और सूची बूटी (वेलोडोना) का स्थानिक प्रयोग विशेष फलप्रद होता है।"

"मासिक धर्म कष्ट पूर्वक आने और ज्वर सहवर्ति होनेपर वच्छनाग (अश्व-कचुंकी) थोड़ी मात्रामें दिनमें दो बार देना महोपकारक है। शीतलता आदि हेतुसे सहसा रजका संग्रह हुआ हो, तो वच्छनाग देनेसे रजो निःसरण योग्य होता है। एवं शीतलताके आघातसे ज्वररोगमे द्रुताक्षेप हुआ हो, तो अल्पमात्रा में वच्छनाग देनेसे उपकार होता है।"

"कर्ण प्रदाह (Otitis) जनित वेदनाको शमन करनेकेलिये वच्छनागका प्रयोग किया जाता है। बाहर शोथ हो, तो बाहर लेप किया जाता है, एव उदरसेवन भी कराया जाता है।"

"पूयमेहकी प्रबलावस्था, तीव्र मूत्राशयप्रदाह और मूत्रनलिकाके सकोचका निवारण करनेकेलिये वच्छनाग (त्रिभुवनकीर्ति) थोड़ी मात्रामें २ बार देना चाहिये।"

"चोट लगनेपर वहाँ वच्छनागके अर्कका स्थानिक लेप करनेसे विलक्षण लाभ पहुँचता है।"

"वातनाड़ियोंके शूलमें यह विशेष उपकार दर्शाता है। इस रोगमे पहले स्थानिक प्रयोग करना चाहिये. अर्थात् वेदनास्थानपर विषगर्भ तैलका मर्दन करना चाहिये। उतनेसे उपकार न होनेपर महावातविध्वंसनका आभ्यन्तरिक

प्रयोग भी करना चाहिये। मुखमण्डल और भ्रूप्रदेशमें वातजशूलपर इसकेद्वारा विशेष उपकार पाया गया है।"

"अर्धावभेदक (Sick-headache or Migraine) होनेपर निश्चित समय पर शिरमें बारबार एक ओर दर्द होता है, साथमें प्रतिश्याय वमन और वात-वेदना उपस्थित होते हैं, इसपर १ रत्ती गांजा या भांगके साथ वच्छनाग (त्रिभुवनकीर्ति या सूतराज) का प्रयोग करनेपर विलक्षण उपकार होता है।"

"धनुर्वातमें वच्छनाग (कालकूट) पूर्णमात्रामें बार बार देनेसे मास पेशियों की उग्रताका दमन होकर वे शिथिल बनती हैं और रोग शमन होजाता है। हृदयके अति स्पन्दन दमनार्थ यह महौषध है। जिन जिन अवस्थाओंमें डिजिटेलिस व्यवहृत होता है, उन उन अवस्थाओंमें वच्छनाग विधेय है अर्थात् हृत्पिण्डमेंसे रक्तनिःसरणमें प्रतिबन्ध होने और हृत्स्पन्दन अधिक कम हो जानेपर डिजिटेलिसके समान वच्छनागभी निषिद्ध है। यदि हृदयके अलिन्द निलय खण्डोंके प्रवेश और निर्गमनद्वारोंमें कुछ विकृति न हो, केवल हृदयपेशी की स्थूलता या हृदय खण्डके प्रसारणके हेतुसे हृत्स्पन्दन बढ़े हों किसी प्रकार की वैधानिक विकृति न हो तो वच्छनागद्वारा विशेष उपकारक होता है। यह डिजिटेलिसकी अपेक्षा विशुद्ध अवसादक है। एव इसके प्रयोगमें डिजिटेलिस के समान विपत्तिकी भीति भी नहीं है।

'हृदयावरण प्रदाह (Pericanditis) रोगमें अत्यन्त घबराहट और अत्यधिक वेदना होनेपर वच्छनागद्वारा आशु उपकार होता है। एवं मस्तिष्क, फुफ्फुस, श्वासनलिका आदि यान्त्रिक प्रदाह और ज्वर रोगमें हृत्स्पन्दन और नाडी वेगके लाघवार्थ वच्छनागका प्रयोग किया जाता है। एवं विविध प्रकारके रक्तस्राव और रक्तसञ्चालनमें वेगाधिक्य होनेपर वच्छनाग वेगका ह्रास करके उपकार दर्शाता है।" (स्व० डा० राधागोविन्दकर के आधार से)

रसायन सेवन—रसायन रूपसे विषका सेवन करना हो, तो पहले एक सप्ताह तक एक तिल जितना सेवन करें। फिर प्रति सप्ताह १ तिल जितना बढ़ाते रहें, इस तरह ३ सप्ताह तक बढावें। फिर ३ तिल परिमाण लेते रहें। फिर आगे न बढावें। इस तरह सात सप्ताहतक सेवन करनेपर छोडनेके समय विपरीत क्रमसे १-१ तिल कमकरके त्याग करें। इसे विष कल्प कहते हैं। इस कल्पके सेवन से सब प्रकारके रोगोंका नाश होकर देह दृढ बन जाती है।

विषप्रकोप—यदि प्रमादवश मात्रासे अधिक विषका सेवन किया जाय, तो उसे निम्नानुसार ८ वेगोंकी प्राप्ति होकर मृत्यु हो जाती है। पहले वेगमें कम्प, दूसरे वेगमें कम्पकी अधिकता (आक्षेप) तीसरे वेगकी प्राप्ति होनेपर दाह, चतुर्थ वेग उत्पन्न होनेपर पतन, पाचवें वेगमें मुँहमें झाग आना, छठेंमें विक-

लता, सातवे वेगकी प्राप्ति हो, तो मूर्च्छा और फिर आठवीं वेगकी प्राप्ति होने पर मृत्यु हो जाती है। अत इन विषवेगोंको जान आठवें वेगकी प्राप्ति होनेके पहले औषधि प्रयोगद्वारा विषका निवारण करना चाहिये।

(१) वच्छनागके विष प्रकोपमें वमन कराना चाहिये। बकरीका दूध उतना पिलावें कि, वान्ति होजाय। फिर बकरीका दूध जब उदरमें स्थिर रहे, तब समझ लें कि, विष उतर गया।

(२) हल्दी पिलाकर चौलाईका रस पिलावें। अथवा निर्विषी (जदवार खताई) को दूधके साथ देवें।

(३) वन्ध्या कर्कोटकीके कंदको गोघृतके साथ सेवन करानेपर विष और गरलका नाश होता है।

(४) अति मात्रा होनेपर सोहागेका फूला १-१ माशा घृतमें मिलाकर २-२ घण्टे पर पान करानेसे विष वेगोंसह निश्चित् नाश हो जाता है।

(५) कपूरको जलमें मिलाकर पिलानेसे विष नष्ट हो जाता है।

(६) वच्छनागकी विषमात्राका सेवन किया हो तो नव्यमतानुसार विष यदि आमाशयमें हो, तो तुरन्त स्टमक पम्प द्वारा निकाल लेना चाहिये। फिर हृदय पौष्टिक और उत्तेजक ओषधि देनी चाहिये। शराब, कॉफी, रससिन्दूर, चन्द्रोदय आदिसे जीवनीय शक्तिकी रक्षा करनी चाहिये। हृदयकी क्रियाकी शिथिलता जिस तरह दूर हो, उस तरह उपचार करना चाहिये।

विष अन्त्रमें चला गया हो, तो एरण्ड तैल देना चाहिये। अफीमभी हित-कर है। पहले वस्तिसे अन्त्रको साफ कर फिर अफीम पिचकारी द्वारा गुदासे चढाया जाता है। श्वासावरोध हो गया हो, तो कृत्रिम श्वासद्वारा श्वास-गतिको उत्तेजना देना चाहिये। हाथ पैर शीतल हो तो हाथ, पैर और उदरपर राईकी पट्टी लगानी चाहिये।

वार बार हाथ ऊंचे उठाते रहने और फैलाते रहनेसे भी श्वास चलने लगता है। विद्युत् चिकित्सा करनेपर हृदयको जल्दी लाभ पहुँचाता है।

विष सेवनमें पथ्यापथ्य—विष सेवन करने वालोंकेलिये दूध, घी, मिश्री, शहद, गेहूँ, चावल, काली मिर्च, सैंधानमक, द्राक्षा, मधुर और शीतल पानक, ब्रह्मचर्य, शीतल देश, शीतकाल और शीतल जल आदि पथ्य हैं। इनमें से कोई वस्तु रोगके हेतुसे अपथ्य हो, या स्वभाव विरुद्ध हो, तो उसका त्याग करना चाहिये। रसायनरूपसे सेवन ग्रीष्मऋतु, वर्षाऋतु और दुर्दिनमें नहीं करना चाहिये। एव मारक व्याधि हो, तो भी प्रयोग नहीं करना चाहिये।

विष सेवनका पूर्ण कल्प हो जानेपर भी सर्वदा पथ्य पदार्थोंका ही सेवन करना चाहिये। अति चरपरे, अति खट्टे, अति नमकीन और तैल आदिका

सेवन, दिनमे शयन, तथा अग्नि और सूर्यके तापका सेवन, इन सबका आग्रह-पूर्वक परित्याग करना चाहिये।

विष सेवन कालमे रूक्ष पदार्थोंका सेवन नहीं करना चाहिये। अन्यथा दृग् विभ्रम (नेत्रविकार). कर्णरोग और वातप्रकोपज व्याधिया उपस्थित होती हैं।

यदि अजीर्ण पीडितको रसायन रूपमे विष दिया जायगा, तो उसकी नि सदेह मृत्यु हो जायगी।

(२१) वच्छनाग दूधिया।

स० वत्सनाभ। हि० सफेदवच्छनाग दूधिया वच्छनाग,। म० पाढरा वच्छनाग पं० दूधियाविष, मोहरी. पियुम। काश्मीर वनवलनाग। लै० Aconitum Chasmanthum

परिचय—यह ए० नेपेलसकी उपजाति है। द्विवर्षायुक्षुप। पुत्रीकंद शुण्डाकार या शुण्डाकारनलिकाकार. १ से २ इञ्च लम्बा. भीतरमें गहरा भूरा या काला भूरा। स्वाद किञ्चित् कडवा फिर जिह्वापर अति झनझनाहट। तना सीधा २ से ४ फीट ऊचा। पुष्पाधार। (Inflorescens) लगभग १०-१२ इञ्च लम्बी। पुष्पके बाह्यकोषका पत्र नीला या सफेद नीला।

यह जाति पश्चिम हिमालयमें, आलपाइनके समीपका प्रदेश, चित्रल और हजारासे काश्मीरतक, ७००० से १२००० फीटकी ऊचाईपर होती है। डाक्टरी में प्रयुक्त होनेवाले ए० नेपेलस तथा इस जातिके मुख्य द्रव्यको इण्डे-कोनीटाइन (Indaconitine) कहते हैं। यह विष द्रव्य काले वच्छनागके विषद्रव्यकी अपेक्षा कम प्रभाववाला है।

गुणधर्म—डाक्टर मुहीन शरीफ लिखते हैं कि कुछ वर्ष पहले मैंने स्वयं इस दूधिया वच्छनागको थोडीमात्रामें सेवन किया है। मैं यह निश्चित कह सकता हूँ कि, इस वच्छनागका प्रयोग इतना हानिकर नहीं है, जितना यूरोपीय वच्छनागका। यह भारतकी अत्यन्त उपयोगी औषधियों में से एक है। इसके सेवनसे मधुमेहमें अच्छा लाभ पहुँचता है। जिस दिनसे इसका प्रयोग आरंभ किया जाता है, उसी दिनसे मूत्रोत्पत्तिपर अकुश आजाता है और शक्करकी उत्पत्तिभी कम होने लगती है। अनैच्छिक वीर्यस्राव और मूत्रके एक एक बूंद टपकनेपर इसका बहुतही अच्छा प्रभाव पडता है।

औषधगुणधर्मशास्त्र मे श्री प० गुणेशास्त्री लिखते हैं कि,आनन्दभैरवरसमें काले वच्छनागके स्थानपर सफेद वच्छनाग मिलाया जाय, तो उदकमेह,पिष्टमेह शनैर्मेह आदिकफज प्रमेहोंपर अच्छालाभ पहुँचता है।

गुणधर्म और उपयोग—विशेष वर्णन काले वच्छनागमें देखें। यह काले वच्छनागकी अपेक्षा बहुत कम विषवाला है।

(२२) वड़ ।

सं० वट, रक्तफल, न्यग्रोध, वहुपादो, क्षीरी, स्कन्धरुहो । हिं० वड़, वगद, वरगद । व० वहगाछ । म० गु० वड । फा० दरख्त रेशा, वडवाई । अ० जातुजायव । क० आलदगोली । ते० भाण्डीरामु, मर्री, मट्टी, वटी । मला० आल, पेरल, वटम् । ता० आल कडावम, वडम् । तुलु-गोली । गोंड वेरली । कुमा० वरगत । लेपचा काजी । मुंदारी वरीदारु । सरहद्-कुर्कु, वोरा अं० Banyan tree ले० Ficus Bengalensis

परिचय—अति घेरेवाला और वडी आयुवाला क्षीरी वृक्ष । ऊंचाई ७० से १०० फीट । शाखा, प्रशाखाएं असख्य, चारों ओर फैली हुई । शाखाओं से तन्तु निकलकर जमीनमें मूल रूपसे लगजाना । पान मोटे, कोमल होनेपर रक्ताभ, फिर हरे, ४ से ८ इञ्च लम्वे, २ से ५ इञ्च चौड़े, पिछली ओर नसके ४-५ जोड़े वाले । डण्ठल १ से २ इञ्च लम्वा । उपपान ।।। से १ इञ्च लम्वे, पहले हरे फिर रक्ताभ, जल्दी गिरजाने वाले । पुष्पकर्णिका (पुष्पाधार) जिनको अपन फल कहते हैं, पत्र कोणमें से निकलते हैं, दो दो कर्णिका पास पास, आधसे १ इञ्च लम्वी, उतनी ही चौड़ी, पहले हरी भूरी, फिर पकनेपर लाल । कर्णिकाके तलेमें ३ इञ्च चौड़े, हलके पीले, पुष्पपत्र । नर-मादाफूल कर्णिकाके भीतर । कर्णिका (फल) के मुखको खोलकर अणुवीक्षण यन्त्रसे देखनेपर ऊपर नरफूल, नीचे मादाफूल और असंख्य अण्डे प्रतीत होते हैं ।

मूल मोटे, लम्वे और कठिन । मूलकी छाल रक्ताभ, दृढ, स्वादमें कसैली । शाखा पान आदि तोडनेपर दूध निकलता है । औषधरूपसे दूध और सर्वाङ्ग उपयोगी । उत्पत्ति भारतमें सर्वत्र । वसन्त ऋतुके पश्चात् नये पान आते हैं । फलपाक वर्षमें २ वार ।

गुणधर्म—रसमें कसैला, अनुरस मधुर, शीतवीर्य, कफपित्त नाशक, रुक्ष, ग्राही और गुरु है । तृषा, वमन, मूर्च्छा, रक्तपित्त, ज्वर, दाह, प्रमेह, व्रण, शोथ, त्रिसर्प और योनिरोगका नाश करता है ।

डाक्टर देसाईके मत अनुसार दूध वेदनास्थापन और व्रणरोपण । सूखे पान स्वेदजनन, कोमलपान श्लेष्महर । छाल स्तम्भन (ग्राही)

मात्रा—पचाग चूर्ण २ से ४ माशे, दूध २ से ८ रत्ती ।

उपयोग—वडका उपयोग आयुर्वेद में प्राचीनकालसे हो रहा है । चरकसंहितामें मूत्रसंग्रहण दशेमानि, कपाय स्कन्ध और गर्भस्थापन विधि में उल्लेख किया है । सुश्रुतने न्यग्रोधादि गणमें वडको लिया है । प्राचीन ग्रन्थोंमें वड़, पीपल (अश्वत्थ), गूलर पारसपीपल और पाखर, इन ५ वृक्षों की छालको पंच वल्कल कहा है । छाल कषैली, शीतवीर्य, दाह-तृपाहर, शोथहर, कफघ्न,

वर्णकारक और कफहर है। एव भग्नास्थियोजक, व्रणसन्धानक और विसर्पनाशक है। इसका क्वाथ मूत्रकृच्छ्र और मूत्रदाह में पिलाया जाता है। योनिमें व्रण होतो पचवल्कलसे सिद्ध किये हुए तैलका फोहा रक्खा जाता है। ग्च दुष्ट प्रदर आदि रोगोंमें पञ्चवल्कलके क्वाथकी उत्तर वस्ति दी जाती है।

विविध प्रकारके प्रमेह और मधुमेहमें क्वाथ पिलाया जाता है। मुखपाकमें इसके क्वाथसे कुल्ले कराये जाते हैं। दात हिलनेपर वडकी जटाको ऊपरमे अच्छी तरह धो (दूधको दूरकर) दर्तौन कराया जाता है।

इसके पक्के पानोंको जलावें धुआ निकल जानेपर ऊपर वर्तन ढकदेनेसे काले कोयले हो जायेगें। उसे तपाये हुए घी और मोममें मिलाकर मलहम वनालेवें। यह जखमपर लगानेसे जखम भरजाता है। निघण्टु रत्नाकरमें इस मलहमको अर्शके मस्सेको नष्ट करनेमें हितावह माना है।

डाक्टर देसाई लिखते हैं कि, "किसानोंके हाथ पैर वर्षा ऋतुमें फटजाने पर वे उस स्थानमें वडका दूध भर देते हैं। सडे हुए दातमें दूध भर देनेसे वेदना कम होजाती है। कमरके दर्द और साधाओंकी वेदनापर वड़के दूधका लेप किया जाता है।"

"ज्वरमें प्रस्वेद आनेकेलिये वडके गिरेहुए ताजे पान ३-४ को काली मिर्च के साथ चावलोंमें या लाहीकी यवागूमें उबालकर पिलाई जाती है।"

"वहूमूत्रमें मूलकी छालका क्वाथ,मधुमेहीको फल,तथा सुजाकमें कोमल अकुरोंका रस दूधके साथ एव कोमल वरोहका क्वाथभी पिलाया जाता है।"

१ रक्तातिसार—दस्तके साथ, दस्तके पहले या दस्तके वाद रक्तस्राव होनेपर वडके कोमल अकुर २ तोलेको पीस, रात्रिको जलमें भिगोदेवें। दूसरे दिन जलको गरमकर उसमें घी पका लेवें। इस घीमें शक्कर और शहद मिलाकर चटानेसे रक्तस्राव वन्द हो जाता है। यह रक्तप्रदरमें भी हितावह है। या अंकुरों को पीस वकरीका दूध और जलमिलाकर दुग्धावशेष क्वाथकरके पिलानेसे रक्तातिसार, रक्तपित्त और रक्तार्शका शमन हो जाता है।

२- अतिसार— वडके कोमल पान खिलाने अथवा अकुरोंको जलमें पीस छानकर पिला ऊपर मठ्ठा पिलानेसे अन्त्रकी उग्रता शमनहोकर पक्व अतिसार वन्द हो जाता है।

३ श्वेतप्रदर—वड़के छाल १-१ तोलेका क्वाथ १॥-१॥ माशे लोद और शहदके साथ दिनमे २ वार देते रहनेसे थोडे ही दिनोंमें लाभ हो जाता है।

४ जखम—जखमकेलिये वड़का दूध उत्तम सकोचक ओषधि है। जखम को साफ कर दूध भर देनेसे जल्दी अच्छा हो जाता है।

५ दुष्ट व्रण—व्रणमें कीडे होगयेहों और दुर्गन्ध आती हो तो, बड़की

छालके क्वाथसे रोज धोते रहें और दिनमें ३ बार उसमें वडके दूधके थोड़े थोड़े बूंद डालते रहनेसे कृमि मरजाते हैं और फिर व्रण मिट जाता है ।

६ रसार्बुद—कूठ और सेंधानमकको वड़के दूधमें मिलाकर रसौलीपर लगावें और ऊपर वडकी छालका टुकड़ा बांधे। इस तरह दिनमें २ बार ७ दिन तक करनेसे वढी हुई रसौलीभी दूर हो जाती है ।

७ व्यंग—मुंहपर कालेदाग होजानेपर वड़की जटा और मसूरकी दाल को दूधमें पीसकर सुवह रात्रिको लगाते रहनेसे कुछ दिनोंमें मुंह तेजस्वी वन जाता है।

८ गर्भधारण—पुष्य नक्षत्र और शुक्लपक्षमें लाये हुए वड़के अंकुरोंका चूर्ण ६-६ माशे वंध्या स्त्रीको रजस्वला होनेपर प्रात: कालको जलके साथ ४-६ दिनतक देते रहें, तो अवश्य गर्भधारण हो जाता है ।

९ शुक्रकापतलापन—वड़का दूध वतासेमें भर रोज सुवह १५-२० दिन तक खिलोनेसे वीर्य गाढ़ा बन जाता है। शीघ्रपतन, पेशाबमें जलन, सुजाक, इन सवपर यह लाभ पहुँचाता है। श्वास-कासमें भी यह दूध हितावह है । यह मस्तिष्क और हृदयको हितावह है ।

१० वमन—वड़के अंकुरोंको जलमें पीस छानकर पिलानेसे या अंकुरोंकी राख २-२ माशे खिलाने पर वमन वन्द होजातीहै। रक्तवमनमें भी यह हितावह है।

११ हाथपैर फटना—वड़का दूध भर देनेसे विवाई अच्छी होजाती है ।

१२. मोतियाविन्दु—मोतियाविन्दुकी प्रथमावस्थामें वड़का दूध २-२ बूंद २ मास तक डालते रहनेसे लाभ पहुँच जाता है, ऐसा कितनेक चिकित्सकों का अनुभव है।

(२३) बथुवा ।

सं० वास्तूक। हिल मोचिका शाकराज। हिं० वथुवा, बथुआ। बं० वेतुवा वेतोशाक। म० चाकवत। गु० टांको, चीलनी भाजी। फा० मुसल्मा, सरमक। क० चक्रवर्ती।

ले० Chenopodium Album

परिचय—चेनोपोडियम=हंसके पैरके समान जिसके पान है ऐसी वनस्पति जाति। यह क्षुप भारतके अनेक प्रान्तोंमें नैसर्गिक उत्पन्न होते हैं । ऊंचाई २ से ४ फीट। विशेष स्थानमें १० फीट तक। तना धारीदार, हरा, लाल या वैंजनी, भीतरसे सफेद। पान ४ से ६ इञ्च लम्बे। कितनेक स्थानोंमें बारहों मास। विशेषतः शीतकालमें उत्पन्न होता है। यह साग जिस जमीनमें होता है, वहाँके क्षार का शोषण कर लेता है । क्षुपमेंसे प्रकृति निदर्शक विशेष प्रकारकी गंध आती रहती है।

गुणधर्म—वथुआ मधुर, शीतल, क्षारयुक्त, विपाक चरपरा, कृमिघ्न, अग्निप्रदीपक, रुचिकर, सारक, शुक्रवर्द्धक और बलप्रद । प्लीहा, रक्तपित्त, अर्श, कृमि, और तीनों दोषोंका नाशक है।

उपयोग—वथुआका उपयोग आयुर्वेदमें प्राचीन कालसे होरहा है । चरक संहिता और सुश्रुत संहितामें इसका उल्लेख है। एवं अर्श, प्रवाहिका, शुष्क-कास, ऊरुस्तम्भ, रक्तपित्त, स्थानिक दाह और जीर्ण अपचन आदि रोगों पर प्रयुक्त हुआ है । इन सब रोगोंसे पीडितोंको वथुएका साग पथ्य माना गया है।

(२४) वनफशा

स० कामपुष्प सुक्ष्म पत्र, नील पुष्प । गु० म० फा० वनफ्शाह । कुमा० थुगट्टु । व० वनोसा । क० गुन्नफचा नूनपोश । ले० (1) Viola Serpens, (2) V Odorata

परिचय—ओडोरेटासुगन्धयुक्त यह क्षुप हिमालयके शीतल स्थानोंमें होता है। पत्ते अण्डाकार हृदयाकार, नुकीले, कंगुरीदार (दांतेदार)। फूल बैंजनी नीले, क्वचित् सफेद। इसमें छोटी डोंडी भी लगती है। पञ्चाङ्ग और फूल, दोनों औषधि रूपसे काममें आते हैं। दोनों जातियोंके गुण लगभग समान हैं और सुगन्ध ओडोरेटामें अधिक है।

उत्पत्ति स्थान—काश्मीर, उत्तर पश्चिम एशिया, उत्तर आफ्रीका और यूरोप।

वक्तव्य—इसकी तीसरी जाति पंजावमें होती है। उसे वायोला सिनेरिया (Viola Cinerea) संज्ञा दी है। इसका विशेष उपयोग पंजाव और सिन्धमें होता है।

मात्रा—पंचांगके चूर्णकी मात्रा १ से १॥ माशे कफघ्न और स्वेदल रूप से। रक्तस्राव वन्द करनेकेलिये २ से ४ माशे। वमनकेलिये मूलका चूर्ण ३ से ४ माशे।

गुण धर्म—इसका पंचांग स्निग्ध, शीतल, नियत कालिक ज्वर प्रतिवन्धक और रक्तस्रावरोधक। कास, श्वास और त्रिदोष प्रकोपमें व्यवहृत होता है। फूल शीतल, स्नेहन, कफघ्न और किंचित् सारक।

मूलमें विरेचन गुण है। ज्वर शमनमें हितकर है। कफ स्रावी, पौष्टिक स्वेदजनन, तृषाशामक और प्रदाह हर है। उवालनेपर इसमेंसे कितनेक द्रव्य उड़ जाते हैं। इसके तैलका उपयोग उदरपीडा और कासपर होता है। यह मस्तिष्कपर शामक असर पहुँचाता है। मूलमें प्रवल वान्तिकर द्रव्य है। ३ से ४ मूलका चूर्ण देनेपर वमन होजाती है।

बनफशा स्निग्ध और शीतल है। इसका क्वाथ ज्वर और अपस्मारको दूर करता है। एवं मुलहठीके साथ मिलाकर लेप करनेसे शोथ दूर होता है।

बनफशा पुष्प शीतल, स्नेहन, कफघ्न और किंचित् सारक है। मूल एक ड्राम मात्रामें वामक और कुछ विरेचन है। पचाग स्वेदल, ज्वरघ्न, शीतल, श्लेष्मनि:सारक, वामक और किंचित् विरेचन है। यह ओषधि वमनकेलिये देने पर बहुत जमुहाई आती है। एवं वान्ति होने के पश्चात् विरेचन भी होता है। वमनकेलिए यह औषधि कनिष्ट कोटिकी है। इसमें रक्तस्राव बन्द करने का धर्म स्पष्ट है।

यह यूरोपमे घरेलू ओषधि रूपसे प्रयोजित होता है। रोमन लोग इसमे से शराब और शर्बत भी बनाते हैं। फ्रांसमें यह घरेलू औषध रूपसे प्रयोजित होता है। जर्मनी. स्विटजरलैंड और आस्ट्रियाकी फार्मा कोपियामे बनफशा को स्थान मिला है।

यूनानी वैद्यकमें यह ओषधि अति प्रसिद्ध है। ईरान और अरबस्थानमे इसके फूलोंके शर्बत और गुलकन्द बनाते हैं। शर्बत पुराना होनेपर खट्टा हो जाता है। पुष्पोंका शर्बत कफप्रकोप, क्षय, कास, क्षतकास, श्वास, स्वरभंग मूत्र रोग और जीर्ण ज्वरपर दिया जाता है।

अर्क सन्धिवात और कफकी ओषधि रूपसे प्रयोजित होता है। एव वह स्वादिष्ट और सुगन्धित होनेसे मिठाई और अन्य भोजनके पदार्थोंमें मिलाया जाता है।

पुष्पोंमेंसे शक्कर मिलती है, वह क्षय रोगपर लाभदायक है।

पुष्प योनिभ्रंश और गुद भ्रंशमें अति उपयोगी है उस स्थानको सबल और संकुचित बनाते हैं। घातक अर्बुद या कर्कस्फोटपर जगल में उत्पन्न बन-फशा हितावह है। यह यूरोपमें प्रयोग करके निश्चित किया गया है। इसके बीज विष नाशक हैं। विच्छूके विषमें हितकर है।

यूनानी वैद्यकमें बनफशाको पहले दर्जेका गर्म और दूसरे दर्जेका खुश्क कहा है। इसके दर्पघ्न रब्बुलसूस, गुलाब पुष्प और विही हैं। प्रतिनिधि नीलो-फर और खुब्बाजी हैं। यह खासकर आमाशय और अन्त्रमें रहे हुये कफ और आम दोषको दस्तके साथ सरलतासे बाहर निकालता है। हृदय और कण्ठ को बल प्रदान करता है। प्यासको शान्त करता है। रक्तकी उष्णताको शमन करता है। वृक्कोंके शोथको दूर करता है। कासको शमन करता है, और शान्त निद्रा लाता है। अधिक सेवन करनेपर हृदयको हानि पहुँचाता है; और बैचेनी लाता है।

मात्रा—पचागका चूर्ण ५ से १० रत्ती स्वेदल और कफघ्न गुणकेलिये

रक्तस्राव बन्द करनेकेलिये १५ से ३० रत्ती, वमन करानेकेलिये मूल का चूर्ण २० से २५ रत्ती।

काम पुष्प औषध कल्प—

(१) फाण्ट—बनफशा २ औंसको २० औंस उबलते हुये जलमें भिगोकर ढक देवें। आध घण्टे बाद छान लेवें। मात्रा १ से २ औंस। यह स्वेदल और कफ निःसारक है।

(२) अर्क—बनफशा को ८ गुने गरम जलमें रात्रिको भिगो देवें। दूसरे दिन अर्क खींच लेवें। मात्रा १ से २ औंस। जीर्ण ज्वर और मधुरादि मुद्दती ज्वरोंमें हितावह।

(३) शर्बत—(अ) ४० तोले बनफशाको ८ गुने जलमें रात्रिको भिगोवें। दूसरे दिन चूल्हे पर चढाकर अष्टमाश क्वाथ करें। फिर गाढ़े कपडेमें डाल कर लटका देवें। दबाकर न निचोडें। जो जल टपके उसमें २ सेर शक्कर मिलाकर शर्बत बना लेवें। यह पित्त ज्वरमें अति हितावह है। (सि० भे० म०)

(आ) ताजे पुष्प १ पौण्डको उबलते हुए २॥ पौण्ड जलमें २४ घण्टे भिगो देवें। फिर कपड़ेसे छानकर जल निकाल लेवें। दबाकर न निचोडें। उसमें ७ पौण्ड शक्कर मिलाकर शर्बत बनालेवें। मात्रा १ से ४ ड्राम। यह बालकोंको उदरशुद्धिकेलिये गर्मीके दिनोंमें देते हैं। इस शर्बतका रंग, स्वाद और सुगन्ध मनोहर है। (डॉ० वा० दे०)

बनफशा शर्बतका उपयोग सूरतके सद्गत वैद्यराज त्रिलोकचन्दजीने अनेकबार गर्भाशयशुद्धिकेलिये किया है, उपदंश विष या अन्य हेतुसे गर्भाशय दूषित होनेपर इसका सेवन उपयोगी है, स्त्री सगर्भा हो, तो भी उसे दे सकते हैं। सगर्भास्त्रीको तीसरे पाचवें और सातवें मासमें आध आध औंस प्रतिदिन एक बार या कममात्रामें दो बार प्रात सायं जलके साथ देते रहने से गर्भाशयकी उष्णता और विष नष्ट होते हैं फिर संतान नीरोग जन्मता है। हमने भी अनेक बार इसे प्रयुक्त किया है, २ मास तक चले, इतना बनाना चाहिए, क्योंकि दीर्घकाल तक नहीं टिकता।

(४) बनफशादि क्वाथ—बनफशा १ तोला। सौंफ १ तोला, सौंठ ६ माशे और सनाय ६ माशेको १६ तोले जलमें ढक्कन ढककर मंदाग्निपर उबालें। जल ८ तोले शेष रहनेपर छान लेवें। फिर १ तोला शक्कर मिला कर पिला देवें; और रोगीको गरम कपड़ा ओढा देवें। जिससे १ घण्टेमें प्रस्वेद आकर बढा हुआ ज्वर कम होजाता है, तथा शौच आकर उदरशुद्धि भी होजाती है। यदि प्यास लगे, तो निवाया जल पिलावें। शीतल जल न देवें।

उदर क्रूर हो, या अधिक मलावरोध हो, तो सनाय १ तोला मिलावें। अथवा छने हुए क्वाथमें अमलतासका गूदा १ तोला मिलाकर पुनः छान लेवें। फिर शक्कर मिलाकर पिलावें। कोई कोई इस क्वाथमें हरड़ मिलाते हैं। वह लाभदायक नहीं माना जायेगा। हरड पाचन गुणवाली होनेसे ज्वरावस्थामें नहीं दी जाती। हरड़ मिलानेसे कुछ विष प्लीहा और रक्तमें प्रवेशित हो जायगा।

उपयोग—भूतकालमें आयुर्वेदने वनफशाका उपयोग किस नामसे किया है, यह निर्णित नहीं होता। यूनानीमें इसका उपयोग अत्यधिक होरहा है। यह यूनानीकी अति प्रसिद्ध ओषधि है। गर्मीके दिनोंमें लू न लगनेकेलिये इसका गुलकन्द सेवन किया जाता है। गुलकन्द विशेषत ईरान और अरब-स्थानसे आता है, किन्तु यह लम्बे समयतक नहीं टिकता। शर्बतका उपयोग कफप्रकोप, क्षय, कास, क्षतकास, श्वास, स्वरभंग, मूत्ररोग और जीर्णज्वरपर होता है।

१ नयाविषमज्वर—उदरशुद्धि और आमको पचन करानेकेलिये वनफशादि क्वाथका सेवन दिनमें १ या २ वार करावें।

२. रक्तबन्द होनेकेलिये—इसके पंचागका क्वाथ द्राक्षासवके साथ देनेसे अत्यार्त्तव, रक्तार्श और अन्य प्रकारके रक्तस्रावपर लाभ पहुँचता है।

३ प्रतिश्याय जनितज्वर—जुखाम, हाथ पैर टूटना, कण्ठमें वेदना और ज्वर होनेपर इसके फाण्टके साथ कलमीसोरा दिया जाता है। चाहे रोग नया हो या पुराना, कफ गाढा हो या पतला, सबपर वनफशा फाण्ट हितकारक है; अथवा वनफशा, सैधानमक, पीपल (या अन्य सुगन्धित पदार्थ) और शहद मिलाकर देवें, दिनमें दो या ३ वार।

४. प्रवाहिका—वनफशाका अर्क पूर्ण मात्रामें देनेसे लाभ पहुँचता है। मात्रा पूर्ण होनेसे उबासी आती है और थकावट मालूम पड़ती है। इस हेतु से रोगीको आराम करनेका कहें। वनफशाके साथ किञ्चित् अफीम देनी चाहिये। (डा० वा० दे०)

५ नयाप्रतिश्याय—रोगीको रात्रिमें भोजन न देवें। सोनेके समय दूधमें बनफशा और कालीमिर्च मिला गरम करें। फिर निवाया पिला देनेसे जुखाम दूर होता है, या चायके साथ बनफशा, तुलसी और कालीमिर्च मिला-कर पिलानेसे भी हो जाता है।

६. विद्रधि Abcess—बनफशाका उदरसेवनके साथ बाह्यलेप रूपसे भी उपयोग किया जाता है इससे फौडा मिट नहीं सकता; किन्तु वेदना और

स्राव कम होते हैं। विद्रधि धोनेकेलिये वनफशा पंचाग और पतंग (रक्तकाष्ठ) का क्वाथ बना लेना चाहिये। इसका डाक्टर देसाईने अनेक वार अनुभव किया है।

(२५) वरना ।

स० वरुण, श्वेतपुष्प, तिक्त शाक, अश्मरीघ्न । हि० वरना, विदासी, विलिआना। गु० म० वायवरणा। ब० वरुण, तिक्तोशाक। ओ० बोरिनो। मार० वरणो। कच्छी, त्रिपन क० वितुसि, विलपत्री। ता० आदि वरणम्। ते० हलिमिडि, विलवरम। मला० नुञ्चोल। अ० Holy Garlic Pear ले Crataeva Nurvala

परिचय :—क्रेटिवा केटिवस नामक ग्रीक वनस्पति शास्त्रीके समानार्थ सञ्ज्ञा। नुर्वल मलावलम निर्व्वलमेंसे वृक्षवाचकसञ्ज्ञा। वृक्ष मध्यम कदका। ऊंचाई १५ से ३० फीट, कभी ४० फीट। पान तीन तीन (त्रिपर्णी)। लम्बाई ५ से १५ सें० मी (लगभग २ से ६ इञ्च), अण्डाकार या बल्लमाकार। फूल तुर्रेमें हरे सफेद (भूरी बेंजनी छायावाले) फल १॥-२ इञ्च व्यासके, कागजी नीबू जैसा। फल जुलाईमें पकता है। पकनेपर रग लाल। बीज चिकने, पिगल, पीले गुदाके भीतर '७' आकारके। हिमालयमें पुष्प एप्रिल, मईमें पत्ते आनेके पहले। लकडी पीताभ श्वेत, सामान्यत कठोर। टिकाऊ नहीं है। एक घनफुट का वजन ४५ पौण्ड। खिलौने बनानेमें उपयोगी है।

छाल सफेद या भूरी। कोमल शाखा हरी। पत्तोंका डण्ठल एरण्डके समान लम्बा होनेसे जल्दी परिचय मिल जाता है। महाराष्ट्रमें ग्रीष्म ऋतमें नये पत्तोंका शाक बनाते हैं। इसमें कडवापन अधिक होनेसे प्याज मिलाते हैं।

मद्रासके डाक्टर मुइदीन शरीफ सूचना करते हैं कि, औषध कार्य में बाह्योपचार रूपसे जिन जिन स्थानोंपर विलायतसे आने वाली पीसी हुई राईका उपयोग किया जाता है, उन उन स्थानोंपर वरुण मूलकी ताजी छाल और पानका उपयोग हो सकता है। इस हेतुसे सब आतुरालयोंमें इसके एक दो वृक्ष यदि लगाये जायँ, तो विलायती राईके उपयोगकी आवश्यकता न रहे।

रासायनिक सगठन :—इसकी छालमेंसे साबुन जैसा सत्व सेपोनीन (Saponin) मिलता है। यह सेनेगाके समान होता है। छालके अर्कमें तैलका दुग्धीकरण (Emulsion) होता है।

गुणधर्म :—पित्तवर्द्धक, कोष्ठवातहर, दीपन, रस कडवा, विपाक चरपरा, उष्णवीर्य रक्तप्रसादन, पित्तसारक, मूत्रल तथा विद्रधि, कृमि, शोथ और अश्मरीका नाशक है। फलसारक, गुरु, मधुर विपाकी, मधुर वीर्यवाला, स्निग्ध, उष्ण, वातहर, और कफघ्न। यकृद्वृद्धि और प्लीहावृद्धि पर लाभ दायक।

वरुणछाल यकृद् वृद्धि और प्लीहावृद्धि पर अति हितावह है। फल की छाल रंगको पक्का बनानेमें उपयोगी है। फल उष्ण, सारक और वात कफघ्न है रक्तप्रसादनार्थ छाल, पान या फलका क्वाथ दिया जाता है।

डा० खोरी के मतानुसार वरुणछाल दीपन-पाचक, वल्य, मृदुविरेचक और अश्मरीघ्न है। यह क्षुधाको बढाती है, तथा पित्तस्राव अधिक कराती है। मूलकी छाल में मूत्रलगुण होने से वह गोखरूके साथ शोथ, अश्मरी और मूत्र विकारके प्रतिकार के लिये प्रयोजित होता है। ताजे पान या मूल को नारियल का जल और घी के साथ आम वात पर दिया जाता है। एवं मेद वृद्धि पर भी खिलाया जाता है। पेरों के तल के शोथ और जलन पर वरुण के पान को पीसकर लेप किया जाता है। एव नासास्थिमें क्षत होने पर नाक में वरुण के पान का धुँआ दिया जाता है।

डा देसाई के मतानुसार बरना, चरपरा, दीपन, उष्ण, कोष्ठवातप्रशामक, पित्तसारक, आनुलोमक, वातहर, मूलत्र, और शोथघ्न है।

मात्रा :—पानका रस आधसे २॥ तोले तक नारियलके जल या घीके साथ दिनमें २ बार। क्षार १–१ माशा घीके साथ। भस्म ३ से ६ मासे जलके साथ। छाल या पानका चूर्ण ३ से ४ माशे।

१ वरुण कल्प वरुण फाण्ट :—नये सूखे पानको दस गुने उवलते हुए जलमें मिलाकर ढक देवें। शीतल होनेपर छान लेवें। मात्रा २ से ४ औस। यह फाण्ट कुछ कड़वा और सुगन्धि युक्त होता है।

२ वरुणादि क्वाथ :—वरुण छाल, सोंठ और गोखरु, तीनोंको समभाग मिलाकर क्वाथ करें। मात्रा १ से २ औंस। थोड़ा जवाखार और गुड मिलाकर वातज अश्मरीपर दिया जाता है।

३ वरुण क्षार :—वरुणकी शाखाओंको जलाकर राख करें। फिर उसे जलमें मिला छान उबालकर क्षार बना लेवें, अथवा छालकी राखको छालके क्वाथमें उबालें। जल सूख जानेपर उतारकर बोतलमें भरलें। मात्रा १ माशा घीके साथ। अश्मरी, जलोदर, प्लीहोदर, मूत्रविकार और गर्भाशयके रोगोंमें दिया जाता है।

उपयोग :—वरुणका उपयोग आयुर्वेदमें प्राचीनकालसे हो रहा है।

डा० देसाईने लिखा है कि, मूत्रसंस्थाके रोग अश्मरी,शर्करा, बस्तिशूल और मूत्रकृच्छ्रपर वरुणाकी छाल लाभदायक है। इसके साथ क्षार और मूत्रल ओषधि देते हैं। अपामार्ग, पुनर्नवा, गोखरू, जवाखार और मुलहठी, ये औषधियां बहुधा वरुणके साथ मिलायी जाती है।

ज्वरमें चित्त भ्रम होनेपर वरुण छालको पीसकर शिरपर बांधनी चाहिये इससे बंधनवाले भागमें दाह होकर भ्रम दूर हो जाता है। रोगी शुद्धिपर आनेके पश्चात बंधन खोल उस भागको शीतल जलमें धोकर वहां तैलका लेप करें। जिससे फाला न हो।

ताजे पत्तोंको पीसकर बांधनेसे ५-१० मिनिटमें ही त्वचा लाल हो जाती है और वहांपर फाला हो जाता है। यह क्रिया राईके समान होती है। वरनाकी क्रिया कवर या सेंनेगाके समान होती है। मेदोवृद्धिमें ताजे पत्तोंका शाक हितावह है।

मूलकी छालमें मूत्रल गुण होनेसे काली सारिवा और गोखरू आदि द्रव्योंके साथ या अकेली शोथ, मूत्रविकार और अश्मरी रोगमें व्यवहृत होती है। ताजे पत्तोंका रस या मूलका चूर्ण नारियलके जल और घीके साथ आमवात पर दिया जाता है। एवं मेदोवृद्धिमें भी खिलाया जाता है। कच्चे फलोंकी पुल्टिस बांधनेसे व्रणपाक शीघ्र होता है। आमवातमें पान और छालकी पोटली बना, तपाकर सेक करनेपर सन्धिशोथकी वेदना, सन्धिस्थानका तनाव, दोनों दूर हो जाते हैं।

१. यकृत्प्लीहावृद्धि —वरुण फाण्ट या क्वाथ पिलाने और प्लीहापर-पानके रसकी मालिश करनेसे थोडे ही दिनोंमें यकृत्प्लीहाकी वृद्धि दूर हो जाती है।

२ अर्श —वरुणके क्वाथमें अर्शवाले, रोगीको बैठानेसे अर्शजनित तीव्र वेदना जल्दी शमन हो जाती है।

३ नेत्रदाह —नेत्रमें विषका अंजन हो जानेसे चक्षुदाह और अश्रुस्राव आदि लक्षण उपस्थित हुए हों, तो वरुणके गोंदको जलमें घिसकर अंजन करना चाहिये।

४ जीर्णआमवात —ताजे पानोंका या मूलकी छालका चूर्ण घीके साथ देवें और ऊपर नारियलका जल पिलावें; अथवा पानका स्वरस घीके साथ देनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है।

५ अपचन —वरुण फाण्ट दिनमें ३ बार पिलानेसे अपचन और आफरा दूर होता है, तथा वमन बन्द होती है।

६. अश्मरी :—वरुण मूल त्वक्का चूर्ण घीके साथ देकर ऊपर वरुण मूलत्वक् क्वाथ पिलाते रहनेसे अश्मरी गलकर निकल जाती है। अश्मरी जनित शूलमें भी यही उपचार लाभदायक है। १-१ घण्टेपर ३-४ समय देनेसे अश्मरीका भेदन होकर शूल शमन हो जाता है। अथवा वरना,

काला सारिवा और गोखरू, सब को समभाग मिला ४-४ तोलेका क्वाथकर ३-४ समय पिलावें।

७ विद्रधि :—वरुण मूलका क्वाथ या फाण्ट दिनमें ३ समय पिलाते रहनेसे देहके भीतर उत्पन्न हुई अपक्व विद्रधि दूर हो जाती है। बाह्य विद्रधि हो तो ऊपर दोषघ्न लेप भी करते रहना चाहिये।

८. गलगण्ड —वरुण छाल और कचनार छालके क्वाथमें शहद मिलाकर ३-४ मासतक दिनमें २ समय पिलाते रहने और वरुण छालका लेप करते रहनेसे रक्तशोधन होकर गलगण्ड (Goitre) और नयी गण्डमाला (Schrofula) दूर हो जाते हैं।

९ वातवेदना :—सुहिंजनेकी छाल और वरुण मूलत्वक्को कांजीमें घिसकर लेप करनेसे वेदना निवृत्त होती है।

१०. योनिकण्डू :—पहले खुजलीवाले स्थानको गोबरीसे घिसें। फिर वरुणके पानका स्वरस लगानेसे खुजली दूर हो जाती है। त्वचा लाल होने पर घी या तैलवाला हाथ लगा लेवें।

११ व्यंग :—वरुणकी छालको बकरीके दूधमें घिसकर लेप करनेसे व्यंग (मुँहपर उत्पन्न नीले दाग—Capillary ongiomata or Naevi) और देहके अन्य भागमें उत्पन्न नीलिका रोग दूर होते हैं।

१२ हाथ पैरोंका दाह :—हाथ पैरोंमें जलन होनेपर पान बांधने या घिसनेसे थोड़े समयमें ही जलन दूर हो जाता है।

१३. व्रण:—कच्चे फलोंकी पुल्टिस बाधनेसे व्रणपाक सत्वर होता है।

१४. नासाक्षत :—इसके पानकी बीड़ी बनाकर धूम्रपान करने और धुएको नाकमें से निकालनेसे नासिकाकी हड्डीका क्षत भर जाता है, और कृमि नष्ट हो जाते हैं।

(२६) बहेड़ा

सं० बिभीतक, बहेड़क, कर्णफल, वासन्त, अक्ष, फलिद्रुम। हि० बहेड़ा, भैरा। बं० बहेड़ा, बोहोरा। का० काश्मीरी। म० बहेडा। गु० बहेड़ा। सिं० चुलु। फा० बलेलाह, बलेले। अ० बलेलज। क० शन्थीकायी। ता० तानीक्काई ते० तानीकाया। मला० थानीक्काई। अं० Beliric Myrobalans ले० Terminalia Belerica.

परिचय—टर्मिनेलिया=अन्तमें प्रशाखाके सामने।

बेलेरिका=अरबी बेली संज्ञापरसे नाम। यह भारतके अनेक प्रांतोंमे होता है। वृक्षकी ऊंचाई सामान्यत ६०से ८० फीट, कभी १२० तक, काठियावाड़में केवल १५से २५ फीट। पान अन्तरपर। ३ से ६ इञ्च लम्बे, शीतकालमें पतनशील। मंजरी

के ऊपरमें नर फूल, नीचे स्त्री पुमयोगी। फल ॥ से ॥। इञ्च व्यासके गोल। इन फलोंके भीतरकी गुठलीमेंसे सफेद गिरी निकलती है। बालक उसे खाते हैं,किन्तु कभी कभी उसका असर जहरी होता है। वृक्षोंमेंसे गोंद निकलता है। लकड़ी पीली और दृढ होती है, किन्तु उसे कीडे जल्दी लग जाते हैं। बीजोंकी गिरीमेंसे तेल निकलता है। बहेडेमें भी ४ उपजाति होती है। सबकी रचनामें थोडा थोडा अन्तर है।

मात्रा—४ से ६ माशे।

गुण धर्म—स्वाद कसैला, विपाक चरपरा, रुक्ष, लघु, कफ पित्त नाशक, उष्ण वीर्य और बालोंके लिये हितावह है। स्वर विकार, खासी, नेत्र रोग, मुह के रोग, उदर रोग, उदर कृमि और नासा रोग आदि में हितावह है।

डाक्टर देसाईके मतानुसार फलोंके छिल्टे ग्राही और श्लेष्मघ्न है। इसकी क्रिया विशेषत कण्ठ और श्वास नलिकापर होती है। बीजोंकी गिरी सामान्यत नशा लाने वाली (Narcotic) वेदना स्थापन और शोथघ्न है। अधिक खानेपर नशा चढता है, और वान्ति होती है। वमन होनेपर नशा कम होता है। नशा चढ़नेपर मनुष्य गाढ निद्रामें है, ऐसा दीखता है।

रायबहादुर कन्नीलाल दे ने लिखा है कि, बहेडेमें मुख्य दो जाति हैं। एक के फल आकारमें गोल और ॥ से ॥। इञ्च व्यासके होते हैं, दूसरी जातिके अण्डाकार और लगभग दूने बडे होते हैं। दोनोंमें टेनिन भिन्न भिन्न मात्रामें रहते हैं। (बड़े फलोंमें टेनिन अधिक रहनेसे वह अधिक गुणदायी है।)

उपयोग—बहेडाका उपयोग आयुर्वेदमें प्राचीन कालसे होरहा है। त्रिफलामें बहेडा मिलानेके अतिरिक्त अनेक प्रयोगोंमें बहेडेको स्थान दिया है।

१ श्वास और कास—कफ प्रकोप से उत्पन्न खांसी और दमेपर बहेडेका चूर्ण शहद के साथ दिन में २ बार दिया जाता है, अथवा बहेडे का टुकडा मुह में रखकर रस चूसनेको दिया जाता है।

२ पित्त ज्वरमें व्याकुलता—बहेडेकी गिरीको जलमें अथवा ठण्डे दूधमें चटनीकी तरह पीसकर मालिश करनेसे दाह,व्याकुलता और अधिक उत्ताप दूर होजाते हैं।

ग्रन्थि विसर्प—यह रोग वात और कफके प्रकोपसे आयुर्वेदने माना है। नव्य चिकित्सकोंके मतानुसार कीटाणुजन्य है। इसमें छोटी मोटी अनेक गाठें निकल आती हैं। उन गाठोंमें वेदना होती है, साथ साथ मोह, भ्रम, व्याकुलता, अग्निमान्द्य, श्वास, कास, अतिसार, कण्ठशोष, वमन,किसीको हिक्कादि लक्षण उत्पन्न होते हैं। इन गाठोंपर बहेडेके चूर्णकी पुल्टिस बाधने

या लेप और सेक करनेसे लाभ पहुँचता है। साथ साथ उदरसेवनार्थ हरड़ और चिरायतेका क्वाथ या अन्य ओषधि देनी चाहिये।

४. स्वर भग—आवाज बैठ गई हो तो बहेड़ेका टुकड़ा मुंहमें रखकर रस चूंसते रहनेसे आवाज सुधर जाती है।

५ नाभि टलना—बहेड़ेका क्वाथ १-१ घण्टेपर ३-४ बार पिलानेसे नाभि स्थिर होजाती है और दस्त लगना बन्द होजाता है। अन्त्रकी गिण्डली उचित स्थानपर न रहनेको नाभि टलना कहते हैं, इस हेतुसे बहेड़ेसे लाभ होजाता है।

(२७) बांदा

बड़े पान वाला बांदा—सं० वन्दाक, वृक्षरुहा, वृक्षादनी, कामरूपका। हि० सता० बादा। गु० बादा। म० बादगुल, वेतुग्ली। ब० बादा, परगाछ। ओ० मदुग। क० वन्दनिगे। ते० बाजिनिके। मला० पुल्लिगिा। ले० Loranthus Longiflorus

परिचय—लोंगीफ्लोरस=लम्बे पुष्पयुक्त। परोपजीवी, विशेषत. आमपर उगने वाली, लकडीके तने वाली, कठोर झाड़ी। लम्बाई ३ से ६ फीट। शाखाएं विविध आकारकी, ऊपर चढ़ने वाली, सामान्यत चौड़ी, चिकनी कभी वड़के बरोहके सदृश लटकने वाली। पान मोटे, लम्बगोल, ऊपर सकड़े, चिमडे, चिकने ३ से १० इञ्च लम्बे, १ से ५ इञ्च चौडे। वृन्त । से ।। इञ्च लम्बा, कठोर। पुष्प गुलाबी आभायुक्त या सफेद या नारगी जैसे रंगके, १ से २ इञ्च लम्बे, एक ही दिशामें गतिवाली, १ से ४ इञ्च लम्बी कलगी पर पुष्पवाह्यकोषकी नली गोल, ऊपरका हिस्सा कप आकारका, छोटे ५ दातवाला। अभ्यन्तरकोष पिछली ओर विदीर्ण। पुकेसर ५। फल गुलाबी, ।। इञ्च लम्बे, अण्डाकृति, लसदार गर्भ और एक बीज युक्त, कप आकारके वाह्यकोषसह।

उत्पत्ति स्थान—हिमालयके समशीतोष्ण और उष्णप्रदेश, ३००० से ७५०० फीट ऊंचाई तक, यू० पी०, गुजरात, काठियावाड, कच्छ, विहार, पंजाब, बंगाल, आसाम, मद्रास। यह भारतके अनेक प्रान्तोंमें होता है। अन्य जातियों की अपेक्षा इसका उपयोग अत्यधिक होता है। इसकी ३ उपजाति हैं। (Var Falcata, Var Amplexifolia, Var Oubescens), ये तीनों जाति दक्षिणमें होती हैं। आम, महुआ, पलाश, कनेर, कचनार, टिम्बरु, बबूल आदि वृक्षपर यह बांदा होता है। औषधकार्यमें सर्वांग उपयोगी। धन्वन्तरि निघण्टुमें इसका वर्णन मिलता है। विशेषतः पान और फूल राजनिघण्टु धन्वन्तरि निघण्टु, भावप्रकाश तथा प्राचीन चरक संहिता, सुश्रुत संहिता आदिमें इस

वादेका उपयोग अधिक हुआ है। वम्बईमें पुष्प फरवरी, मार्च तक। विहारमें फल फूल नवेम्बरसे मार्च।

वनस्पति शास्त्रमें वादेकी अनेक जाति लिखी हैं। भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें भिन्न भिन्न जाति होती हैं। जातिभेद और वृक्षभेदसे गुणमें अन्तर होता है। यहाँपर ६ जातिका वर्णन किया गया है।

गुणधर्म—उपर्युक्त जातिका वादा रसमें कडवा, अनुरस कसैला-मधुर, शीतवीर्य, रसायन और ग्राही तथा कफ प्रकोप, पित्तप्रकोप, श्रम, व्रण, रक्त विकार, भूतवाधा और विषविकारको दूर करता है। राज निघण्टुकारने इसे वश्यादि सिद्धि देनेवाला और कामोत्तेजक भी लिखा है।

मात्रा—१ से २ रत्ती।

उपयोग—इसका उपयोग प्राचीन कालसे हो रहा है। चरकसहितामें हिक्का निग्रहण, मूत्रविरेचनीय और शुक्रजनन दशेमानिमें तथा सुश्रुत सहितामें वीरतर्वादिगण तथा अश्मरी, गर्भरक्षा आमपाचन आदिके प्रयोगोंमें वादेको लिया है।

कर्णाटकमें थकावट दूर करनेकेलिये फेल्कटा उपजातिकी शाखाकी छाल नागरवेलके पानके साथ, सुपारीके समान खाते हैं। नव्य शोध अनुसार इस छालमें वेदनाहर और मादक (Narcotic) गुणयुक्त द्रव्य अवस्थित है।

डाक्टर देसाई लिखते हैं कि, "फूल और पान पीस गरमकर शोथ और मंद रक्त_ल्मपर वांधनेसे शोथ दूर होता है। हृद्रोगसे उत्पन्न श्वास, क्षयरोगमें श्वास और कफके साथ रक्तजाना, अपस्मार, उन्माद और आशुकारीदाह-शोथ (फुफ्फुसदाह आदि) इन सब रोगोंपर फूल दिये जाते हैं। इन रोगोंमें फूलकी क्रिया रक्तवाहिनी और हृदयपर पहले होकर, उनकेद्वारा लाभ पहुँचता है। ज्वरमें भ्रम होनेपर यह औषध दिया जाता है। हृद्रोगमें हिक्का और मूत्रकी जलन इसके सेवनसे कम होते हैं।"

१ विषमज्वर—कनेर या अन्य जहरी वृक्षपरका वादा घी, दहीका घोल मट्ठा या हींगके साथ दिनमें ३ वार देवें। यह भ्रम, मद प्रलाप आदिको भी दूर करता है।

२ विच्छूका विष—वादेको जलमें घिस निवाया करके लेप करें।

३. शोथ—जहरी जन्तु काटने और चोट लगनेसे उत्पन्न शोथपर पान और फूलको चटनीकी तरह पीस गरम करके लेप करें।

४ शीतला—सुहिजनेके वृक्षपर होनेवाले वादेके मूलको गरम राख दवा, फिर नरम पडने पर २-४ बूद रस निचोड उसमें गूलरके पानका रस और चौथाई रत्ती गोलोचन और शहद मिलाकर चटानेसे शीतलाका बल कम हो जाता है।

५. गर्भधारणार्थ—वडके ऊपरके वांदेका रस १०-२० बूँद मासिकधर्म आनेपर दिनमें ३ दिनतक रोज सुबह पिलावें।

६. कर्णशूल—बांदेके पानको केलेके पानके भीतर लपेट कर अग्निपर सेकें। फिर रस निचोड थोडा शहद मिलाकर कानमें डालनेसे फुन्सी और शूल, दोनोंका निवारण हो जाता है। कानको शीतल वायु और शीतल जल न लगने देवें। रात्रिको १०-२० मिनट हलका सेककर कपडा बांध देवें।

७. अतिसार—आम, जामुन या बबूलके वृक्षपर होनेवाले वांदेके पानोंका रस दिनमें ३ बार देनेसे अतिसार बन्द हो जाता है।

(२)

सोना वांदा—सं० सुवर्ण वन्दाक, मौक्तिक फल, पीलुफल, वृक्षरुहा, वृक्षादनी, केशरूपा। हि० वांदा, वान, बंदर। जौनसर चुलूका बांदा। गु० म० वांदा। वं० बांदा। ने० हरचुर, हुर्चु। प० अहालु, बांदा, रीनी। काश्मीर-जिज, हरिबंबल। अ० दिबकी। फा० किसमिश काबली, मुईझाके असली। अं० Deveils fuge, Mistletoe ले० Viscum Album.

परिचय—वृक्षपर उत्पन्न होने और उसके सत्वका शोषण करनेवाली झाडी। तना अनेक शाखायुक्त, नलिकाकार, पीला हरा, घेरा २-३ फीट। पान अनेक आकारके, सामान्यत १-२ इञ्च लम्बे, खस खसके समान १ बीज युक्त। ¼ इञ्चसे कुछ अधिक व्यासके। पंजाबमें फूल मार्चसे मई। फलपाक नवेम्बरमें।

उत्पत्ति स्थान—समशीतोष्ण हिमालय—काश्मीरसे नेपाल तक, ३००० से ७००० फीट ऊंचाई तक, पंजाब आदिमें। यूरोपमें यह प्राचीन कालसे धार्मिक क्रियामें प्रयुक्त होता है।

नाम पान रहित सब वांदाओंको यूरोपमें देते हैं, तथापि विशेष रूपसे इसकेलिये व्यवहृत होता है। इसके फलोंको मराठीमें किसमिश कावली कहते हैं। ये फल मटर जितने बडे, चुनन युक्त और नरम होते हैं। ये फल भारतमें अफगानिस्थान और इरानसे आते हैं। इन फलोंमें खसखस जितना एक बीज रहता है। फलको तोडनेपर हाथको चिपचिपा पन लग जाता है।

गुणधर्म—यूनानी मतके अनुसार फल मधुर, खट्टे, सारक, पौष्टिक, कामोत्तेजक, मूत्रल, हृद्य, व्रणको पकानेवाले और कफघ्न है तथा शोथ, पित्तप्रकोप, कटिवात, अर्श, प्लीहा, शारीरिक निर्बलता और मानसिक थकावटको दूर करता है।

डाक्टर देसाई लिखते है कि, "अति प्राचीन कालसे किसमिश-इ-कावलियानका उपयोग सब राष्ट्र करते हैं। इसकी क्रिया रक्ताभिसरणपर डिजीटेलिस

के समान होती है। सूक्ष्म कैशिकाओंका सकोच होता है। हृदय घलकी वृद्धि होती है। पेशाव अधिक आता है, तथा जलोदर दूर होता है। यह औपध इतना उत्तम है कि, इसे डिजीटेलिसका प्रतिनिधि माना जाता है।"

"इसकी गर्भाशयपर क्रिया अर्गटके समान होती है, यह क्रिया अर्गटकी अपेक्षा उत्तमप्रकारकी और प्रबल होती है। अर्थात इसके सेवनसे गर्भाशयका सकोच चाहिये वैसा अत्युत्तम होता है। इस औपधको सगर्भावस्थामें देनेपर गर्भपात हो जाता है। इसमें आनुलोमिकपना (मारकगुण) अधिक है, यह शोथहर है।"

मात्रा—५ से ३० रत्ती।

अर्क सुवर्ण वन्दाक—पके फलोंको ८ गुने शरावमें मिला बोतलमें भर रखें। एक सप्ताहके पश्चात छान लेवें। मात्रा २ से ३० बूंद।

उपयोग—डाक्टर देसाई लिखते हैं कि, "अत्यार्तव और प्रसव होनेके पश्चात्के रक्तस्रावपर इस औपधिका पीपलामूलके साथ फाण्ट बनाकर देते हैं। यह अच्छा लागू होता है।"

हृद्रोग और जलोदरमें जैसा डिजीटेलिस गुणावह है, वैसा ही यह है। अपस्मार आदि वातनडियोंके आक्षेप युक्त रोगोंमें यह अति गुणदायक है।

गुल्मरोगपर फलोंका फाण्ट एरण्डतैल और सोंठ मिलाकर दिया जाता है। इस मिश्रणसे शौचद्वारा पित्त गिरते हैं। कमरकी पीड़ा शमन होती है, अर्श रोग दूर होता है और उदरकी मल क्रिया सुधरती है। प्लीहावृद्धिमें भी यह लाभदायक है।'

"व्रण शोथपर फलोंको पीसकर पुल्टिस बाधते हैं। यदि प्रारम्भमें ही प्रयोग करते हैं, तो शोथ दूर हो जाता है। किन्तु देरसे बाधनेपर शोथ जल्दी पक जाता है। अग्निदग्धव्रण, शोथयुक्त व्रण तथा व्यूचीपर फलोंका लेप किया जाता है।"

कानफूटकर पूयस्राव और वेदना होनेपर फलके रसमें थोडी अफीम घिस कर कानमें डालते हैं।

(३)

पर्णरहित वादा—स० वन्दाक। हि० वादा। गु० वोडोवांदो। म० वादा, झाड साकल। ले० Viscum Angulatum.

परिचय—पान रहित दूसरे वृक्षपर उगने और चिपकने वाली झाडी। शाखाएं वेलके समान शाखापरसे झुकती हैं। लम्बाई २ से ३ फीट। शाखा पेंसिलसे अंगुली जैसी मोटी। शाखाएं कुड़कीली, पर्व युक्त। पर्व ॥ से ३ इञ्च लम्बा। रंग पीला हरा। संधि स्थानकी गाठ अधिक पीली। संधि स्थानके

पाससे कुछ लसदार रस टपकता है। वास उग्र। स्वाद चरपरा, मीठा। शाखा दो प्रशाखा युक्त। पान नहीं होते। फूल अति सूक्ष्म, नर मादा पृथक् पृथक्। फल रसमय, हरा (पीला), गोल, वहुत छोटा, १ हरे बीजयुक्त।

उत्पत्ति स्थान—गुजरात, महाराष्ट्र, विहार। विहारमें फूल डिसेम्बर-जनवरी में। उपयोगी अग सर्वांग। विशेषत यह जामुन, धामन, रीटे शीसम, टिमरू आदि वृक्षोंपर उगता है।

गुण धर्म—रसमें चरपरा, अनुरस मीठा, शीतवीर्य, ग्राही पित्तशामक। अतिसार और संग्रहणीमें इसका क्वाथ दिया जाता है। इसका उपयोग गुजरात महाराष्ट्रमें होता है।

(४)

जहरी वांदा—सं० वृक्षादनी, वृक्षरुहा। हि० वादा, जहरीवादा, कुचिलेका मलंग। वं० वान्दा, परगटचा। विहार-वांदा। म० कुचेलेकी सोनकान, हसाड़ा। संता० पेटचाम्र वान्दा। ता० पुल्लुरुवि। ते० वदनिका, वजिनिका। ओ० मोञ्चोडोमो। ले० Viscum Monoicum

परिचय—दूसरे वृक्षपर समूह वद्ध शाखाएं निकलने वाली बड़ी झाड़ी। शाखाए कोमल, नलिकाकार। पान छोटे वृन्तवाले, वहुधा पतले (कोई मोटे) सूखनेपर काले, १ से ५ इञ्च लम्बे, चौडाईमें विविधता, लम्बा-अण्डाकार या अन्तकी ओर सकड़े होनेवाले, अणीदार, ३ से ५ नस वाले। फूल सूक्ष्म, हरि आभावाले। सामान्यतः ३-३ के गुच्छ। फल हरा, चिकना। से ॥ इञ्च लम्वा, दोनों ओर सकड़ा। फूल नवेम्बर-दिसेम्बरमें। फल जनवरीमें।

उत्पत्ति स्थान—यू० पी०, विहार, आंध, सिक्किम, खासिया पहाड़, निलगिरी, मद्रास, छोटा नागपुर।

गुणधर्म—इसके सूखे पानोंमें कार्यकारी उपादन द्रव्य (Active principles) स्ट्रिक्निन और ब्रुसीन, ये दो प्रकारके कुचीला सत्व है। इस हेतुसे इसके पानोंके चूर्णका उपयोग कलकत्ताकी मेडिकल कालेज और होसिपटलमें १ से ३ ग्रेन मात्रामें दिनमें ३ वार पूर्ण सफलतापूर्वक किया जाता है।

इसके पानोंका उपयोग हृदय विकारपर उत्तेजना देनेकेलिये होता है। कर्नल चोपराके मत अनुसार यह कुचीलेकी प्रतिनिधि औपधि है। हृदयकी शिथिलता, आमवातिक ज्वर और विपमज्वरमें यह हींगके साथ मिलाकर प्रयुक्त होती है। खुजलीपर इसे जलमें पीसकर लेप करते हैं।

(५)

जुड़ा हुआ वांदा—स० वन्दाक, पुत्रिणी, गंधमादिनी, कामिनी, कामवृक्ष, नीलवल्ली। हि० वादा, वंदाक, वूदू। वं० वांदा, परगाच्छ, माण्डाद। सी०

पी०, म० वादा। ने० हर्चु। संता० काटचमिजंगा। ते० कट्टावदानिक। ले० Viscum Articulatum

परिचय—आर्टिक्युलेटम=साँधेको तोड फिर दूसरे साधेके साथ लगानेपर लगजानेवाला। पान रहित, अनेक शाखावाली, दूसरे वृक्षपर उगनेवाली हरे रगकी झाडी। तना चिपटा, जुडी हुई सधिवाला, कितनीक सधियोंपर लटकते हुए गुच्छे ६ इञ्चसे ३ फीट लम्बे। पर्व । से ॥ इञ्च चौडे और १ से २ इञ्च लम्बे, दोनों सिरेपर कुछ सकडे। तना ताजा होनेपर रंग हलका हरा, सूखनेपर पीला भूरा। फूल अति सूक्ष्म, अति छोटे वृन्तयुक्त, ३-३ के गुच्छ। सधिस्थानपर नर मादा फूल अलग अलग। फल लगभग । इञ्च व्यासका, गोल, पकनेपर पीला।

उत्पत्ति स्थान—हिमालय, आसाम, खासिया, सी० पी०, घाट, पजाब, विहार, यू० पी०। विहारमें पुष्प डिसेम्बर-जनवरी। पजाबमें जूनसे अक्टोबर।

गुण धर्म—रसमें कडवा, तीक्ष्ण, शीतल, मधुर, रसायन, कामोत्तेजक, वातकफनाशक तथा रक्तविकार, व्रण, यकृद् विकार और मृगीमें प्रयुक्त होता है। छोटा नागपुरमें इसका क्वाथ सधियोंमें वेदनासह ज्वरपर प्रयुक्त होता है।

(६)

चिमडे पानवाला वांदा—हिं० कोल०, सता० वांदा। गोंड-गुडवेल। ते० चन्द्रवदनिक, सुदरवदनिक। ले० Viscum Orientale

परिचय—सघन शाखायुक्त झाडी। ग्रन्थि स्थानमें तना मोटा। तना चिपटा। पान अति चिमडा (Coriaceous), लगभग लम्बे अण्डाकार, ऊपर सकडा लगभग वृन्तरहित, १॥ से ३ इञ्च लम्बे, सामने सामने, ३ से ५ नसवाले। पुष्प हरे या पीले, गुच्छोंमें, ॥ से ।॥ इञ्च लम्बे, नरमादा फूल मिश्रित। फल चौडा अण्डाकार या गोलाकार, । इञ्च लम्बे, हरे रसवाले। नरफल ०७ इञ्च तथा मादा फूल ०८ इञ्च लम्बे।

उत्पत्ति स्थान—बगाल, विहार, मद्रास। पुष्पारम्भ फरवरीसे। सामान्यत फूल बारहों मास रहते हैं।

गुण धर्म—जिस वृक्षपर यह वादा हो, उस अनुसार गुण दर्शाता है। छोटा नागपुरमें इस जातिके वादेका उपयोग अनेक भिन्न भिन्न रोगोंपर होता है।

(२८) वादाम

सं० वाताद, वाताम, वातवैरी, सुफल। हिं० बं० वादाम। म० गु० बदाम। अं० Sweet almond ले० Prunus Amygdalus

परिचय—अमिग्डेलग्न यह अमाइओग्रीक सज्ञा के आधार से वादाम का नाम वादाम में अनेक जाति हैं। देश भेद से छोटे वृक्ष या झाड़ी होते हैं।

वर्तमानमें भारतके काश्मीर आदि शीतल प्रदेशोंमें अच्छी बादाम होती है। फिर भी विदेशी बादामकी अपेक्षा वह कम तैल वाली है। पान अंकुर (Bud) में लपटा हुआ, दांतेदार या दांते रहित, भाले जैसे आकार वाले (Lanceolate) पानका डंठल २ रसग्रन्थिमय। पुष्प गुलाबी आभा वाले सफेद। पुष्प वृन्त पानके पहले निकलता है। पुष्प लगभग वृन्त रहित। फल सामान्यतः रुएदार। विशेषतः फलोंकी गिरी और छिल्टेका औषधि रूपसे उपयोग होता है।

वक्तव्य—उक्त जातिके अतिरिक्त भारतके अनेक प्रदेशोंमें देशी बादाम वोई जाती है लेटिन नाम टर्मिनेलिया केटेप्पा (Terminalia Catappa) है। इसका वृक्ष अधिक ऊंचा और सुन्दर होता है। ऊंचाई ४० से ८० फीट पान ६ से ८ इंच (१२ इंच तक) बड़े। शीतकालमें पतनशील, नूतनावस्थामें मुलायम रुंएदार, दोनों ओर तेजस्वी, रंग, पीला, हरा। पानके डण्ठलके दोनों ओर रसग्रन्थि। पकनेपर पान लाल। फूल पीले हरे। कलगीकी लम्बाई ४ से ८ इंच। ऊपर नरफूल, नीचे मादा फूल। कुछ फूल स्त्रीपुंसयोगी। फल १ से २ इंच लम्बे। पकनेपर गहरे हरे, बैंजनी छायावाले अथवा बैंजनी लाल या सफेद पीले। भीतरकी गिरी कम तैल वाली और छोटी।

एक जंगली बादामकी जाति है, उसे लेटिन नामके नेरियम कोम्यून (Canarium Commune) संज्ञा दी है। इसे भी किसी २ स्थानमें वोते हैं। इसके फलमें सारक गुण रहा है।

उक्त जातिके अतिरिक्त बादाममें कडवी जाति भी होती है। जो प्रूनस एमिगडेलसवी उपजाति है। वह स्वादमें अति कडवी है। उसमें हाइड्रोस्टोनिक एसिड (एक प्रकारका प्रबल विष) रहा है। उसका उपयोग खानेमें न हो जाय, यह सम्हालना चाहिये। इस कडवी जातिके बीजोंसे तैल निकालते हैं, उसका उपयोग बाह्य उपचारों (मल्हम आदि) में किया जाता है।

गुणधर्म—बादाम उष्ण वीर्य, मधुर रस स्निग्ध, वातहर, बल्य, शुक्रवर्धक गुरु, कफकारक, वृष्य और पित्त नाशक है। रक्त पित्त विकार वालोंको हितकर है। बादामका तैल सारक, शीतल, लघु, स्निग्ध, पित्त शामक, कफप्रद, मरोडक शोषक, शुक्रवर्द्धक और वातहर है।

डाक्टर देसाईके मतानुसार विदेशी बादाम भारतीय बादामकी अपेक्षा अधिक पौष्टिक और स्नेहन है। इसमें चावलके भीतर रहे हुये श्वेतसार जैसा सत्व नहीं है। इस हेतुसे बादामकी खीर बिना शक्कर मिली मधुमेहके रोगीको भी दीजाती है। श्वासोच्छ्वास संस्था, मूत्र संस्था और प्रजनन संस्थाके रोगोंपर प्रयोजक औषधके साथ बादाम पीसकर दीजाती है। बादामकी

खीर बनानेके पहले उसे रात्रिको गरम जलमें भिगोदें। फिर सुबह छिलके निकाल कर उपयोगमें लेवें। ऐसा करने पर उसमें एक प्रकारका नया सत्व उत्पन्न होता है, यह सत्व पाचन क्रियाको सहायक और उत्तेजक है। बादाम की खीरको अधिक नहीं उबालना चाहिये। वरना नूतन पाचक द्रव्यका नाश होजाता है। भिगोई हुई बादाम, असगन्ध, पीपल, घी, दूध, और मिश्री मिला कर बनाई हुई खीर उत्तम रसायन है। यह खीर निस्तेज मुखमण्डल वाली स्त्रियोंके कमरके दर्दपर अच्छी लाभदायक होती है। इस खीरके सेवनसे दूध बढ़ जाता है, और प्रदर कम होजाता है। मात्रा २ से ४ तोला बादामकी खीर।

सूचना—यकृत् निर्बल होने से पित्तस्राव कम होता हो तो घी नहीं मिलाना चाहिये। अन्यथा मूत्र पीला और उष्ण हो जायगा और खीरका योग्य पाचन नहीं होगा।

बादाम पाक—बादामकी गिरी ४० तोले, खोवा १० तोले, शक्कर १॥ सेर, घी २० तोले, चीहदाने ४ तोले, कमल ककडीकी गिरी २ तोले (जिव्ही निकाली हुई), छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपात और नागकेशर १-१ तोला, लौंग, वन्शलोचन, जायफल, जावित्री और केशर ६-६ माशे लें। बादामकी गिरीको गरम जलमें १ घण्टे भिगो देवें। फिर छिल्टे निकाल कर पीसें। इस चटनी और खोवेको अलग अलग घीमें सेकें। शक्करकी चासनी करें। उसमें सब औषधियोंका चूर्ण मिलावें। फिर भुने हुये बादाम और खोवा मिला कर ४-४ तोलेके लड्डू बना लेवें। इनमेंसे एक लड्डू रोज सुबह सेवन करें। और ऊपर दूध पीवें। यह शीतकालमें उपयोगी है। एवं ज्वरके पीछेकी निर्बलताको दूर करनेकेलिए भी खिलाया जाता है।

उपयोग—बादामका उपयोग आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थोंमें नहीं है। श्रीमन्तोंकेलिए बादाम नित्य प्रति खानेका पदार्थ है। मस्तिष्ककी निर्बलता शिरदर्द और मस्तिष्क शूलपर इसकी खीर खिलायी जाती है। अनेक मनुष्य शीतकालमें पौष्टिक रूपसे बादाम पाकका सेवन करते रहते हैं बादामका तैल कानमें डाला जाता है। एवं मस्तिष्कपर मालिश करनेसे मस्तिष्क शान्त बनता है। जीर्ण मलावरोध और क्षयपीडित रोगीको रोज १-१ ड्राम तैल दूध के साथ सेवन कराया जाता है एवं क्षयवालेकी छातीपर मालिश भी कराई जाती है।

बादामके ऊपरके छिल्टेको जलाकर कोयले करें। (धुआ निकल जानेपर बर्तन ढक देनेसे कोयले हो जाते हैं) उसे पीसकर १० तोले लेवें तथा माजूफल, छोटी इलायची, लौंग, फिटकरीका फूला और कपूर कचरीका १-१ तोला चूर्ण मिला खरलकर मंजन रूपसे उपयोग करने से दांत साफ होते हैं और मसूढे बलवान बनते हैं।

(२९) वादियान खताई ।

हिं० वादियान खताई । फा० वादियाने खताई म० गु० वादियान । वं० अनसफल । ते० अनसपुन्‍वु, मराट्टी, मोग्ग । ता० अनैसीरगम्, पेरुंगायम, मला० अंकोलकम् । अं० Cathay anise, star Anise ले० Illicium Anisatum

परिचय—मूलवृक्ष चीन-जापानका । वर्तमानमें मद्रासमें बोया जाता है । वृक्ष ६ वर्षका होनेपर फल देता है । सर्वदा हरा, सुगन्धित छोटा वृक्ष या झाड़ी। पान बिलकुल अखण्ड, निर्मल चिह्नयुक्त । पुष्प २ जातिके एकाकी या गुच्छोंमें पीले । डोडी दवी हुई, काली । बीज दबे हुए, लाल पीले ऊपरका कवच कठोर और तेजस्वी ।

इस वृक्षके सब अंगों में सौंफ (अनीसून) के समान सुगन्ध और स्वाद होता है । फलोंका स्वाद मधुर-तीक्ष्ण । इसके फल चीन-जापानसे भारतमें आते हैं । इसे चायमें तथा सुगन्धित, शीतल तेल बनानेके मसालेमें मिलाते हैं । यूरोपमें शराब और अर्कमें स्वादकेलिये इसका तेल मिलाते है । इसके बीजोंमेंसे वाष्पयन्त्र द्वारा तैल निकालते हैं । ताजे बीजोंमेंसे १॥-२॥% तथा सूखेमेंसे ८-९% सुवासिक तैल निकलता है । पानोंमेंसे भी कुछ तैल मिलता है । यह तैल कृमिघ्न है । अन्य औषधियों के साथ दिया जाता है । इस तैलमें उत्तेजक कफघ्न द्रव्य सेपोनिन (Saponin) अवस्थित है ।

गुणधर्म—फल रसमें मधुर, उष्णवीर्य, दीपन, पाचन, शूलहर, उत्तेजक, उदरवातहर, कफघ्न, । मूत्रल और सारक । यह अपचन, अग्निमांद्य, ज्वर, अतिसार, प्रवाहिका, आफरा और कासको दूर करता है । बड़ी मात्रामें वामक है । इसका प्रतिनिधि जावित्री है ।

मात्रा—२ से ८ रत्ती । भूनेबीज १ से ३ माशे । तैल १ से २ बूंद बताशेमें या कफघ्न क्वाथमें ।

उपयोग—इनके फल, अन्न और शाकभाजी मनुष्योंके अपचन में प्रयोजित होते हैं । यह बालकों के लिये भी हितावह ह आफरा, अतिसार, पेचिश और नये जुकाममें दिया जाता है । चायमें फलोंका चूर्ण डालकर पिलानेपर मूत्रल असर दर्शाता है । कफकास पीड़ितोंको इसका फल हितावह है ।

(३०) बावची

सं. बाकुची, सोमराजी, अवल्गुजा, कृष्णफला, कुष्ठघ्नी । हि बावची, बावची बायची, बाकुची । वं. सोमराजी, बराची. बावची । म बायची, बावच्या । गु बावची. बावची, । क बावची, वरुंचा । ता. कार्बोगा, कार्पोगु । ते भावंजी

बापगा, कालागिंजा। ओ बाकुची। मला० कार्कोल, कार्पोकिल। ले० Psoralea Corylifolia

परिचय-सोरालिया=तना स्थान स्थानपर गांठवाला। वर्षायु खड़ाक्षुप। ऊँचाई २ से ४ फीट। तना और शाखाएं झुर्रीदार और गांठोंमें आच्छादित. कुछ सफेद रुएंवाला। पान सादा, लम्बगोल, किनारेपर झुर्रीदार दोनों ओर सफेद रुएंसे आच्छादित, १॥से ३ इञ्च लम्बे,१ से २ इञ्च चौड़े। पत्रवृन्त रुएंदार चिह्नयुक्त, लगभग ॥ से १ इञ्च लम्बा। पुष्प पत्रकोणमें से निकली हुई शलाकापर, बहुत छोटे २ नीलाभ-बैंगनी पखड़ीवाले। कलगीमें १० से ३० फूलका गुच्छ। पुंकेसर १०। गर्भाशय १। फली अण्डाकार लम्बगोल, पहले हरी पकने पर काली १ कवचवाले बीजयुक्त।

उत्पत्ति स्थान-भारतमें सर्वत्र। बम्बईमें पुष्प अगस्तसे दिसम्बर तक। बिहारमें फूल फल नवम्बर-दिसम्बर में। औषध कार्यमें विशेषत बीजोंका और क्वचित् पचांगका प्रयोग होताहै।

गुणधर्म-बावचीके बीज रसमें तिक्त, विपाक चरपरा, वीर्य उष्ण, दुर्गन्धयुक्त, पित्तवर्द्धक, दीपन पाचन, रसायन, रुचिकर, सारक, विष्टम्भनाशक, रूक्ष केश्य और हृद्य है तथा कुष्ट, कफ, वातप्रकोप, श्वास, कास, वमन, शोथ, आम. पाण्डु और त्वचारोग-श्वित्र, कण्डू आदिके नाशक हैं।

नव्य मतानुसार बावची उत्तेजक मृदु स्वभाववाली. श्लैष्मिक कलापर कुछ उग्रता लानेवाली, वातनाडियों केलिये बल्य, कीटाणुनाशक, व्रणशोधन और त्वचा रोग हर है। इसका तैल श्वित्र-श्वेतकुष्ट (Leucoderma) की उत्तम औषधि है। श्वेत कुष्टके दागोंपर बाहर मर्दन और उदरसेवन भी कराया जाता है (जो श्वेतकुष्ट उपदंशविषसे उत्पन्न हुआहो, उसपर इससे कुछभी लाभनहीं होता)

कर्नल चोपड़ाने लिखा है कि,"बावचीमें अवस्थित उड़नशील तैल बाह्यत्वचा और श्लैष्मिक कलापर उद्दीपक असर पहुँचाता है तथा जीवन रस (Protoplasm) को भी यह लाभ पहुँचाता है। इसके एसेन्शियल तैल १=१०००० के मिश्रणमें जंजीर सदृश चिपककर रहनेवाले उद्भिद् कीटाणुओं (Streptococci) की अनेक जातियां मात्र १० मिनटमें ही नष्ट होजाती हैं।❀

प्रलापक ज्वर (Typhus) के कीटाणुओं (Rickettsia) पर इस तैल का कुछभी असर नहीं हुआ। विसूचिकाके कीटाणु (Vibriq Comma) और उद्भिद् प्रवाहिकाके कीटाणु (Shigella Dysenteriae) इन दोनोंपर भी

❀सामान्यत ये कीटाणु त्वचारोग, त्वचाप्रदाह (Dermatitis) सूतिकाज्वर, कण्ठक्षत, अन्त्रप्रदाह, आमवात, न्यूमोनिया और रक्तविकार आदि रोगोंके उत्पादक हैं।

संतोषप्रद परिणाम नहीं आया। केवल चर्म रोगोत्पादक कीटाणुओंपर इस तैलके जल मिश्रण (Dilution) का उत्तम परिणाम आया।"

रासायनिक सगठन–उडनशील तैल सत्व (Essential oil), गाढ़ा तैल (Fixed oil) और राल, ये मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त अम्ल द्रव्य, ग्रथिन, शर्करांजन (Glucoside) और कुडकीली लोहमय धातु मेंगेनीज (Manganese) आदि द्रव्य मिले हैं।

वाकुची प्रयोग—

१. **श्वित्रारि लेप**–(अ) बावची १६ तोले, तपकिया हरताल ४ तोले, मैनशिल, सफेद चिरमी के बीज और चित्रक मूल ६-६ माशेको मिला, गोमूत्रमें ३ दिन तक खरल कर वर्ति बना लेवें। फिर उस बत्तीको गोमूत्रमें घिसकर कुष्ठके सफेद दागपर मोटा २ लेप करते रहनेसे कुछ दिनोंमें त्वचाका रंजन हो जाता है। लेप लगानेके पहले दागको जलसे धो पोंछ कर स्वच्छ करलेना चाहिये।

(आ) बावची १६ तोले, आंवले ४ तोले और हरताल २ तोले मिलाकर गोमूत्रमें ३ दिन तक खरलकर वर्ति बनालेवें। इस वर्तिको गोमूत्र या नीबूके रसमें खरल कर लेप करते रहनेसे सफेद दाग मिट जाता है। यह लेप ऊपरके लेपकी अपेक्षा अधिक सौम्य है। नाजुक स्त्रियां और बालकोंके लिये यह हितावह है।

२. **सोमराजी तैल**—बावची के बीजोंको कूट समान तिलके तैल या करज के तैलमें २४ घण्टेतक भिगोवें। बीचमें २-४ बार चला देवें। फिर कोल्हूमें तैल निकलवा लेवें अथवा सम्पुटकर पाताल यन्त्रसे तैल निकाल लेवें।

वक्तव्य–डाक्टरीमें विनातैल मिलाये, यन्त्र द्वारा मात्र बावची के बीजोंका ही तैल निकाल लेते हैं। वह अधिक उग्र होताहै। यदि विना तैल मिलाये देशी पातालयन्त्रसे तैल निकाला जाय, तो उसमें भी डाक्टरी यन्त्रोंसे निकाले हुये तैल जितना ही गुण रहता है।

मात्रा–बावचीके बीजका चूर्ण १॥ से ३ माशे (खानेके लिये चूर्ण आवश्यकतापर बार २ ताजा बनालेना चाहिये) केवल बावचीका निकाला हुआ तैल ॥ से १ ड्राम उदर सेवनार्थ ।

उपयोग :—बावचीका उपयोग चरकसंहिता और सुश्रुत संहितामें मिलता है। चरकसंहितामें तिक्तस्कन्धमें उल्लेख किया है और अर्श आदि रोगोंमें बावचीका उपयोग किया है। सुश्रुतसंहितामें कटुवर्गके भीतर लिया है, अनेक रोगोंपर योजना की है तथा मेधायुष्कामीय अध्यायमें बावचीका कल्प भी लिखा है।

बावचीके बीजोंके तैलका कीटाणुनाशक गुण श्वित्र और अन्य त्वचा रोगोंमें अति उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसी हेतुसे विविध त्वचा रोगों जीर्ण व्युची, जीर्ण वातरक्त, कुष्ठरोग, व्रण और रक्तविकार आदि रोगोंके शोधन क्वाथमें अन्य औषधियोंके साथ बावचीको मिलायी है। श्वेतकुष्ठ (श्वित्र) पर इसका विशेष असर पहुँचता है, यह नव्य चिकित्सा प्रणालीवालोंने भी स्वीकार किया है। श्वेतकुष्ठ (श्वित्र) में इसका अन्तर्बाह्य उपयोग होता है। तैल या क्वाथके उदरसेवनसे तैल द्रव्य, जो रक्तमें प्रवेशित होता है, वह रक्तस्थ मल कीटाणु और विषको नष्ट करता है और रजक द्रव्य (Haemo-Globin) की वृद्धि कराता है। त्वचामार्गसे जो तैल द्रव्य बाहर निकलता है, वह त्वचामें उग्रता लाता है, वहांपर रक्ताभिसरण बढ़ाता है और त्वचाश्रय से रहे हुए कीटाणुओंको जला देता है। जो अंश अन्त्रमें प्रवेशित होता है, वह उस स्थानमें पूतिहर (Antiseptic) क्रिया करता है। जिससे रसकी शुद्धि होती है। फिर उसमेंसे बननेवाले रक्तादि धातुए भी शुद्ध और सबल बनती हैं। उक्त तीनों प्रकारसे त्वचारोग आदिमें लाभ पहुँचता है। किन्तु जीर्ण रोगोंपर दीर्घकाल पर्यन्त इसका उपयोग करना चाहिये। वृद्धोंकी अपेक्षा युवा मनुष्योंको विशेष लाभ पहुँचता है।

श्वेत कुष्ठमें रक्त शुद्ध होता जाता है और साथ साथ बाह्य लेपकी क्रिया से श्वेत दाग लाल होकर काले हो जाते हैं। यदि तैल मर्दन अधिक होता है तो उस स्थानपर फुन्सिया हो जाती हैं। इन फुन्सियोंमें कुछ वेदना होती है और कुछ दिनोंमें भीतरका रस सूख जाता है और त्वचा काली हो जाती है। पश्चात् नैसर्गिक त्वचाके समान बन जाती है।

वक्तव्य :—बावची प्रधान लेप करते रहनेपर जब फुंसिया हो जायें, तब कुछ दिनोंकेलिये लेप बन्द कर देना चाहिये। अन्यथा फुन्सिया फूटकर क्षत बनता है और फिर वह गहरा हो जाता है।

इसके बीजोंके तैलके प्राभाविक द्रव्योंके प्रयोगोंका परीक्षण भिन्न भिन्न रोगोंपर कलकत्ता स्कूल आफ ट्रॉपिकल मेडिशिन और कार्मिकील मेडिकल कालेजके फार्माकोलाजी विभागमें १९२६ ई० में किया गया। इसके एसेन्शियल तैलके १=१०००० और १=२०००० सौम्य मिश्रणका प्रयोग जजीर

सदृश कीटाणुओंसे उत्पन्न आशुकारी त्वचाप्रदाह (Streptococcal Dermatitis पीड़ित रोगियोंपर किया गया; किन्तु दुर्भाग्यवश उनको कष्ट बढ गया और रोगने उग्ररूप धारण किया। तैलमें मिलनेवाले तैली रालको शुद्धकर मद्यार्कमें अर्क बनाकर श्वेत कुष्ठपर प्रयोग किया गया, उसके परिणाममें भी लाभ नहीं हुआ। एवं एसेन्शियल तेलका मद्यार्कमें अर्क बना उसकी परीक्षा की गई, उसमें भी सन्तोष नहीं मिला। तत्पश्चात् बीजोंसे निकाले हुये तैल रालमिश्रित सार (Oleoresinous Extract) का उपयोग किया गया, जिसके भीतर उडनशील तैल भी मिला हुआ रहता है, उससे आशातीत लाभ हुआ है। इसका प्रयोगश्वेत दागोंपर मर्दनरूपसे दिनमें १ या २ बार किया जाता है।

उक्त प्रयोग ३ प्रकारके रोगियोंपर किया है। १. उपदंशके उपद्रवरूप श्वेतकुष्ठ, २. उपदंशरहित श्वेतकुष्ठ, ३. दाद आदि चर्मरोगोंसे पीड़ित। इनमें से उक्त प्रयोगसे दूसरे प्रकारके रोगी अर्थात् उपदंश रहित श्वित्रवालोंको लाभ हुआ है। आयुर्वेदिक चिकित्सक यद्यपि इसके बीजोंका उदरसेवन भी कराते हैं, तथापि श्वेतकुष्ठ चिकित्सामें इसका आश्रय नहीं लिया गया। इस तरह नव्य चिकित्सकोंने जो परीक्षण किया है, वह अपूर्ण है। (विशेष परीक्षण भविष्यमें आयुर्वेदिक शैलीसे करनेपर ही उनको यथोचित गुणोंका अनुभव हो सकेगा।)

१ प्रवाहिका :—पेचिश नया होनेपर कच्चा दूषित मल रुक रुककर निकलता है। थोड़ा थोड़ा पिच्छिल मलका त्याग वारवार होता है, उदरमें वेदना होती है और मरोड़ा आकर शौच होता है। उस आरम्भिक अवस्थामें बावचीके पानोंका शाक दही, अनारदाने और अधिक तैल (या घृत) मिलाकर सेवन करानेसे लाभ हो जाता है।

२. श्वेत कुष्ठ :—अ. श्वित्रारि लेप या पाताल यन्त्रसे निकाला हुआ तैल लगाते रहने और बावचीके बीज, आवले और खैर छालको समभाग मिला २-२ तोलेका क्वाथकर सुबह शाम पिलाते रहनेसे १-२ मासमें दाग दूर हो जाते हैं।

आ बावचीके बीज पहले दिन ५ दाने सुबह शीतल जलसे निगल जायें। फिर प्रतिदिन १-१ दाना बढाकर २१ पर्यन्त बढावें। पुन १-१ दाना घटावें। इस तरह १ मासमें १ आवृति पूरी होती है, आवश्यकता अनुसार रोग शमन होनेतक २-४ आवृति करें। साथ साथ बावचीका तैल या बावची और चावल मोगरेका तैल मिलाकर लगाते रहें।

वक्तव्य :—रोगीको अम्ल, लवण और चरपरे रसका त्याग करना

चाहिये। यदि रोगी चावल, जौ या गेहूँकी रोटी, मूंगका यूप (खटाई, नमक और गरम मसाले रहित) और मीठे फलोंपर रह जाय, तो लाभ जल्दी पहुँचता है।

इ वावचीको जलमें पीस मिट्टीके पात्रमें लगा, उसमें दूध भरकर दही जमा लेवें। फिर मथनकर मक्खन निकालकर घी वना लेवें। उस घीका सेवन शहद मिलाकर रोज सुवह करते रहनेपर २-३ मासमें श्वेत कुष्ट दूर हो जाता है।

३. त्वचारोग :—कण्डू, पामा, त्वचाकी शुष्कता, छोटी छोटी फुन्सिया, दाद, श्वेतदाग आदि रोगोंमें वावचीको कूट या जलमें पीस, शरीर पर मर्दनकर रोज स्नान करते रहनेसे नया रोग थोड़े ही दिनोंमें दूर हो जाता है। शिरपर मर्दन करनेपर जूए, और उनके अण्डे और वालोंमें होनेवाले कृमि नष्ट हो जाते हैं तथा वाल वढ जाते हैं।

४. कुष्ठ—अ रोगीको रोज अच्छी तरह स्वेद आ जाय, तवतक सूर्यके तापका सेवन करावें, केवल दूधपर रहकर ३ से ४ माशे वावचीके वीजोंको निवाये जलसे लेते रहें तो रोगी ३ सप्ताहमें कुष्टसे मुक्त हो जाता है। यह प्रयोग जीर्ण श्वेत कुष्ठ और अन्य सव प्रकारके कुष्ठोंपर लाभ पहुँचा सकता है।

आ वावची और तिल मिला ४ से ६ माशेतक दिनमें २ वार प्रातः साय शीतल जलके साथ १ वर्ष पर्यन्त सेवन करते रहनेसे सव प्रकारके कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं।

५ उदरकृमि —१-१ तोले वावचीके क्वाथको शहद मिलाकर पिलाने अथवा वावचीका तेल सुवह और रात्रिको ॥ से १ ड्रामतक केचेटमें या शक्करके साथ देवें। फिर दूसरे दिन जुलाव देनेपर सव गोलकृमि (Round worms) मरे हुए वाहर निकल जाते हैं।

(३१) विखमा।

स विश्व, श्यामकन्दा, प्रतिविषा। हि० विखमा,। गु० वखमो। सिक्किम-सेतोनिखोम। ले० (Aconitum Palmata).

परिचय—नेपल फ्लोरामें पहले इसे निर्विसिया विसमा (Nirbisia-Bisma) सज्ञा दी थी। मूल द्विवर्षायु, दोमिले हुए एकन्द। पुत्री कन्द छोटगाढ, शुण्डाकार पतला। लम्बाई १॥ से ४ इञ्च, चोडाई। से १। इञ्च तक। कितनेक मूल कुछ मोटे, नलिकाकार, हलके भूरे, चिकने तोड़नेपर भीतर भूरे। स्वाद पूरा पूरा कड़वा। माताकद वैसाही किन्तु छोटा, सिकुडा घआ, न्यूनाधिक छिद्रवाला, भीतरमें भूरा। तना सीधा, २ से ५ फीट ऊंचा, पान युक्त चिकना।

पान अंगुलियोंके सदृश गहराईतक ५ विभागवाले, वृक्काकार ४ से ६ इञ्च व्या-सके। पत्रवृन्त बड़ा १॥ से ४ इञ्च लम्बा। पुष्पशलाका कुछ पुष्पयुक्त। पुष्प बड़े, हरे-नीले। पुष्प बाह्य कोषके पत्र नीलाभ। डोडी ५, १ से १॥ इञ्च लम्बी चिकनी, बीज काले, लगभग अण्डाकार।

उत्पत्ति स्थान—आलपाइन, नेपालका हिमालय सिक्किम, दक्षिण तिब्बत, १०००० से १६००० फीट ऊंचाई तक। बाजारके मूल २ से ४ इञ्च लम्बे वजन दार रंग फीका भूरा। तोड़नेपर भीतरसे सफेद पीला। स्वाद अति कडुआ। कडुवापन मुँहमेंसे जल्दी दूर नहीं होता।

गुणधर्म—रस कड़वा, विपाकमें चरपरा, उष्णवीर्य, कफवातहर तथा अती-सके समान, ज्वरघ्न, कृमिघ्न, दीपन-पाचन, ग्राही, पौष्टिक। इसके मूल जहरी नहीं है। पौष्टिक और नियतकालिक ज्वर रोधक है। इसके भीतरसे रवेदार, क्षारीयसत्व पाल्मेटिसाइन (Palmatisine) मिलताहै। यह ज्वरघ्न और आमा शय पौष्टिक है।

मात्रा—२-५ रत्ती, कालीमिर्च या जायपत्री के साथ।

उपयोग—यह आमाशय विकार, अन्त्रविकार, अतिसार, ग्रहणी, उदरपीडा, वमन, अपचन आदिपर व्यवहृत होता है, ज्वरमें यह अतिविषके प्रतिनिधिरूपसे दियाजाता है, विशेष उपयोग अतिविषके समान होताहै।

(३२) विजयसार।

सं. वीजक, पीतसार, बन्धूक पुष्प, सर्जक, असन। हिं विजयसार, बिजे-सार, बिजैसार, आसना। वं पियाशाल, पीतसाल। ओ पियासालो संता० चांदा। म० बिवला। गु० बीयो। सिं० गमालु। क० बेंगा, बिब्ला,। होन्ने मल० कारिण्टकर, वेन्ना। ना० अमनम्। ते० पेद्देगी, थेगी। अ० दम्मुल-अख-वैन हिंदी। अल्मोरा विपासाल। गोंड—विजो। मुंदरी—हिददारू। अ. Indian Kino-tree ले० Pterocarpus Marsupium

परिचय—टेरोकार्पस=पाखवाली फलीयुक्त। मार्सुपियम=थैली सदृश फली। चारोंओर फैली हुई अनेक प्रशाखा और पतनशील पानवाला बडा वृक्ष। ऊँचाई २० से ४० फीट, काठियावाड़में १५ से २५ फीट। छाल मोटी, पीताभ धूसर। बाह्यछाल डाटजैसी, खुरदरी, खड़े चीरेवाली। छालके नीचे लकड़ीपीली। पान ६ से १० इञ्च लम्बे, अन्तरपर, ५-७ पर्णयुक्त। पर्ण मोटे, चमड़े, दोनोंओर चिकने, ३ से ५ इञ्च लम्बे। मुख्यवृन्त ४ से ६ इञ्च लम्बा। पर्णका डण्ठल। से ॥ इञ्च लम्बा। आकार लगभग पीपलके पान सदृश। पुष्प शाखाओंके अन्तमें और पत्रकोणमें सलाकापर छोटे छोटे। पुष्प वाह्यकोषके पत्र ५ संयुक्त, वे फल के पकनेतक रहनेवाले प्रत्येक के दो दाँत। पखड़ियां ५, हलकी पीली,

न्राय एक दूसरे से पृथक् । पुकेसर १० । बीजाशय १। फली १ से २ इञ्च व्यासकी, कच्ची होनेपर पीली–हरी, पककर सूखनेपर भूरी ।

उत्पत्तिस्थान–दक्षिण प्रदेश, मद्रास, सिलोन, काठियावाड़ आदि । छालका उपयोग रगरेज लोग करते हैं । औषध कार्यमें लकड़ी, छाल और गोंदका उपयोग होता है । रसको सुखाकर गोंद कियाजाता है ।

गुणधर्म–विजयसार उष्णवीर्य, केश्य और रसायन है तथा कुष्ठ, विसर्प, श्वित्र, प्रमेह, कृमि, कफविकार और रक्तपित्तको नष्ट करता है ।

विजयसार गोंद (गु० हीरादख्खण, फा० दम्मुल अखवीन, अ काइनो KINO) शीतल, ग्राही, कीटाणुनाशक, रक्तस्रावरोधक, रोपण तथा अतिसार, मुखपाक, व्युची, दतशूल और दाहको दूरकरता है । सामान्यत: इसका गुण पलाशके गोंदसे मिलता जुलता है । यह वृक्कपीडित रोगियोंको नहीं दिया जाता । विजयसारके फूल विपाकमें मधुर, कफपित्तनाशक और वातवर्द्धक है।

यूनानी मत अनुसार हीरादोखी गोंद कडवा और वेस्वादु है । यह देहके सब रोगोंपर उपयोगी है । यह रक्तस्रावरोधक, यकृत्‌के लिये बल्य, ज्वरघ्न, कृमिघ्न, आक्षेपज वेदनानाशक तथा पित्तप्रकोप, चक्षुप्रदाह, फोड़े, सुजाकजन्य जीर्ण मूत्रप्रसेकनलिकाप्रदाह (Gleet) और प्रमेह आदिरोगोंपर हितावह है ।

विजयसारादि चूर्ण–(पल्विस काइनो कम्पोजिटस-Pulvis Kino Co) विजयसार गोंद ७५, अफीम ५ और दालचीनी २० भाग मिलाकर चूर्ण बना लेवें । मात्रा–२ से १० रत्ती दिनमें ३ बार जलके साथ । यह पेचिश रक्तातिसार और जीर्ण अतिसारोंमें तुरन्त लाभ दर्शाता है ।

मात्रा–लकडी १ तोलेका हिम मधुमेहीको । गोंद ४ से १२ रत्ती ।

उपयोग–विजयसारका उपयोग अति प्राचीनकालसे आयुर्वेदमें हो रहा है । चरकसंहितामें उदर्द प्रशमन दशेमानि; शिरोविरेचन द्रव्य और सार आसवकी यादीमें उल्लेख मिलता है । दतौनरूपसे इसे हितावह माना है । इन्द्रोक्त रसायन कुष्ठरोगोक्त महाखदिरघृत, खालित्य रोगपर कहे हुये महानीलतैल, ऊरुस्तम्भ नाशक श्योनाकादि प्रलेपमें विजयसारको मिलाया है । सुश्रुतसहितामें साल सारादि गणमें मिलाया है।सुश्रुताचार्यने अञ्जनोंको विजयसारके पात्रमें रखनेका कहा है । कुष्ठ, शोष और रक्तपित्त आदिरोगोंपर उपयोग किया है । एव दूषित-जल या मलिनजलको साफ करनेके लिये भी विजयसारकी योजना की है ।

१ उदरमें रक्त जम जाना–विजयसार छाल ६ माशे का क्वाथ या पानोंका रस दूध में मिलाकर पिलावें । अथवा विजयसार गोंद १–१ माशा दिनमें ३ बार जल या दूधके साथ सेवन कराने से चोटलगनेमे उत्पन्न रक्तसग्रहजनित विकारकी निवृत्ति होती है ।

२. **अतिसार**—जीर्णअतिसार और प्रवाहिकामें अन्य ओषधिके साथ २-२ रत्ती विजयसार गोंद मिलाते रहनेसे किटाणुओंका नाश होता है, अन्त्रप्रदाह दूर होता है, वेदनाशमन होती है तथा ग्राही असर तुरन्त पहुँचकर अतिसार और प्रवाहिकाका दमन हो जाता है।

३. **व्युची**—व्युचीमें अतिकण्डू चलकर या शुष्कता आकर जब क्षत होजाताहै तब जलन होती रहती है और व्युची बढता रहता है। उसपर विजयसार गोंदका चूर्ण भुरकानेसे या विजयसार गोंद और चन्दनका घासा लगा देनेपर जलन शान्त होती है, कीटाणुनष्ट होते है, घाव भर जाता है और व्युची जल्दी दूर होता है। साथ-साथ ४-४ रत्ती विजयसार गोंद दिनमें २ या ३ बार जलके साथ देते रहने से जल्दी लाभ पहुँचता है।

४ क्षत—जलमय फोडा फूटजानेपर उसमें दाह होता है। फिर उसमेंसे रस स्राव होकर चारों ओर लगता रहता है। उसपर विजयसार गोंदका चूर्ण भुरकानेपर फाला दूरहोजाता है।

५ रक्तपित्त—विजयसार लकडीको जला क्षार बनाकर १-१ माशे घृत के साथ दिनमें २ बार सुबह, रात्रिको सेवनकराते रहनेसे मुख, नाक, गुदा या मूत्रेन्द्रियसे रक्तपित्तप्रकोपज रक्तस्राव होता हो, वह दूरहोजाता है।

६. मुखपाक—दाहक पदार्थ या गरम गरम भोजन के सेवनसे मुँहके भीतर क्षत हुआ हो या जीभ फटगई हो तो उसपर विजयसारगोंद और कत्थेका चूर्ण भुरकानेपर लाभ पहुँच जाता है।

७. दंतशूल—दाँतोंके गड्ढेमें विजयसारका गोंद भरदेने या दंतमंजन में मिलाकर साफ करते रहनेपर दाँतोंकी पीड़ा दूर होजाती है।

८. श्लीपद—विजयसारकी छालका क्वाथ या गोंद १-१ माशा गोमूत्र या शहदके साथ दिनमें २ वार ४-६ मासतक देते रहनेपर श्लीपद (हाथ-पैर मोटे-हो जाना) दूर हो जाता है। यदि देहमें मेद बढा हो, तो वह भी इस प्रयोगसे कम हो जाता है।

९. इक्षुमेह—विजयसार लकड़ी ६-६ माशेको रोज रात्रिको काचके गिलास में जलके भीतर रख देवें। सुबह जल छानकर पी लेवें। पुनः उसमें जल भर देवे, यह शामको या रात्रिको पी लेवें। दूसरे दिन लकडी का नया टुकडा लेवें। इसतरह २-४ मासतक जलका सेवन करनेपर इक्षुमेह और मधुमेह में शक्करकी निरंकुश उत्पत्ति बन्द हो जाती है।

१०. कुष्ठ—विजयसारके मूल या छाल १-१ तोलेका क्वाथ दिनमें २ बार ४-६ मासतक देतेरहनेसे जीर्ण रक्तविकार और जीर्ण त्वचारोग (उपकुष्ठ) दूर हो जाते हैं। यह उत्तम शोधन ओषधि है। इसके शोधन गुणके हेतुसे चरक-

संहिताकार और आचार्य वाग्भटने इसका रसायन रूपसे भी उपयोग किया है। कच्चा दूध, तेज खटाई, मलावरोध करनेवाला भोजन और मासाहारका त्याग करनेके साथ इसका शातिपूर्वक सेवनकरना चाहिये।

११ दृष्टिमांद्य–तिल तैल २० तोले, बहेडेकी गिरिका तैल २० तोले। भागरेका रस १ सेर और विजयसार छालका क्वाथ १ सेर मिला लोहेकी कड़ाही में मदाग्निसे तैल सिद्ध करें। इस तैलका सुबह शाम नस्य कराते रहनेसे नेत्रज्योति वढ जाती है।

१२- रक्तातिसार–विजयसारादि चूर्णका सेवन दिनमें ३ वार ३ दिनतक कराने और भोजनमें खिचडी या दही-भात खानेपर उदरपीडासह रक्तातिसार दूर हो जाता है।

(३३) विही।

स० सिंचितिका। हिं, विही, विल्ह। काश्मीरी नासपाती, काश्मीर-बमसुतु। अ० विहीतुर्श। फा० विह। ते० सिमदा निम्म। ता० सिमाई मादलाई, पेढना,। क० सिमेदालिम्बे। अ० Quince tree। ले० Cydonia Vulgaris.

बीज—स० पाटला, पिच्छिला। हिं, विहदाने। गु० मोगली वेदाण। अ० मज। ता० सिमाइमा। ते० सिमामालिमा।

परिचय—पतनशील पानवाली वडी झाडी। छाल गहरी भूरी। नया भाग रुएंदार। पान सादे २ से ४ इच लम्बे, १॥ से ३ इञ्च चौडे, लगभग अण्डाकार, अखण्ड, गहरे हरे, ऊपर चिकने, नीचे भूरे रुएंयुक्त। पानका डण्ठल रुएंदार ॥ इञ्च लम्बा। उपपान छोटे, ३ इच लम्बे लम्बगोल, कुप्पीयुक्त, आरी जैसे दातवाले। पुष्प २ इच चौडे, सफेद या गुलाबी आभावाले, एकाकी, पत्रकोणमेंसे निकले हुये, छोटे वृन्तयुक्त। पुष्प बाह्यकोष नलिका रुएंदार, गदाके आकारकी। पखडिया ५। नख छोटे। पुकेसर २०, एक श्रेणीके। बीजाशय ५ विभागका। बीजाशयनलिका ५, परस्पर जुडी हुई। फल नासपाती जैसे आकारका, मासल, धूसर रुएं या ऊनी बालोंसे आच्छादित, ५ विभागका, गोंद और अनेक बीजयुक्त, चिमडा। पकनेपर सुगन्धित, मधुराम्ल, सुनहरी पीले रगके, वजनदार।

उत्पत्तिस्थान—काश्मीर, हिमालय, पंजाब। सभवत. यह मूल तुर्क स्थान और इरानका है। फल और बीजोंके लिये अब शीतल स्थानोंमें सर्वत्र बोया जाता है। इसके फलोंका उपयोग खानेमें तथा शर्वत, मुरब्बा और अवलेह वनानेमें होता है। इसका उपयोग अन्य फल और शाक दालको स्वादु और सुगन्धित वनानेकेलिये भी होता है। इन फलोंको कतर पतले टुकडेकर सुखाते हैं। और भोजनके पदार्थोंमें भी मिलाते हैं। वन पक्व फलोंको अग्निपर

पकानेपर अधिक स्वादु लगता है। इसमें ३ जाति हैं। मीठी, खट्टी और खट्टी मीठी। सब तुर्कस्थान और इरानमें वहुत होती है। वहा पर मस्तिष्क और हृदयपौष्टिक रूपसे खायी जाती है।

वीज लम्बगोल, चिपट, मैले लाल, भीतरसे सफेद, गंधरहित, स्वादमें फीके और लुआवदार होते हैं। ये औषध रूपसे व्यवहृत होते हैं। वीजोंकी गिरीमें कडवे वादामके समान स्वाद और वास होतेहैं। गिरीमेंसे गाढा तैल (Fatty-oil) १५ ३ प्रतिशत निकलता है। ताजा होनेपर खाया जाता है। किन्तु यह जल्दी दुर्गन्धवाला होजाता है।

गुणधर्म—विहदाने शीतवीर्य, कुछ ग्राही, पिच्छिल, स्निग्ध, कासहर, अन्त्र, मूत्राशय और मूत्रनलिकाके दाहके शामक और व्रणदोपनाशक है अतिसार, रक्तातिसार, प्रवाहिका, संग्रहणी और विषप्रकोपमें आतोंको स्निग्ध बनानेके लिये इसका लुआव दिया जाता है। मूत्रमें जलन (पूयमेह) होनेपर दाहशमनार्थ, ज्वरावस्थामें तृषा और व्याकुलताको दूर करने और शुष्क कासमें श्वासन-लिकाकी शुष्कता दूर करनेकेलिये दिया जाता है। एव जले हुए भाग, फाले और फोड़ेपर वेदना शमनार्थ पुल्टिस रूपसे लगाया जाता है।

यूनानी मत अनुसार फल पौष्टिक, ग्राही, मूत्रल, व्रणरोपण, ज्वरहर, कासहर, मस्तिष्क और यकृत्को हितकर, अग्निप्रदीपक, तृषाशामक, श्वासहर और विद्र-धिपर हितावह है। वीज स्वादहीन, व्रणरोपण, कण्ठक्षतनाशक, अमाशय-प्रदाहहर, दाह शामक, कफघ्न, ज्वरशामक और अन्त्रशूलहर है।

रासायनिक अन्वेषण—बीजोंको जलानेपर ३॥ प्रतिशत राख बनती है। उसके भीतर जवाखार २७%, सज्जीखार ३%, मेगेनिशा १३%, चूना ७५%, नमक २ ५%, लोह १% और लुआब द्रव्य २०% मिलते हैं। लुआव द्रव्यमें केलश्यम साल्ट (Calcium salt), प्रथिन द्रव्य और औक्जलिक एसिड प्रतीत होते हैं।

उपयोग—

(१) **प्रवाहिका**—मोगली बिहदाने १ तोलेको लगभग आध सेर जलमें भिगो देवें। फिर थोड़ी शक्कर मिलाकर पिलानेसे अन्त्र स्निग्ध बनता है तथा क्षत स्थानमें वेदना होकर जो बारबार दस्त होता है, वह कम हो जाता है। यदि अत्यधिक समय शौच होता रहता हो, तो उस लुआवमेंसे १-१ या २-२ औंस जल थोड़े थोड़े समयपर या शौच होनेपर वारंवार पिलाते रहनेपर लाभ होजाता है। मलमें दुर्गन्ध होनेपर या रक्त आनेपर सोहागेका फूला १-१ रत्ती दिनमें ४-६ बार मिला दिया जाता है।

(२) **शुष्ककास**—विहदानेका लुआव मिश्री मिलाकर दिनमें ४-६ बार

संहिताकार और आचार्य वाग्भटने इसका रसायन रूपसे भी उपयोग किया है। कच्चा दूध, तेज खटाई, मलावरोध करनेवाला भोजन और मांसाहारका त्याग करनेके साथ इसका शांतिपूर्वक सेवनकरना चाहिये।

११ दृष्टिप्रसादन-तिल तैल २० तोले, बहेड़ेकी गिरिका तैल २० तोले। भांगरेका रस १ सेर और विजयसार छालका क्वाथ १ सेर मिला लोहेकी कड़ाही में मंदाग्निसे तैल सिद्ध करें। इस तैलका सुबह शाम नस्य कराते रहनेसे नेत्रज्योति बढ जाती है।

१२- रक्तातिसार-विजयसारादि चूर्णका सेवन दिनमें ३ बार ३ दिनतक कराने और भोजनमें खिचडी या दही-भात खानेपर उदरपीड़ासह रक्तातिसार दूर हो जाता है।

(३३) बिही।

सं० सिंचितिका। हिं, बिही, बिल्ह। काश्मीरी नासपाती, काश्मीर-बमसुतु। अ० बिहीतुर्श। फा० बिह। ते० सिमदा निम्म। ता० सिमाई मादलाई, पेदना,। क० सिमेदालिम्बे। अं० Quince tree। लें० Cydonia Vulgaris.

बीज—सं० पाटला, पिच्छिला। हिं, बिहदाने। गु० मोगली बेदाण। अ० मज। ता० सिमाइमा। ते० सिमामालिमा।

परिचय—पतनशील पानवाली बडी झाडी। छाल गहरी भूरी। नया भाग रुएदार। पान सादे २ से ४ इंच लम्बे, १॥ से ३ इञ्च चौड़े, लगभग अण्डाकार, अखण्ड, गहरे हरे, ऊपर चिकने, नीचे भूरे रुएंयुक्त। पानका डण्ठल रुएंदार ॥ इञ्च लम्बा। उपपान छोटे, ३ इंच लम्बे लम्बगोल, कुप्पीयुक्त, आरी जैसे दांतवाले। पुष्प २ इंच चौड़े, सफेद या गुलाबी आभावाले, एकाकी, पत्रकोणमेंसे निकले हुये, छोटे वृन्तयुक्त। पुष्प वाह्यकोष नलिका रुए दार, गदाके आकारकी। पखड़िया ५। नख छोटे। पुंकेसर २०, एक श्रेणीके। बीजाशय ५ विभागका। बीजाशयनलिका ५, परस्पर जुड़ी हुई। फल नासपाती जैसे आकारका, मासल, धूसर रुए या ऊनी बालोंसे आच्छादित, ५ विभागका, गोंद और अनेक बीजयुक्त, चिमड़ा। पकनेपर सुगन्धित, मधुराम्ल, सुनहरी पीले रंगके, वजनदार।

उत्पत्तिस्थान—काश्मीर, हिमालय, पंजाब। संभवतः यह मूल तुर्क स्थान और इरानका है। फल और बीजोंके लिये अब शीतल स्थानोंमें सर्वत्र बोया जाता है। इसके फलोंका उपयोग खानेमें तथा शर्बत, मुरब्बा और अवलेह बनानेमें होता है। इसका उपयोग अन्य फल और शाक दालको स्वादु और सुगन्धित बनानेकेलिये भी होता है। इन फलोंको कतर पतले टुकडेकर सुखाते हैं। और भोजनके पदार्थोंमें भी मिलाते हैं। घन पक्व फलोंको अग्निपर

पकानेपर अधिक स्वादु लगता है। इसमें ३ जाति हैं। मीठी, खट्टी और खट्टी मीठी। सब तुर्कस्थान और इरानमें बहुत होती है। वहा पर मस्तिष्क और हृदयपौष्टिक रूपसे खायी जाती है।

बीज लम्बगोल, चिपट, मैले लाल, भीतरसे सफेद, गधरहित, स्वादमें फीके और लुआबदार होते हैं। ये औषध रूपसे व्यवहृत होते हैं। बीजोंकी गिरीमें कड़वे बादामके समान स्वाद और वास होतेहैं। गिरीमेंसे गाढा तैल (Fatty-oil) १५ ३ प्रतिशत निकलता है। ताजा होनेपर खाया जाता है। किन्तु यह जल्दी दुर्गन्धवाला होजाता है।

गुणधर्म—विहदाने शीतवीर्य, कुछ ग्राही, पिच्छिल, स्निग्ध, कासहर, अन्त्र, मूत्राशय और मूत्रनलिकाके दाहके शामक और व्रणदोषनाशक है अतिसार, रक्तातिसार, प्रवाहिका, संग्रहणी और विषप्रकोपमें आंतोंको स्निग्ध बनानेके लिये इसका लुआब दिया जाता है। मूत्रमें जलन (पूयमेह) होनेपर दाहशमनार्थ, ज्वरावस्थामें तृषा और व्याकुलताको दूर करने और शुष्क कासमें श्वासनलिकाकी शुष्कता दूर करनेकेलिये दिया जाता है। एव जले हुए भाग, फाले और फोड़ेपर वेदना शमनार्थ पुल्टिस रूपसे लगाया जाता है।

यूनानी मत अनुसार फल पौष्टिक, ग्राही, मूत्रल, व्रणरोपण, ज्वरहर, कासहर, मस्तिष्क और यकृत्को हितकर, अग्निप्रदीपक, तृषाशामक, श्वासहर और विद्रधिपर हितावह है। बीज स्वादहीन, व्रणरोपण, कण्ठक्षतनाशक, अमाशयप्रदाहहर, दाह शामक, कफघ्न, ज्वरशामक और अन्त्रशूलहर है।

रासायनिक अन्वेषण—बीजोंको जलानेपर ३॥ प्रतिशत राख बनती है। उसके भीतर जवाखार २७%, सज्जीखार ३%, मेगेनिज १३%, चूना ७५%, नमक २·५%, लोह १% और लुआब द्रव्य २०% मिलते हैं। लुआब द्रव्यमें केलश्यम साल्ट (Calcium salt), ग्रथिन द्रव्य और औक्जलिक एसिड प्रतीत होते हैं।

उपयोग —

(१) प्रवाहिका—मोगली विहदाने १ तोलेको लगभग आध सेर जलमें भिगो देवें। फिर थोड़ी शक्कर मिलाकर पिलानेसे अन्त्र स्निग्ध बनता है तथा क्षत स्थानमें वेदना होकर जो वारबार दस्त होता है, वह कम हो जाता है। यदि अत्यधिक समय शौच होता रहता हो, तो उस लुआबमेंसे १-१ या २-२ औंस जल थोड़े थोड़े समयपर या शौच होनेपर वारंवार पिलाते रहनेपर लाभ होजाता है। मलमें दुर्गन्ध होनेपर या रक्त आनेपर सोहागेका फूला १-१ रत्ती दिनमें ४-६ बार मिला दिया जाता है।

(२) शुष्ककास—विहदानेका लुआब मिश्री मिलाकर दिनमें ४-६ बार

थोड़ा-थोड़ा पिलाते रहनेसे स्वरयन्त्र और श्वासनलिका स्निग्ध बनकर कासका वेग दूर हो जाता है।

(३) दाह—लुआबमें मिश्री मिलाकर पिलानेसे विषप्रकोप, आमाशयके पित्त प्रकोप या मिर्च आदि दाहक पदार्थोंसे उत्पन्न दाह शमन हो जाता है।

(४) सुजाक—सुजाकके होनेपर पेशाबमें मचकर जलन होती है, उसे तुरन्त शान्त करनेकेलिये बिहदानेका लुआब दिनमें ३-४ बार ८-८ औंस देनेसे उसी दिन शान्ति प्रतीत होती है।

(५) अग्निसे जलना—४ गुने गरम किये हुये जलमें बिहदानेको भिगो. उस पानीमें पट्टी भिगोकर अग्निसे जले हुये भागपर रखनेसे तुरन्त जलन शान्त होती है।

(६) मुखपाक—बिहदानेके लुआबसे कुल्ले करानेसे तीक्ष्ण पदार्थके सेवनसे उत्पन्न मुखपाक दूर होता है। अपचन या आमाशयके पित्त-प्रकोपसे मुखपाक हुआ हो तो कुल्ले करानेके अतिरिक्त शक्कर मिलाकर लुआबका उदरसेवन भी कराना चाहिये।

(२४) बीजबन्द

हिं० बीजबन्द. बनतनिया. कुलराज, निसोमाली। बं० मजुटी। फा० हलाग्वदक। पं० बन्दुके केमन। अं० Allseed. Cow-grass ले० Polygonum Aviculare

परिचय—वर्षायु खड़ा क्षुप। ऊंचाई १ से २ फुट। काण्ड कोमल. पानवाला. सुन्दर नालीदार। क्षुप लम्बाईमें सर्वत्र कभी बंध्याक्षुप। पान लगभग वृंतरहित सकुंड भल्लमाकार ½ से १ इञ्च लम्बे। पुष्प छोटे, हरे, सफेद या लाल चिह्न-युक्त, पत्रकोणमें गुच्छबद्ध। फल कवचयुक्त (Nuts), ३ कोनवाला।

उत्पत्ति स्थान—काश्मीरसे कुमाऊंतक ६००० से १२,००० फुट ऊंचाई तक। एवं उत्तर एशिया और यूरोप।

गुणधर्म—यूनानी मतानुसार बीजबन्द ग्राही, रक्तस्रावरोधक और ज्वरहर है। बीज सारक. मूत्रल और दाह, आमाशयमें वेदना, बस्तिपीड़ा और विसर्परोगमें लाभदायक है। मूलका उपयोग वेदना स्थानपर लेपकेलिए किया जाता है। इसका क्वाथ अतिसार और बालकोंका ग्रीष्मकालीन अतिसारपर अच्छा लाभ पहुँचाता है।

चीनमें इसके पञ्चाङ्गका उपयोग स्वेदल, छातीकेलिए बल्य. ग्राही, पौष्टिक और मूत्रल गुणकेलिए होता रहता है। यह सुजाकमें भी लाभप्रद है।

यूनानीवाले विशेषत बीजोंका उपयोग वीर्य पौष्टिक, स्तम्भनार्थ करते हैं।

प्रमेह, स्वप्नदोष, शीघ्रपतन और वीर्यके पतलापनको दूर करनेवाली ओषधियों के साथ बीजबन्दको मिलाते हैं।

(३५) बेंत

सं० वेतस, निचुल, वंन्जुल, अभ्रपुष्प, दीर्घपत्रक। हिं० बेंत, बैंत, ब० वेत्र, वेत। म० वेत। गु० नेतर। ता० अरिणी, मेल्लिसुप्पिरम्बु, निर्व्वंजी। ते० वेथम वेत्तम्, निरुप्रभ। क० वेत्त, हव्व। मला० चुरल, निर्वञ्जी, पुरम्पु। फा० बेंत, हज्जां। अ० खलाफ, सीरजा। अं० Chair-bottom Cane

ले० 1. Calamus Rotang
2 „ Viminalis
3 „ Tenuis.

परिचय—बहुवर्षायु, कांटेदार, सामान्यतः चढनेवालीवेलसदृश कोमल-वृक्ष। काण्ड अति कोमल, नलिकाकार, परिवेष्टक अंकुरयुक्त, वासकेसदृश पर्ववाला, काण्डत्वचा अतिदृढ। काण्ड, पान और पर्णवृन्त, आवरण आदि छोटे छोटे वक्रकाटेवाले। पान वासके पानके समान, पक्षाकार, एकान्तर पर्ण (दल-Leaflets) तीक्ष्ण नोकदार, वल्लमाकार, क्वचित् चौडे, समानान्तर शिरावाले, काटेदार रेंगनेवाले अंकुरयुक्त। आवरण कांटेदार, अंकुरयुक्त। वाल-मंजरी (Spadices), जो पुष्पावरणके भीतर रहती है, अनेक शाखायुक्त, काटेदार। पुपावरण (Spathes) के भीतर नर-मादा पुष्प। पुष्प छोटे, नरपुष्प चिमड़ा (चर्म सदृश), ३ खण्ड या ३ दांतवाले बाह्यकोषयुक्त। साभ्यन्तर कोषमें ३ पखडियां; ६ पुकेसर। स्त्री पुष्पमें बाह्यकोष नर पुष्पके समान, नीचे नलिका-कार, ऊपर ३ विभाग। गर्भाशयमें ३ खण्ड और ३ नलिकाग्रमुख। फल गोल, पतले कवचयुक्त। भारतमें स्थानभेदसे थोड़े-थोडे भेदवाली अनेक जाति हैं।

वक्तव्य—(अ) इसके रेंगनेवाले अंकुरका कुछ अंश शरीरमें घुस जाता है, तो उस स्थानपर पाक हो जाता है। अतः तुरन्त सूईसे या शस्त्रसे उसे निकाल देना चाहिये।

(आ)—भारतमें चीनसे बेंत आती है, वह अधिक कोमल और उत्तम जातिकी है। वह जलमें भीगनेपर भी नहीं सड़ता। कुर्सियोंका उसका उपयोग अधिक होता है।

१. Calamus Ratang—(सिलोनजाति)—उत्पत्तिस्थान-सिलोन, सी. पी दक्षिण, कर्णाटकमें। काण्ड अति कोमल। पान २०. से ३६ इंच लम्बे, बहुत छोटे वृन्तयुक्त, अनेक पर्णसह, पर्ण समानान्तरपर, समदल (Paripinnate)। निम्नपर्ण ८ से १२ इंच लम्बे, ऊपरके पर्ण क्रमश छोटे। नर वाल-मंजरी (Male Spadix) अति लम्बी, अंकुरयुक्त। नरपुष्पकी उपमंजरी

॥ से १ इञ्चकी मुड़ीहुई। मादापुष्पकी उपमंजरी लम्बी। फल लगभग ॥। इञ्च व्यासके।

२ Calamus Viminalis मलय जाति—उत्पत्तिस्थान- निम्न वंगाल, ओरिसा, वर्मा, आदामान। काण्ड दृढ़, मोटा। पान २ से ३ फूट लम्बे पर्णवृन्त सीधे, लम्बे, कांटेदार। पर्ण ४ से १० इंच लम्बे हल्के हरे। ३-३ के गुच्छोंमें। पर्ण विषमान्तरपर या गुच्छोंमें और ३ धार वाले। मंजरी ४ से ५ इंच लम्बी। कांटे कोमल ॥ से १। इंच लम्बे। फल ⅓ से ½ इंच व्यासके। पुष्पकाल वर्षाऋतु। फलकाल शीतऋतु। वंगालमें इस जातिको बड़ा बेत कहते हैं। इसकी प्राचीन संज्ञा C Fasciculatus है।

३ Calamus Tenuis (वृहद् वेतस, अ० Rattan Cane)—उत्पत्तिस्थान कुमाऊसे पूर्व भागमें, पूर्व वंगाल, सुन्दर वन. आसाम, सिलहट, चटगांव, और ब्रह्मदेश तथा कोचीन। काण्ड अति लम्बा, चढ़नेवाला, कभी कभी लम्बाई २००-३०० फूटतक। पर्व अंगुली सदृश मोटा। पान १॥ से २ फूट लम्बे, समदलयुक्त। वृन्त छोटा दल अति समीप समानान्तरपर। कांटे छोटे मुड़े हुये। निम्नपर्ण ८ से १२ इंच लम्बे। निम्न पुष्पावरण ६ से १० इञ्च लम्बा। नर पुष्प $\frac{1}{10}$ इञ्च लम्बा। फल आध इंच व्यासका, लगभग गोलाकार। पुष्पकाल और फल शीतऋतु। यह अधिक लम्बा होनेपर वंगालमें इसे छाचींबेत कहते हैं।

गुणधर्म—निघण्टु रत्नाकरके मतानुसार वेंत कसैला, शीतल, कड़वा और चरपरा है। एवं कफ, वात, पित्त, दाह, शोफ, अर्श, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, विसर्प, अतिसार, रक्तस्राव, योनिरोग, तृषा, रक्तविकार, व्रण, प्रमेह, रक्तपित्त, कुष्ठ और रक्तविकारका नाश करता है।

वेंतके अंकुर नमकीन, लघु, चरपरा, उष्ण और कफवातनाशक हैं। पान मलभेदक, कसैला, लघु, शीतल, कड़वा, चरपरा, वातकारक, रक्तप्रसादक, कफघ्न और पित्तशामक हैं।

बीज कसैला, मधुराम्ल, रूक्ष, पित्तकर, रक्तदोषहर और कफघ्न हैं।

राजनिघण्टुकारने रसमें चरपरा, मधुर विपाकवाला, भूतविनाशन और पित्तप्रकोपक कहा है।

डाक्टर कीर्तिकर आयुर्वेद सिद्धान्तानुसार रसमें उग्र दाहक (Pungent, acrid), कड़वा सुगन्धित (स्वादु), शीतल (Cooling), कीटाणुनाशक, कफवातहर और यकृत्पित्तके प्रकोपनाशक है।

मात्रा—वंगालमें तीसरी जातिके मूलका क्वाथ ५ से १० तोले। शाखाभका रस १ से २ तोला। दूसरी जातिका उपयोग बहुत कम होता है। दक्षिणमें प्रथम जातिका उपयोग वंगालकी ३ री जातिके समान होता है।

उपयोग—वेतका उपयोग भारतमें प्राचीनकालसे हो रहा है। चरकसहिता के भीतर वेदना स्थापन दशेमानिमें वञ्जुल, सूत्रस्थान २७ वें अध्यायमें शाकोंमें वेतस शाक, कल्पस्थान प्रथम अध्यायमें और सिद्धिस्थानके १० वें अध्यायमें वञ्जुल और वानीर, दोनों प्रकारके वेंतका पित्त शामक बस्ति द्रव्योंके साथ उल्लेख किया है। एव चरकसहिता और सुश्रुतसहिता दोनोंमें रोगोपचारमें भी वेतसका उपयोग किया है।

१ जीर्णज्वर—नल और वेंतके मूलका क्वाथ देते रहनेपर सेन्द्रिय विषसह जीर्ण ज्वर दूर हो जाता है।

२ रक्तपित्त—वेंतके मूलका क्वाथ शहद मिलाकर पिलाते रहनेमें रक्तपित्त विकार दूर हो जाता है।

३. ऊरुस्तम्भ—वेंतके पानोंका शाक विना नमक मिलाये खिलानेसे लाभ होता है।

४. शोथरोग—वेंतके कोमल शाखाओंका शाक जल और तैलसे पकाकर खिलाना लाभदायक है।

५. अलर्कविष—वेतसमूल और कुष्ठका फाण्ट करके पिलाते रहनेसे विषका दमन होता है।

६ योनिदाढ्यार्थ—वेंतके मूलके क्वाथसे योनिको धोते रहने और मूलको चन्दनके समान घिसकर लेप करते रहनेसे शिथिलता दूर हो जाती है।

७ मत्स्य विष—वेंतको जलमें घिस, घी मिला गरमकर लेप करनेसे मछलीके दंशका जहर दूर हो जाता है।

(३५) वेदमुश्क

सं० गन्धपुष्प, पीतपुष्प, नम्र, वानीर। हि० पं० वेदमुश्क। अ० खिलाफुल्न बलखी। फा० वेद-इ-बलखी। पुस्तु-ख्वाग्वाला। अं० Goat willow, Sallow. ले० Salix Caprea.

परिचय—छोटा वृक्ष, १५ से २० फूट ऊंचा। तना ३-४- फूट गोलाईका। पान लगभग लम्बगोल, पतनशील, एकान्तर, दांतेदार, २ से ४ इञ्च लम्बे, लगभग चिकने, ऊपरकी ओर न्यूनाधिक स्थानपर ऊँचा नीचा, नीचेकी ओर पिङ्गल रुएंदार। उपपान (Stipules) सामान्यत दर्शनीय, लगभग वृक्काकार। पुष्पागमन पानके पहले। पतनशील स्त्रीमजरी (Male Catkins) १ से १॥ इञ्च लम्बा, अतिमधुर सुगन्धयुक्त, पीले, वृन्तरहित, दृढ़, सघन मुलायम रुएंदार। पुष्पपत्र लम्बगोल, तीक्ष्ण, गहरे धूसर, लम्बे मुलायम रुएंदार। पुंकेसर २। पतनशील स्त्रीमंजरी छोटी। फल होनेपर गर्भाशय अधिक लम्बा। फली रुएंदार, वृन्तयुक्त।

उत्पत्ति स्थान—रोहिल खण्डमें और उत्तर सरहद्दपर बोये जाते हैं। मूल स्थान पश्चिम एशिया और यूरोप।

वक्तव्य—(अ) अंग्रेजीमें मृदु, लचीली शाखावालेको (Willow) और दूसरोंको Sallow कहते हैं। भारतमें ऊंचाई कम और पर्सियामें २५-३० फुट होती है। वेदमुश्क और Salix की अन्य जातियोंकी शाखाएं भी बेंतके समान होती हैं। इन शाखाओं की त्वचासे भी कुर्सी आदि बनते हैं। एवं बेंतके समान इसकी भी छडी (बेंतसे कुछ कम कोमल) बनती है। शाखाको बाफ देकर छाल निकाल लेते हैं।

(आ)—श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्यके मतानुसार प्राचीन आचार्योंका मत यह है। यह उत्तम ओषधि है) यूनानीमें इसका अत्यधिक उपयोग हो रहा है। वैद्योंको भी इसे प्रयोगमें लाना चाहिये।

रासायनिक संगठन—मुख्य द्रव्य सेलिसिन (Salicin) है, यह श्वेतरंग का कडवा शर्करामय, पौष्टिक और ज्वरहर है। आमवातिक ज्वर, पारीसे आनेवाले विषमज्वर, प्रतिश्याय और वातनाडियोंमें शूल आदिपर व्यवहृत होता है। मात्रा ५ से ३० ग्रेन।

इसके अतिरिक्त कापायाम्ल, मोम, वसा, शक्कर और गोंद आदि मिलते हैं। यह सेलिसिन प्राय सेलिक्सकी सब जातियोंमेंसे निकलता है। सर हूकरने इसकी १६० जातिका वर्णन किया है।

गुणधर्म—यूनानी मतानुसार वेदमुश्क पहले दर्जेमें शीतल और दूसरे दर्जेमें तर है। स्वादमें तेज कड़वा है। हृदयवल्य, सौमनस्यजनन, मस्तिष्क-पौष्टिक मस्तिष्कके लिए शीतल, कामोत्तेजक और मेध्य है। यकृत्प्रदाह, यकृत्-वेदना, तृषा, यकृत्पित्तप्रकोप और शिरदर्दमें उपयोगी है। पानोंका रस ग्राही, हाथ पैरोंका कम्प, मासपेशियोंमें दर्द, नेत्राभिष्यन्द और [illegible] वृद्धिमें हितावह है। फल यकृत्पित्तप्रकोप और चोट आदिसे नेत्रप्रदाह होनेपर उपयोगी है।

विशेषत: इसके फलोंका परिस्रुत जल (अर्क) और छालका क्वाथ उपयोगमें आता है। अर्क पित्तप्रकृतिके लिये अति गुणदायक है। पित्तज शिरदर्द, व्याकुलता, हृत्स्पन्दनवृद्धि आदिपर उपयोगी होता है। अर्ककी मात्रा ५ से १० तोले।

डाक्टर देसाईके मतानुसार वेदमुश्ककी छालग्राही, शीतल, ज्वरघ्न और दाहशामक है। पुष्प रुचिकर है। छालका क्वाथ विषमज्वर, पित्तज्वर, आशुकारी आमवातिक ज्वर और क्षयज्वरमे दिया जाता है। इसके सेवनसे अन्तर्दाह, शिरदर्द, छातीसे होनेवाला रक्तस्राव, साधोंका शोथ और वेदना सब कम हो जाते हैं। अर्क सेवनसे मद ज्वर और अपचनमें क्षुधा बढती है। अर्कसे हृदयकी धड़कन कम हो जाती है। नेत्राभिष्यन्द और शिरदर्दमें भी यह अर्क लाभदायक

है। फुफ्फुसोंसे होनेवाले रक्तस्रावपर इसकी लकड़ीकी राख (शहद या वासा स्वरसके साथ) दी जाती है। एवं इसे सिरकेमें मिलाकर अर्शके मस्सेपर भी लगाते हैं।

इसके अर्कका उपयोग-माणिक्य, पन्ना, मोती आदिकी पिष्टी बनानेकेलिए भी होता है।

(३६) वेदलैला

हि० वेद, वेदलैला, भैन्स, जलमाला। व० बोई शाकी, पानिजामा। आसाम, भे, भी। डेह० जन्दालु। काश्मीर–यिर। कुमाऊं–भैन्स, गंधभैन्स। म० वाच, वालुंज। औध–विल्सा लैला। पं० वाध, वदेलैला। सताल–गदामिंम्रिक। सिंध–बाध। ता० अत्तप्याले। मला० अत्तुपाला। क० निरञ्जी। ते० एटि-पाला। ओरिसावैसि, पानिजामो। ले० Salix Tetrasperma.

परिचय—पतनशील पत्रयुक्त मध्यम कदका सुशोभित वृक्ष। ऊंचाई २० से ५० फूट। काण्ड दृढ़, १० फूट गोलाईका। शाखाएं लगभग सीधी। छाल लम्बाईमें निकलनेवाली, नालीदार, खुरदरी। प्रारम्भसे छाल मुलायम रुंएदार। लकडी लाल रंगकी और नरम। पान २ से ६ इंच लम्बे, ॥ से १॥। इंच चौड़े, भल्लमाकार, नोकदार, दांतेदार, हरे, ऊपरमें चिकने, नीचे हल्के रंगके और नया होनेपर न्यूनाधिक रुएदार। पत्रवृन्त ७॥ से १८ मिलीमीटर ($\frac{1}{20}$ इंच) लम्बा। पुष्पागमन पानोंसे पहले। पतनशील पुमंजरी (Male Catkins) २ से ५ इंच लम्बे, अति कोमल, बहुधा मुड़ी हुई, मधुर सुगन्धयुक्त, वृन्तरहित, रुएदार पुष्पदण्डयुक्त। पुष्पपत्र स्त्रीपुष्पपत्रसे बडा लम्बगोल, पीताभ-धूसर। पतनशील स्त्रीमंजरी १ इंच लम्बा, छोटे पुष्पपत्रयुक्त। स्त्रीपुष्प एक साथ ३-४। बीजाशय लम्बा, रुएंदार। फल आनेपर पुष्प लगभग २ इंच लम्बा। फली चिकनी। बीज ४-६। पुष्पकाल फरवरीसे अप्रेल। फल काल मई (वैशाख) से सितम्बर।

उत्पत्तिस्थान—भारतके उत्तरके उष्ण और समशीतोष्ण प्रदेश-पंजाबसे सिक्किमतक, आसाम, बिहार, उत्तर बंगाल, नेपाल, हिमालयमें ७००० फूट ऊंचाई तक, दक्षिणमें महाबलेश्वर, त्रावणकोर, ब्रह्मदेश, सिंगापोर, सुमात्रा, जावा आदि। सिलोनमें नहीं है।

वक्तव्य—स्थान भेदसे इसकी ६ उपजातियां सर हूकरने दर्शायी है।

औषधमें उपयोगी अंग—छाल।

गुणधर्म—छालका क्वाथ कड़वा और ज्वरहर है। पुष्पोंका अर्क दाहशामक और शान्तिप्रद है, किन्तु इसका अर्क प्राय नहीं निकालते।

(३७) वेद मादा

सं० वञ्जुल। हि० वेदसादा। पुस्तु—वेद-इ-सियाह। पं० बिम, वुशन, चम्मा, चग्मा। काश्मीर-विविर। अं० Huntigdon Willow, White Willow ले० Salix Alba

परिचय—मुडन्त बडा वृक्ष। नूतन शाखा, रेशम जैसे रुएंदार। ऊंचाई ५० से ८० फूट। उपशाखाए पीली हरी (Olive green), पीली, लाल या बैंजनी। पान पतन शील, एकान्तर २॥ से ४ इंच लम्बे, सकडे-वल्लमाकार, नोकदार, नया होनेपर कोमल रुएंदार, प्राय नीचे श्यामवर्णका। पत्रवृन्त ७॥ से १२॥ मेण्टीमीटर ($\frac{1}{20}$ इञ्च) लम्बा। पुष्पागमन पानोंसे पहले। पतनशील पुंमजरी (Male Catkins) १ से २ इंच लम्बे। पुष्पपत्र लम्ब गोल, पीले। पुष्प सफेद-नीले। पुकेसर २। पतनशील स्त्रीमजरी-पुंमजरीसे कुछ (२ से ३ इंच) लम्बा, फली चिकनी, लगभग वृन्तरहित।

उत्पत्तिस्थान—उत्तर पश्चिम हिमालय और पश्चिम तिब्बत। यूरोप और एशियामें बोया जाता है। वर्तमानमें काश्मीरके रास्तेपर इसके लाखों वृक्ष लगाये हैं।

वक्तव्य—सेलिक्सकी सब जातियोंमेंसे इसकी लकडी विशेष मूल्यवान् मानी गई है। लकडी अति हल्के वजनकी अति दृढ है। इसमेंसे क्रिकेट बेट बहुत अच्छे बनते हैं। वेद मुश्कके समान इसके फूलोंमेंसे भी अर्क खिंचा जाता है।

रासायनिक संगठन—वेदमुश्कके समान इसमेंसे भी प्राभाविक द्रव्य सेलिसिन मिलता है।

औषधोपयोगी अङ्ग—छाल पान और पुष्प। विशेषत छालका क्वाथ, ताजे पानोंकारस और पुष्पोंका अर्क।

गुणधर्म—यूनानी मतानुसार वेदमादा पहले दर्जेमें शीतल और खुश्क। पुष्प पहले दर्जेमें शीतल और दूसरे दर्जेमें तर। वेदसादा दाहशामक, मस्तिष्क पौष्टिक, हृदयपौष्टिक, सौमनस्यजनन, मूत्रल वेदनास्थापक और संतापहर है। छालका क्वाथ ज्वर, तीक्ष्ण आमवात, वातरक्त, अतिसार, प्रवाहिका और उदरकृमि आदि रोगोंमें व्यवहृत होता है। व्रण धोनेमें भी यह उपयोगी है।

श्रीयादवजी त्रिकमजी आचार्य इसे चरकसंहिताकथित वंजुल (जलवेतस) मानते हैं। चरकसंहितामें वेदना स्थापन महाकषाय और आसवयोनिसार वृक्षोंमें वञ्जुलका उल्लेख किया है।

मात्रा—छाल क्वाथके लिए ॥ से १ तोला। पानोंका स्वरस १ से २ तोला। अर्क ५ से १० तोला।

उपयोग—पित्तप्रकोप, पित्तज्वर, रक्तविकार और वेदसादाके पानोंको बिछा कर उसपर रोगियोंको लेटानेसे और अर्क पिलानेसे शान्ति मिलती है। अतिसार, रक्तातिसार, प्रवाहिका और कामलामें ताजे पानोंका स्वरस या छाल का क्वाथ दिया है। जीर्ण यकृतावरोधज कामला और प्लीहावृद्धिपर भी इसके पानोंका रस दिनमें ३ बार पिलाया जाता है। एव कर्णशूल होनेपर पानोंके रसको निवायाकर कानमें डाला जाता है।

राजयक्ष्मामें हृदयकी धड़कन, व्याकुलता और रक्तस्राव, शीतला, रोमान्तिका, मधुरा, दाह तृषावृद्धि आदिपर वेदसादाका अर्क पिलाया जाता है। सामान्यतः वेदसादेका उपयोग वेदमुश्कके स्थानपर हो सकता है।

(३८) बेर

१. **सामान्य बेर**—सं० बदरी, कर्कन्धू, कोल, घोएटा, वक्रकएटक। हिं० बेरी, बैर, बदर। बं० कुल, बेसर। म० बोर। गु० बोरड़ी। फा० कुनार। अ० सिदर नबंक। मु० दोदरी। को० जनुमजन। सं० जोम-जनुम। खारवी-धनी। ओ० बडो-कोली, बोदोरी। ते० बदरी, बदरमु, रेगु, रेगु। ता० आदिदारम्, अत्तिरम, कोली। मला० बदरम्, बदरी। क० बदरी, बोरी, ककन्धू। कच्छी-बोएड़ी। अं० Indian Jujube ले० Zizyphus Jujuba.

परिचय—जिजाइफस=अरब्बी मैफ़ुफस शब्द परसे ग्रीक संज्ञा। जुजुब=अरब्बी फार्सी (मैफ़ुफ़न) नामके अनुरूप लेटिन संज्ञा। सामान्यत' काटेदार, लगभग पतनशील पानवाला, मध्यम ऊंचाईका वृक्ष। १ से २ फीट। ऊँचाई २० फीट। (बोये हुएकी ऊंचाई ३० से ५० फीट) शाखाएं चारों ओर फैली हुई। नये, तीक्ष्ण काटे दो दो होनेपर एक सीधा, दूसरा मुडा हुआ। कभी काटे बिल्कुल नहीं होते। पान ।॥ से २।। इच लम्बे, ।॥ से २ इच चौडे, अन्तर पर, लम्बगोल-अण्डाकार, गहरे हरे फूल हरा-पीला, २ इंच व्यासके, गुच्छोंमें या वृन्तरहित या शलाकायुक्त कलगीमें, अप्रिय बासवाले। पुष्प बाह्यकोषके ५ हिस्से। पखड़िया ५। तस्तरी १० खण्डकी। पुंकेसर ५। बीजाशय तस्तरीमें डूबा हुआ, २ खण्डवाला। बीजाशयनलिका २, बीचमें जुडी हुई। फल ॥ से १॥ इच व्यासका, गोल, मांसल या शुष्क, कठोर गुठलीवाला, पहले हरा फिर पीला, फिर लाल।

उत्पत्ति स्थान—भारतमें सर्वत्र। इसके नैसर्गिक (Spontaneus) और छाये हुए (Hortensis), ऐसेदो प्रकार हैं। बोये हुएकी ऊचाई, घेरा और पान आदिके नापमें वहुत अन्तर हो जाता है।

मध्यप्रान्तके एक वृक्षका घेरा जमीनपर २३ फीट, ५ फीट ऊचाईपर १६।॥ फीट और ऊचाई ८० फीट होनेका उदाहरणभी मिलता है। लकडी रक्ताभ,

कठोर, वार्षिक चक्रका अभाव। वजन १ घन फुटका ४३ से ५२ पौंड। इसमेंसे खेतीके औजार बनते हैं। फूल और पान रंग कार्यमें आते हैं। रेशमके कीडेको इसके पान खिलाते हैं। छालमें बहुत टेनिन (कषायद्रव्य) रहा है। लाख अच्छी होती है।

२ झड्बेर—सं० भूबदरी, अजाप्रिया, सूक्ष्मफला, बहुकण्टका। हिं० झाडबेरी, झडबेरी। बं० बनकुल, कुलगाछ। गु० चणीआबोर। म० भुई बोर। काठियावाड़। सिं० जगरा। कच्छी पली, चणीआबोर। ते० नेलरेगु। ता० कोरगोंडी। क० मुल्लुहानु, परपेले। फा० शबारका, कुनार। अ० मिरियाव। प० झडबेरी, मल्ला। ओ० बोयेर। ले० Zizyphus Nummularia (अर्थात् पान, फल आदि छोटे हो वह)। तीक्ष्ण कांटेदार झाडीकी ऊंचाई २ से ६ फीट।

मारवाड और मेवाडमें इसके ताजे और सूखे पानोंका चारा पशुओंको भी खिलाते हैं। इसके फल बालक अति प्रेमसे खाते हैं। छालमेंसे टेनिन मिलता है।

३ कटबेर—सं० घोण्टा, बदरिका। हिं० कटबेर। गु० गटबोरडी। काठि० गुटबेल, गुटबोरडी। म० काटे गुटी। को० स० कर्कट। खारवी केकोर ओ० बोट, घोण्टो। भूमिज-गोइट। डेहरा० भण्डेर, कठबेर। ते० गोट्टी। ता० कोट्टै, मुल्लुदुप्पै। मला० कोट्टा। क० कोट्टे। ले० Z Xylopyra.

कांटेदार झाडी या छोटा झाड, ऊंचाई ६ से १५ फीट। वृक्षपुराना होनेपर कांटेरहित। लकडी पीली-भूरी या लालभूरी, कठोर और सुंदर। वजन ५० पौंड प्रति घन फुट। छालमें टेनिन रहा है। इनका उपयोग चमड़ेको काला रग लगानेके लिये होता है। फलमें लगभग २०% टेनिन अवस्थित है। छाल और फलका उपयोग औषध कार्यमें होता है।

(४) राजबेर—सं० राजबदरी, मधुरफल, नृपश्रेष्ठ, पृथुफला। हिं० राजबेर, लम्बेबेर, पैवन्दी बेर। राज० पेमली बोर। बं० नारकूल। म० राजबोर, अमदाबादी बोर। गु० खारेक बोर, अजमेरी बोर, काशीबोर। अ० Lotophagi ले० Z Lotus यह वृक्ष मूल भूमध्यप्रदेशका है। भारतके बागोंमें फलोंके लिये बोते हैं। फल छुआरेके आकारका होता है। इस वृक्षमें लाख बहुत होती है।

प्राचीन आचार्योंने बेरके सौवीर (बड़े बेर), कोल (छोटे बेर), कर्कन्धु (कटबेर) और भूबदरी (झड़बेरी), ऐसे ४ भेद किये हैं। राजबदरको सौवीरमें गिनना चाहिये।

गुणधर्म—चरक संहितामें बेरको (रस और विपाक), मधुर, स्निग्ध,

भेदन, वातपित्तनाशक, तथा शुष्कफलको कफवात हर और पित्तसे अविरोधी कहा है। अन्य निघण्टुकारोंने शीतवीर्य, गुरु, शुक्रवर्द्धक, श्रमहर, हृद्य, तृषा-शामक, दाहशामक, क्षयनिवारक, बृंहण (मांसवर्द्धक) आमनाशक, ये गुण अधिक कहे हैं। राजबेरमें वृष्य और शुक्रल गुण अधिक हैं। फल खट्टा होनेपर पित्तवर्द्धक। झड़वेर मधुराम्ल, कफवातनाशक, पथ्य, दीपन, पाचन रुचिकर तथा पित्तप्रकोप दाह और शोषकानाशक है।

गुठलीकी गिरी कसैली, मधुर, शुक्रवर्द्धक, वल्य, वृष्य, वातहर, चक्षुष्य, पित्तशामक तथा कास, श्वास, हिक्का, तृषा, वमन और दाहकी नाशक है। पानकालेप ज्वरदाहका नाशक, विस्फोटशामक। छाल ग्राही है। अतिसार, रक्तातिसार, पेचिश, प्रदर और रक्तपित्तपर दी जाती है। फोड़ेपर पुल्टिस करके बाधी जाती हैं। छालका क्वाथकर उससे फूटे हुये फोड़े, जखम और सड़े हुये क्षत धोये जाते हैं।

मात्रा—मूलकी छाल ३ से ४ माशेका चूर्ण, काथके लिये ६ माशेसे १ तोला, पानोंका कल्क ॥ से १ तोला।

उपयोग—वेरका उपयोग अति प्राचीनकालसे आहार और औषधरूपसे हो रहा है। चरकसंहितामें उदर्दप्रशमन, विरेचनोपग, स्वेदोपग, इन दशेमानियों, फलासव ओषधि संग्रह तथा कषाय और अम्ल स्कन्धमें उल्लेख मिलता है। सुश्रुताचार्यने वातसंशमन वर्गमें कोल और वदर लिये हैं।

१. ज्वरमें दाह—सूखे या ताजे झडवेर २ तोलेको ३२ तोले जलमें उवाल चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर छान थोडी शक्कर मिलाकर पिलानेसे दाह, तृषा, व्याकुलताका ह्रास होता है। एवं पित्तज्वर भी कम होजाता है। विषम-ज्वरमें भी यह काथ दिया जाता है।

२. अतिसार—वेरके मूलकी छालका क्वाथकर उसमें मूंगका यूष बना-कर पिलानेसे अतिसार शमन हो जाता है। अथवा छालको वकरीके दूधमें पीस शहद मिलाकर पिलानेसे अतिसार और रक्तातिसार दूर हो जाते हैं। इसके साथ तिल मिला लेनेपर गुण सत्वर होता है। वेरके पानोंका चूर्ण मट्ठे के साथ देनेपर भी अतिसार शमन हो जाता है।

३. मदात्ययज दाह—वेरके कोमल पानोंको कूट जल मिलाकर मंथन करें। फिर जो झाग आता रहे, उसे शरीरपर मलते रहनेसे दाहका दमन होता है। यदि किसी अन्य हेतुसे स्थानिक दाह होता हो तो उसपर मर्दन करनेसे वह भी दूर हो जाता है।

४. उरःक्षत—क्षयरोगमें अथवा अधिक चोट आदि कारणसे थूंक और कफके साथ रक्त आता रहता हो, तो वेरकी लाख १-१ तोलेका क्वाथकर

उसमें ४ गुना पेठेका रस मिलाकर दिनमें २-३ वार पिलाते रहनेसे रक्तस्राव बन्द हो जाता है और छाती पुनः ठीक हो जाती है।

५ स्वरभेद—कण्ठ बैठ जानेपर बेरकी छालका टुकड़ा मुँहमें रखकर चूसते रहनेपर २-३ दिनमें आवाज ठीक हो जाती है।

६ मूत्रकृच्छ्र—बेरके कोमल अंकुर और जीरा मिला, घोट छानकर ठण्डाई पिलानेपर उष्णतासे रुका हुआ पेशाब साफ आजाता है।

७ नेत्रस्राव—उष्णताके हेतुसे अथवा रोहे (पोथकी) से अश्रुस्राव होता रहनेपर बेरकी गुठलीको जलमें घिसकर दिनमें २ वार अंजन करते रहें। इस तरह १-२ मासतक अञ्जन करनेपर नेत्रस्राव बन्द हो जाता है और रोहे भी दूर हो जाते हैं।

८ फोड़े—बेरके पानोंको पीस, गरमकर फिर पुल्टिस करके बाधते और वार वार बदलते रहनेपर पकनेवाला फोड़ा जल्दी पककर फूट जाता है।

९ विच्छूका विष—बेरकी गुठलीकी गिरी और पलासके बीजोंको समभाग मिला चूर्णकर आकके दूधमें ६ घण्टे खरलकर वर्ति बनालेवें। फिर इसे जलमें घिसकर लेप करनेसे विच्छूका विष उतर जाता है।

१० शीतला—शीतलाके विषको जल्दी बाहर निकालने और जलानेके लिये बेरके पानोंका कल्क ६-६ माशे और २-२ माशे गुड़ मिलाकर सेवन करानेसे दूसरे या तीसरे ही दिनसे शीतलामें शान्ति आने लगती है।

पशुओंको शीतला निकला हो, तो काठियावाड़में रेबारी लोग बेरकी छाल और पानोंका क्वाथकर छाछ मिलाकर पिलाते हैं।

११ प्रदर—बेरकी छालका चूर्ण ३-३ माशे सुबह शाम गुडके साथ देते रहनेसे श्वेतप्रदर (सफेद, पतला और उष्ण जल जैसा स्राव) और रक्तप्रदर, दोनों दूर होते हैं। झड़बेरके फलोंकी छालका चूर्ण गुड़ या शहद के साथ देनेसे भी लाभ हो जाता है।

१२ मुखपाक—पानोंका क्वाथकर दिनमें २-३ वार कुल्ले करानेपर मुख-पाक शमन हो जाता है। यदि आमाशयका पित्त तेज होनेसे मुखपाक हुआ हो तो पित्तशमनार्थ विरेचन और शामक ओषधि भी देनी चाहिये।

यदि रसकपूरवाली ओषधिके सेवनसे मुखपाक हुआ हो, मसूढ़े शिथिल हो गये हों, मुँहसे लार गिरती हो, तो छाल या पानोंका क्वाथ करके कुल्ले कराये जाते हैं।

(३९) वेला—कुन्द

स० कुंद, माध्य, सदा पुष्प। हि० वेला,-कुंद, कुन्द। बं० कुन्द। कुन्दचमेली। गु० कुंद, मोगरो। म० मोगरा। ओ० कोण्टा बेलो, ता०

मगरन्दं मल्लिगै। कोंकण कस्तूरी मलिगे। मल्य० कुंदम। कुरुकुट्टि मुल्ला, ते० कुंदमु, गुजरी। अं० Musk Jasmine. ले Jasmineem Pubeseens.

परिचय :—पुवे सेन्स रुएंदार। चढने वाली झाड़ी। छाल धूसर वर्ण की। लकडी सफेद। नई शाखा आच्छादित। पान अभिमुख, १॥ से ३॥ इञ्च लम्बे, ॥। से १॥ इंच चौड़े, लम्बे गोल, नोकदार, प्राय कण्टाग्र, दोनों ओर कोमल रुएंदार। पत्र शिरा मुख्य ४–६ जोडी। पत्र वृन्त ॥ इंच से कुछ छोटा सघन लम्बे रुएंसे आच्छादित। पुष्प सफेद, वृन्त रहित, अन्तिम मंजरीमें सघन। पुष्प बाह्य कोष ॥ इंच लम्बे, ॥ इच लम्बे दांत वाले। पुष्पान्तर कोष चिकना, ॥। इञ्च लम्बी नलिका युक्त। ६ से ९ खंड युक्त। गर्भ कोष १ या २ गोलाकार, ¼ इञ्च व्यास का पकने पर काला, पुष्प बाह्य कोषके दांतों से आच्छादित। पुष्प काल शीतारम्भसे वसंत का फल काल ग्रीष्म ऋतु।

उत्पत्ति-स्थान :—भारतके अनेक प्रान्तोंमें तथा ब्रह्मदेशसे चीन तक। बागोंमें अनेक प्रान्तोंमें बोया जाता है।

वक्तव्य :—जेस्मिन जाति समूहमें २०० से अधिक जाति उपजाति हैं। इनमेंसे आयुर्वेदने बहुत थोड़ी जातियोंका उपयोग किया है। जिनका उपयोग हुआ है। उनके नामभी प्रान्त भेदसे भिन्न होगये हैं। इस हेतुसे केवल नामपरसे भ्रांति होने की सम्भावना है। इस हेतुसे बेला–कुन्द, बेला (रायवेला) मालती, वासंती, स्वर्णजूही, सफेदजूही, स्वर्णचमेली, इनके चित्र तथा मालती और भिन्न जातिकी माधवीके चित्र भी दिये हैं। इस सम्बन्धमें जो दोष प्रतीत हो, वह विद्वानोंकी ओरसे सूचना मिलनेपर नये संस्करणमें सुधार लिया जावेगा।

आयुर्वेदिक गुण वर्णन भावप्रकाश आदि निघण्टुकारोंके मतके अनुसार दिया है, कदाच, इस ग्रंथमें दी हुई सञ्ज्ञा सदोष हो, तो वर्णन भेद हो सकता है। किन्तु नव्य चिकित्सा शास्त्रके अनुसारजो गुण वर्णन दिया है, वह लेटिन (Scumtipic) नामके अनुरूप दिया है।

गुणधर्म :—भाव प्रकाशके मत अनुसार कुंद, शीतल, लघु तथा शिरदर्द, विष और पित्त प्रकोप का नाशक है।

नव्य चिकित्सा शास्त्र दृष्टिसे कुंदके पुष्प उग्रताप्रद, कड़वा, सारक, पाचन, हृद्य, शीतल, वातशामक तथा पित्त प्रकोप, प्रदाह और रक्तविकारमें उपयोगी है।

दुष्ट क्षतपर पानोंकी पुल्टिस बांधने या पानोंका रस लगाते रहनेपर शोधन होकर रोपण हो जाता है।

वक्तव्य :—विशेष उपयोग रायवेलाके समान है।

(४०) बेला (गयबेल)

सं० वार्षिकी, मुक्त बन्धन, श्री पदी, षटपदानन्दा, । हि बेला. बेल, वार्षिकी, राय बेल, मतिया, वन मल्लिका । गु मोगरो । सी डोलर । म मोगरा फा. गुलेसुपदे, फम्बक । प चम्बा, मुग्रा । ओ बेलोफुनो, वानो मोली, मोल्लिका । ते बोडुडुमल्ले, गुण्डुमल्ले, ता चदविस, चेलुगम. मल्लिगै । मला चेरुपिक्कम, मल्लिका । क० चन्दुमल्लिगे गुण्डुमल्लिगे। अ समन, सोसन, यसमन ।

अ Arabian Jasmine, Lily Jasmine ले Jasminum Sambac

परिचय—ज स्मनम=अरबी यसमिन परमसज्ञा । सम्बाक फार्सी फम्बक परस सज्ञा । लगभग खडा शाखा युक्त गुल्म । कभी बेल के समान रहने वाली । शाखा रुएदार पात सामने सामने, १॥ से ५॥ इञ्च लम्बे और १ से २॥ इञ्च चौडे विभिन्न आकारके सामान्यत चौडा अण्डाकार या लम्बा गोला कार, नोकदार, नोकरहित या तीक्ष्ण नोकदार, अखण्ड, चिकना या लगभग चिकना पत्र शिरा ४ से ६ चौडा । पत्र वृन्त छोटा रुएदार । पुष्प श्वेत, अति सुगंधित एकाकी या सामान्यत ३ पुष्प युक्त (बोये हुये अनेक पुषमय) अर्थात पुष्प में पखडियों की ३ या अधिक तह, शाखाके अन्तमें मजरीमें । पुष पत्र रेखाकार आराकार । पुषवृन्त छोटा रुएदार । पुष्प बाह्यकोष लगभग ॥ इंच लम्बा, रुए दार ५ से ९ दातवाले । दांत रेखाकार-आराकार । पुष्पान्तर नलिका लगभग आध इञ्च लम्बी । पुष खण्ड नलिका जितने लम्बे । पक्वगर्भ कोष १-२ लगभग गोलाकार, काला, पुष्प वाह्य कोषके दातसे घिराहुआ पुष्प काल मईजून या ग्रीष्म और वर्षा ऋतु ।

उत्पत्ति स्थान—समस्त भारतके समग्र पृथ्वीके उष्ण कटिबन्ध प्रदेश । इसकी ३ जाति है । १ वार्षिकी (वर्षा के अन्त में पुष्प आने वाली) २ ग्रैष्मी (ग्रीष्म में पुष्पयुक्त) ३ अति युक्त (लघु पुष युक्त) नैसर्गिक की अपेक्षा बाग में लगे हुयेमें सुगन्ध अधिकतर है ।

गुणधर्म—भाव प्रकाशके मत अनुसार वार्षिकी रसमें कडवी, शीतवीर्य लघु, त्रिदोषहर, तथा कान, आख और मुखके रोगोंको दूर करने वाली है । इसके तेलमें भी यही गुण है ।

राजनिघण्टुकारने हृद्य, पित्तनाशक तथा कफ, वात विष, स्फोट. कृमि और आमको दूर करनेवाली ये गुण अधिक कहे हैं ।

यूनानी मत अनुसार पुष्प कड़वे और बे स्वादु हैं । एव मस्तिष्क पौष्टिक, विरेचन ज्वरहर, तथा वमन और हिक्काको नाश करता है ।

नव्यमत अनुसार पुष्प कड़वा, उग्रतादर्शक, शीतलताप्रद, विषघ्न, त्रिदोष नाशक, पित्तहर कण्डूघ्न नेत्र कर्ण और मुखरोगपर उपयोगी, चर्मरोग कुष्ठ और

क्षतों पर हितावह है ।

डाक्टर वामन देशाईके मत अनुसार वेला शोथहर,शोणितास्थापन, स्तन्य-नाशक, और गर्भाशय उत्तेजक है इसकी क्रिया गर्भाशय और स्तन्य पर होती है।

औषधोपयोगी अंग—मूल, पान, और पुष्प ।

उपयोग—वेलाका उपयोग प्राचीन कालसे होता है । अनेक प्राचीन काव्य-कारोंने इसका उल्लेख किया है ।

स्तन्य सुखाना—प्रसूताका स्तन पाक होना, सतान गुजर जाना, माता का रुग्ण होना या अन्य कारणसे दूधको सुखाना हो तो ४-४ घण्टे पर वेला के पुष्पको कुचिल, पुल्टिस वना, स्तन पर बांधते रहनेसे १–२ दिनमें वेदना शमन हो जाती है। और दूध सूख जाता है। स्तन पर सूजन हो तो उतर जाती है। फिर पुन पाक नहीं हो सकेगा ।

मासिक धर्म विकृति—मासिक धर्म असमय पर होता है। रज' स्राव कम होता है। और गर्भाशयमें दर्द होता हो, तो वेलाके मूल ३-३ माशेका क्वाथ दिनमें तीन बार देते रहनेसे ३ दिनमें मासिक धर्म की शुद्धि हो जाती है।

मुखपाक—वेलाके पानोंके फाण्टसे या काथ से कुल्ले करावें ।

व्रण वेदना—व्रणके पाक कालमें वेदना होनेपर वेलाके ताजे या सुखे पानोंको जलसे पीसकर बाधते रहने और २-२ घण्टे पर वदलते रहनेपर वेदना शमन हो जाती है और सूजन उतर जाती है ।

नाभिटलना—वेलाके पानोंका रस गोदुग्धमें मिलाकर पिलानेसे वमन होकर नाभि यथा स्थान आजाती है। फिर दस्तें लगना और उदर पीड़ा दूर हो जाते हैं। वमन होनेपर दूध भात या दूध दलिया खिलावें ।

(४०) ब्राह्मी ।

सं० ब्राह्मी, कपोतवंका, सरस्वती, सोमवल्ली। हिं० ब्राह्मी, जलनीम। बं० ब्रह्मी शाक। म० वाब। गु० वाम, कडवी नेवरी, जलतेवरी। काठि० कड़वी लुणी, कड़वी नाइडी। ता० ब्राह्मी, निरब्राह्मी। ते० संब्रामी चेट्टु। मला० ब्राह्मी। ओ० कृष्णपर्णी। उर्दू-जलनिम। राज० वाम। बम्बई-बाम, निरब्राह्मी। ले० Monlera Cuneifolia Michx

पुराने नाम—1. Herpestis Monnieria H.B &.K. 2 Gratiola Monniera Linn 3 Bramia Indica Lamk-Dict. I

परिचय—कुनीफोलिया शिरपर चौड़े तथा तलमें सकड़े पानवाली। जमीन पर चलनेवाली, रसदार, चिकनी वनस्पति। तना १ से ३ फीटतक लम्बा । गाठोंपर फिर मूलोत्पत्ति। शाखाएं अनेक, फैलनेवाली । पान अम्लोनियाके पानसे मिलते जुलते, सामने सामने, वृन्तरहित, लम्बगोल, मोटे, काले दागवाले,

चिकने, अखण्ड, ऊपर चौड़े, ॥ से ।॥ इञ्च लम्बे, पुष्प पत्रकोणमेंसे निकले हुए वृन्तपर, सफेद, हल्का नीला, या हल्का बैंगनी, एकाकी, ॥ से ।॥ इञ्च लम्बे । वृन्त ॥ इञ्च लम्बा । वाह्यकोष गहरे ५ विभागवाले, अभ्यन्तर कोषके ८ खण्ड, २ ओष्ठवाले । पुंकेसर ४ । परागकोष (Anther) नीलाभ-बैंजनी पराग रज (Pollen) सफेद । बीजाशय पीला हरा २ खण्डवाला । बीजाशय नलिका (Style) ऊपर में चौड़ी, पुंकेसर तन्तुसे कुछ मोटी, हल्की सफेद, कुछ मुड़ी हुई और ऊपर सूक्ष्म मुखवाली । डोडी ।।इञ्च लम्बी, अण्डाकार, नोकदार, अनेक बीजवाली, चिकनी, चमकीली। पहले हरी, सूखनेपर भूरे रंग की

उत्पत्ति स्थान पंजाबसे सिलोनतक सर्वत्र। इसी तरह यू० पी०, बिहार, बंगाल आदि सब उष्ण प्रदेशोंमें। ब्राह्मीका उपयोग मलाया और चीनमें भी होता है। मलायामें इसे 'ब्रेमी' और चीनमें 'पा ची टीन' संज्ञा दी है।

गुणधर्म—ब्राह्मी, रसमें कडवी, अनुरस कषैला मधुर, विपाक मधुर, शीतवीर्य, मूत्रल, सारक, लघु; हृद्य, बुद्धिवर्द्धक, आयुवर्धक, रसायन, स्वरप्रद और स्मृतिप्रद तथा कुष्ठ, पाण्डु, प्रमेह, रक्तविकार, विष, कास, शोथ और ज्वरको दूर करती है।

वक्तव्य—प्राचीन ग्रन्थोंमें ब्राह्मी और मण्डूकपर्णी, दो ओषधियोंका मिश्रण हो गया है। ब्राह्मी भिन्न भिन्न स्थानोंमें भिन्न भिन्न ली जाती है शास्त्रोक्त सच्ची ब्राह्मीका परिचय सरलता से हो सके, इसलिये परिचय विस्तारसे दर्शाया है।

सुश्रुतसंहिता चिकित्सा स्थान अध्याय २८ में ब्राह्मी और मण्डूकपर्णी, दोनोंका कल्प अलग अलग दिया है। इनमें ब्राह्मी में वामक गुण होनेसे इसका पचन हो जानेपर दोपहरको दुग्धादि सेवन करनेको तथा मण्डूकपर्णीमें भयंकर मादक और दाहक द्रव्य होनेसे इसे दूधमें मिलाकर लेनेका लिखा है। ब्राह्मी में वामक दोष होनेसे ब्राह्मीके रसको दूधके साथ नहीं मिलाना चाहिये। चरक-संहिताके चिकित्सित् स्थान दशवें अध्यायमें ब्राह्मीका उपयोग × अपस्मार रोगमें किया है, वहां घृत बनाकर पञ्चगव्य और शहद के साथ सेवन करने का विधान किया है। सुश्रुत सहितामें महाकुष्ठ पर कही हुई सुरामें ब्राह्मी मिलायी है; किन्तु किसी आचार्यने ब्राह्मी को दूधके साथ मिलानेका नहीं लिखा।

इसके विपरीत चरक संहितामें उदररोग चिकित्सामें मण्डूकपर्णी का शाक खानेका विधान किया है, एवं रसायन प्रयोगमें मण्डूकपर्णीका स्वरस दूधमें मिला कर सेवन करने का विधान किया है।

ब्राह्मीका उपयोग विशेषत मस्तिष्करोग और वातनाड़ीविकृति, अपस्मार, उन्माद, मस्तिष्ककी थकावट, स्मृतिनाश, वातनाडी विकारजन्य सुप्तिकुष्ठ—(Nervous Leprasy) आदि पर होता है। मण्डूकपर्णीको सुश्रुताचार्यने शाक वर्गमें लिया है और गुणधर्म दृष्टिसे रक्त विकार, पित्तप्रकोप, हृदयकी निर्बलता, गलत्कुष्ठ, प्रमेह, ज्वर, श्वास कास, अरुचि आदि रोगों पर हितावह

× "ब्राह्मी रस-वचा-कुष्ठ-शङ्खपुष्पीभिरेव च।
पुराण घृतमुन्मादालक्ष्म्यपस्मारपाप्मजित्॥"
"ब्राह्मी स्वरससंयुक्तं पञ्चगव्यमुदाहृतम्।"
"ब्राह्मीरस कुष्टरसं वचां वा मधुसयुताम्॥"

दर्शाया है। (सूत्र० ४६-२६२)* इस यादीमें मस्तिष्क विकृति नहीं आई है इस तरह दोनोंके गुणधर्ममें अन्तर है।

नव्य मतानुसार ब्राह्मीकडवी, उग्र, उत्तेजक, वामक, मृदुविरेचक, मूत्रल, रसायन, पौष्टिक, विषघ्न, ज्वरहर, शोथहर और कफघ्न है। मस्तिष्क और वात-नाड़ियोंकी विकृतिसे उत्पन्न चिरकारी रोगोंमें यह व्यवहृत होती है। जीर्ण उन्माद, अपस्मार, रक्तविकार, स्वरभंग, ज्वर और शोथ आदिको दूर करती है।

रासायनिक संगठन—इसके पानों में प्रभाविक द्रव्य, उडनशील तैल और क्षारीय द्रव्य ब्राह्मीन् है। इनके अतिरिक्त कुछ टेनिन, राल आदि मिलते हैं। तैल अल्कोहलमें मिल जाता है। ब्राह्मीन् क्लोरोफार्म और इथरमें घुलनशील है। ब्राह्मीन् रक्तवाहिनियोंका आकुचन और हृदयपेशीको उत्तेजित करके रक्त दबाव बढा देता है।

डाक्टर के सी बोस ब्राह्मीके सूखे पानोंका उपयोग हृदय क्रियाकी शिथिलता, मस्तिष्ककी निर्बलता, वातनाडियोंकी थकावट पर अति सफलता पूर्वक करते थे। इसमें रहे हुए ब्राह्मीन् द्रव्यका दुरुपयोग होनेपर विषक्रिया कुचिलासत्व (स्ट्रिक्निया) के सदृश दर्शाता है, तथापि कुचीलासत्वसे इसमें विशेषता है। यह उसके समान विषाक्त नहीं। कुचीला और कुचीलासत्वका सेवन दीर्घकालपर्यन्त होनेपर प्रतिफलित क्रिया होकर हानि पहुँचती है और प्रदाह उत्पन्न होता है। यह हानि इससे नहीं होती। इसके अतिरिक्त ब्राह्मी हृदयपर प्रत्यक्ष बल्य गुण दर्शाती है, तब कुचिलासत्व गौणरूपसे उत्तेजक असर उत्पन्न करता है।

वक्तव्य—नव्य मतानुसार ब्राह्मीमें उडनशील तैल रहा है, यह स्वरसमें आ जाता है, किन्तु क्वाथ, घृत, तैल आदि जिनको उबालकर तैयार करते हैं, उनमें नहीं आता। ब्राह्मीन् आदि द्रव्य तो क्वाथमें भी आजाते हैं पानोंको धूपमें सूखानेपर तैली द्रव्य उड़ जाता है। अतः पानोंको छायामें सुखाना चाहिए और हो सके तब तक ताजे पानोंका उपयोग करना चाहिये।

ब्राह्मी प्रयोग :—

१ ब्राह्मी घृत :—ब्राह्मी स्वरस ४ सेर, गोघृत १ सेर तथा वच, कूठ और शखावली, तीनोंको समभाग मिला जलके साथ पीसकर बनाया हुआ कल्क २० तोला लें। सबको मिला मंदाग्निपर घृत सिद्ध करें। मात्रा ६ माशेसे १ तोले तक दिनमें २ बार। सुबह रात्रिको शक्करमें मिलाकर दूधसे लेवें या

*"रक्तपित्तहराण्याहुर्हृद्यानि सुलघूनि च।
कुष्ठ मेह-ज्वर-श्वास-कासारुचिहराणि च॥"

भोजनके प्रथम ग्रासमें लेवें।

यह घृत मस्तिष्ककी थकावट, स्मरण शक्तिका ह्रास, अपस्मार, हिस्टीरिया उन्माद रोगको दूर करता है। आमवृद्धि, कफप्रकोप और विषको भी नष्ट करता है। अन्न खाने वाले बालक, युवा, वृद्ध सबके लिये अति हितावह है।

२ सारस्वत चूर्ण :—कूठ, असगंध, सैंधानमक, अजवायन, जीरा, शाहजीरा, सोंठ, कालीमिर्च, पाठा, पीपल, शंखावली, वच, इन १२ ओषधियों को समभाग मिलाकर चूर्ण करें। फिर उसे ब्राह्मीके रसकी ७ भावना देकर बार बार छायामें सुखावें।

मात्रा :—२ से ३ माशे दिनमें २ वार सुबह रात्रिको घी और शहदके साथ। पहले घी मिला लेवें फिर घी से दुगुना शहद मिलाकर चाट लेवें। यह चूर्ण उत्तम स्मृतिप्रद, दीपन-पाचन, अपस्मारहर और उन्मादनाशक है।

ब्राह्मी शर्वत :—ब्राह्मी स्वरस १ सेर और शक्कर २॥ सेर मिलाकर मंदाग्निपर शर्वत समान चासनी बना लेवें। फिर नीचे उतारकर तुरन्त छान लेवें। मात्रा १। से २॥ तोले जलके साथ। यह शर्वत मस्तिष्ककी निर्बलता, स्मरणशक्तिका ह्रास, शिरदर्द, चक्कर आना, उन्माद, हृदयकी निर्बलता, रक्तदवावका ह्रास और उन्माद आदिमें हितावह है।

इनके अतिरिक्त सारस्वतारिष्ट, ब्राह्म्यादि क्वाथ (चित्त भ्रम और रुग्दाह सन्निपातपर) ब्राह्मी वटी (हृदयकी रक्षा और मधुरापर) आदि प्रयोग शास्त्रमें मिलते हैं। ब्राह्मी वटीमें ब्राह्मीका गुण धर्म मिल जाता है, किन्तु प्रधान द्रव्य अनेक भस्में हैं।

उपयोगः—ब्राह्मीका उपयोग संहिता ग्रन्थोंमें मिलता है। चरकाचार्यने संज्ञास्थापनवर्ग, प्रजास्थापन दशेमानि तथा गर्भस्थापन द्रव्य संग्रहमें ब्राह्मीका उल्लेख किया है। चिकित्सत स्थानके पहले अध्यायमें रसायन प्रयोगोंमें ब्राह्मी मिलायी है। सुश्रुत संहितामें आयु और बुद्धि बढाने केलिये ब्राह्मी कल्प कहा है। इनके अतिरिक्त चरकसहिता, सुश्रुत सहिताके भीतर अनेक प्रयोगोंमें ब्राह्मीकी योजनाकी गई है। सुप्त कुष्ठपर कहे हुए त्रिफलादि चूर्ण में ब्राह्मी मिलायी है।

नव्य मत अनुसार ब्राह्मीकी मुख्य क्रिया मस्तिष्क और वातनाडियोंपर होती है। ब्राह्मीमें उत्तेजक गुण होनेसे मस्तिष्क अथवा वातनाड़ियोंके जीर्ण रोगोंमें स्मृतिनाश, उन्माद और अपस्मारमें दी जाती है। नये और प्रबल रोगोंमें यह नहीं दीजाती। उस अवस्थामें शामक और निद्राप्रद गुणयुक्त ओषधि खोरासानी अजवायन या अन्य देनी चाहिये। फिर रोगकी गति मंद होनेपर ब्राह्मी देनेसे पुष्टि और उत्तेजना मिलती है।

ब्राह्मीमें क्षुधाको मद करनेका दोष रहा है। इस हेतुसे इस के साथ दीपन ओषधिकी योजना करनी चाहिये। ब्राह्मी के साथ बचकी योजना प्राचीन आचार्योंने की है। ब्राह्मीमें उदर शुद्धिकर गुण नहीं है। इसलिये आवश्यकता अनुसार सारक ओषधि मिलानी पडती है। नाडी और हृदयकी गति शिथिल हो गई हो, तो कूठ या पेठेका रस देना चाहिये। अति मस्तिष्क श्रमसे आई हुई मानसिक थकावट, शारीरिक शिथिलता और अधिक बोलनेसे उत्पन्न स्वरभग, इन सबपर ब्राह्मीका उपयोग होता है।

१ आम ज्वर–ब्राह्मीके पानोंके १ तोले रसमें कालीमिर्च (और थोडी शक्कर) मिलाकर या पानोंके चूर्ण के साथ कालीमिर्च मिलाकर सेवन करावें। इससे मल-मूत्रकी शुद्धि होती है और उत्तापका ह्रास होजाता है।

२ बालकोंको ज्वर–ब्राह्मीका रस १ ड्राम (छोटाचिमच) पिला देनेसे जुकाम, खासी मलावरोध और उदरपीड़ासह ज्वर दूर हो जाता है।

३ सन्निपातमें निद्रानाश–ब्राह्मी १ तोलेका क्वाथ सुबह शाम देते रहनेसे रात्रिको रोगीको शान्त निद्रा आजाती है। मद २ प्रलाप होता हो, तो दूर होजाता है। हृदय और नाडीकी गतिभी सुधर जाती है मधुरा, निमोनिया आदिमें भी यह क्वाथ दिया जाता है।

४ उन्माद–(अ) ब्राह्मी रस १ तोला, शहद ६ माशे और कूठ २ माशे मिलाकर पिलावें। इस तरह दिनमें २ बार पिलाते रहने से एकाध मासमें मस्तिष्क सबल बनता है और उन्माद शमन हो जाता है। कितनेक चिकित्सक इसके साथ ३ माशे गो घृत भी मिलाते हैं।

(आ) ब्राह्मी रस १-१ तोला वच,कूठ,और शखावली १-१ माशा और शहद ६ माशे मिलाकर दिनमें २ बार पिलाते रहने से कफ प्रकोप, आमवृद्धि, अग्निमान्द्य, उदासीनता (शोकोन्माद Melancholia), उन्माद और अपस्मार सब दूर हो जाते हैं। जीर्ण अपस्मार और जीर्ण उन्माद के लिये यह प्रयोग अति हितावह है।

(इ) ब्राह्मी घृत खिलाते रहने परभी लाभ होजाता है।

५ स्मरणशक्तिका ह्रास–सारस्वत चूर्ण ३-४ मासतक खिलावें। तेज खटाई, अधिक मिर्च, शराब, तमाखू, स्त्रीसेवन और मानसिक चिन्तासे दूर रहे, तो कम हुई स्मरणशक्ति पुनः बढ जाती है।

६ स्वरभग–ब्राह्मीका रस, घी और शक्करके साथ थोडा थोडा दिनमें ३-४

घार चटाते रहनेसे जोरसे बोलने आदि कारणोंसे आवाज बैठी हुई हो, वह सुधर जाती है।

७ बालकोंका आक्षेप—ब्राह्मीके रसमें थोडा वच और कूठको घिसें। फिर पिला देवें। १ वर्षके बच्चेको १ माशा रस देवें। बच्चा बड़ा हो तो अधिक रस देवें। आवश्यकतानुसार २-२ घण्टेपर २-३ बार देनेसे आक्षेप शमन होजाता है। फिर उग्रता कम होनेपर दिनमें २ बार सुबह शाम कुछ दिनतक देते रहना चाहिये।

८ उपदंश विकार—उपदंशरोग जीर्ण होनेपर रक्तविकृत होता है। फिर स्थान स्थानपर ददौरे होते हैं। फोडे होजाते हैं। एवं तालुव्रण, चक्षुव्रण, नाड़ी व्रण, गुदशूक आदि उपद्रव उपस्थित होते हैं। उस लीन विषको जलानेके लिये ब्राह्मीरस १ तोलेमें शहद ६ माशे, घृत ३ माशे और कूठ १ माशा मिलाकर २-४ मास तक दिनमें २ बार देते रहनेसे विष जलकर रक्तशुद्धि होजाती है।

९. मसूरिका—शीतलामें नाड़ी अति मंद होगई हो तथा विष बाहर आना रुक गयाहो तो उसे बाहर लानेकेलिये ब्राह्मी रसमें शहद मिलाकर पिलाया जाता है।

१० आयु और बुद्धि केलिये—रसायन सेवनकी इच्छावालोंको चाहिये कि पहले स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन और वस्तिकर्म द्वारा देहको शुद्ध करें। फिर अन्नादि भोजनका त्यागकर शास्त्रमर्यादा अनुसार कुटी बनवाकर उसमें रहें। २४ घण्टे दिन और रात्रि कुटीमें ही रहना चाहिये। अतः शौच आदिका प्रबन्ध भी भीतर करना चाहिये। सामान्यत कल्प जनवरी फरवरीमें होता है। जब-तक वायु मंडलमें उष्णता न बढे, तब तक यह प्रयोग हो सकता है। यह २१ दिनका प्रयोग है। दिनमें १ बार प्रात काल ब्राह्मीका स्वरस सेवनकरें। प्रारम्भ में २-४ तोले। फिर शक्ति अनुसार बढावें। (शहद मिलाना हो तो साथमें मिला सकते हैं) औषध पचन होनेपर दोपहरको नमक रहित यवागू या दूध पीवें। अथवा दूधमें थूली या चावल मिलाकर सेवन करें। ७ दिनमें शरीर निरोगी और मस्तिष्क सबल होकर मेधाकी वृद्धि होती है। और ७ दिनतक प्रयोग करने पर स्मरणशक्ति विशेष प्रबल बनती है। तीसरा सप्ताह पूरा होनेपर प्रयोगका पूर्णफल मिलता है। रात्रिको क्षुधा लगे तब दूध, यवागू या दूध-भातका ही सेवन करना चाहिये।

११ शीतपित्त—जलनीम (ब्राह्मी) और काली मिर्च समभाग मिला १२ घण्टे ब्राह्मीके स्वरसमें खरलकर १-१ रत्तीकी गोलिया बनावें। फिर ४-४ गोली सुबहशाम जलके साथ देते रहनेसे नया और पुराना शीतपित्त रोग (पित्ती निकलना) १ सप्ताहमें दूर होजाता है।

वांस (४१)

पोलेवांस (मादा वांस)—स० वश, वेणु, त्वक्सार, कीचक, शतपर्वा। हि० वांस, पोले वास, कागजी वास, ध० वाश, वेउड। आसा, देववांस, न्यूवास, नल, म० प्र० कटग। म० वावू, वेळू। गु० वाश। मला० इल्लि, कम्बु। त० वोंजु, वोंगुवदेरु। ता० अम्वल, वोंगु। कना० विदरु। ओ० वियदो वोंसो, कोष्टा वांसो। अ० कसव। अ० Bamboo cane ले० Bambusa, Arundinacea-

परिचय—वाम्बुसा=भारतीय सज्ञा के अनुरूप नाम। रुडिनेसिया=वेंत या वंशी सदरा। तृण जाति का काटे दार ऊंचा गुल्म। सयुक्त काण्ड तेजस्वी हल्के हरे अनेक (समूह वृद्ध), ४० से ६० फीट आसाम में (१०० तक) ऊंचाई, व्यास ६-से ७ इन्च, पर्व युक्त। पर्व २० इंच तक लम्वे। भूमिस्थ वर्द्धनशील काण्ड गुच्छयुक्त पान ७ इंच लम्वे, रेखाकार-भल्लाकार अग्रभाग नोकदार, ४, ६, शिरा और काडाच्छादन चर्म सदृश, विभिन्न आकार के १२ से १६ इन्च लम्वा और ८ से १२ इन्च चौडा। पुष्प व्यूह (मिश्रमजरी) तुष (पुष्प पत्र—Florel glumas) ३ से ७। सवसे उतार १ से ३ नर अथवा नपुसक। पराग कोष पीला, नोकहीन, स्त्री केसर नलिका छोटा, दाने (चावल) ⅓ इच लम्वे, लम्वा गोल। पुष्प फल काल ग्रीष्मऋतु।

उत्पत्तिस्थान—भारत के अनेक स्थान, ब्रह्मदेश, सिलोन। प्रायः अनेक प्रान्तों में वोया जाता है। आसाम, वगाल, वंवई, विहार, मध्य प्रदेश, मद्रास, उडिसा, निजाम राज, त्रावणकोर और महिसुर से, यह अन्य प्रान्तों में भेजे जाते हैं।

वक्तव्य—वांस की कुछ जाति मद्रास और वंगाल में होती है। विशेप जाति आसाम और ब्रह्म देश में होती है। विना काटे वाली जातिया भी आसाम में होती है।

ठोसवांस—नर वास, कठवांसी, वासी, वशिनी, नरवांस, काराइल वास। म० नगोठ वेळू, वास, मला० अरिन का नाम, चेरिया मुला, ता० करनै, काल-मुगिल, मु गिला ते० चित्ति वेदुरु। गनिवेदरु, ओ० सालिम्वो वांसो, सनो-वासो। अ० Male Bamboo ले० Dendrocalamus Strictus

परिचय—डेण्ड्रोकेले मस=वेंत के सदृश। स्ट्रिक्टस=अति सीधा और सकडा। पतनशील, सघन, गुच्छमय, दृढ काण्ड युक्त गुल्म। काण्ड २॥ से ६ फूट ऊंचा और १ से ३ इन्च व्यासका, ठोस या छोटे विल युक्त। नया होनेपर नीला हरा, पकने पर हल्का हरा या पीला सा। पर्व सधि स्फीत निम्न पर्व संधियोंसे प्राय मूलोत्पत्ति पर्व १२ से १८ इच लम्वे। ऊपर की शाखा मुड़ी हुई। पान १ से

२ इञ्च लम्बे (शुष्क देश में) आर्द्र देशमें १० इञ्च तक लम्बे, । से १। इञ्च तक चौडे, कई जोडी शिरायुक्त। पुष्प लम्बी शाखायुक्त मिश्र मंजरीमें। सघन पुष्प मजरी १ इञ्च व्यास की। मजरी शाखा सामान्यत रुएंदार। पुष्प कोष अण्डाकार, अन्तभाग तीक्ष्ण काटेदार। पुंकेसर लम्बे उभडे हुये। पराग कोष पीले, चांवल ½ इञ्च लम्बे, अण्डाकार या लगभग गोल भूरा तेजस्वी। पुष्प-फल काल ग्रीष्म ऋतु।

उत्पत्तिस्थान—भारतके अनेक प्रान्त और जावा।

वंश लोचन—सं० वंशरोचन, वंश कर्पूर, तुगा क्षीरी, वांशी। म० गु० वंशलोचन। सौ० वांस कपूर। अ० फा० तवाशीर।

परिचय—पोले स्त्री जातिके वासोके भीतर रस संगृहीत होकर जम जाता है, वह वंशलोचन कहलाता है; पहले वर्मा, जावा और सिंगापुरसे अधिक वंशलोचन आता था। वर्तमानमें भारतमें वहुत कृत्रिम बनने लगा है। कृत्रिम और नैसर्गिकका भेद सरलतासे नहीं हो सकता।

वंशलोचनमें जितना सिलिसिकाम्ल हो उतना ही वह अच्छा माना जाता है। वंशलोचन नया नीली आभावाला होता है पुराना होनेपर आभारहित सफेद प्रतीत होता है।

सच्चा वंशलोचन श्वसनयन्त्रकी श्लैष्मिक कलाको पुष्ट बनाता है। जिससे उग्रता शमन होती है, और कफोत्पत्ति बद होती है।

वेल्थ आफ इण्डियाकार लिखते हैं कि बांस जाति समूह ३० हैं और जातियां (Species) ५५० हैं। इनमें १३६ जाति भारतमें ३९ ब्रह्मदेशमें, २९ आदामानमें, ९ जापानमें, ३० फिलिपाइनमें, शेष न्यूगिनीमें, और कुछ दक्षिण अफ्रीका और कुछ क्विन्सलेण्डमें होती है। हिमालयमें १२००० फीट ऊँचाई तक बांस होते हैं। ठोसबांसमें एक जाति Dendrocalamus giganteus है उसकी ऊचाई १२० फूट तक होती है। और पोले एक गुल्म रूप होता है। विशेषत. बांस सीधे ही बढते हैं किन्तु कोई कोई जाति वेलके समान दूसरे वृक्ष पर चढ़ जाते हैं। वासके जाति समूहोमें कुछ जातिक्षुप (शाक) जैसी छोटी और काष्ठ रहित कोमल होती है।

वासके संयुक्त कोण बहुधा गोल और कोमल होते हैं। उनकी वृद्धि बहुत वेग पूर्वक पोले वासमें २० इञ्च लगभग और ठोस बांसमें १५-१६ इञ्च प्रतिदिवस लगभग १ मास तक होती रहती है। एक काण्ड समूहमें इस प्रकारके सयुक्त वांस ३० से १०० तक होते हैं। इस समूहमें वर्षा ऋतुके प्रारम्भ में १० बड़े संयुक्त काड और ३० से ५० छोटे अकुर उत्पन्न होजाते हैं। सयुक्त काण्ड ५-६ वर्षमें सबल प्रोढ़ बन जाता है।

अनेक जातिके वांसोंमें फूल जीवन कालमें एक वार ही आते हैं। फिर इस वासकी मृत्यु थोडे ही समयमें होजाती है। पुष्प आनेमें सामान्यत २५ से ५० वर्ष लग जाते हैं। कुछ जातियोंमें पुष्प प्रति ३ वर्षमें और थोडी जातिमें प्रतिवर्ष पु प आते रहते हैं।

वासोंके सयुक्त काडोंके भीतर शर्करा आदि द्रव्योंका सग्रह होता है। इस हेतुसे इसपर जीवाणुओंका आक्रमण प्राय हो जाता है।

वासके चावलोंका उपयोग निर्धन लोग चावलोंके स्थानपर करते हैं। अंकुरों का आचार वनता है, किन्तु कभी कभी वह विष प्रकोप करता है।

रासायनिक पृथक्करण—वासके अकुरोंमें सायनोजेनेटिक ग्लुकोसाइड Cyanogenetic Glucoside) जो पचन होनेपर विषाक्त वायु उत्पन्न करता है या पचन कालमें ०३% हायड्रोसायनिकाम्ल (Hydrocyanic-acid) और २३% लोहचानाम्ल उत्पन्न करता है। अकुरके रसकी परीक्षा करने पर लगभग ० ३०% हाइड्रोसायनिकाम्ल और मुक्त लोहचानाम्ल १६% मिलने का घोस और चोपराने लिखा है।

गोंद—(Manna) यह जावामें वडे परिमाणमें उत्पन्न होते हैं। जिसमें शर्करा प्रधान द्रव्य मेलिटोज (Melitose) अवस्थित है।

वशलोचन—यह सिलिका प्रधान (Siliceous) रस सग्रह है। इसकी तह वासके पर्व सन्धिपर १ इञ्च मोटी जम जाती है। इसका गुरुत्व (Sp gr.) २ १६ से २ १९ और (Neodymiun) १ ११५ से १ १५० है। यह स्वादहीन और नीलाभ श्वेत होता है। इसमें सिलिसिक एसिड ९६ ९%, सेन्द्रिय द्रव्य Organic Matter १% तथा कुछ लोह तत्त्व, सुधा स्फटिका और क्षार द्रव्य मिलते हैं।

पोले वॉस—पृथक्करण करने पर २ ३% राख, सिलिका १·८%, उष्णजल में द्रवणीय ६%, गोंद प्रधान द्रव्य १९ ६%, केन्द्र प्रधान काष्ठौज युक्त द्रव्य ३० १%, और काष्ठौज (Cellulose) ५७ ६% होता है।

ठोस वास—राख २ १%, सिलिका १ ८%, पेण्टोसन (कार्वोहाइड्रेट) १९ ६%, लिग्निन ३२ २% और काष्ठौज ६० ८ होते हैं।

पर्वसंधि—मोसम के समय परीक्षा करने पर जलीय सत्त्व ९ ८%, वसा और सिक्थ १ ४%, अपक्वद्रव्य २५%, लिग्निन १७ ६%, काष्ठौज ४६ १% और राख ४ ५ होती है।

पर्व—मोसममें जलीय सत्व ८ ७%, वसा और सिक्थ १%, अपक्व द्रव्य १९ २%, लिग्निन १५ ३%, काष्ठौज ५५ ८%, और राख ३·९ होती है।

चांवल—जल ११%, श्वेतसार ७३%, पोषक द्रव्य ११ ८%, तेल द्रव्य ० ६%, रेषे १ ७% और राख १ २% मिलती है।

गुणधर्म–बांस भावप्रकाशके मत अनुसार रसमें मधुर, अनुरस कषैला, शीतवीर्य, सारक, वस्तिशोधन, छेदन, कफहर, पित्तशामक, तथा कुष्ठ, रक्तविकार. और व्रणशोथ आदिको दूर करता है।

बांसके अंकुर–रस और विपाकमें चरपरा, रूक्ष, गुरु, सारक, अनुरस कषाय, मधुर, कफहर, विदाही और वातपित्त कर है। बांसके चांवल रसमें कषैला विपाक चरपरा, सारक, रूक्ष वातपित्तकारक, उष्णवीर्य, मूत्रशोधक और कफनाशक है।

वंशलोचन रसमें स्वादु, शीतवीर्य, अनुरस कषाय, वृंहण (देहकी सब धातुओंके वर्द्धक) कामोत्तेजक, वल्य, तथा तृषा, कास, ज्वर, श्वास, क्षय, पित्त, रक्तविकार, कामला, कुष्ठ, व्रण, पाण्डु, वातरोग और मूत्रकृच्छ्रको जीतनेवाला है।

वंशलोचन दाह, शुष्क, कास, क्षय, जीर्णज्वरपर निर्भय और उत्तम औषध निर्णित हुई है। इस हेतुसे भारतके प्रत्येक प्रान्तों और ग्रामोंमें वशलोचन प्रधान सितोपलादि चूर्णका उपयोग सफलता पूर्वक हो रहा है।

सुश्रुतसहिताकारने वांसके अकुरको कफ और वायुको प्रकुपित करने वाला कहा है।

यूनानी मत अनुसार शीतल और रूक्ष (जला हुआ उष्ण और रूक्ष लेखन तथा मूत्र और आर्तवजनन। वंशलोचन तीसरे दर्जेमें शीतल(मतान्तरमें) दूसरे दर्जेमें शीतल) और रूक्ष, हृद्य, मनको प्रसन्न करने वाला, उष्ण यकृद्-बलदायक, सग्राही, तीव्र शीत जनन और रूक्षण है।

मूल पौष्टिक है। जलाकर दाद पर लगाया जाता है। मसूढ़ेसे रक्तस्रावको हरता है, तथा सधोंकी वेदनाको दूर करता है।

पान रज स्रावी है। आंखोंमें धोनेमें उपयोगी है। कास, कटिवेदना, अर्श, पित्तप्रकोप, सुजाक और ज्वरको कम करता है। पुष्पोंका रस कानोकी वेदना और बधिरतापर कानोंमें डाला जाता है।

वशलोचन वेस्वादु है। दाह, पित्तप्रकोप, तृषा, चक्षुप्रदाह (नेत्राभिष्यन्द), ज्वर, आमाशय प्रदाहपर उपयोगी है। जलाया हुआ चूर्ण फिरंग, तृषा, ज्वर और आमाशय प्रदाहपर उपयोगी है, किन्तु कब्ज करता है।

नव्य मतानुसार काण्ड और पान खट्टे उग्रता उत्पादक, कड़वा, शीतल, सारक तथा कफप्रकोप, दाह, रक्तविकार, पित्तविकार, श्वेतकुष्ठ, प्रदाह, मूत्रदाह जख्म, और अर्शपर उपयोगी है।

अ कुर—उष्णता दर्शक, दाहप्रद, सारक और मूत्रावरोधपर उपयोगी है। दाह कारक और कफवर्द्धक है।

बीज (चावल-यव) उम्रताप्रद, मधुर, बृंहण, वृष्य, विषघ्न तथा पित्तप्रकोप और मूत्ररोगपर उपयोगी है।

वंशलोचन मधुर, शीतल, उम्रताप्रद, सुगन्धयुक्त, पौष्टिक, वृष्य, मलावरोध-कारक तथा रक्तविकार, क्षय, कास, श्वास, ज्वर, कुष्ठ, कामला, पाण्डु, मूत्रा-वरोध और दाह रोगमें उपयोगी है।

उपयोग-वांस और वंशलोचनका उपयोग आयुर्वेदके संहिता ग्रन्थोंमें प्रतीत होता है। चरकसंहिताकारने ग्रन्थि विसर्पमें वांसके पान और क्षय, कासपर वंशलोचनकी योजनाकी है। सुश्रुत संहिताकारने वांसके चावलोंको आहार वर्गमें स्थानदिया है। एवं महाकुष्टपर इसका प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त नेत्ररोग, आधाशीशी, विषप्रकोप, क्षय और कासपर उपयोग किया है।

(१) जीर्ण ज्वर और दाह-वंशलोचन और गिलोयसत्व ४-४ रत्ती और छोटी पीपल २-२ रत्तीका चूर्ण शहदके साथ मिलाकर दिनमें ३ वार देते रहनेसे अग्नि मांद्य और दाह जीर्ण ज्वर दूरहो जाता है।

(२) अर्श-वांसके पानोंके क्वाथमें अर्श रोगीको बैठानेसे वेदना शान्त होती है।

(३) फुफ्फुसक्षत-तीव्र गंधद्रव्य क्षय और अत्यधिक परिश्रम आदि कारणोंसे उर क्षत हो जाता है। उसपर वंशलोचन ४-४ रत्ती दिनमें ३ वार घी और शहदके साथ देते रहनेसे क्षत शुद्ध होकर भर जाते हैं। आचार्योंने इसके लिये वंशलोचन प्रधान सितोपलादि चूर्ण सेवन करनेका विधान किया है।

(४) त्वचा और रक्त में दाह-वांसकी छालका क्वाथ शहद मिलाकर दिनमें २ बार ३ दिनतक पिलानेसे दाह शमन हो जाता है। शरावजन्य दाह, विषप्रकोपज दाहमें भी यह हितावह है।

(५) मूत्रावरोध-चावलके धोवनमें वांसकी राख और शक्कर मिलाकर पिला देनेसे मूत्र शुद्धि होजाती है।

(६) पारदविष-दूषित रस कपूर आदिके सेवनसे पारद विष उत्पन्न हुआहो तो वांसके पत्तोंके रसमें शक्कर मिलाकर पिलावें।

(७) श्वानविष—(अ) कुत्तेके काटने पर वांसकी जड़को दूधमें पीसकर पिलानेसे उत्तान विष जलजाता है, और लीनविष पचन हो जाता है।

(आ) वांसके मूल और अकोलको गोदुग्धमें घिसकर रोज सुबह १५ दिन पिलानेसे लीनविष जलजाता है। और उत्तान विष वमन होकर निकल जाता है।

(८) नया सूजाक—वंशलोचन, शीतलमिर्च, नागकेशर, और छोटी इलायचीके दाने समभाग मिलाकर कपड छान चूर्ण करें। उसमें से १॥ से

३ माशेके साथ ५-५ बूंद चदनके तेलमें मिलाकर प्रात. सायं देते रहनेसे ३ दिनमें मूत्र वेदना दूर होती है और सुजाकका दमन हो जाता है।

वक्तव्य :—भोजनमें रोटी, घी, शक्कर, बहुत थोड़ी दाल देवें, नमक कम देवें, दूध न देवें। यह रोग दब जानेपर शिलाजीत प्रधान या दूसरी ओषधि लम्बे समय तक लेकर जहरको जला देना चाहिये। अन्यथा जीवनपर रोग की जड रह जायगी।

(९) पुराना जीर्ण सुजाक :—बांसके पान और अनन्त मूल ६-६ माशे मिला जोकुटकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल रहनेपर छान ३-४ माशे शक्कर मिलाकर प्रात' सायं २–३ सप्ताह या अधिक समय तक पिलाने से लीन विष जलकर सुजाक दूर हो जाता है।

(१०) बहुमूत्र —बांसके पानोंका फाण्टकर दिनमें जलके स्थानपर पिलाते रहनेसे आमाशय और मूत्र संस्थानमें आई हुई उग्रता तथा दाह, तृषा शमन होकर बहुमूत्र दूर हो जाता है।

वक्तव्य :—घी, तेल, मिर्चका सेवन मर्यादित करना चाहिये। यकृत् निर्बल होनेपर अधिक घृत तैल सेवन किया जायगा, तो बार बार थोड़ा थोड़ा मूत्र त्याग होता रहेगा। किसी ओषधिसे लाभ नहीं हो सकेगा।

(११) छोड़ जमना :—गर्भाशयमें गर्भ चिपक जानेपर ५ तोले बांसकी गांठोंका १ सेर जलमें चतुर्थांश क्वाथ करके छान लेवें। उसमें १ माशा कच्ची फिटकडी और २ तोले गुड मिलाकर रोज सुबह पिलाते रहनेसे ३ से १० दिन के भीतर शुष्क गर्भ निकल जाता है।

वक्तव्य :—(अ) आवश्यकता अनुसार गर्भाशयपर तैलकी मालिश करके रोज सेक किया जाता है।

(आ) भोजन गुड और घी प्रधान देते रहनेसे सत्वर कार्य हो जाता है।

(इ) गर्भपात हो जानेपर सोया और सोंठ ६–६ माशेसे १–१ तोला तक का रोज क्वाथकर २ तोले गुड मिलाकर एक सप्ताह तक पिलाते रहनेसे गर्भाशयमें चिपका हुआ दूषितद्रव्य निकल जाता है। और लीन विष गल जाता है। फिर गर्भाशय शुद्ध और सबल हो जाता है।

(१२) आंवल रुक जाना :—प्रसव होनेपर मक्कल शूल होने और आंवल रुक जानेपर २ तोले बांसोंकी गांठोंका क्वाथ २ तोले गुड मिलाकर पिलाया जाता है। आवश्यकतापर पुनः २–३ घंटे बाद दूसरी बार पिलाया जाता है।

(१३) बालकोंकी सूखी खांसी :—वंशलोचनका चूर्ण शहदके साथ मिला कर दिनमें ३–४ बार चटाते रहने या बांसकी गांठोंका घस्सा देनेसे खांसी शान्त हो जाती है।

(४३) भांग

भांगः—सं० भंगा, सिद्धि, गंजा, विजया, बहुवादिनी, मातुलानी। हि० भांग, भंग। बं० भां, सिद्धि। गु० म० भांग। काश्मीर—बंगी। फारसी बंग, दरख्ते किन्नाव। अ० क़ुजब आलम। क० भंगी गिड। मला० चेरु कचव, कचव चेट्ट। ता० बांगी। ते० बांगीयकु। अं० Hemp ले० Cannabis Indica (नैसर्गिक) और Cannabis Sativa (बोयी हुई)

गांजा-सं० मातुलपुत्रक, सम्बिदामंजरी, उग्रा, मादिनी, गर्भपातिनी, निद्राजननी। हिं० बं० म० गु० ता० गांजा। C Indica

परिचय—सेटाइवा=बोयी हुई। वर्षायु गन्धदार, शाखा वाला, खड़ाक्षुप। ऊंचाई ३ से ८ फीट। मादा क्षुप, नर क्षुपकी अपेक्षा अधिक ऊंचा। पान सामने सामने, ऊपरमें अन्तर पर, ३ से ८ इंच व्यासके, नीचे ५ से ११ हिस्से ऊपर १ से ३ हिस्से, हिस्से दांतेदार, ऊपर सकड़े, हथेली की अंगुलियों के समान नसवाले, लम्बे वृन्तसह। उपपान २ पीछे। पुष्प छोटे, हरे, नर-मादा अलग अलग क्षुप पर। पुष्पपत्र ऐंठे हुये। नर फूल पत्र कोणकोणमें से निकली हुई, तुर्रे जैसी पुष्प रचनामें। पुष्प वाह्य कोषके पत्र ५ ऊपर ऊपर। पुंकेसर ५ प्रारम्भिक स्त्री केसरका अभाव। मादा पुष्प पत्रकोणमें कलगी जैसी रचनामें। वाह्यान्तरयुक्तकोप (Perianth) उज्वल। बीजाशय वृन्तरहित, १ कोषयुक्त।

उत्पत्तिस्थान—मध्य एशिया और हिमालय में नैसर्गिक। भारत के अनेक प्रान्तों में बोयी जाती है। एलोपैथीवाले यूरोपके बागोंमें बोयी हुई भांगमें से सत्व निकालते हैं।

मादा क्षुपमें मंजरी (पुष्पांकुर) को फलित होनेके पहले तोड़ लीजाती है, उसे गांजा कहते हैं। नर और मादा क्षुपोंके फलित पुष्प पानको भांग कहते हैं। पुष्पोंमें जब फल (बीज) की उत्पत्ति होती है, तब नशा लानेकी शक्तिका ह्रास होजाता है। इन क्षुपोंके शाखाकी दरार पान और फूलों पर रस (गोंद) जम जाता है, उसे चरस कहते हैं। इस तरह गांजा, भांग और चरस, तीनों एकही क्षुपमें उत्पन्न होते हैं।

गुणधर्म—भांग रसमें कड़वी, उष्णवीर्य, ग्राही, दीपनी, पाचनी, रुचिवर्द्धक लघु तीक्ष्णा, पित्तला, हर्षजननी, शोकनाशिनी, मोहकरी, मदकारी बकवाद करानेवाली, निद्राप्रद, कामोत्तेजक और कफवातनाशक है तथा अग्निमान्द्य, अजीर्ण वृक्कशूल अर्श, ज्वर, पूयमेह, क्षयकास, विसर्प, धनुस्तम्भ, विशूचिका, मदात्यय, उन्माद, नपुंसकता, आक्षेप, स्त्रियों का शिरदर्द, हिस्टिरिया, रक्तप्रदर, रज शूल, मानसिक निर्बलता और आधाशीशी आदि रोगोंको दूर करती है।

गांजा अग्निप्रदीपक, तृप्तिकारक, बल्य, कामोत्तेजक, विचारोंकी सृष्टि

उत्पादक, निद्राप्रद, गर्भपातक, विकाशी, वेदनाशामक, आक्षेपहर और मादक है तथा ज्वर, विष, पागल कुत्तेका विष, बाह्यायाम, अन्तरायाम, प्रबल विशूचिका, मदात्यय, शूल, अम्लपित्त, अग्निमान्द्य, रक्तप्रदर, प्रसववेदना, शिरदर्द, कालीखांसी, क्षयकास, शुष्ककास, कम्प, नृत्यवात, हिस्टीरिया, निद्रानाश और उन्माद आदि रोगों को दूर करता है।

डाक्टर देसाईने लिखा है कि "गांजेकी क्रिया मुख्य मस्तिष्क पर होती है। गांजा उत्तेजक, वेदनाशामक, शांतिकारक, क्षुधावर्द्धक, पित्तस्रावी, मूत्रजनन, आनन्दप्रद, श्लैष्महर, निद्राप्रद, रक्तस्थापन, आक्षेपहर, गर्भाशयसंकोचक, बल्य वाजीकर और त्वचाकी चेतना कम करनेवाला है। गांजासे प्रारम्भमें न्यूनाधिक उत्तेजना मिलती है। किन्तु मात्रा पूरी होनेपर नशा आता है। त्वचा शून्य होती है। समझ शक्तिका ह्रास होता है, पैरोंमें शिथिलता आती है। नेत्रकी कनीनिका विकसित होती है। नाडी तेज होती है और रोगीको गाढ़ सुषुप्तिकी प्राप्ति होती है। उठने पर अति क्षुधा लगती है। अफीमसे निद्रा आनेके पश्चात् जागनेपर आलस्य आता है ऐसा गांजासे नहीं होता।

"गांजामें वेदनाशामक धर्म अफीम से कनिष्ट कोटिका है। शान्तिकारक धर्म अति प्रबल है। गांजासे मूत्र परिमाण बढ जाता है। वाजीकर धर्म अनेक बार स्पष्ट प्रतीत होजाता है। नाडीकी क्रिया निश्चित नहीं होती। विशेषत तेज होती है; तथापि कभी मन्द भी होजाती है। आक्षेप आना और मांसपेशियोंमें ऐंठन आना, इन दोनोंका प्रतिबन्ध और शमन करनेका गुण दृष्टिगोचर होता है। फिरभी अफीमसे कम है। गांजासे क्षुधा प्रदीप्त होती है तथा पित्तोत्पत्ति अधिक होती है। अधिक दिनों तक गांजाका सेवन कराया जाय तो भी पाचन क्रिया नहीं बिगड़ती। अन्त्रके भीतर श्लेष्मा (आम) कम होना, पित्तस्राव बढ़ना, और अन्नका पचन अच्छा होना, इन तीन गुणोंकी प्राप्ति होनेसे मलका पतलापन कम होता है। फिरभी अफीमके सदृश मलावरोध नहीं होता।"

"गांजासे वृत्ति आनन्दमय बनती है। सब क्रिया नियमित होती है ऐसा रोगीको भासता है। त्वचाकी ज्ञानग्राहक शक्ति अति कम होती है। बडी मात्रा देनेपर उतनी शून्यता आजाती है कि, दांत बिना पीडा हुये निकाल सकते हैं या साधारण अस्त्र चिकित्सा कर सकते हैं।

"गांजा गर्भाशयको उत्तेजित और आकुंचित करता है। अर्गटसे जिस तरह गर्भाशयको शक्ति मिलती है, उसी तरह गांजेसे भी मिलती है। किन्तु गांजेकी क्रिया अर्गटके समान अधिक समय नहीं टिकती। गांजेकी गर्भाशयके ऊपर प्रत्यक्ष क्रिया होती है तथा मस्तिष्क केन्द्रपर क्रिया होकर परम्परा क्रिया भी होती है। गांजेसे किसी भी प्रकारकी हानि नहीं होती। गांजेसे मृत्यु

होने का उदाहरण नहीं मिला।"

"भागका गुणधर्म भी गाजेके समान है, किन्तु उसकी मुख्य क्रिया आमाशय और अन्त्रपर होती है। भागमें ग्राही गुण गाजेकी अपेक्षा अधिकतर है।"

डाक्टर राधागोविदकर लिखते हैं कि "गाजाका समग्र गुण चरसपर अवलम्बित है। यदि उस क्षुपसे चरस निकाल लिया हो तो गाजा अधिक गुणदायी नहीं हो सकेगा गाजेकी उत्तेजन क्रिया मस्तिष्कपर विशेष और रक्त-सचालन यन्त्रपर अल्प प्रतीत होती है। चरस, गाजा या भागका सेवन करने पर शरीर और मन उत्तेजिक होते हैं। अन्त करण प्रफुल्लित और हर्पित होता है। दुश्चिन्ता दूर होती है, क्षुधा प्रदीप्त होती है और कामोत्तेजना होती है। मात्रा अधिक लेनेपर मादक गुण उपस्थित होता है। मत्त व्यक्ति वाचाल होता है, गान करता है घूमो मारता है, खूब हँसता है या भोजन करना चाहता है। कभी कभी मासपेशियोंके खिंचावसह विचार शून्यता (Catalepsy) आ जाती है। फिर उत्तेजना शमन होकर सुपुप्तिकी प्राप्ति हो जाती है। निद्रा भग होनेपर शिर दर्द, ग्लानि, उबाक, क्षुधामान्द्य, मलावरोध आदि कोई विकार नहीं होता। मात्र जिह्वा और सारा शरीर शुष्क सा भासता है।"

"गाजेकी उपर्युक्त क्रियाका पर्यालोचन करनेपर विदित होता है कि, मस्तिष्कपर दो प्रकारकी प्रतिक्रिया प्रकाशित होती है। एक प्रकार प्रलाप और मोह या विविध विचार सृष्टि, फिर दूसरी क्रिया गम्भीर निद्रा। अल्प मात्रामें सेवन करनेपर पहले आनदमय विचार उत्पन्न होता है तथा साथ साथ पेशियोंकी सचालन प्रवृत्ति सवल वनती है। किसी किसीको समय ज्ञान और स्थानिक दूरत्वके ज्ञानका लोप हो जाता है। स्पर्शशक्तिकी जड़ता उपस्थित होती है और समस्त शरीरमें स्थान स्थान पर झनझनाहट और आशिक स्पर्श लोप हो जाता है तथा कनीनिका प्रसारित होता है।"

गाजा और भागके सेवनसे श्वसनक्रिया तेज या मद हो सकती है। नाड़ी पर इसकी क्रिया स्थिर नहीं है। सामान्यत पहले नाड़ी तेज फिर मद होती है। किन्तु कभी कभी इसके विपरीत भी गति होती है। इससे पचनक्रिया सवल वनती है। पैशिक सचालन अवस्थामें शारीरिक उत्ताप बढता है और निद्रावस्था में घटजाता है।"

"गाजा और चरसका विशेप उपयोग धुम्रपानमें और भागका उपयोग बहुधा ठण्डाई रूपसे होता है। भागके साथ मावा और शक्कर मिला पाक (माजुम) वनाकरके भी सेवन करते हैं। यदि इनका सेवन मर्यादामें हो तो शरीरके किसी यन्त्रको हानि नहीं पहुँचती। मात्रा बढानेपर शारीरिक क्रियाक्षीण, क्षुधा-मान्द्य, कभी अतिसार और प्रवाहिका उपस्थित होते हैं। मानसिक वृत्ति सव

निस्तेज और निकृष्ट होती हैं। शान्ति नष्ट होती है और स्वभाव क्रोधी बन जाता है। यदि दीर्घकालपर्यन्त गाजेका सेवन अत्यधिक मात्रामें होता रहे, तो अन्तमें उन्माद रोग प्रकाशित होता है।

डाक्टर घोषने लिखा है कि "गांजेसे मूत्रोत्पत्ति कुछ बढजाती है; किन्तु भांग (ठण्डाई) का सेवन करनेपर मूत्रोत्पत्ति-अत्यधिक हो जाती है।"

रासायनिक पृथक्करण—भाग, गांजामें सत्व एक ही प्रकारका है। उसके सार भाग चरसका पृथक्करण करनेपर उसमें मुख्य द्रव्य गोंद सदृश केनेबिनोन (Cannabinone) मिलता है। इसके अतिरिक्त उड्डयनशील तेल, वसा और मोम थोड़े परिमाणमें मिलते हैं। सामान्यत वागके क्षुपके चरसमें केनाबिनोन ३३% और उड्डयनशील तेल १५% है। ये ही कार्यकारी द्रव्य हैं।

मात्रा–केनेबिनोन ।. से ।। रत्ती। चरस ।। से १ रत्ती। प्रसूताको जल्दी प्रसव करानेके लिये गांजा ५-५ रत्ती नागरवेलके पानमें १-१ घण्टेके अन्तरपर या २-३ बार तथा रक्तस्राव बन्द करानेकेलिये २ से ५ रत्ती दिनमें ३ बार। अन्त्रके रोगोंपर गांजा देना हो तो उसे दूधमें उबाल लेना चाहिये। मात्रा १ से २ रत्ती दिनमें ३ बार। भांग १ से ३ रत्ती।

सूचना–कितनेक व्यक्तियोंसे गांजेकी अधिक मात्रा सहन नहीं होती। अत प्रारम्भमें मात्रा कम देवें।

विजयापुष्पाद्यवलेह:—जलसे धोया हुआ गाजा १४ तोले, जायफल, जावित्री, लौंग, दालचीनी, छोटी इलायचीके दाने, अकरकरा और केसर २-२ तोले और बादामकी गिरी ४ तोले लेवें। सबको मिला कूटकर कपड़छान चूर्ण करें। फिर १ सेर मिश्रीकी अवलेहके लायक चाशनी कर आधी गरमी कम होनेपर चूर्ण तथा कस्तूरी और अम्बर ६-६ माशे मिला लेवें। मात्रा १ से ३ माशे, दिन में २ बार चाटकर ऊपर मिश्री मिला दूध पीवें।

इस अवलेहके सेवनसे थोड़े ही दिनोंमें नपुंसकता, शीघ्रपतन, शारीरिक निर्बलता और निद्रानाश दूर होते हैं। शारीरिक उत्साहकी वृद्धि होती है। मन प्रफुल्लित होता है; पचन क्रिया सबल बनती है। और शरीर पुष्ट होता है।

उपयोग:—भांग, गांजा और चरस भारतमें मध्य एशियासे आया है। फिर वह हिमालयमें नैसर्गिक बन गया है। प्राचीन संहिता ग्रन्थोंमें भांग और गांजेका उपयोग नहीं मिलता। लगभग ५०० वर्षसे मुसलमानोंके सहवाससे चरस, भांग और गांजेका उपयोग व्यसन रूपसे और औषध रूपसे भारतमें हो रहा है। वर्तमानमें ये निम्न रोगोंपर अधिक सफलता पूर्वक व्यवहृत होते हैं।

डाक्टर देसाई लिखते हैं कि "शरीरके किसीभी भागमें वेदना होती हो, शूल चलता हो या मासपेशियोंमें एँठन आती हो, उनको कम कराने और निद्रालानेकेलिये गाजा दिया जाता है। यथार्थमें इन कार्योंकेलिये गांजेकी अपेक्षा अफीम उत्तम ओषधि है; किन्तु जिनको अफीम नहीं दे सकते उनको गाजा ही देना पडता है। अफीमसे हानि होनेका भय है, वैसा भय गाजा सेवन करानेमें नहीं है। पित्ताश्मरीशूल, वृक्कशूल, उपान्त्रशूल, शिर शूल आदिमें शूलके शमनार्थ गाजा दिया जाता है। यदि कर्णशूल, हो, तो उस पर गाजेके रसके बूंद डालनेपर शूल निवृत्त हो जाता है।"

"मानसिक दु ख या शोकका स्मरण होकर जिनका स्वास्थ्य विगडता हो, निद्रा न आती हो और दु खपूर्ण विचार आते रहते हों, उनको गाजा या चरस देनेपर गुण हो जाता है। इस तरह वृद्ध मनुष्यके निद्रानाशमें भी गाजा हितावह है।"

"मस्तिष्कको किसी कारणसे आघात पहुँचकर होनेवाले धनुर्वात (आक्षेप) प्रसूता धनुर्वात, मिथ्या अपस्मार, कम्पवात,दात आनेके समय वालकोंका आक्षेप, वृक्कप्रदाहसे उत्पन्न आक्षेप, सगर्भाको होनेवाला अपस्मार, हिस्टीरिया, इन सब रोगोंपर गाजेकी श्रेष्ठता निर्णित हुई। धनुर्वातमें गाजा निर्भय ओषधि है किसीको भी दे सकते हैं।"

"श्लैष्मिक कलापर गाजा या चरस मलनेपर वह स्थान वधिर वन जाता है। फिर वहां वेदना होती हो, तो शमन हो जाती है। यह मसूढ़ेपर मर्दन करके दात निकाला जाय तो वेदना नहीं होती।

"वकील, लेखक, कवि आदि जो अधिक मानसिक परिश्रम करते हैं, वे मर्यादामें भागकी ठण्डाई लेते रहें, तो उनका मन प्रफुल्लित बनता है, मस्तिष्क शान्त रहता है, स्वविषयके सूक्ष्म सूक्ष्म विचार सरलतापूर्वक उत्पन्न होते रहते हैं और शरीरको किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचती।"

गाजेकी मात्रा अति बढा दी जाय, तो विचारशक्ति कुठित हो जाती है। एव क्रोध, शुष्कता, घवराहट, चक्कर आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। विना नशा किये नहीं चलता। गाजेका मस्तिष्कपर वहुत खराव असर पहुँच जाता है, कुछ वर्षोंके वाद उन्माद या उदासीनता (शोकोन्माद-Malencholia)की सप्राप्ति हो जाती है। अत मात्रा कभी नहीं वढानी चाहिये।

(१) अपचन :—आमाशय प्रदाहसे आमाशयमें वेदनासह अपचन, सामान्य अपचन और जीर्ण अजीर्ण रोग, और ग्रीष्म ऋतु प्रकोपज अपचन और अतिसार, इनपर भांगका सेवन कालीमिर्च और छोटी इलायचीके साथ दिनमें ३-४ वार करानेपर मल वध जाता है, वेदना शमन होती है,

प्रदाह दूर होता है, तथा पचन क्रिया सबल होकर लाभ पहुँच जाता है।

(२) विसूचिका :—अपचन जनित या कीटाणुजन्य हैजा होकर वमन और दस्त होने लगे हों, तो प्रारम्भावस्थामें गाजा या भांग, छोटी इलायची और कालीमिर्च २-२ रत्ती तथा कपूर १ रत्ती मिलाकर आध आध घण्टे या १-१ घण्टेपर उबालकर शीतल किये हुये जलके साथ देते रहनेसे थोड़े ही समयमें वमन अतिसार दूर होते हैं, नाड़ी सुधरती है, देहमें उष्णता और उत्तेजना भी आ जाती है। विसूचिकाकेलिये यह उत्तम उत्तेजक ओषधि है।

(३) आमातिसार :—गाजा या भागका चूर्ण सोंफके अर्कके साथ दिनमें ३ बार देनेसे अपचन और दुर्गन्धमय दस्त, कच्चा आम जाना, ये सब दूर होते है।

(४) अर्श—अर्शके मस्समेंसे रक्तस्राव होने या शोथ आने और वेदना होनेपर भांगका सेवन कराया जाता है। भांगको किसी बरतनमें जला, ऊपर चिलम ढक उसके ऊपरके छिद्रमेंसे धुआंभी दियाजाता है। इनके अतिरिक्त प्याज और हल्दी मिला तैलके साथ पीस पुल्टिस बनाकर बान्धी भी जाती है।

(५) उदरशूल—प्रवाहिका और अपचनके हेतुसे उदरशूल होताहो, तो भाग का सेवन करानेपर वेदना सत्त्वर शमन होती है।

यदि गांजेको विरेचन द्रव्य इन्द्रायन, पाप्रा (पोडो फिलम) अमलतास, सनाय, आदिके साथ मिलाकर दियाजाय, तो विरेचनका असर जल्दी होता है और उदरमें पीड़ाभी नहीं होती।

(६) विषमज्वर—एकाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक आदि नूतन ज्वर और जीर्ण ज्वरमें गाजा अथवा भांग गुड़के साथ या अन्य ज्वरघ्न या पाचन ओषधि के साथ देनेपर बहुत अच्छालाभ पहुँच जाता है। भागसे शीतके बलका ह्रास होता है, क्षुधा प्रदीप्त होती है, बुखार उतर जानेपर थकावट नहीं आती, मानसिक प्रसन्नता होती है तथा रक्ताभिसरण क्रिया नियमित होती है। पालीके बुखारमें ४ घण्टे पहले और २ घण्टे पहले इस तरह दो बार भांग दे देनेसे पाली टल जाती है। उस दिन रोगीको केवल दूधपर रखनेसे लाभ अधिक होता है।

(७) आमवातिक ज्वर—आमवातिक ज्वरमें हृदयक्रिया दूषित होती है। वेदनाका स्थान बदलता रहता है; सधिस्थानोंमें पीड़ा होती है, मूत्रलाल होजाता है और ज्वर अधिक आता है। उसपर चरसका उपयोग अति हितावह है। धूम्रपान कराना चाहिये या आध आध रत्ती दिनमें ३ बार अन्य ज्वरघ्न ओषधिके साथ देते रहना चाहिये।

(८) हिक्का—गाजेको समभाग गुड़के साथ मिला मटरके समान गोली बना कर देनेपर हिक्का शमन होजाती है। आवश्यकता रहेतो १ घण्टे बाद फिरसे १

गोली देवें। इस गोलीसे कुछ नशा आता है, परन्तु किसी प्रकारकी हानि नहीं होती।

(९) शुष्क कास–जिस खांसीमें कफ नहीं निकलता। श्वसन यन्त्र (स्वर-यन्त्र, श्वासनलिका या फुफ्फुस) में उत्तेजना बढ़जानेपर मिनटोंतक खासी चलती रहती है। फिरथोड़ा भाग निकलता है। इसपर गांजेका सेवन (धूम्रपान या उदरसेवन) हितावह मानागया है। इससे घबराहट दूरहोती है और श्वसनयन्त्रपर शामक असर पहुँचता है।

(१०) दाह–अति गर्मीके हेतुसे या धूपमें घूमनेपर दाह और घबराहट होतेहों, तो भागकी ठण्डाई पिलानेपर शान्ति मिल जाती है।

(११) मदात्यय–शराबके अत्यधिक सेवनसे यह रोग होता है। देहकाली हो जाती है। मन अति चलित रहनेसे व्यर्थ विचार आते रहते हैं, निद्रा नहीं आती। इस रोगपर चरस और गांजा विलक्षण उपकार दर्शाता है। शान्त निद्रा ला देता है, मन प्रफुल्लित रखता है तथा दाहको शान्त करता है। फिर शनै शनै मूल रोगको भी दूर कर देता है।

(१२) फुफ्फुसावरण प्रदाह–(Pleurisy) इसकी प्रथमावस्थामें फुफ्फुसों की झिल्लीमें शूल (पार्श्वशूल) चलता है, उसशूलको दूरकरनेमें गांजा अफीमकी अपेक्षा विशेष हितावह माना गया है।

(१३) शिरःशूल–अतिश्रम मानसिक उद्वेग, वृद्धावस्था, वातनाड़ीप्रदाह और मासिक धर्मका अवरोध होनेसे उत्पन्न दारुण शिरदर्दपर गांजेका सेवन २-३ मासतक करानेपर रोगका प्रतिकार हो जाता है। आधाशीशी हो, तो वहभी दूर हो जाती है। यदि गांजेके साथ सोमल मिलाया जाय, तो लाभ सत्वर हो जाता है।

(१४) निद्रानाश–शामको भूनी भागका चूर्ण शहदकेसाथ लेनेपर रात्रिको शान्तनिद्रा आजाती है। यह वृद्ध मनुष्योंके निद्रानाश (Senile Insomnia) पर अधिक व्यवहृत होती है। एवं यह प्रयोग अतिसार पीडितोंके लिये भी हितावह है।

(१५) वातनाड़ीप्रदाह–(Neuritis) अनेक कारणोंसे हो जाता है। अधिक शराबसेवन शीतलगजाना आमवात, चोटलगजाना, वृद्धावस्था, विषम-ज्वर, कण्ठरोहिणी, नेत्रपाक, गृध्रसी, मधुमेह आदि कारणोंसे उत्पन्न होता है। इसमें प्रदाह स्थानमें वेदना होती है, इस वेदनाको दूरकरनेकेलिये रसकपूर, सोमल, लोह भस्म या अन्य औषधिके साथ गांजेका सेवन कराया जाता है।

(१६) संधिप्रदाह—रक्तकेभीतर क्षारका संग्रह होनेपर शनै शनै क्षार घुटने आदि संधियोंमें जमता है। फिर वहां वेदना उत्पन्न होती है। आमवात और

वातरक्तके समान लक्षण उत्पन्न होता है। सुजाक पहले हो गया हो तो मूत्रदाह फोड-फुन्सी आदि लक्षण भी उपस्थित होते हैं। इन सब लक्षणोंसह वेदनाको भाग और गांजा दूर करते हैं।

(१७) पक्षाघातजकम्प—गर्मीके आघातसे पक्षाघात होता है, उसमें कुछ कुछ समय बाद कम्प (झटका) आता रहता है, उस कम्पको दूर करानेके लिये सोमल आदि मुख्य ओषधिके साथ गांजा दिया जाता है।

(१८) वृक्कप्रदाह—(Bright Disease) इस रोगमें लसीकामेह (Albumin) और शोथ या जलोदरके लक्षण होते हैं। यह आशुकारी और चिरकारी दो प्रकारका होता है। इन दोनों प्रकारोंके भीतर मूत्रमें जानेवाले ग्रथिनको रोकने, रक्तस्राव बन्द कराने और वेदनाको शमन करानेकेलिये गांजा अमोघ ओषधि है।

(१९) नेत्रमें वेदना—भांगको जलके साथ पीस थोड़ी गरमकर पुल्टिस बनाकर रात्रिको आंखोंपर बांध देनेसे नेत्रका भारीपन, वेदना, खुजली चलना और लाली आदि दूर होते हैं।

(२०) सुजाक—गाजा या भांगकी ठण्डाई पिलानेसे मूत्रविरेचन होकर पूय निकल जाता है, मूत्रत्यागके समय होनेवाला दाह शमन होता है। वृक्क या मूत्राशयमेंसे रक्तस्राव होता हो, तो बन्द होता है और प्रदाहका दमन होता है। फिर आवश्यकता रहे तो सुजाकनाशक मुख्य ओषधि सेवन करावें।

(२१) मूत्रावरोध—उग्र पदार्थोंका सेवन, सुजाक, सुषुम्णाकाण्डकी वेदना, क्विनाइनका अधिक सेवन आदि कारणोंसे होनेवाले मूत्रावरोधपर ककड़ीका मगज और भांगकी ठण्डाई बनाकर पिलायी जाती है। यदि अश्मरीकण मूत्रमार्गमें आगया हो तो पुनर्नवा क्षार, यवक्षार अपामार्ग क्षार, कबूतरकी सूखी विष्टा या अन्य अश्मरी भेदक ओषधिके साथ भांग की ठण्डाई दी जाती है।

(२२) कष्टार्तव—मासिक धर्म आनेपर किसी किसी स्त्रीको अतिकष्ट होता है। ३ दिन अति दुःखसे निकलते हैं और कटिशूल, शिरदर्द, अग्निमांद्य, उत्साहका अभाव आदि लक्षण बने रहते हैं। इसरोगमें मासिकधर्म आनेके पहले मृदु विरेचन देकर उदरको शुद्ध कर लेना चाहिये। फिर गांजाका चरस दिनमें ३ वार हींगके साथ देते रहनेपर वेदना कम होती है। गांजेसे गर्भाशयका आकुंचन होता है, बीजाशय और बीजाशयनलिकामें होनेवाली वेदना दूर होती है और रजःस्राव सरलतापूर्वक हो जाता है। रजःस्राव कम होता हो तो अधिक आता है और अधिक होतो हो, तो कम हो जाता है।

यदि जीर्ण बीजाशय प्रदाह (Ovaritis) के हेतुसे मासिक-धर्मस्रावमें विकृति हुई हो, तो चरस १ भाग, अफीम १ भाग और कपूर २ भाग मिला घी-

कुंवारके रसमें या जलमें थोडा खरलकर २-२रत्तीकी गोलिया बना लेवें, फिर १-१ गोली २-४ मास तक सुबह और रात्रिको देते रहनेसे बीजाशयप्रदाह और मासिक धर्म विकृति दूर हो जाती है।

(२३) प्रसववेदना—निर्बल और रुग्णास्त्रियोंको और जिनका गर्भाशय शिथिल हो, उनको प्रसव सरलता पूर्वक नहीं होता। अतिवेदना होती है, ऐसी अवस्थामें गर्भाशयको बल देने के लिये गांजेका उपयोग बहुत अच्छा होता है।

गर्भपात होनेसे रक्तस्राव और वेदना होते हों, तो उसपर भी गाजेका उपयोग होता है गाजा रक्तस्राव बन्द कराता है और गर्भाशयमें संगृहीत रक्त मल या विषको बाहर निकालनेमें गर्भाशयको सहायता पहुँचाता है।

(२४) मस्तिष्ककी कोमलता—इस रोगमें मस्तिष्कके ऊपरकी हड्डी नरम हो जाती है। शिरदर्द, वमन, खाक, बेचैनी, ग्लानि और भयप्रदर्शन आदि लक्षण उपस्थित होते हैं तथा रात्रिको रोगी प्रलाप करता है। इस रोगपर १-२ मास तक चरस और गाजे का धूम्रपान करानेपर उपकार होता है।

(२५) कण्डू—ब्यूची आदि त्वचा विकारमें जब अधिक खुजली चलती रहती है। त्वचा शुष्क हो जाती है और बारबार निद्राभंग होती रहती है। तब शामको भाग बडी मात्रामें थोडे दिनोंतक देते रहने और शरीरपर तैलका मर्दन करते रहनेपर त्वचा मुलायम होजाती है। कीटाणु नष्ट हो जाते हैं और कण्डू दूर हो जाती है।

(२६) चूहे का विष—चूहा काटनेके पश्चात् तुरन्त योग्य उपचार न करनेपर विष अधिक प्रकुपित होता है। फिर ज्वर मारे शरीरमें दाह, शिरदर्द, रक्तविकार, शीतपित्तके समान ददौरे और अंगुलियोंमें शोथ आदि लक्षण होते हैं उसपर भाग और गाजा उत्तम ओषधि है। मजीठ, कालीअनतमूल, चोपचीनी, उन्नाव सत्यानाशी या अन्य सारक और रक्त शोधक ओषधिके साथ सेवन कराने पर तुरन्त लाभ हो जाता है।

(२७) वातरक्त—यह अति गम्भीर और दुखदायी रोग है। प्रारम्भमें हाथ पैरोंमें प्रबल दाह होता है। पहले हाथ पैरोंकी अंगुलिया, नाक, कानपर विकृति होती है। फिर किसीको ज्वर, स्थान स्थानपर रक्तविकारके ददौरे और असह्य पीडा होती है। इसकी प्रारम्भिक अवस्थामें दाहको शमन करनेकेलिये भाग श्रेष्ठ ओषधि है। मात्रा बडी देनी चाहिये।

(२८) पागल कुत्ते का विष—पागल कुत्ता काटने के १०-२० दिनके भीतर यदि बडी मात्रामें कुछ दिनोंतक नियमित गाजेका सेवन कराया जाय, तो कीटाणु और विष नष्ट होकर सदाकेलिये रोग दूर होजाता है और रोगकी जीर्णावस्थामें जलभीति, वेदना और खिंचावको दूर करानेकेलिये गाजा सफ-

पूर्वक दिया जाता है। लम्बे समयतक देते रहनेपर रोग दूर होजानेके अनेक उदाहरण मिले हैं।

(२९) नपुंसकता—ब्रह्मचर्यके पालनसह विजयापुष्पाद्यवलेहका सेवन कराने पर अति स्त्रीसेवन, मानसिक चिन्ता और शारीरिक निर्बलता आदि कारणोंसे उत्पन्न नपुंसकता दूर होती है। गांजेमें प्रबल वाजीकर गुण रहा है। इसके सेवनसे सुषुम्णाकाण्डस्थ कामोत्तेजक केन्द्रपर क्रिया होकर मूत्रेन्द्रिय विषपर उत्तेजना आती है। मनमें आनन्दकी वृद्धि होनेसे भी वासना अनुरूप कामो-त्तेजना होती है। एवं त्वचाकी संवेदना शक्ति मन्द होनेसे शुक्रपतन देरसे होता है। इस हेतुसे स्तम्भन शक्ति जिनको कम हुई हो, उनको भी गांजेसे लाभ होजाता है।

(३०) भांग विष—भांगका अत्यधिक सेवन करनेपर विषक्रिया (बेहोशी) उपस्थित हुई हो, तो तुरन्त वमन कराना चाहिये फिर स्टमक पम्पद्वारा आमाशय को धोदेना चाहिये। पीनेको इमलीका जल वा नींबूका रस आदि अम्लद्रव देना चाहिये। भांग, गांजा या चरसका प्रबल विष उपस्थित होनेपर मुंह और मस्तिष्क पर शीतल जल छिड़कना चाहिये। सामान्यतः विशेष चिकित्सा की जरूरत नहीं रहती। फिरभी कभी उत्तेजक ओषधि कुचिलासत्व या अन्य उत्तेजक औषधि देनी पड़ती है। भांगके प्रबल विषका असर दूर होने परभी रोगीकी आंखें कुछ दिनोंतक लाल-लाल और चपल रहती हैं बकवाद करता है, साधारण बातमें भी उत्तेजित होजाता है। क्षुधा मन्द होजाती है और देह निर्बल होजाती है। इन लक्षणोंको दूर करनेकेलिये दही और मक्खन मिश्रीका सेवन कराना चाहिये। अन्यथा निर्बलता और अग्निमांद्य दीर्घकाल तक रह जाते हैं।

(४४) भांगरा

सफेद भांगरा—सं० भृङ्गराज, मार्कव, केशराज। हि० भांगरा, भंगरा, भंगरिया, भगरैया, घमिरा। बं० केसुरिया। म० माका। गु० भांगरो, कालो-भांगरो। राज० जल भांगरो। सिं० भंगिरो। कच्छी-भंगरो, जरभंगरो। कना० गडगडसप्पु। ता० कैकेशी। ते० गलगर। बिहा० हट्टकेसरी। ओ० केसरदा ले० Eclipta Alba.

परिचय—आल्बा=श्वेतपुष्पयुक्त। वर्षायु खड़ा या जमीन पर फैला हुआ शाखायुक्त पर्वसन्धिपर मूलकी रचना करनेवाला क्षुप। ऊंचाई ॥। से २ फुट। काण्ड और शाखायें श्वेत रोमोंसे आच्छादित। शाखाएं हरी, काली या बैंगनी आभायुक्त। पानवृन्तरहित १ से ४ इंच लम्बे, चौडाईमें विविध प्रकारके सामा-न्यतः लम्बगोल, भल्लाकार, लगभग अखण्ड, दांतेदार, नोकदार प्रायः दोनों ओर

रुएदार। पुष्पोंकी गुड़िया सफेद, एकाकी या २ युग्ममें, विषमपत्र कोणीय पुष्प दण्डपर। पुष्पचक्र (Involucre), घण्टाकार, लगभग ८ पुष्पपत्रयुक्त, सफेद रुए से आच्छादित। पुष्पकिरण (Ray flowers) चर्मपट्टी सदृश (Lingule) छोटी, प्राय पुष्पपत्र जितनी लम्बी, दांते रहित, सफेद पुष्पधारक तस्तरी (Disk Flowers) चौडी घण्टाकार या नलिकाकार। पुष्पाभ्यन्तरकोष प्राय ४ दांतवाले। पराग नलिकाकर (Style arms) छोटे नोक रहित उपाङ्गसह। वालोंका पर (Pappus) ऊपरकी ओर घना। वीजफल (Achenes) लगभग शुण्डाकार दवा हुआ, छोटे पक्षयुक्त, श्याम, उग्रवासयुक्त। पुष्पकाल अगस्त, सितम्बर। फलकाल अक्टूबर से फरवरी तक।

उत्पत्ति स्थान—बंगाल, वर्मा, आसाम, विहार, मलाय द्वीप, सी० पी० यू० पी० पजाव, गुजरात, राजस्थान और सिलोन।

पीला भांगरा—सं० देवप्रिय, केशराज, पीतभृङ्गराज। हि० भागरा। व० भीमराज, केशराज। म० पीवला माका। गु० पीलो भागरो। ले० Wedelia Calendulacea

परिचय—वहुवर्षायु सूक्ष्म लोमयुक्त क्षुप। ऊंचाई १ से ३ फुट तक। काड आधार स्थानसे जमीनपर फैलनेपर निम्न पर्वसंधियोंसे जड़वनती है। काण्ड न्यूनाधिक रुए दार। पान अभिमुख, लगभग वृन्तरहित १ से ३ इञ्च लम्बे, ॥ से १ इञ्च चौडे, भल्लाकार–लम्वगोल, अखण्ड या अनियमित दांतेदार। पुष्प-गुण्डी ॥। से १। इञ्च व्यासकी एकाकी। पुष्पदण्ड १ से ६ इञ्च लम्बा, कोमल निम्न भागमें किंचित मोटा। पुष्पचक्रके पुष्पपत्र लम्व गोल या शिरपर कुछ चौड़े पुष्पकी तस्तरीसे लम्बे। पुष्पकिरण चर्मपट्टी सदृश। चर्मपट्टी पीली, २-३ दांतयुक्त। परागनलिकाकर लम्बे, नोकदार और मुडे हुये। वालोंका पर दांतेदार, कोमल प्यालीरूप। वीजफल किंचित् रुए दार। पुष्पफलपाक मार्चसे सितम्बर तक।

उत्पत्ति स्थान—बंगाल, विहार, ब्रह्मदेश, वम्बई कोंकण, मद्रास, सीलोन मलाय द्वीप, चीन, जापान।

वक्तव्य—परम्परागत मान्यता अनुसार भागरा पुष्पभेदसे ३ जातिका होता है, सफेद, पीला, काला। किन्तु काले पुष्पका भागरा अप्राप्य है। शाखायें श्याम हो, रसमें श्यामता हो, या वालोंको काला वनानेके हेतुसे काला भागरा समझाया हो, तो वह सम्भवित है।

गुणधर्म—भावप्रकाशकारके मत अनुसार भागरा रसमें चरपरा, तीक्ष्ण, रुक्ष, उष्णवीर्य रसायन, कफवातहर, वल्य, केश्य, चर्म और दांतोंके लिये हितावह तथा कृमि श्वास, कास, शोथ, आम, पाण्डु, कुष्ठ, नेत्ररोग और शिरोरोग

का नाशकहै। धन्वन्तरिनिघण्टु और राजनिघण्टुने तिक्तरस लिखा है। एवं हृद्रोगहर तथा विषघ्न गुण अधिक दर्शाये हैं।

यूनानी वालोंके मतानुसार भागरा दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है। एव यह रक्त प्रसादन, वाजीकर, दृष्टिवर्धक, वातानुलोमन, श्वयथुविलयन और विशेषत कामोत्तेजक है।

डाक्टर देसाईके मत अनुसार भांगरा कड़वा, उष्ण, दीपन, पाचन, उदर वातहर, आनुलोमिक, मूत्रल, बल्य, वातशामक, त्वक्दोषहर, व्रणशोधन, व्रणरोपण और वर्ण्य है। भागराको रसायन कहा है, इस कथनमें अतिशयोक्ति नहीं है। इसकी मुख्य क्रिया यकृत्पर होती है। यह यकृत्की क्रिया सुधारता है और पित्तस्रावको योग्य बनाता है। इसके अतिरिक्त आमाशय और पक्वाशयकी पचन क्रियाको भी सुधारता है। इस तरह मुख्य ३ स्थानोंमें लाभ पहुँचनेसे सारे शरीर में तेजी आजाती है। रोज भांगरेका सेवन करनेपर वृद्ध भी युवा बन जाता है।

मात्रा—अच्छी तरह छाना हुआ ताजा स्वरस १ से २ड्राम। मात्रा अधिक होनेपर उबाक आकर वमन होजाती है। बालकोंको मात्रा १ से २ बून्द शहदके साथ देनी चाहिये।

रसायनके लिये छाया शुष्क पानोंका चूर्ण १ से ३माशे। घृत, शहद और शक्करके साथ।

उपयोग—भागरेका औषध रूपसे उपयोग चरक संहिता और सुश्रुत संहिता में मिलता है। एवं वाग्भट्टाचार्य और अन्य आचार्योंने इसका कल्प लिखा है।

डाक्टर देसाईने लिखा है कि भांगरेके सेवनसे यत्कृप्लीहावृद्धि कम होती है। अर्श, अजीर्ण और उदररोग दूर होते हैं। कामला, अर्श और उदररोग ये विशेषत यकृद्विकृतिपर आधार रखता है। अत. इनमें यकृत्को सुधारने वाली औषधि दीजाती है। यकृत् क्रिया विगड़नेपर आमाशय विष उत्पन्न होता है। यह विष देहमें संगृहीत होनेपर आमवात, चक्कर, शिरदर्द, दृष्टिमांद्य और अनेक प्रकारके चर्मरोग उत्पन्न होते हैं। अतः इन सब रोगोंपर भृङ्गराज देनेसे लाभ पहुँचता है। त्वचाके जीर्ण रोगमें भृङ्गराजका सेवन कराया जाता है। एव लेप भी किया जाता है। अकालमें बालसफेद होनेपर भृङ्गराजका उदर सेवन और शिरपर लेप करनेपर बालोंकी वृद्धि होती है और बालोंका रंग भी सुधरता है।

१. जीर्णज्वर—मंद-मद ज्वर दीर्घकालसे आता रहता हो, प्लीहावृद्धि हो और यकृत् अपना कार्य न करता हो, कब्ज रहता है। पचन क्रिया अतिमद होगई हो और कफ प्रकोप भी होगया हो, एसी अवस्थामें भागरेका रस १-१ ड्राम १औंस

दूधमें मिलाकर प्रातःकाल और रात्रिको १४ दिनतक सेवन करानेपर ज्वर निवृत्त हो जाता है।

कितनेक चिकित्सक आधी रत्ती हिंगुल शहदके साथ देकर भागरेका रस पिलाते हैं। ऐसा करनेपर लाभ जल्दी पहुँचता है।

२. आमातिसार–भागरेके मूलका चूर्ण १-१ माशा तेज विकारमें २-२ घण्टेपर ३-४ वार जलके साथ देनेसे और मदवेग होनेपर दिनमें ३ वार देनेसे शूलसह आमातिसार दूर हो जाता है।

३ कफप्रकोप–(अ) छातीमें कफ भरजानेपर भागरेका रस शहद मिलाकर सेवन करानेपर कफ सरलतासे बाहर आजाता है।

(आ) बालकोंके कण्ठमें कफकी घुरघुराहट–बालकोंके कण्ठोंमेंसे घुरघुर आवाज आती हो तो भागराके रसकी १-२ बूद शहदकेसाथ मिलाकर जिह्वापर मालिश कराने पर घुर घुराहट दूरहोती है। आवश्यकता अनुसार घण्टे घण्टे या २-२ घण्टेपर २-३ वार जीभपर मलदेवें।

४ बालकोंके श्वासप्रकोप–भांगरेके रसमें आधा शहद मिलाकर थोड़े थोडे समय श्वास कम होनेतक देते रहना चाहिये।

५ कामला– भागरेका रस १ तोलेके साथ १ माशा कालीमिर्च और ३ माशे मिश्री मिलाकर दिनमें ३ वार सेवन कराने और दही भात पथ्य देनेसे ३ दिनमें कामला दूर होजाता है।

६. अम्लपित्त–आमाशयमें पित्त अधिक तेज होने और वढ जानेपर खट्टी खट्टी वमन होती है, छातीमें जलन होती है तथा कण्ठ और मुँहमें फाले होजाते हैं। इस वमन और दाहको दूर करनेकेलिये छोटी हरड भागरेका चूर्ण पुराने गुडके साथ सेवन करानेसे लाभ पहुँचता है।

७ शिरदर्द–अ वातवृद्धि होकर शिरदर्द होनेपर भागरेका रस १-१ ड्राम दिनमें ३ वार देनेसे वेदना शमन हो जाती है।

आ सूर्यावर्त (आधाशीशी) वालेको भागरेका रस समान बकरीके दूधमें मिलाकर सूर्यके तापमें गरम करके नस्य देनेसे लाभ हो जाता है।

८ चक्करआना–वातप्रकोप होनेपर चक्करआता है। चारोंओरकी वस्तुए दीवार आदि फिरनेका भ्रम होता है। या नेत्रके सामने अंधेरा छाजाता है। खडा रहनेपर यदि किसी खम्भे आदिका सहारा न मिलेतो मनुष्य गिरजाता है। ऐसी स्थितिमें भागरेके रस १ ड्राममें ३ माशे शक्कर मिलाकर सुबह शाम सेवन करनेपर थोडेही दिनमें शक्ति बढ जाती है। और चक्कर दूर हो जाता है।

९. दृष्टिमान्द्य—भांगरेके पत्तोंका चूर्ण ३ माशे घृत और शहदके साथ मिलाकर रोज सुवह रात्रिको ४० दिनतक सेवन करनेपर दृष्टिमांद्य आदि सर्व नेत्ररोग दूर हो जाते हैं। उदर सेवनके साथ प्रात' सायं इस रसका अंजन करते रहनेसे अधिक लाभ पहुँचता है।

१० प्रसूताका योनिशूल—प्रसवहोनेके पश्चात् गर्भाशयमें शूलचलनेपर वेल-मूल (वेल छाल) और भांगरेके मूलका चूर्ण शराबके साथ देनेसे तुरन्त शूल शमन हो जाता है।

११. गर्भपात रोकनेके लिये—सगर्भास्त्रीको भांगरेका रस १-१ ड्राम गोदुग्ध के साथ रोजसुबह देते रहनेसे असमयपर गर्भस्राव या गर्भपात नहीं होता।

१२. रसायन—ज्वर आदिरोगजनित या प्रौढ़ावस्थाकी निर्वलताको दूरकर शारीरिक शक्ति वढ़ानेके लिये पानोंका चूर्ण १।।-१।। माशा घृत, शहद और शक्कर मिलाकर रोज सुबह १ वर्षतक लेते रहनेसे देहवलकी वृद्धि होती है एव बुद्धि और स्मरणशक्ति भी वढ जाती है।

१३ दीर्घायुविधि—अ भृंगराजका रस प्रात.काल १ मास तक सेवन करते रहनेसे और मात्र दूधपर रहनेपर बलवीर्य युक्तहोकर मनुष्य १०० वर्षतक जीवित रहता है।

आ पुष्यनक्षत्रमें भांगरेका मूल लाकर सूर्यके तापमें सुखाकर कपड़छान चूर्णकरें। यह चूर्ण पुष्यनक्षत्रका सूर्य हो, उसदिन १ तोला कांजीके साथ सेवन कर-नेसे रोग प्राप्ति नहीं होती।

तैलके साथ सेवन करनेपर वृद्धावस्था नहीं आती। १ मास सेवन करनेपर सव रोग दूर हो जाते हैं। २ मासतक सेवन करनेपर सब वेदोंका धारण हो सके इतनी स्मरणशक्ति वढजाती है। ४ मास सेवन करनेपर कण्ठ किन्नरके समान हो जाता है। ६ मास सेवन करनेपर काक सदृश गति होती है अर्थात् व्यवहार और परमार्थ दोनों सुधारनेकी शक्ति आजाती है। ७ वे मासमें नख और केश गलकर नये आजाते हैं। ९ मासतक सेवनसे प्राणिमात्रमें आत्मभाव आजाता हैं। १० मास होनेपर अकाल मृत्युकी चिन्ता दूरहोती है। १ वर्षतक सेवन करके मनुष्य दीर्घायु वनजाता है।

१४. वलिपलित—त्रिफला चूर्णको भांगरेके रसकी ३ भावना देकर १।। मासतक रोज सुवह सेवन करते रहनेसे भीतरसे काले वाल आने लगते हैं। फिर श्वेत रंग दूर हो जाता है।

१५ मांसपेशियोंमेंखिंचाव—शीत लग जाने, अम्ल द्रव्यका अधिक सेवन अथवा अन्य कारणोंसे वातप्रकोप होनेपर मासपेशियोंमें बांईटे आनेलगते हैं।

उस समय अति वेदना होती है, यदिरोगी सोया हो तो तुरन्त बैठकर पीड़ित स्थानको मसलना ही पड़ता है। उस अवस्थामें हिंगुल आध आध रत्ती १ ड्राम भागरेके रस और शहदमें मिलाकर १-१ घण्टेपर २-३ वार देनेपर लाभ पहुँच जाता है।

वक्तव्य-शीत लग गई हो तो थोडा सेक करके गरम कपड़ा ओढा देना चाहिये

१६. जन्तुविषजशोथ-जतुके दंशसे सूजन आई हो तो भागरेका रस मसलनेपर सूजन दूर हो जाती है।

१७ विसर्प-भांगरेके रसमें हल्दी घिम घिसकर दिनमें ४-६ वार लेप करते रहनेसे विसर्प वहुत जल्दी दूर हो जाता है।

१८ श्वेतकुष्ठ (श्वित्र-) रोज सुवह लोह पात्रके भीतर तेलमें भागरा डालकर सेक कर खायें और दूधमें विजयसारकी छाल या चूर्ण डाल पकाकर ऊपर पीते रहेंतो २-३ मासमें जीर्ण श्वित्र भी दूर हो जाता है।

१९ पारदविष-भागरेका रस, हथियाका रस दूध जलकी लस्सी या मट्ठे में मिला १ माशा सोरा डालकर सुवह ३ दिनतक पिलानेसे मूत्र मार्गसे सव पारद निकल जाता है।

२० मुखपाक-तमाखूके समान भागरेके पानोंको मुँहमें रखकर थूकते रहनेसे फाले मिट जाते हैं।

(४५) भारंगी

सं० भार्गी, ब्राह्मणयष्टिका, ब्राह्मणी, अङ्गारवल्ली, खरशाक। हि० भारंगी. वनवाकरी, वारङ्गी, ब्रह्मनेटी, वभनेटी। वं० वामुनहाटी। गु० भारगी। म० भारंग। प० भाडङ्गी। मार० भारंगमूल। संता० सरोमलुतुर। ने० अदेखी, चूआ। कना० गन्तुवारगी, क्रिरितेक्की। मला० चेरुटेक्कु, काटाभाङ्गी, नापालु। ता० अगारवल्ली चिरुडेक्कु, कण्डुवारंगी। ओ० चिन्दा, पैंजुरा। अ० Glory tree Beetlekiller ले० Clerodendrum Serratum

परिचय—सेरेटम=आरी सदृश दांतेदार पानयुक्त। पुराना नाम-क्लेरोडेण्ड्रोन=अनिश्चित सत्वयुक्त वृक्ष। वहुवर्षायु मूलसमूहयुक्त, ३ से ७ फूट ऊंचा गुल्म. किसी प्रकार काष्ठमय, अधिक शाखारहित। काण्ड अतीक्ष्ण चतुष्कोण। नयाहिस्सा सामान्यतः चिकना। शाखा अनियमित, पान प्राय कितनेक तीन तीन, वहुधामासल नीचे श्वेताभ. कुछ दुर्गन्धयुक्त सामने सामने, कितनेक चार ९ इञ्च लम्बे. सामान्यत ५-६ इञ्च लम्बे, २-२॥ इञ्च चौडे. लम्वगोल या अण्डाकार, नोकदार, तेजदांतेयुक्त, चिकने, नोकदार आधारस्थानयुक्त। पत्रवृन्त अति दृढ छोटा। पुष्प कितनेक, १ इञ्च व्यासके आडम्वर दर्शानेवाले दो शाखावाली शिथिल मंजरीमें पुष्पपत्र ॥ से १॥ इञ्च लम्बे, प्रत्येक पुष्प शाखापर।

पुष्प वाह्यकोष प्याली आकारका, छोटे तीन खण्डयुक्त। पुष्पान्तरकोष हल्का नीला (निम्न बड़ा खण्ड गहरा नीलाभ बैंजनी) । पुष्पनलिका लगभग ॥ इञ्च लम्बी, नलिकाकार । कठोर फल । पकनेपर जामूनके रंग जैसे, कुछ रसदार, चौड़ाईमें लम्बगोलाकार । पुष्पकाल मई से अगस्त तक ।

उत्पत्तिस्थान—न्यूनाधिक परिमाणमें समस्त भारत, सिलोन, मलायद्वीप।

बगालमें विशेष प्रचलित भारंगी । वं० ब्रामनहाट्टी । ने० अंगियाह । पं० अर्नाह, अरनी, दवाईमुवारिक । ता० कवलै, नरिवलै । ते० चिरुटेक्कु, भारंगी, हुँजिका । ले० Clerodendrum Indicum पुराना नाम Clerodendron-Siphonanthus.

परिचय—सिफोनेन्थस=नलिकायुक्त पुष्पमयगुल्म । ऊंची, खड़ी, छोटी शाखायुक्त झाड़ी । ऊंचाई ४ से १२ फूट तक । काण्डपोकल, रसमय (Herba ceo us) । पान चक्राकार रचनामें ३ से ५, ६ से ९ इञ्च लम्बे १ से १॥ इञ्च चौड़े लम्बगोल, छोटीनोकयुक्त, सकड़े आधारस्थानयुक्त, अखण्ड या तरंगदार किनारेयुक्त, चिकने । पुष्प आध इञ्च व्यासका, ३ से ५ इञ्च लम्बे, सफेद । पुष्प शिथिल मंजरीमें वहुधा ३-३, पुष्पपत्र लम्बे, रेखाकार । पुष्पाभ्यन्तरनलिका ३ से ५ इंच लम्बी, मुड़ी हुई, अतिकोमल । फल आध इंच व्यासके, पकनेपर गहरे, नीलाभ हरित, वढ़े हुए रक्तवर्णके पुष्पवाह्य-कोषपर अवस्थित । पुष्पकाल जून जुलाई । फलकाल अगस्त सितम्बर ।

उत्पत्तिस्थान—महाराष्ट्र, कर्णाटक, मद्रासका पश्चिमघाट, बगाल, बिहार, कुमाऊं. सिक्किम और आसाम से तेनासरिम सुमात्रा । अनेक वागोंमें श्रृंगारकी सजावटके लिये बोयी जाती है ।

औषधोपयोगी अङ्ग—मूल और पान ।

मात्रा—मूलका चूर्ण १॥ से ३ माशे । काथ १ तोलेका ।

गुणधर्म—भावप्रकाशकारके मतानुसार भारंगी रसमें कड़वी, विपाकमें चरपरी, उष्णवीर्य, दीपन पाचन, रुचिकर, लघु, रूक्ष, कसैले उपरसयुक्त तथा गुल्म, रक्तविकार, शोथ, कास, कफप्रकोप, श्वास, पीनस, ज्वर और वातप्रकोपको दूर करती है राजनिघण्टुकारने शोफ, व्रण, दाह और कृमि की नाशक भी कही है ।

कर्नल चोपराके मतानुसार भारंगी (C. Indicum) का मूल श्वास, कफ कास, और कण्ठमालमें उपयोगी है । पान और कोमल शाखाओंका रस घृत मिलाकर त्वचाकी पिटिकाओं और लालीपर लेप लगानेमें उपयोगी है । पान कृमिघ्न और आमाशय पौष्टिकरूपसे भी व्यवहृत हो सकते हैं । पानोंके भीतर कृमिघ्न तिक्त द्रव्य वर्तमान है ।

डा० कोमनके मतानुसार भारंगी (C Serratum) के मूल उग्र असर-युक्त (Pungent), कड़वा और दाहोत्पादक (Acrid) स्वादयुक्त है। इसके मूल ज्वर,आमवात और अजीर्णपर उपयोगी है। शुष्ककास (Catarrhal Bronchitis) पर इसके मूलका क्वाथ लाभ नहीं पहुँचाता। भारंगीके मूलका क्वाथ सोंठ और धनिया मिलाकर हृल्लासपर दिया जाता है।

पान ज्वरपर व्यवहृत होता है। एवं पानोंका रस शिरदर्द (Cephalagia) और नेत्रप्रदाह (गम्भीर नेत्राभिष्यन्द-ophthalmia) पर लगाने और आजने में उपयोगी है। बीजकिञ्चित् सारक (Aperient) है और जलोदरके लिये कुछ उपयोगी होता है।

उपयोग—भारंगीका उपयोग प्राचीनकालसे हो रहा है। चरक संहितामें श्वास कासपर योजना की है सुश्रुत संहितामें श्वास कासपर योजना की है। सुश्रुत संहितामें पिप्पल्यादि गणमें भारंगीका उल्लेख किया है।

श्वास प्रधान ज्वर, जीर्णज्वर सन्निपात और पित्तकफज्वर पर भारंगी प्रधान कतिपय भारङ्ग्यादि क्वाथके प्रयोग लिखे हैं। योगरत्नाकरमें विषमज्वरपर भारंगी प्रधान १५ औषधियोंके चूर्णकी योजना की है।

अनेक आचार्योंने श्वास और कासपर भारंगी गुडावलेह भारंगी हरीतक्यवलेह भारंग्यादिलेह और भारंग्यादिघृतकी योजना की है। आचार्य चक्रपाणिदत्त ने गुल्मपर भारंगीषट् फलघृतकी योजना की है।

१ कफज्वर-शरीर जकड़ा हो, अंगों में भारीपना हो आलस्य आती हो, क्षुधा-तृष्णा बिल्कुल मारीगई हो, उदरमें भारीपन हो प्रस्वेद न आता हो प्राय ज्वर १०१ से अधिक नहीं होता, ऐसे लक्षणयुक्त ज्वरपर दशमूल मिलाहुआ १-१ तोला और भारंगमूल ३-३ माशेमिला १।-१। तोलाको अष्टमांश काथकर दिनमें २ वार शहद मिलाकर पिलानेसे ज्वर दूर हो जाता है।

२ कफकास- भारंगीके मूल और सोंठका चूर्ण गुनगुने जलके साथ दिनमें ३ वार लेते रहें।

३ वातजकास-भारंगीके मूलका कल्क १ भाग भारंगीकाथ २ भाग दही और गौघृत ४-४ भाग, जल ८ भाग मिला मदाग्निपर घृत सिद्ध करके सेवन कराने पर शुष्कवातज कास दूर हो जाती है।

४ कफयुक्तश्वासरोग-(अ) भारंगमूल १-१ तोला और सोंठ ३-३ माशे मिला अष्टमांश क्वाथकर (शहद मिलाकर) दिनमें २ वार पिलाते रहनेसे कफोत्पत्तिका ह्रास होता है, संगृहीत कफ निकल जाता है और श्वसनसंस्थान सबल बन जाता है।

सगर्भावस्थामें भी यह क्वाथ निर्भयतासे दिया जाता है।

(आ) भारंगी, सोंठ, कटेलीका मूल, कुल्थी और मूलीका क्वाथ बना पिप्पली चूर्ण २-३ रत्ती मिलाकर पिलानेसे कफ प्रकोपज श्वास और कास दूर हो जाते हैं।

५ श्वासका दौरा—भारंगीके मूलका कपड़छान चूर्ण ३-३ रत्ती आध आध घण्टेपर २-३ बार शहदके साथ देनेपर घबराहटका ह्रास हो जाता है।

६ हिक्का—भारंगमूलका चूर्ण १॥-१॥ माशे आवश्यकता अनुसार दिनमें ४-६ बार शहदके साथ चटानेपर हिक्का निवृत हो जाती है।

७. उदरकृमि—भारंगीके पानोंको उबाल छानकर जल पिलानेसे छोटे कृमि नष्ट हो जाते हैं।

वक्तव्य—आसाम, विहार और बंगालके ग्रामीण लोग बालकोंको भूतप्रेतकी बाधा न होनेके लिए भारंगीके मूलके टुकड़े कमरपर बाधते हैं। एवं डाकिनीकी दृष्टि न लगनेकेलिये भारंगीके मूलके टुकड़ेकी माला बनाकर बालकोंके गलेमें पहनाते हैं।

८. अपस्मार—भारंगीके मूलको दूध जलमें मिलाकर दुग्धावशेष क्वाथ करें। फिर शाली चावल डालकर खीर बना लेवें। फिर एक सुअरको ३ दिन लङ्घन करा खीर खिला देवें। फिर बैचेनी होकर सब खीर वमन होकर निकल जायेगी। यह सब विष प्रधान वमन द्रव्य ले लेवें। उसे सुखाकर चूर्ण करें। वह ३ भाग, किण्व (शराबकी गाद) १ भाग और १४ भाग भारंगी क्वाथ और आवश्यक प्रक्षेप आदि मिलाकर अमृतबानमें रख देवें। जब यह सुराका पाक हो जाय, तब छानकर बोतलोंमें भर लें। उसमेंसे १-१ औंस समान जल मिलाकर दिनमें २ बार रोगी को देते रहें।

९ मूषकविष—चूहे काटनेपर भारंगीके मूल ६ माशे जलमें घिसकर जल पिलावें। यदि विषप्रकोपसे स्थान स्थानपर रक्तविकारके धब्बे हुए हों तो भारंगी के ५ तोले चूर्णको जलमें १० मिनट उबालकर ढकदें। आधे घण्टेपर छानलें। उसे सारे शरीरपर लगाकर मसलें। यदि व्याकुलता या दाह हो तो गोदुग्ध पिलावें। भोजनमें भात और कुल्थीका जूष देवें। नकम न दें। एक सप्ताह प्रयोग करनेपर मूषकविष जल जाता है।

१०. वातज शिरदर्द—तेज वायुके आघातसे या ऊपरसे गिरनेपर शिरमें रक्त संगृहीत होकर सारे मस्तिष्कमें दर्द होता हो तो भारंगीके मूलको जलमें घिस निवायकर शिरपर लेप करने या बालोंपर मसलने और तालुभागमें

लेपको चिपका देनेसे वायुका आघात शमन हो जाता है और रक्त संगृहीत हुआ हो वह भी विखर जाता है ।

११ प्रसूताका शिरदर्द—भारंगीके मूल और तगरको जलमें घिस निवायाकर कण्ठ, दोनों नेत्रके पलक, कपाल और मस्तिष्कपर लेप करनेसे वात प्रकोपज शिरदर्द शमन हो जाता है ।

१२ रक्तगुल्म—स्त्रियोंके गर्भाशयमें होनेवाला गुल्म बहुत न बढा होतो भारगी, पीपल, करजकी छाल, पिप्पलामूल और देवदारुको समभाग मिलाकर चूर्ण बनावें । इसमेंसे ४-४ माशे चूर्ण तिलके क्वाथके साथ दिनमें २ बार देते रहनेसे रक्तगुल्म नष्ट हो जाता है ।

१३ बालकोंकी खांसी—भारगी, रास्ना और काकडासिंगीका चूर्ण कर १-१ रत्ती दिनमें २ बार शहदके साथ देते रहनेसे बालकोंकी खासी दूर हो जाती है ।

१४ गण्डमाला—भारगीके मूलको चावलके धोवनमें पीसकर लेप करते रहनेसे प्रारम्भिक ग्रन्थिया बिखर जाती हैं ।

१५ वृषण वृद्धि—भारंगीके मूलको जौके उवाले हुए जलमें घिसकर लेप करते रहनेसे वायु और शोथप्रधानवृद्धि दूर हो जाती है । थोड़ा जल (या रस) का संग्रह हुआ हो, तो वह भी शोषित हो जाता है ।

१६. वद— वङ्क्षणमूलमें गाठ होनेपर उसपर वाह्योपचारके साथ साथ भारंगी के मूलका चूर्ण खिलाते रहनेसे वेदना कम होती है और गाठ जल्दी दूर हो जाती है ।

१७ आगन्तुक घावसे रक्त—भारगीके मूलको जलमें घिसकर लेप करते रहनेसे रक्तस्राव वन्द हो जाता है ।

(४६) भिलावा ।

सं० भल्लातक, अरुष्कर, अग्निमुखी, तैल बीज । हि० भिलावा, भिलामा, भेला, भिलौरा । व० भेला, भेला गाछ । गु० भीलामा । म० बिबा (गिरीको गोडम्बी)। क० करे बीज, गेरुबीजा ते० जिड़ि, चेट्टु, नालाजडि । मला० सोन-कीट्टे । फा० भिलादर, बिलादूर । अ० हुब्बुल कल्ब, हब्बुलकम् । प० भिला, भिलावा । कोल-सोसो । औवलिया, अं० Marking Nut tree, ले० Semecarpus Anacardium

परिचय—सेमीकार्पस=भिलावावाचक ग्रीक शब्द—'सेमियोनकार्पस' परसे जाति संज्ञा । एनेकार्डियम=फल हृदयाकार । मध्यम ऊँचाईका, पतनशील, पानवाला वृक्ष । ऊँचाई लगभग ३० फीट । छाल खुरदरी गहरी भूरी । रसतेज (Acrid) । नया भाग रुएंदार । पान अन्तरपर, शाखाके अन्तमें, सादे ८ से

२४ इञ्च लम्बे और ५ से १४ इञ्च चौडे, लगभग लम्बगोल, सारंगीके आकारके अखण्ड, प्राय: चिमड़े, निम्न तलमें रुएंदार भस्मी धूमर रंगके। पत्रवृन्त ॥ से १॥ इञ्च लम्बा। पुष्प २ से ३ इञ्च आडाईमें, हरापीला, बहुजातीय (Polygamous) अर्थात् नरफूल अलग, मादा फूल अलग और नरमादा साथमें भी कभी नरमादा पृथक् पृथक् (Diocious)। शाखाके अन्तमें, गुच्छोंमें, लम्बी विभाजित पुष्प रचनापर, लगभग वृन्तरहित। मादा पुष्प रचना नर पुष्प रचना से छोटी। पुष्प बाह्यकोषके कोण, पखड़ी और पुंकेसर ५-५ फल १ इञ्च लम्बा, पकनेपर तेजस्वी काला, लम्ब गोलसा, संतरेके रंगकी, मांसल, कर्णिकामें रहा हुआ। फल कच्चा होनेपर भीतरका रस(तैल) दूध सदृश, पक जानेपर कालेरंगका

उत्पत्तिस्थान निम्न हिमालय, पंजाब, देहरादून, बिहार, बंगाल. आसाम, सी पी. आदि। देहरादून और पजाबमें फूल मई जून। फल नवेम्बर-फरवरी। पान रहित वृक्ष फरवरी से अप्रेल। नये पान मईमें। लकडी मुलायम, हलकी। १ घन फुटका वजन ३५ पौंड। पक्के फलके साथ रही हुई प्याली (कर्णिका) कच्ची, सुखाकर और सेककर खायी जाती है। स्वाद लगभग मधुर-कसैला। फलोंके भीतर गिरी (गोडम्बी) रहती है, वह भी खायी जाती है। फलोंके भीतर जो विपाक्त, काला तैली रस रहता है, उसका उपयोग धोबी लोग कपडे पर चिह्न करनेमें करते हैं।

सूचनाः—पुष्पित वृक्षके नीचे सोने या अधिक समय तक बैठने, पुष्पपरागके सेवन और भिलावेको उबालनेके समय वाष्प लग जानेपर मुंह और तमाम शरीरपर सूजन आजाती है।

गुण धर्म—भिलावेके पक्के फल रसमें मधुर, विपाक मधुर, उष्णवीर्य, लघु, अनुरस कसैला, पाचन, स्निग्ध, तीक्ष्ण, कफादि मलोका छेदन करनेवाला भेदन (विरेचन करानेवाला), मेधावर्धक, अग्निप्रदीपक और दांतोंको दृढ करनेवाले हैं तथा कफ, वात, उदर रोग, व्रण, कुष्ठ, अर्श, ग्रहणी, गुल्म, शोथ (वात प्रकोपज या विषज), मलावरोधक, ज्वर, उदरकृमि और कीटाणुविष आदिके नाशक हैं। गोडम्बी मधुर, कामोत्तेजक, (बृंहण) मासपौष्टिक और वातनाशक। कर्णिका मधुर–कषाय, वात प्रकोपक, बालोंको हितावह, विष्टम्भकारक, दुर्जर, रक्तपित्तप्रकोपक। भिलावा वृक्षकी छाल रसमें कसैली, उष्णवीर्य, शुक्रवर्धक, मधुर और लघु तथा वात, श्लेष्मप्रकोप, उदररोग, मलावरोध, कुष्ठ, अर्श, ग्रहणी, गुल्म, ज्वर, श्वित्र (कुष्ठके श्वेत दाग), अग्निमांद्य, कृमि और व्रण रोगकी नाशक है।

चरक संहिताकारने लिखा है कि—

भल्लातकानि तीक्ष्णानि पाकीन्यग्निसमानि च।

भवन्त्यमृतकल्पानि प्रयुक्तानि यथाविधि ॥
कफजो न सो रोगोऽस्ति न विबन्धोऽस्ति कश्चन ।
यं न भल्लातक हन्याच्छीघ्रं मेधाग्नि वर्द्धनम ॥

भिलावा अग्नि के समान तीक्ष्ण और पाचन है। इसका यथाविधि सेवन किया जाय तो, यह अमृत सदृश लाभ पहुँचाता है। कफ प्रकोपज ऐसा कोई रोग नहीं है तथा मलावरोधज और वातावरोधज भी ऐसा कोई रोग नहीं है कि जिसे भिलावा तुरन्त दूर न कर सके। यह बुद्धिवर्धक और अग्निप्रदीपक है।

डा० वामन देसाईने लिखा है, "भिलावा तीक्ष्ण, उष्ण, लघु, चरपरा, दीपन, पाचन, स्वेदल, सारक, यकृदुत्तेजक, मूत्रल, कुष्ठहर, अर्शोहर, कामोत्तेजक, वातनाडियोंको उत्तेजक, रक्ताभिसरणवर्द्धक, कासहर, उत्तेजक, श्लेष्म निसारक, शोथहर, रसग्रन्थियोंको उत्तेजक, आमनाशक, रक्तमें श्वेताणुवर्द्धक और रसायन है।"

"भिलावा रक्तमें जल्दी मिलजाता है, किन्तु देहमें से बाहर अति शनै शनै निकलता है। पचन यन्त्रके भीतर आमाशय और गुदनलिका पर इसकी क्रियों अधिक प्रबल होती है। यकृतमें रक्तका आवागमन जल्दी और नियमपूर्वक होता है। जिससे गुदनलिकामें रक्तका दबाव कम होता है। परिणाममें गुदामें स्फीत शिरा (अर्शके मस्से) छोटे, पतले होजाते हैं। एवं गुदनलिकाको उत्तेजना मिलनेसे मल सग्रह नहीं होता। भिलावा क्षुधावर्द्धक है और यकृतका पित्तस्राव अधिक करा, मलको अधिक पीला बना देता है।"

"त्वचापर भिलावे की क्रिया प्रबल होती है, त्वचा मार्गसे वह बाहर निकलता है। जिससे स्वेद अधिक आता है, त्वचा उष्ण और रक्त बनती है. कण्डू उपस्थित होती है, त्वचामें से बाहर निकलनेके समय उस भागकी विनिमय (चयापचय) क्रिया सुधरती है।"

"दोनों वृक्कोंपर भिलावेकी क्रिया अति तीव्र और उत्तेजक होती है। पहले मूत्र परिमाण बढाता है, किन्तु थोड़ेही समय में वृक्क थक जाता है। फिर मूत्रोत्पत्ति कम होजाती है। इसकी उत्तेजक क्रिया इतनी तीव्र होती है कि, कभी कभी मूत्रसे रक्त (Haematuria) आजाता है। वृक्क के समान मूत्रप्रसेक नलिकापर भिलावा उत्तेजक है। इस हेतुसे भिलावेका सेवन करनेपर मूत्रेन्द्रिय में झनझनाहट होती है। मूत्रेन्द्रियको दबानेकी इच्छा होती है। प्रत्यक्ष क्रियाके अतिरिक्त वातवाहिनियों द्वारा भी मूत्रनलिका और वृषणको उत्तेजना मिलती है। मात्रा अधिक होनेपर गाजा सेवन के सदृश रोगीको घबराहट होती है।"

"मासपेशियोंपर भिलावेकी प्रत्यक्ष क्रिया नहीं होती, परन्तु वातवाहिनियों द्वारा मासपेशियोंको उत्तेजना मिलती है। परिणाममें उनकी सकोच विकास

क्रिया योग्य होने लगती है। भिलावेसे नाडीकी गति बढ़ती है, हृदयस्पन्दन स्पष्ट होने लगता है। रक्तमें श्वेताणुओंकी वृद्धि होती है। इस हेतुसे (स्थानिक) शोथ आया हो तो दूर होता है। श्वेताणुवृद्धि और रसग्रन्थियोंको उत्तेजना मिलनेसे गाठ और अवयवोंकी वृद्धि (हुई हो तो उस) का ह्रास होने लगता है। सामान्यत. भिलावा शरीरके सब भागों केलिए उत्तेजक है। छोटी मात्रामें लेते रहनेपर विनिमय क्रिया (Metabolism) सुधरती है।

वक्तव्य–अ भिलावा वातज और कफज रोगोंमें प्रयुजित होता है। यह अति उष्णवीर्य है। अत ग्रीष्म ऋतुमें नहीं दिया जाता। शीतकालमें ही देना चाहिये। भिलावा छोटे बालक, सगर्भा और वृद्धोंको नही दिया जाता। भिलावेके सेवन कालमें घी, दूध, दही, तैल, मट्ठा, शक्कर, भात, गेहूँका भोजन हितावह है। इन सबमें तैल अधिक हितावह है। मिर्च न देवें या कम देवें। नमक बिल्कुल न दें तो अच्छा, या थोड़ी मात्रामें सैंधानमक देवें। मास बिल्कुल नहीं देना चाहिये। (मांसाहारी भिलावेको सहन नहीं कर सकते।)

आ भिलावा देनेके पहले विरेचन लेकर उदरशुद्धि करलेनी चाहिये। आवश्यकता हो, तो उपवास या मांसवर्द्धक लघु भोजन देना चाहिये। भिलावा देनेके पहले मूत्र परिमाण और मूत्र द्रव्यकी जाचकर लेवें। फिर भिलावा देनेपर हमेशा मूत्रकी जांच करते रहना चाहिये। यदि मूत्र परिमाण कम हो जाता है या रंग लाल हो जाता है तो दर्पहर औषध रूपसे नारियलका जल या इमलीके पानोंका रस पिलाना चाहिये।

इ भिलावेकी मात्रा अधिक होती है, तो दाह, तृषा, छोटी छोटी फुन्सिया निकलना, त्वचामें लाली, कण्डू, स्वेद मूत्रमेंलाली और मूत्रह्रास आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसा होनेपर भिलावा बन्द करदें और दर्पहर ओषधि देवें।

ई भिलावा किसी व्यक्तिको प्रबल असर पहुँचा देता है। अतः प्रारम्भमें मात्रा कमदेनी चाहिये।

उ. भिलावा बाह्यत्वचापर (जहां बाल आते हैं उसपर) लग जाय तो विषप्रकोप दर्शाता है। वहां फुन्सियां होती हैं आगसे जलनेके समान दाह होता है। इस दोषको ध्यानमें रखकर उपयोग करना चाहिये।

ऊ भिलावेके सेवनकालमें धूपमें घूमना, अग्निका सेवन और गरम गरम भोजनका त्याग करना चाहिये।

ए. पित्तप्रकृतिवाले, जिनको मुँहमें छाले रहते हों, तृषा अधिक लगती हो, निद्राकम आती हो, स्वेद अधिक आता हो, दाह और घबराहट रहते हों, उनको भिलावा नहीं देना चाहिये।

भिलावेका शोधन—जो भिलावे जलमें डालनेपर तलमें बैठजाय, उनको ही शुद्ध करना चाहिये। शेषको निकाल डालें।

१ एक भगोनेमें जलगरम करें। जल उबलनेपर उसमें भिलावा डालदें। १० मिनट चूल्हेपर रहने देवें। फिर नीचे उतारकर ढक देवें। शीतल होनेपर जलको निकाल स्वच्छ कपड़ेसे पोंछ लेवें। फिर टोपीको काटकर निकाल देवें।

२ भिलावेको एक कपडेकी पोटलीमें बांधें। फिर १ घड़ेमें गोमूत्र भरें उसके किनारेपर लकडी या लोह शलाका रख उसपर पोटलीको लटकावें। घड़ेके तलसे १ अंगुल ऊँची रहे, उसतरह लटकावें। इसे दोलायन्त्र कहते हैं। इस घडेको चूल्हेपर चढा १२ घण्टे अग्नि देवें। गोमूत्रकम होनेपर बारबार डालते जाय। तेज अग्नि लगनेपर गोमूत्रमें उफाण आता है। अत: घडा बड़ा लेना चाहिये। गोमूत्रमें शुद्ध होनेके पश्चात भिलावेको गरम जलमें धोकर दूधमें उसी तरह मदाग्निपर १२ घण्टे उबालें। फिर भिलावेको गरम जलसे धो देवें और टोपीको काटकर निकाल डालें। इससे भी अधिक शोधन करना हो (भिलावेकी उग्रताको अधिक शान्त करना हो) तो उस शुद्ध भिलावेको नारियलके जलमें १२ घण्टेतक उसी विधिसे स्वेदनकरें।

वक्तव्य—जितना शोधन अधिक होता है, उतना ही भिलावा सौम्य (निर्बल) बनता है। उग्रता जितनी सहन हो सके उतना शोधन करें। केवल गरम जलसे शुद्ध किया तत्काल लाभ पहुँचाता है, गोमूत्रमें शुद्ध हो तो देरमें, गोमूत्र और दूधमें शुद्धकरनेपर उससे भी अधिक समयमें तथा गोमूत्र, दूध और नारियलके जलसे शुद्ध भिलावा शनै शनै लाभ पहुँचाता है। किन्तु वह सबसे सहन हो जाता है। उसके उपयोगमें भय नहीं रहता। जिनको दूध अनुकूल नहीं रहता, उनको मट्ठा देना पडता है। वे मक्खन, दही ले सकते हैं। दूध-दही, दोनों अति मात्रामें नहीं लेना चाहिये।

प्राचीन आचार्योंने कुष्ठ रोगीको दूध सेवनका निषेध किया है। दूधसे कच्चे रस (आम) और कृमिकी उत्पत्ति होनेका लिखा है। कृमि होनेपर रक्तविकार होता है। इस हेतुसे दूध पथ्यरूपसे नहीं देना चाहिये, ऐसीशंका कितनेक चिकित्सक करते हैं। किन्तु भल्लातक सेवनकालमें दूधको पथ्य माना है। भावप्रकाश-कारने महाभल्लातकावलेहके साथ लिखा है कि "अनुपानं प्रयोक्तव्यं छिन्ना-तोयं पयोऽथवा" अर्थात् गिलोयकास्वरस या दूध अनुपानरूपसे देना चाहिये। सुश्रुताचार्यने भी भल्लातक कल्पकालमें "अपराह्ने क्षीर सर्पिरोदन इत्याहार" इस वचनसे दोपहरको दूध और घी भातके भोजनका विधान किया है। अनुभवसे भी दूधका सेवन हितावह विदित हुआ है।

सुश्रुताचार्यने "सर्वेषां तुवरक तैल भल्लातकतैल चेति" इस वचनसे सब

प्रकारके कुष्टकी चिकित्सामें भिलावेके तैलको लाभदायक माना है। यदि पथ्यपालनमें पूरा आग्रह रखा जायगा, तो वंशागत कुष्ठ भी नष्ट हो जायगा।

भल्लातक प्रयोगः—

(१) धात्रीभल्लातक वटी—भिलावा ८० तोले, हरड, वहेड़ा और आंवला ४०-४० तोले. सोंठ, काली मिर्च और पीपल ३०-३० तोले, काले तिल १ सेर और पुराना गुड़ १ सेर लेवें। सवको मिला कूटकर गुडमें अच्छी तरह मिला लेवें। फिर २-२ रत्ती की गोलियां वना लेवें।

वक्तव्य-भिलावा कूटते समय हाथको तैल लगा लेवें। लोहेकी कलछीसे चलावें और निकालें। तिल और दूसरी ओपधिया मिलाकर कूटनेपर भिलावे के तैलका भय कम हो जाता है।

उक्त गोलियोंमेंसे १ से २ गोली दिनमें २ वार जलके साथ सेवन करानेसे आमाशयके विकार, अग्निमांद्य, अपचन, अरुचि, शूल, आमवात, सव प्रकारके वातरोग, उपदंश अथवा अन्य रोगसे होनेवाला संधिवात, अर्धाङ्गवात, ऊरुस्तम्भ और सुजाक जनित उपद्रव दूर होते हैं।

(२) चींचाभल्लातक वटी.—भिलावा और इमली समभाग मिला कूटकर २-२ रत्तीकी गोलिया वना लेवें। जल न मिलावें। दोनोंको मिलाकर कूटनेपर गोलिया वन सके, उतना गीलापन आ जाता है। इसमेंसे १ से २ गोली दिनमें २-३ वार मट्ठे या जलके साथ देवें।

यह वटी विसूचिका, संग्रहणी, अतिसार, उदरशूल, उपदंशज संधिवात, पक्षाघात, अर्दित वात (मुँह रह जाना), मन्यास्तम्भ, कटिग्रह, गृध्रसी, शिरागत वायु आदि दोष दूर होते हैं। यह विसूचिकाकी अच्छी औषधि मानी गई है। अन्य रोगोंमें भी अच्छा प्रभाव दिखाती है।

३. त्रित्रिकादि वटी —(गांवोंमें औषधरत्न प्रथम खण्ड पृ० ७४) यह भी विसूचिकाकी उत्तम ओपधि है।

४. कृमिघ्न गुटिकाः—वायविडंगका कपड़छान ५ तोले चूर्णको भिलावेके तैलमें भिगोवें। (गोली वन सके उतना गीलापन आना चाहिये) फिर १० तोले गुड़ मिलाकर २-२ रत्तीकी गोलियां वनावें। उसे जीरेके चूर्णमें डालते जायें। जिससे गोलियां परस्पर चिपक न जाय। इनमेंसे २ से ४ गोली दिनमें ३ वार जलके साथ देते रहें।

यह वालकोंके कृमि रोगमें अति हितावह है। गुड़, शक्कर, घी, कम देना चाहिये। आयु २ वर्षसे कम होनेपर घी विल्कुल न दें, तो अच्छा। कारण, घृत स्वस्थ शिशुके यकृत्को भी हानि पहुँचाता है।

५ भल्लातक तैलः—५-१० सेर भिलावेको कूट चौड़े मुँहके घड़ेमें भरकर

मुँहपर कपडा बांधे फिर मुँहपर भगोना रख, चारों ओर सम्हालपूर्वक कपड मिट्टी करें। पश्चात् जमीनमें १ हाथ गहरा खड्डाकर उसमें भगोना नीचे और घडा ऊपर रहे, उस तरह रख चारों ओर मिट्टी दबा दें। घडेका १ अंगुल जितना भाग बाहर रहे शेष सब जमीनमें रहे उस तरह योजना करें। फिर घडेपर ३ घण्टेतक अग्नि जलावें। तत्पश्चात् घडा और जमीन शीतल होनेपर भगोने सहित घडेको निकाल लेवें। यदि भिलावेमें तैल रहा हो, तो उस तरह फिर अग्नि देकर निकाल लेवें। इस तैलको बोतलमें भर लेवें।

६ भल्लातक पर्पटी—ऊपर लिखी विधिसे तैल निकाल, उसे भगोने या कडाहीमें भरकर चूल्हेपर चढावें। पहले तैल पतला होगा, फिर गाढा होने लगेगा। गाढा होनेपर २-४ बूंद जलमें डाले। फिर निकालकर तोडें। टूट जाय तो तैलको पक्व जाने। फिर सब तैलको जलपर डाल देने पर पर्पटी बन जायगी। उस पर्पटीको जलमेंसे निकाल सुखाकर बोतलमें भर लेवें।

इसमेंसे २ से ४ रत्ती दिनमें ३ बार दूध, दूबके रस, गुलाबजल या केवडे के अर्कके साथ देनेसे रक्तपित्त और देहके किसी भी मार्गसे होनेवाला रक्तस्राव बन्द होता है।

(श्री प सुखरामदास टी ओझा)

७ भल्लातकादि मोदकः—भिलावे, कालेतिल और हरड, तीनोंको सम-भाग मिलाकर चूर्ण करें। फिर चूर्णके समान गुड़ मिलाकर १॥-१॥ माशेका मोदक बना लेवें। फिर १-१ मोदक सुबह शाम जल या मट्ठेके साथ खानेसे १ मासमें रक्तार्श दूर होता है।

८ वातहर गुटिका—भिलावा ८ तोले, पीपलामूल, पीपल, अकरकरा, सोंठ और मालकागनी १-१ तोला लेवें। सबको कूट १३ तोले गुड़ मिलाकर २-२ रत्तीकी गोलियां बनावें। इसमेंसे १ से २ गोली घीके साथ सेवन करावें। पहले और पीछे थोडा घी चाट लेवें।

इस गुटिकाके उपयोगसे उदरवात, अफारा, कम्प, फडकन, आमवात, कमर जकडना आदि दूर होते हैं।

९ लघु नारसिंह चूर्ण—भिलावा, छिलटा निकाले हुये तिल, शतावरी, छोटे गोखरू, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड, बहेडा और आंवला, ये १० ओष-धियां समभाग लेवें। भिलावे और तिलको छोड शेष ओषधियोंका कपडछान चूर्ण तैयार करें। फिर हाथोंपर तैल लगाकर भिलावा और तिलको कूटें। भिलावेके मिश्रणको कलछी या खुरपेसे चलावें, हाथ न लगावें। दोनों कुट जाने पर उसमें पहले तैयार किया हुआ चूर्ण मिलाकर खरल कर लेवें। इसमेंसे २ से ४ माशे तक चूर्ण घी और शक्कर या घी और शहदके साथ सेवन करें

और ऊपर दूध पीवें। वृक्क सबल और निर्दोष हो और त्वचा स्निग्ध हो तो दिन में २ बार, नहीं तो दिनमें १ बार।

यह चूर्ण रसायन और वाजीकरण है। वृद्धावस्थाकी निर्बलता, किसी रोग विशेषसे आई हुई निर्बलता, अर्श, कुष्ठ, त्वचारोग, कफप्रकोप, वातविकार, इन सबको दूरकर शरीर सबल बनाता है और कामोत्तेजना भी कराता है।

१० भल्लातकावलेह—शुद्ध पक्के भिलावे १० सेर लें, सबके सरोतेसे चार चार टुकड़े करें। उसमें १ मन जल मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। उस जलको छान लेवें। उसमें १ मन दूध मिलाकर खोवा बनावें। पतली रबड़ी जैसा होने पर उसमें २॥ सेर घी मिलाकर पाक करें। फिर ५ सेर शक्कर मिलाकर ७ दिन रहने दें। फिर आधा आधा तोला दिनमें २ बार दूधके साथ सेवन करावें।

यह अवलेह कुष्ठ, अर्श, जीर्ण वातव्याधि, अपस्मार और पक्षाघातको दूर करता है। नेत्र दृष्टि बढ़ाता है, अग्नि प्रदीप्त करता है और शारीरिक शक्ति बढ़ाता है।

११. भल्लातक क्षीर—शुद्ध पक्के भिलावे १० सेर लेकर कपड़ेकी थैलीमें भर जौ या उड़दके भीतर श्रावण मासमें दबा देवें। ४ मासके पश्चात् मार्गशीर्ष मास (या हेमन्त ऋतु) में निकाल लेवें। इन भिलावेमें से १-२ या ४ भिलावे को कूटकर ८ गुने जल (४० तोले) में मिलाकर अष्टमांश क्वाथ करें। फिर कपड़ेसे छाने बिना भिलावेके टुकड़े न आयें उस तरह १०-२० तोले दूधमें मिलाकर पिलावें। पिलानेके पहले और पीछे ६-६ माशे घी चटा देवें। जिससे मुंह या कण्ठमें शोथ न आजाय।

भिलावेका दूध पचन होजानेपर दूध और घीके साथ भातका भोजन करावे। रात्रिको भी भोजन वही। प्रयोग ४० से ६० दिन तक करें। प्रयोग पूरा होजाने पर भी दूने दिनों तक भोजन वही देना चाहिये।

वक्तव्य—(अ) चरक संहितामें भिलावा १० से प्रारम्भ कर ३० पर्यन्त बढ़ानेका और १००० भिलावे पूरा होने तक प्रयोग करने का विधान किया है, किन्तु उतने भिलावे वर्तमानमें सहन नहीं होते।

(आ) यदि ऊपर कही हुई रीतिसे भिलावा तैयार नहीं होसका हो तो पक्के भिलावे गरम जलसे शुद्ध किये हुये ले सकते हैं।

(इ) प्रयोग प्रारम्भ करनेके पहले उदर शुद्धि कर लेवें तथा शीतल स्निग्ध और मधुर द्रव्योंका सेवनकर उष्णताको निकाल देवें और देहको स्निग्ध बनालेवें।

(ई) यदि प्रयोग कालमें मूत्र परिमाण बहुत घट जाय, मूत्रमें

लाली आजाय, तो प्रयोग बन्द कर देना चाहिये।

१२ घावतैल—भिलावा, लहसुन,प्याज और अजवायन,इन सबको ५-५ तोले लेकर ४० तोले तिलके तैलमें भूनें। फिर कडाहीको नीचे उतारकर दूसरे बर्त्तन में तैल डाल देवें। शीतल होनेपर तैल छान लेवें। यह तैल छुरी आदिसे होने वाले आगन्तुक जखममेंसे होनेवाले रक्तस्रावको तुरन्त बन्दकर देता है। अधिक रक्तस्राव हाथ पैरसे होता हो, तो उसे तैलमें डुबो देना चाहिये। साधारण घाव पर फोहा बाधदें। इस तैलके प्रयोगसे घाव नहीं पकता और २-३ दिनमें जखम भर जाता है। साधारण औषधियोंसे यह तैल बना होनेपर भी अति लाभ-दायक है।

१३ भल्लातकादि लेप—भिलावा, कासीस, चित्रकमूल और थूहरके मूल, इन ४ ओषधियोंको समभाग मिला आकके दूधमें १२ घण्टे खरल करके ६-६ माशेकी लम्बी गोलिया बना लेवें। उसे गोमूत्र या जलमें घिसकर लेप करते रहें। यह कण्ठमाल और अर्शके मस्सेको दूर करता है।

इनके अतिरिक्त नारसिंह चूर्ण, काकायन गुटिका. दार्व्यादि क्वाथ, सजी-वनी वटी, नाड़ीव्रण हर तैल आदि अनेक प्रयोगोंमें भिलावेको मिलाया है। भल्लातकावलेह और भल्लातकपाकके भी अनेक प्रयोग शास्त्रमें लिखे हैं। इनमेंसे सरल और अधिक प्रचलित प्रयोग लिख दिये हैं।

उपयोग—भिलावेका उपयोग आयुर्वेदमें अति प्राचीन कालसे होरहा है। चरक संहितामें कुष्ठघ्न, दीपनीय मूत्रसंग्रहण और भेदनीय दशेमानियोंमें तथा सुश्रुत संहितामें न्यग्रोधादि और मुस्तादि गणमें उल्लेख मिलता है। इसके अति-रिक्त अर्श, ग्रहणी, योनिरोग और कुष्ठादि रोगोंके प्रयोगोंमें भिलावेकी योजना की है। तथा रसायन रूपसे भी उपयोग किया है।

भिलावा महाराष्ट्र की घरेलू ओषधि है। इसका उपयोग बरार और महा-राष्ट्रमें अत्यधिक होता है। जिस तरह अन्य प्रान्तवासियों को सूजन आनेकी भीति लगती है, उस तरह उनको नहीं लगती। वे लोग भिलावेकी बडी मात्रा को सहन भी कर सकते हैं। तैल और मट्ठेका सेवन अधिक होनेसे अधिक सहन होता होगा।

डा० वामन देसाईने लिखा है कि, "पचन संस्थाके शिथिलता प्रधान रोगोंमें भिलावेका उपयोग करनेका रिवाज है। अग्निमांद्य, अपचन, अफारा, मलावरोध ग्रहणी, अर्श, उदररोग और गुल्म रोगपर भिलावा दिया जाता है। अर्शके मस्से को नलिका द्वारा भिलावेका धुआ दिया जाता है। (मस्सेके चारों ओर तैल लगाकर धुआ देना चाहिये।) प्लीहा वृद्धि और यकृद्वृद्धि पर दिया जाता है एवं दोनों पर भिलावेके तैलका दाग भी किया जाता है। भिलावेके सेवनसे तैल

घी और घृतयुक्त भोजनको पचानेकी शक्ति बढ़ जाती है। इस हेतुसे उक्त रोगों में लाभ पहुँचता है।"

"भिलावा त्वचारोगमें भी हितावह है। कुष्ठ, श्वित आदि रोगोंपर व्यवहृत होता है। फौडे (विद्रधि) और नाडी व्रण न भरते हों, तो भिलावेके तैलको सुअरकी चर्वी (या वैसेलीन) में मिलाकर लगाया जाता है। गण्डमालामें भिलावेका सेवन पारद (रसकपूर) प्रधान औषधिके साथ कराया जाता है। भिलावा और अजवायन २-२ तोले और रसकपूर १ तोला मिला जलमें खरलकर (या शहदमें मिलाकर) १-१ रत्तीकी गोलियां बना लेवें। इसमेंसे १-१ गोली निगलवाकर मट्ठा पिला देवें। (गोली चबानेपर मसूढ़ोंको हानि पहुँचती है, दात शिथिल हो जाते हैं।)"

"भिलावा वातरोगमें अति हितकारक है। गृध्रसी (चूतड़की वायु), वातनाडी प्रदाह, पक्षाघात (नया), अर्दित (मुँहका पक्षाघात-लकवा) और ऊरुस्तम्भपर भिलावा देनेसे पहले मासपेशियोंकी क्रिया सुधरती है। जिससे गतिभ्रंश कम होता है। मस्तिष्कके अति उपयोगके हेतुसे मगज थक गया हो, तो भिलावा देनेपर लाभ हो जाता है। मस्तिष्कके आवरणके प्रदाह (Meningitis) पर भिलावा हितावह है। वातसस्थाके रोगोंमें भिलावा कम मात्रामें लम्बे अरसे तक देते रहना चाहिये। नये आमवातकी तीव्रावस्थामें बहुत अच्छा लाभ मिलता है। यदि रोगी युवा और बलवान हो, तो जल्दी लाभ होता है। आमवात जीर्ण होनेपर इसका विशेष उपयोग नहीं होता।"

श्वासरोगपर भिलावा अत्युत्तम औषधि है। प्रतिवर्ष शीतकालमें उठनेवाले श्वासरोगपर भिलावेके फूल (फलके साथ लगे हुये) देनेपर दमा चला जाता है। फुफ्फुसमें शोथ आकर ज्वर आता हो और कफ रक्तमय गिरता हो उसपर भी भिलावा अच्छा लाभ पहुँचाता है। भिलावेके साथ मुलहठी मिला लेनी चाहिये।"

१ रसायनार्थ—शीतकालमें रोज सुबह पथ्यपालनपूर्वक भल्लातक क्षीरका प्रयोग करें अथवा लघु नारसिंह चूर्णका सेवन करें।

२ अपचन—आमाशय निर्बल होनेपर, मलमें आम अधिक आता है और यकृत् निर्बल बननेपर भी पचनक्रिया योग्य कार्य नहीं कर सकती। फिर मल सफेद और दुर्गन्ध युक्त बन जाता है। कभी सूक्ष्म कृमि भी हो जाते हैं। इस विकारपर २ या ३ भिलावेके तैलको दही या शक्कर मिले दूधमें मिलाकर रोज सुबह सेवन कराना चाहिये। २-४ दिन सेवन करनेपर आम आता हो, तो वह कम हो जाता है, पीलापन कम हो तो पीलापन आ जाता है। बडे कष्टसे शौच उतरता हो, तो कष्ट दूर होता है। इसके अतिरिक्त रक्तस्राव,

अफारा, उदरमें दुर्गन्ध होना, ये सब दूर हो जाते हैं। भोजन हलका करें दूध और भात या मट्ठा और भात।

३ अग्निमान्द्य—क्षुधा न लगती हो, उदरमें भारीपन बना रहता हो, शौच-शुद्धि न होती हो, अपानवायुमें दुर्गन्ध आती हो, तो भिलावेके तैलका सेवन करावें। एक सुएको भिलावेके भीतर लगा भिलावेको दीपककी अग्नि देनेपर भिलावेका तैल टपकने लगता है, उस तैलको नागरवेलके पानपर १ तोला शक्कर फैलाकर उसपर टपकावें। इसका सेवन रोज सुबह कराते रहनेपर थोड़े ही दिनोंमें अग्नि प्रदीप्त होती है। तथा अरुचि और मलावरोध दूर होकर भोजनमें रुचि उत्पन्न हो जाती है।

४ आमातिसार—दस्त बार-बार लगना और उसमें आम जाता हो, तो उसे आमातिसार कहते हैं। इस विकारपर भिलावा दिया जाता है। २–२ भिलावेका तैल १–१ तोले मक्खन या घी में मिलाकर दिनमें ३ बार सेवन कराया जाता है। २–३ दिनमें ही दस्तमें दुर्गन्ध आना, आम जाना, उदरमें पीड़ा होना, उदरमें भारीपन रहना, ये सब दूर होकर पचनक्रिया सबल बन जाती है। भोजनमें केवल मट्ठा देवें या दही भात देवें।

५, आमसंग्रहणी—आमातिसार जीर्ण होनेपर आमसंग्रहणी कहलाता है। इसपर १–१ भिलावेका तैल दिनमें २ बार १–१ तोले मक्खन या घीके साथ १–२ मास तक सेवन करानेपर रोग निवृत्त हो जाता है (१५ दिन सेवन करा, ७ दिन बन्द करें, पुन सेवन करावें) यदि मूत्रमें लाली आ जाय और मूत्र परिमाण कम हो जाय, तो चिचाभल्लातक वटीका सेवन करावें। उसमें भिलावेकी मात्रा बहुत कम आती है।

६ अर्श—हाथपर घी लगाकर १ माशे गोघृतमें भिलावेको घिसें। जब भीतरकी गिरी दिखलाई देने लगे, तब घिसना बन्द कर दें। इस घीको गुदाके भीतर लगावें। फिर वृषणोंको अग्नि न लगे, उस तरह आध घण्टेतक सेक करें। जिससे दूसरे ही दिन दस्तके साथ होनेवाला रक्तस्राव बन्द हो जाता है। इस प्रयोगके अतिरिक्त भल्लातकादि लेप लगाया जाता है। एव भल्लातकावलेह या भल्लातकादि मोदक भी खिलाया जाता है। सुश्रुताचार्यने भिलावेका क्वाथ मुँहमें घी लगाकर पिलानेका विधान किया है। भिलावा रक्तार्श और वातार्श, दोनोंमें हितावह है।

७ उदरकृमि—यकृत्का पित्तस्राव कम होनेपर मल सफेद, दुर्गन्धयुक्त बनता है। फिर मलावरोध या अपचन हो जाय, तो उसमें छोटे छोटे कृमि उत्पन्न हो जाते हैं। इस तरह बिगड़े हुये अन्न, फल या शाक खानेपर भी

उदरकृमि हो जाते हैं। इन सूक्ष्म कृमियोंको नष्ट करने, रक्तमें लीन विषको जलाने और उत्पत्ति वन्द करानेके लिये भिलावा दिया जाता है। १०-२० दिनतक भिलावेका तैल मक्खनके साथ सेवन कराया जाता है। (भोजन हलका पथ्य देवे) अथवा चींचाभल्लातक वटीका सेवन करावें।

यह रोग बालकोंको अधिक होता है। फिर उदरपीड़ा, थोड़ा-थोड़ा दस्त होते रहना, अरुचि, मुँहसे लार टपकना, स्फूर्ति न रहना, अफारा, बेचैनी, नाक और गुदामें खुजली चलना, मन्दज्वर और पाण्डुता आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इसपर बालकोंको कृमिघ्न गुटिकाका सेवन १-२ सप्ताह करावें।

८ प्लीहावृद्धि—प्लीहाके बीचमें भिलावेके तैलकी बूंद लगावें। फिर ऊपर शीतल जल डालें। जिससे फाला हो जायगा। उसे सुईसे फोडकर जल निकाल डालें। त्वचा न तोडें। उसपर मक्खन लगाकर पट्टी बांध देवें जिससे पानी बहकर प्लीहावृद्धि कम हो जायगी।

भिलावा, हरड, जीरा, इन तीनोंको समभाग मिला भिलावेके समान गुड़ मिला २-२ तोलेके लड्डू बनावें। इसमेंसे १-१ लड्डू रोज सुबह खिलाते रहनेपर जल्दी लाभ पहुँचता है। (ज्वर हो तो यह लड्डू नहीं देना चाहिये)।

९. रक्तपित्त—ऊर्ध्व और अधो रक्तपित्त, नकसीर, रक्तवमन आदि सबपर भल्लातक पर्पटीका सेवन कराया जाता है। यह पर्पटी थोड़े ही दिनोंमें आशातीत लाभ दर्शाती है अथवा भिलावेके टुकड़े कर ४ गुने घीमें मिलाकर तल लेवें। फिर घी नितार लेवें। इसमेंसे १-१ तोले घृतका शक्करके साथ मिलाकर चटानेसे रक्तपित्त शमन हो जाता है।

१० कफकास—फुफ्फुसोंमें सगृहीत कफको बाहर फेंकनेके लिये खांसी आती रहती हो, तो उसपर भिलावा श्रेष्ठ ओषधि है भल्लातक क्षीरका सेवन पथ्य पालनसह कुछ दिनोंतक करानेपर नयी और पुरानी खासी, सब दूर हो जाती है। भोजनमें मात्र दूध और घी भात लेनेपर जल्दी लाभ होता है।

वक्तव्य—शुष्क कास जिसमें कफ न निकलता हो, मात्र झाग आता हो और बार-बार कासका वेग उत्पन्न होता रहता हो, उसपर भिलावेका उपयोग नहीं करना चाहिये।

११ डब्बा रोग—भिलावेके तैलकी २ बूंद शक्करमें मिला दूधके साथ दे देनेसे कफ निकल जाता है और डब्बा शमन हो जाता है। जिन बच्चोंको पतले दस्त होते हों या उदरशुद्धि नियमित होती हो, उनको यह दिया जाता है। मलावरोध पीड़ितोंको सत्यानाशीके वर्णनमें लिखी हुई डब्बानाशक गुटिका दी जाती है।

१२ जीर्णमन्दज्वर—मुद्दती बुखार आ जानेके पश्चात् मंद बुखार रहता हो, क्षुधामान्द्य, मुख मण्डलकी निस्तेजता, पाण्डुता, मलावरोध, उत्साहका अभाव, नपुंसकता आदि लक्षण प्रतीत होते हों, तो २ से ४ भिलावेको कूट भल्लातक चीर बनाकर सेवन करानेपर कुछ दिनोंमें सब लक्षण दूर होकर शरीर निरोगी बन जाता है।

१३ आमवात—इस रोगकी तीक्ष्णावस्थामें ज्वर आ जाता है। मूत्र लाल और कम हो जाता है। साधोंमें वेदना होती है। वेदनाका स्थान बार बार बदलता है। इस अवस्थामें भिलावेका उपयोग न किया जाय तो अच्छा। इस विकारकी जीर्णावस्थामें यदि मूत्रमें लाली या न्यूनता हो तो भल्लातक चीर का सेवन रोज सुबह पथ्य पालन सह १-२ मासतक कराया जाता है या वातारिभल्लातकवटी दिनमें २ बार देते रहनेपर भी लाभ हो जाता है।

१४ आधाशीशी—जिस ओरके कपालमें दर्द हो, उसके सामनेकी ओर नाकके पासके कोनेमें आँखके भीतर लाल भागपर सलाईसे भिलावेका तैल लगावें। इस समय आँखमेंसे जल गिरेगा, वह बाहर चमडीको लगकर सूजन न ला देवे, इस लिये वैसेलीन या घी लगा लेवें। इस तरह यह प्रयोग ३ दिन तक करनेपर रोग निवृत्त हो जाता है।

१५ हस्तिमेह—(बहुमूत्र-Polyuria)—वृद्धावस्थामें या अन्य रोगादि कारणोंसे पेशाबका परिमाण अधिक होता है और मूत्र त्यागभी अनेक बार होता है। रात्रिको बार-बार उठना पडता है। जिससे निद्रा भी पूरी नहीं मिलती। तृषा बहुत लगती है और कृशता आती है। उसपर भिलावेका सेवन आशीर्वादके समान हितावह है। भल्लातक चीरका सेवन करानेपर ४-८ दिनमें ही रोग काबूमें आ जाता है। या प्रतिदिन काथ बनानेके समय १-१ तोला बेलगिरी भी साथमें मिलाते रहें तो लाभ जल्दी पहुँचता है।

१६ कांखबलाई—नयी होनेवाली कांखबलाई और अन्य स्थानकी गाठों पर भिलावेके तैलके बूंद लगानेपर बढना बन्द हो जाता है। तैल लगानेके बाद ऊपर चूना लगा लिया जाता है।

१७ बद—भिलावेको कूट चूनेके साथ मिलाकर लेप करें। इस तरह ५-७ दिनोंतक प्रयोग चालू रखनेपर रोगकी वृद्धि रुक जाती है और फिर मिट जाती है।

कत्थे और गुडमें भिलावेका तैल मिलाकर भी लेप किया जाता है। फिर ऊपर चूना घिसनेपर नया बद हो तो दब जाता है।

१८ गण्डमाला—भल्लातकादि लेप लगावें। या भिलावे और कसीसको आकके दूधमें घिसकर लेप करें।

१६ गांठ—शरीरके किसी भागमें लसिका ग्रन्थि बढ़नेपर गांठ हो जाती है। फिर शनैः-शनैः बढ़ती है। कभी-कभी यह नींबू या आमसे भी बड़ी हो जाती है (इसमें पूयोत्पादक कीटाणु न हो तो नहीं पकती) इस गांठके बीचमें (छोटी होनेपर ही) भिलावेके तैलका एक चिह्न '=' आकारका या २-३ चिह्न करें। कभी- कभी २-२ दिन छोड़कर उस चिह्नके पास नया चिह्न करना पड़ता है। जब भिलावेकी विष क्रिया होकर जलस्राव होने लगे, तब आगे तैल न लगावे। इस स्रावको बन्द न करें, अन्यथा बाजूमें दूसरी नयी गाठ उत्पन्न हो जायगी। यह स्राव कुछ दिनोंतक चालू रहता है। और गाठ कम होती जाती है। यह स्राव धीरे-धीरे स्वयमेव कम होता जाता है। जब किंचित् गीलापन होने लगे तब उसपर शहद दिनमें ३-४ बार लगाते रहनेसे वह स्थान बिल्कुल स्वस्थ हो जाता है।

२० श्लीपद—पैर या अन्य किसी स्थानमें सयोजक तन्तुओंकी वृद्धि होकर मेद या कच्चारस संगृहीत होनेपर उसे श्लीपद कहते हैं। पैरपर होनेपर उसे हाथीपगा कहते हैं। इस विकारकी प्रथमावस्थामें भिलावेके तैलके एक-एक चिह्न, पट्टी आकारके २ सूत चौड़े, श्लीपदके चारों ओर दो दो दिनके अन्तरपर करते रहनेसे ऊपर कहे गाठके उपचारके समान स्राव होकर श्लीपद दूर हो जाता है। पहली पट्टी बीचमें निकालें। फिर १ ऊपर, पश्चात् १ नीचे, पुन. ऊपर-नीचे इस क्रमसे निकालते जायँ।

वक्तव्य—यदि पहली बार लगा हुआ भिलावा बिल्कुल उड़ जाय, तो उस स्थानपर पुन लगा लेवें। भिलावेके विषका असर होनेपर बुखार आ जाता है, किन्तु वह स्वयमेव २-३ दिनमें शान्त हो जाता है।

२१ वातरोग—उदरमें वायु भरा रहना, अफारा, शरीरके किसीभी भाग में फड़कन होना, हाथ पैरोंमें कम्प होना, सन्धिवात, पुराना आमवात और कमर जकड़ जाना आदि वात विकारोंमें भल्लातक क्षीर या वातहर गुटिकाका सेवन कराया जाता है।

२२ वातशूल—हाथ, पैर या पीठ आदिमें वातप्रकोपसे सूजन आई हो (वह भाग फूल गया हो) और उसमें शूल चलता हो, तो महाराष्ट्रमें उस स्थान के मध्य भागमें भिलावेका तैल भरते हैं। सुईके '+' इस तरह चिह्न करते हैं। फिर कुछ समयके पश्चात् वहां चूना लगा लेते हैं। इससे शूल तुरन्त शान्त हो जाता है।

२३ वातरक्त—इस रोगमें पहले हाथ पैरोंके अगुठेपर सूजन आती है। हाथ पैरोंके तलमें दाह होता है। फिर सधि स्थानोंमें शोथ आकर वेदना होती

है। रक्तविकृत होकर स्थान-स्थानपर ददौरे हो जाते हैं। इस रोगपर भल्लातक क्षीर, धात्रीभल्लातकवटी या भल्लातकावलेहका सेवन कराया जाता है। यदि मूत्रका ह्रास हो जाय, तो भिलावा तुरन्त बन्द कर देना चाहिये।

२४ कुष्ठ—पीले पीले फोडे अंगुलियोंके मूलमें होना, शरीरपर खुजली चलना और खुजानेपर छोटी छोटी फुन्सियां होकर जल या पीप भर जाना, लाल-लाल चकत्ते होना, सफेद दाग होना, सूखा और गीला खुजली होना, लाल या काला दाद होना, ये सब कुष्ठके प्रकार हैं। भिलावा इन सबको दूर करता ही है, उतना ही नहीं, गलन कुष्ठकी प्रथमावस्थामें भी भिलावा दिया जाय तो लाभ हो जाता है। प्रथमावस्थामें चेहरेकी विहीनता, अशक्ति, आलस्य, निद्रावृद्धि, त्वचाफूल जाना, त्वचाका रंग बदल जाना, रक्तविकारके ददौरे होना, व्रण होनेपर दुर्गन्धमय स्राव होना, स्वेदमें दुर्गन्ध आना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। उस अवस्थामें १-२ मास तक भल्लातक क्षीरका सेवन और पथ्यका आग्रहपूर्वक पालन कराया जाय तो कुष्ठ शमन हो जाता है।

वक्तव्य—भोजनमें मात्र दूध, घी, भात लेना चाहिये। नमक मिर्चका पूर्णांशमें त्याग करना चाहिये।

२५ उपदंश—वर्तमानमें सर्वत्र फैला हुआ उपदंश (फिरंग) भारतका मूलरोग नहीं है। ४०० वर्ष पहले फिरंगी (पोर्टुगीज) लोगोंने व्यभिचार करके भारतमें फैलाया है। यह अति दुष्ट रोग है। योग्य चिकित्सा न होनेपर इस रोगका विष रक्तादि धातुओंमें लीन हो जाता है। फिर भावी संतानोंमें भी उतरता है। इसकी जीर्णावस्थामें रक्तके ददौरे, फोडे-फुन्सी, कुष्ठविकार, नासूर (नाडीव्रण), भगंदर, तालुव्रण, नेत्रव्रण आदि विविध लक्षण उपस्थित होते हैं। उस अवस्थामें रोगीको भल्लातक क्षीरका सेवन और दुग्ध घृत-भातका भोजन कराया जाय, तो रोग बीज निःसंदेह नष्ट हो जाता है। ४-६ मासतक प्रयोग चालू रखना चाहिये और नमक, मिर्च, सूर्यका ताप, अग्नि, मैथुन आदिको आग्रहपूर्वक छोड़ना चाहिये।

२६ श्वेतप्रदर—इस रोगमें जननमार्गसे सफेद जल जैसा स्राव होता है। किसीको पतला और उष्ण, किसीको गाढा और पुराना होनेपर पीला। गाढा स्रावपर भल्लातक तैल मक्खन-मिश्रीके साथ दिया जाता है। और ऊपर १-१ तोले दारुहल्दीका क्वाथ पिलाया जाता है। यह औषधि रोज सुबह एक बार देना विशेष अनुकूल रहता है। २ बार देनेपर किसी किसी रुग्णाके मूत्रमें लाली आ जाती है। १०-२० दिन सेवन करानेपर गर्भाशय और बीजाशयकी विकृति और सफेद प्रदर दूर होते हैं। और रचनक्रिया सबल बनती है।

२७ मासिक धर्मका ह्रास—बीजाशय और गर्भाशय निर्बल हो जाने, बीजाशय नलिकामें प्रतिबन्ध होने अथवा शरीरम रक्तकी कमी होनेपर रज स्राव कम होता है। फिर कारण भेदसे लक्षण भेद होता है। सामान्यत मासिकधर्ममें वेदना, पाण्डुता, शिरदर्द, वेचैनी, अरुचि, आलस्य आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। इस रोगपर २-३ भिलावेके टुकडेकर २० तोले जल मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर छान २० तोले दूधमें मिलाकर रोज सुबह पिला देवें। यदि मूत्रमें कमी न हो तो १५ दिन देवें। फिर १५ दिन बन्द करें। इस तरह २-४ मास तक देते रहनेपर मासिकधर्म नियमित वन जाता है।

२८ इन्द्रलुप्त—शिरके वाल उड़ जानेपर भिलावेके पानोंका रस और शहद मिलाकर लेप करते रहनेसे १-२ मासमें लाभ पहुँचता है।

२९ जखम—वरारआदि प्रदेशोंमें किसान और मजदूर लोग घाव लगकर रक्तस्राव होने या त्वचा खुरच जानेपर, वहा भिलावेका तैल लगा फिर उस पर चूना लगा लेते हैं। भिलावे और चूनेके हेतुसे घाव नही पकता। एव चूना भिलावेकी विषक्रिया नहीं होने देता।

३० मूढमार—कभी कभी १०-२० फीट ऊपरसे गिरने या पेटपर मूढमार लगनेपर चोटका असर भीतर होता है। कभी-कभी वाहरसे कुछ भी मालूम नहीं पड़ता। किसीको रक्त जम जाता है। मूत्रमें रक्त, रक्तवमन या रक्तातिसार हो जाता है। किसीको अति वेदना होती है और कभी-कभी धनुर्वात उपस्थित हो जाता है। साधारण मार लगा हो तो नारियलका जल पिलाने या हल्दी गुड़ खिलानेपर लाभ हो जाता है। किन्तु चोट अधिक लगनेपर भिलावेका ही आश्रय लेना पड़ता है। २ भिलावेके टुकड़ेकर १ छटांक घीमें भूनें। फिर घीमें १ छटाक गेहूँका आटा सेककर हल्वा वना लेवें। आध छटांक या चाहिये उतना गुड़ मिला लेवें। यह हल्वा रोज दोपहरके भोजनरूपसे खिलावें। रात्रि को क्षुधा अनुरूप खिचड़ी या दूध-भात देवें। पहले दिनसे वेदना कम होने लगती है। ७दिन प्रयोग करनेपर मांसपेशियां बलवान वन जाती हैं, वेदना विल्कुल निवृत्त हो जाती है और शरीर स्वस्थ हो जाता है।

३१ बुद्धिमान्द्य—शारीरिक निर्बलता, अति मानसिक श्रम या रोग विशेष के हेतुसे स्मरण शक्ति कम हो गई हो, या समझ शक्ति पूरा काम न करती हो, तो उसे भल्लातक क्षीरका सेवन शीतकालमें पथ्य पालनसह करावें।

भल्लातक विष—अ. भिलावा लग जानेपर फाला होजाता है और उसमें जल भर जाता है। एक सुईसे उसमें छिद्रकर जल निकाल डालें। त्वचा न निकल

जाय, यह सम्हाले। उसपर तिलको दूध या मक्खनमें पीसकर लेप करनेसे दाह तुरन्त शान्त होता है और फाला मिट जाता है। अथवा बहेडेकी गिरीको पीसकर लेप करें। बरारमें मक्खनमें चूना (पानमें खानेका जलवाला) मिलाकर लेप करनेका विशेष रिवाज है।

आ भिलावेका धुआँ लग जानेसे सूजन आगई हो तो तेनी बीज-नारियल की गिरी, चिरोंजी, काजू, बादाम, पिस्ता आदि खावे, खानेमें तेलका उपयोग अधिक कर तथा नारियलके तेलकी मालिश करें।

४७ भुई आवला

स० तामलकी भून्यामली, ताली, भूधात्री, उच्चटा। हि० भुई आवला, भद्र आवला, जर आवला। ब० भूइ आवला। म० भूई आवली। गु० भोंय आमली। सिं० निरुरि। क० किरुनेल्लि। ता० किल कायनेल्लि। ते० नेलनेल्लि। मला० किझानेल्लि। ले० Phyllanthus Niruri

परिचय—फाइलेन्थस=विभाजित छोटे पानोंके कोणोंमेंसे पुष्प जिसमें निकले हों, ऐसी वनस्पति जाति। निरुरि=सिहाली नाम है। भूमि आवलेके क्षुप वर्षा ऋतुमें खेतों और जगलोंमें निकल आते हैं। यह भारतके सब उष्ण प्रदेशोंमें होता है। ऊचाई ॥ से १॥ फीट। पान फीके हरे विविध प्रकारके। पान और फलोंका आकार लगभग आवले सदृश, किन्तु बहुत छोटा। नरपुष्प १ से ३ तक साथमें। पखडिया ४ से ६। पुकेसर ३। मादा पुष्प एकाकी। गर्भाशय ३ कोषयुक्त। फूल हरे या सफेद प्रभावाले। फल फूल वर्षाऋतुमें।

भुई आवलेकी एक दूसरी जाति जिसमें फल खुरदरे होते हैं। जिसे लेटिन नाम फाइलेन्थस यूरिनरिया (P -Urinaria)संज्ञा दी है। मराठीमें लाल भुई आवली कहते हैं। यह भी भारतके समशीतोष्ण प्रदेशमें सर्वत्र होती है इसके पान, फल, फूल ये सब उक्त निरुरि जातिकी अपेक्षा बडे होते हैं। तनेकी ऊचाई निरुरि जातिके समान ६ से १८ इञ्च। तना और फूल रक्ताभ। विहारमें फल फूल जुलाईसे डिसम्बर तक।

भुई आवलेकी तीसरी जातिका लेटिन नाम फाइलेन्थस सिम्प्लेक्स (P Simplex) संज्ञा दी है। ऊचाई १ से ३ फीट। फल फूल अगस्तसे डिसम्बर तक। नरपुष्प २ साथमें, स्त्री पुष्पका दण्ड प्रत्येक गुच्छमेंसे निकलता है।

उक्त तीनों जाति विहारमें होती है। इनमें पहली जाति गुणमें अधिक मानी गई है। औषध रूपसे इसके पचागका उपयोग होता है।

मात्रा—१॥ से ३ माशे।

गुणधर्म—भूधात्री, रस मधुर, अनुरस कड़वी, रुचिकर, लघु, शीतवीर्य, पित्तशामक, कफनाशक, रक्तप्रसादन और दाहशामक है। नेत्ररोग, व्रण, शूल, प्रमेह, मूत्ररोग, प्यास, कास, पाण्डु, क्षत और विषको दूर करता है।

डॉक्टर देसाईके मतानुसार भूधात्री दीपन, पाचन, मूत्रजनन, स्रंशन, दाहशामक, व्रणरोपण, शोथहर और नियतकालिक ज्वर प्रतिबन्धक है।

उपयोग—भुई आंवलेका उपयोग आयुर्वेदमें प्राचीनकालसे हो रहा है। चरक संहितामें कासहर और श्वासहर दशेमानियोंमें तथा मधुर स्कंधमें उल्लेख किया है। एवं क्षय, कास, श्वास, हिक्का, क्षतक्षीण, हृद्रोग, वातरोग, वातरक्त, शिरोरोग आदिके प्रयोगोंमें भुई आवला मिलाया है।

१ प्रवाहिका—भुई आवलेकी कोमल शाखाओंका फाण्ट दिनमें ३ बार देते रहनेसे ३-४ दिनमें प्रवाहिका बन्द होजाता है।

२. कामला—इसका मूल १ तोला दूधके साथ पीस छान प्रात सायं पिलावें। कामलारोगमें यह बहुत अच्छा कार्य करता है।

३ शीतज्वर—पञ्चाङ्गका क्वाथ दिनमें ३ बार या २-२ घण्टेपर २-३ बार पिलानेसे शौचशुद्धि होती है, प्रस्वेद आता है, निद्रा आ जाती है, ज्वरकी पाली टल जाती है; तथा यकृत्प्लीहावृद्धि कम होती है। जीर्ण विषमज्वरमें भी यह लाभदायक है।

४ सुजाक—भुई आंवलेका स्वरस २ तोलेको २ तोले गोघृतके साथ मिलाकर प्रात सायं पिलानेसे मूत्रशुद्धि होती है और मूत्रदाह शमन होता है। इस तरह मूत्राशय शोधनमें यह हितावह है।

५ शोथ—पञ्चाङ्गका फाण्ट दिनमें २ बार पिलाते रहनेस मूत्रद्वारा अधिक जलस्राव होकर शोथ दूर हो जाता है।

६. नेत्राभिष्यन्द—(क) भुई आवलेके पञ्चाङ्गके रसको तैलमें मिला, उसमें रूईके फोहे भिगोकर नेत्रके ऊपर रखनेसे दाह शान्त होता है और लाली मिट जाती है।

(ख) तांबेके बरतनमें भुई आवलेके पान रख, थोड़ा सैंधानमक मिला तांबेके वत्ते या प्यालेसे घिसकर चटनी बना लेवें, उसका लेप आंखके ऊपर और चारों ओर कर देनेसे लाली बहुत जल्दी मिट जाती है और पीडा शान्त हो जाती है।

७. व्रणशोथ और व्रण—चावलकी यवागूमें भुई आंवलेके पचांगको गरमकर बांधते रहनेसे जल्द लाभ पहुँच जाता है। स्तनशोथपर भी पचांगका लेप किया जाता है।

८ हाथ पैर मुड़ जाना—पानोंको पीसकर बांधनेसे वेदना दूर होती है और संधि स्वस्थ हो जाती है।

९ अत्यार्त्तव—मुई आंवलेके बीज या पचांगको पीस ठण्डाईकी तरह छानकर पिलानेसे रज स्राव कम हो जाता है और गर्भाशयकी उग्रता शान्त हो जाती है।

(४८) मखाना

स० मखान, पानीयफल। व० माखाना। गु० मखाणा। म० मखाणे। ओ० कुंतापद्म। पं० जेवार। मार० फूल मखाणा। ते० मह्नि पद्मनु। अ० Foxnut ले० Eunyale Ferox

परिचय—यह कांटेदार, शाखारहित, जलीय क्षुप है। कंद छोटा। पान ढालसदृश, झुर्रीदार, १ से ४ फीट व्यासके। फूल १ से २ इंच लम्बे, भीतर तेजस्वी लाल, बाहर हरा और तेजस्वी। फल २ से ४ इंच व्यासका। बीज (मखाने) मटरसे झाडी बेर तकके कदके। बीजोंको चावलके लावाके समान रेतमें सेक लेते हैं।

गुणधर्म—मखानेके गुण कमलगट्टेके समान शीतल, स्वादु, बल्य, ग्राही, गर्भस्थापक और पित्तशामक। लावा पचनमें हल्का, मन्दाग्निवालोंको पथ्य।

उपयोग—मखानेके लावेको थोडे घीमें भूनकर खिलानेसे अतिसार शमन होजाता है। यह वीर्यस्तम्भक और धातुवर्द्धक होनेसे शुक्रकी निर्बलता वालों केलिये भी हितावह है। इसके आटेमें घी शक्कर मिलाकर स्त्रियोंको पिलानेसे गर्भाशयकी उष्णता शान्त होती है, प्रदर आदि विकार दूर होते हैं, और गर्भाशय गर्भधारणके योग्य बन जाता है।

हृदयकी गति बढ जानेपर कमलके समान फूलोंकी पंखड़ियोंके १ से २ तोलेका फाण्ट पिलाया जाता है। एवं ज्वरवेग बढ़नेसे होनेवाली व्याकुलताके शमनार्थ छातीपर इसका मोटा लेप भी कराया जाता है।

इसकी केशर दाहशामक और रक्तसंग्राहक है। सब प्रकारके रक्तस्रावोंमें नियतापूर्वक इसका उपयोग होता है।

(४९) मराठी

हिं० मराठी गोरखबूटी, कपूरीजडी। व० चाया। म० कपूरीमधुरी। गु० कपुरीमधुरी। सौ० गोरखगांजो, भोंयजडी। कच्छी-गोरखड़ी, सनीबूर। सिं० -, जडी। रा० चूई। प० चूईकला। ते० पिण्डीकुमडा ले० Aevua Lantana.

परिचय—लेएटाना=सुगन्धित मूलयुक्त। खडा या जमीनपर फैला हुआ, लम्बे कीलक मूलयुक्त वर्षायु क्षुप। काण्डकी ऊंचाई १ फूटतक। शाखाएं लगभग आधार स्थानसे निकली हुई, अनेक, सफेद ऊन सदृश रुएंदार, लगभग वर्तुलाकार, समान्तर नालीयुक्त। पान मुख्य काण्डपर एकांतर, ।।। से १ इंच लम्बा, ।। इंच चौड़ा, शाखापर बहुत छोटे, लगभग लम्ब वर्तुलाकार, अखण्ड, ऊर्ध्वतलपर न्यूनाधिक रुएदार, निम्न तलपर रुई सदृश, केशमय। पुष्प हरा-सफेद, बहुत छोटा, प्रायः उभयलिङ्गयुक्त, लगभग वृन्तरहित-पत्रकोणीय गुच्छमें या मजरीपर। फल बहुत छोटे और काले बीजयुक्त। पुष्प और फल काल नवम्बरसे जनवरी तक।

उत्पत्तिस्थान—भारतमें सर्वत्र, सिलोन, अरबस्थान, आफ्रिकाका उष्ण कटिबध प्रदेश, जावा, फिलिपाइन।

औषधोपयोगी अंश—मूल, पंचांग और बीज।

गुणधर्म—मराठी मूत्रल, रक्तशोधक, पौष्टिक, कफघ्न, कीटाणुनाशक, उपलेपक और अश्मरीहर है। मूत्रावरोधपर तथा अश्मरी भेदनार्थ मूलका अधिक उपयोग होता है।

उपयोग—इसका उपयोग आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें घरेलू औषधि रूपसे व्यवहृत होता है।

१. कफप्रकोप—मूल या पचांग २ से ३ माशे तक दिनमें ३ बार शहदके साथ लेते रहनेसे कफ सरलतासे बाहर आजाता है। इसकी जड़का धूम्रपान करनेसे तत्काल कफ निकलकर घबराहट दूर हो जाती है।

२. मूत्राशयाश्मरी—मूत्राशयमें पथरी होनेपर ६ माशे जड़का चूर्ण जलमें पीस छानकर रोज सुबह १ सप्ताहतक पिलानेसे मूत्रावरोध दूर होता है तथा मूत्रके साथ अश्मरी टूटकर बाहर निकल जाती है।

३ रक्तविकार—मूलका चूर्ण ३-३ माशे दिनमें २ बार प्रात सायं जलके साथ लेते रहनेसे रक्तविकार दूर हो जाता है।

४ कामला—मूलका चूर्ण ६-६ माशे मलाईरहित दही या मट्ठेके साथ दिनमें २ बार देने और दही भातका भोजन कराते रहनेपर ३ दिनमें कामला शमन हो जाता है।

५ मूत्रदाह—बीजोंका चूर्ण दूध-जलकी लस्सी या मट्ठेके साथ सुबह देनेसे उष्णता शमन हो जाती है। अम्लपित्त, रक्तपित्त, शोथ या मुखपाक हो तो मट्ठा न देवें।

(५०) ममीरा

सं० पीतक । हिं० ममीरा, मिश्मीतिता । आसा० मिसमीतीता, तीता । सिंध माहमिरा । अं० Coptis, Gold thread ले० Coptis Teeta

वनस्पति परिचय—टीटा आसामी तीता शब्द है। मूल सुवर्ण सदृशपीला, अति कड़ुवा, बहुवर्षायु । तना नहीं होता। मूल एकाधिक वर्ष का होनेपर अनेक वनजाना । फिर प्रत्येकमूलसे डण्डी निकलती है। डण्डी पर पान त्रिभग्न । डण्ठल ६ से १२ इञ्च। पर्ण २ से ३ इञ्च, अण्डाकार, पक्षीके पर सदृश विभागयुक्त। पुप १ से ३, छोटे वृन्तयुक्त, सफेद । पुष्पके वाह्य-कोष के पत्र आध इञ्च, लम्बगोल, तीक्ष्ण । अभ्यन्तर-कोषकी पखडी ५-६ सकडी, वाह्यकोष-पत्रसे छोटी । फली अनेक काले बीजयुक्त ।

उत्पत्तिस्थान पूर्वआसाम । आसामसे इसकी जडके छोटे छोटे टुकड़े वास की टोकरियोंमें भरकर कलकत्ता आदि स्थानोंमें भेजे जाते हैं ।

गुणधर्म—मूल आमाशयपौष्टिक, चक्षुष्य, मारक, पित्तशामक, वल्य तथा कलम्बाके सदृश सौम्य ज्वरका नाशक है । इस मूलके भीतरभी प्रधान द्रव्य वर्बे

राइन (Berberine) ८॥ प्रतिशत है। अत ममीरीमें जो गुण दर्शाये हैं, वे सब गुण इसमें अधिकतर है।

मात्रा—५ से १० ग्रेन। अमरिकन मूल १० से २० ग्रेन। इसके साथ लोह मिश्रित कर सकते हैं।

उपयोग—द्वितीय जातिके अन्तमें लिखा है, उनरोगोंपर यह विशेष सफलतापूर्वक व्यवहृत होता है। सिद्ध भेषजमणिमालाकारने इसे वृक्कशूल, नेत्ररोग तथा मलावरोधका नाशक कहा है।

(२) ममीरी

स०' पीतक। हि० ममीरा ममीरी, पीलीजडी, पिंजारी, शुम्राक। व० गुरवियाणी। काश्मीर चैत्र। कुमा० पीलाजडी, पिंगलजडी। अ० फा ममीराचीनी। प० चित्रमूल, ममीरा, फलीजड़ी। बम्बई ममीरा, पीआरग। ले० Thalı ctram Folıolosum

वनस्पति परिचय—फोलियोलोसम=अनेक पर्णयुक्त। वहु वर्षायु क्षुप। मूल दृढ। शाखा पान आदि वर्षायु। तना ४ से ८ फीट (विहारमें ३ से ४ फीट) रुंएरहित। पान ३ विभाग युक्त, पुंखपत्र (Stıpels) रहित। पर्ण ½ इञ्चसे १ इञ्चतक। कलगी मिश्र-अनेक शाखावाली। पुप सफेद, हलके हरे और मलिनी वैंजनी। पुष्प वाह्यकोषके पत्र ४-५। वीज सदृशफल २ से ५ छोटे, लम्बगोल, दोनों शिरे अणीदार। पुष्प हिमालयमें एप्रेल-मईमें। विहारमें जूनसे अगस्त तक। फल वीज सदृश, ।॥ इञ्च नसवाला जुलाईसे सप्टेम्वर तक। मूल १ फुट लम्बा, तेजस्वी, वहुधा सरल, अन्तभागमें अगुली समान मोटा, देखनेमें मुलहठी जैसे स्वादमें कडवा और दाहक।

छाल चिकनी, सलवट पड़ी हुई, मैले पीलेरंगकी, दृढ, भीतरका रंगपीला. जलमें भिगोने पर अंगुलियोंको पीला दाग लगता है। डांडी ४-८ फीट ऊँची और चिकनी अनेक शाखा प्रशाखा में फैली हुई। पान लम्बागोल, कुछ कगूरेदार, एक इञ्च लम्बे। पान प्रशाखाके दोनों ओर समान लगेहुए, स्वाद अति कडुवा। यह हल्दी की जाति है।

उत्पत्ति स्थान समशीतोष्ण, हिमालय, खासिया, ब्रह्म देश, सियाम, विहार आदि।

रसशास्त्र—इस ममीरीमें दारु हरिद्रक सत्त्व (Berberine) ८॥ प्रतिशत निकलता है। वह जलके भीतर त्वरित मिल जाता है। इस ममीरीको जलमें डालनेपर उपयोगी सत्त्व जलमें अधिक मिलजाता है। शराबमें नहीं

मिलता। इसका अर्क लोह संयोगसे काला नहीं पड़ता। इसका और दारुहल्दी का सत्व एकही है।

गुणधर्म—ममीरी कडुवी, सारक दीपन पाचन, ज्वरघ्न, चक्षुष्य और धातुवर्धक है। इसका सेवन करनेपर उदरमें उष्णता बढ़ती है। पाचक रस उत्पन्न होता है, और अन्न पचन होता है। यह उत्तम आमाशय पौष्टिक औषध है। इसका सारक पणा विशेष उपयुक्त है। इसमें नियतकालिक ज्वर प्रतिबन्धक गुणभी कुछ अंशमें हैं। इसका यह धर्म कुटकी और दारू हल्दी के समान है।

यूनानी मत अनुसार ममीरी कडवी तीक्ष्ण, पौष्टिक और सारक है। यह मस्तिष्ककी शुद्धि करती है। यह कोलिरियम (Collyrium) के समान नेत्रके अभिष्यद रोगमें प्रयुक्त होती है। यह नेत्र दृष्टिको बढाती है। दतशूल और तीक्ष्ण अतिसारमें हितावह है।। अर्शके मस्से, नखोंकी पीड़ा और त्वचा की विवर्णता पर लेप करने में उपयोगी है।

मूलको जलमें घिसकर अजन करने, इसके हिमसे नेत्रधोने, हिमके फोहे बाधने, या नेत्रके चारों ओर लेप करने से चक्षु स्राव, लाली, मंद दृष्टि, नेत्र व्यथा नयाफूला, रात्रिको न दिखना आदि विकार दूर होते हैं।

मूलका चूर्ण सुघानेपर नाकमेंसे जलस्राव होकर मस्तिष्कके विकार नासारोग और नेत्ररोग दूरहोते हैं।

इसके मूलको दातोंके नीचे रखनेसे दातोंका दर्द तुरन्त शमन हो जाता है।

मात्रा—२ से ५ रत्ती। मात्रा अधिक देनेपरभी यह हानि नहीं पहुँचाती। इसका उपयोग लोहभस्मके साथ कर सकते हैं।

उपयोग—ममीरीका उपयोग विषमज्वरमें अच्छा होता है। इससे ज्वरका बल घट जाता है, और कभी कभी ज्वरकी पालीभी टल जाती है। बुखार न हो तब इसका उपयोग करते रहना चाहिये। बुखार आनेपरभी यह दी जाती है। साधारण शीतज्वरमें यह लाभदायक है।

जीर्णज्वरमें हाथ पैर टूटना, किसीभी कार्यमें उत्साहका अभाव, नेत्रदाह, सिरमें भारीपना, कब्ज निद्रावृद्धि आदि लक्षण होनेपर यह उत्तम गुणकारी है।

गम्भीर रोगमें आई हुई शिथिलताके साथ आमाशयभी निर्बल हो जाता है। फिर अपचन, अरुचि और अग्निमांद्य हो जाते हैं। इन विकारोंपर तथा तीक्ष्ण रोगके पश्चात उत्पन्न आक्षेपपर इसके मूलका उपयोग लाभदायक है।

रसौतके समान ममीरीको घिसकर लेप और अंजन करनेसे नेत्राभिष्यन्द रोग दूरहोता है।

(५१) मण्डूकपर्णी

स० मण्डूकपर्णी, भेकपर्णी, दिव्या, माण्डूकी, महौषधि। हिं० मण्डूकपर्णी (हरद्वारमें ब्राह्मीरूप प्रचलित)। बं० थूलकूड़ी। म० कारिवणा। गु० खडब्राह्मी। आसाम-मनीमुनि। क० वोन्देलग। मला० कोडगम, कुटकम्। ता० वल्लरै। ते० बावास्सा, वेकपर्णमु। अ० झर्निब। फा० सर्दे तुर्कस्थान। अं० Indian Pennwort ले० Hydrocotyle Asiatica Linn

मण्डूकपर्णी (हिमालय से आनेवाली ब्राह्मी)
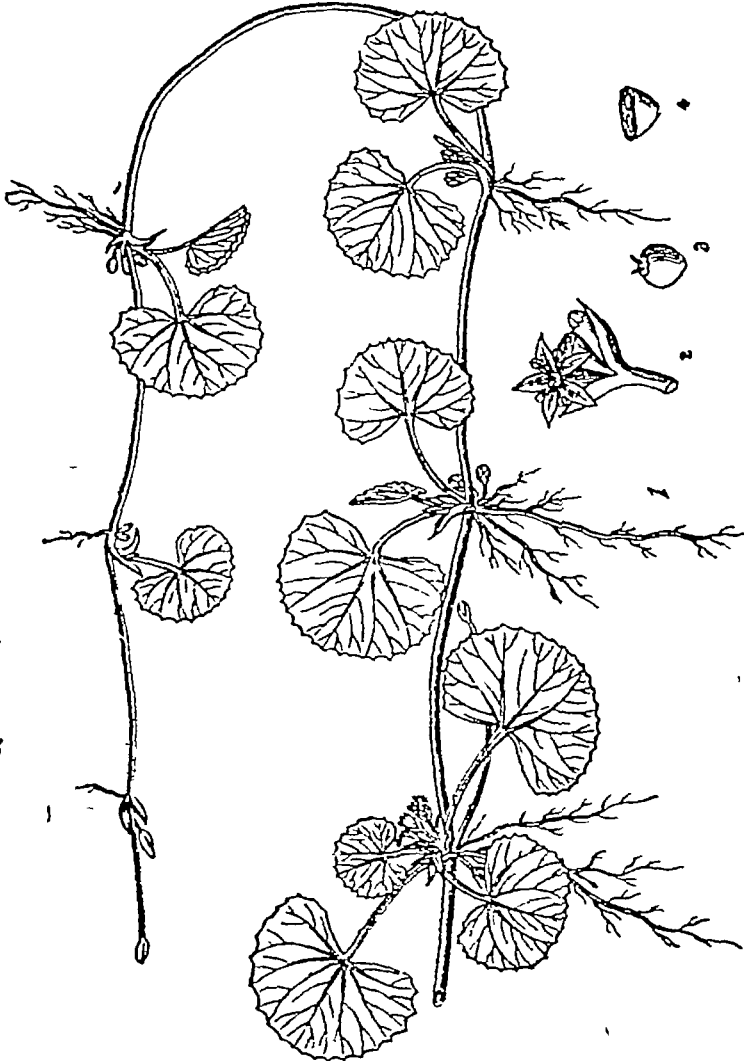
परिचय—भूमिपर चलनवाला, कोमल क्षुप। कन्दखड़ा, प्राय.लाल आभावाला। तना गांठवाला। गांठोंसे पुनः मल उतरना। शाखाएं

रक्ताभ, पर्वयुक्त। पान मुमाकानीके पानसे मिलते जुलते, किन्तु पान उसमें कुछ बडे और चिकने। प्रत्येक गांठपर १ से ३, लगभग, गोल-वृक्काकार (लम्बाईसे चौडाई अधिक), दोनों ओर चिकने, अखण्ड या कगुरेदार, हृदयाकार तलयुक्त ॥ से २॥ इञ्च व्यासके। कन्दसे निकलनेवाले कितनेक पान प्राय वढेहुये वृन्तयुक्त। वृन्तकी लम्बाई न्यूनाधिक ३ से ६ इञ्च या अधिक, नालीयुक्त, लगभग चिकने। उपपान वृन्तसे लगा हुआ, छोटा। पुष्प वृन्तरहित (क्वचित् वृन्तयुक्त), गुच्छमय छत्रमें। प्रत्येक छत्रमें ३-६ पुष्प। पुष्पसलाका-रुएदार या चिकनी, छोटी, गुलावी। पुष्पपत्र अण्डाकार, नोकदार। पुकेसर ५ लाल। वीजाशय पुष्पके नीचे, २ खण्डयुक्त। वीजाशयनलिका २। फल ११६ इञ्च लम्बा लम्बगोल, कठोर, प्राथमिक और गौण धारीमह। वाह्यकवच (Pericarp) मोटा। अन्तरछाल (Endocarp) पतली। वीज एक ओर दवे हुये।

वक्तव्य—इसकी विहारमें २ उपजाति हैं। पहलीमें पान १॥ से २॥ इञ्च व्यासके, कलीसे वाहर निकलनेके पहले लम्वे, कोमल वालोंसे आच्छादित, पत्रवृन्त १ से ४॥ इञ्च लम्बा, पुष्पसलाका १ इञ्च लम्बी, पुष्पमें होनेपर पुष्पपत्र गुलावी और रुएदार। फूल सफेद। यह जाति छोटा नागपुरमें है। पुष्प-फल नवम्बर से जनवरीतक।

दूसरी उपजाति ओरिसाके पहाडोंमें है। अनेक पानोंका व्यास १ इञ्च से कम, पहली जातिकी अपेक्षा कम रुएदार, पत्रवृन्त ॥ से १ इञ्च लम्बा, पुष्पसलाका २-४, लम्बाई ॥ इञ्चके भीतर। फल रक्ताभ। पुष्पफल फरवरीसे मईतक।

उत्पत्तिस्थान—ससारके और भारतके उप उष्ण और उष्ण प्रदेशोंमें सर्वत्र। वर्षाऋतुमें यह उत्पन्न होती है, जल मिलता रहे, तो वर्षभर रहजाती है। इसके पानोंको सूघनेपर गध नहीं आती, किन्तु मसलकर सूघनेपर तीव्र वास आती है, हरद्वार और देहरादून से यह ब्राह्मीके नामसे भारत के अनेक प्रान्तोंमें भेजी जाती है, यथार्थमें यह ब्राह्मी नहीं है। न ब्राह्मीके प्रतिनिधि रूपसे इसे दे सकते हैं।

गुणधर्म—सुश्रुतसहिताकारने लिखा है कि, मण्डूकपर्णी रसमें कसैली (अनुरस कड़वा), विपाक मधुर, वीर्य शीतल, लघु और पित्तशामक कहा है तथा सामान्य गुणधर्म रक्तपित्तहर, हृद्य, लघु तथा कुष्ट, प्रमेह, ज्वर, श्वास, कास और अरुचिका नाशक है। इनके अतिरिक्त निघण्टु रत्नाकरमें वुद्धिप्रद, धारणशक्तिवर्द्धक, स्मृतिप्रद, आयुवर्द्धक, अग्निदीपक, सारक, रुचिकर, कण्ठ-शुद्धिकर, रसायन तथा विष, पाण्डु, शोफ, कण्डू, प्लीहावृद्धि, वातरक्त, पित्त-

प्रकोप, शोष. सन्निपात. कफविकार और वातरोग आदि रोगोंकी नाशक. इतने अधिक गुण दर्शाये हैं।

डॉ० वामन देसाईके मतानुसार मण्डूकपर्णी कुष्ठहर, व्रणशोधन, व्रणरोपण, मूत्रजनन, स्तन्यशोधन, ग्राही, बल्य और रसायन है। ताजी होनेपर बडी मात्रामें नशा लाती है। फिर शिरमें दर्द होता है और चक्कर आता है इसका तैल त्वचा-द्वारा बाहर निकलता है. जिससे त्वचा उष्ण प्रतीत होती है और कुछ पीडा होती है। यह पीडा प्रारम्भमें हाथमें होती है। फिर सारे शरीरमें होने लगती है। कभी कभी शारीरिक उष्णता असह्य हो जाती है। कैशिकाओंमें रक्तकी गति बढजाती है, त्वचा लाल होती है, खुजली चलती है। लगभग १ सप्ताहके बाद क्षुधा बढती है। पानोंमें रहा हुआ तैल वृक्कोंद्वारा बाहर निकलनेसे मूत्र परिमाण बढ जाता है।

डाक्टर खोरीने लिखा है कि, मण्डूकपर्णी रसायन, बल्य और मूत्रल है। इसके प्रलेपसे त्वचामें उष्णता आती है इसकी क्रिया मूत्रयन्त्र और जननयन्त्रपर विशेष होती है। इसकी मात्रा अधिक होनेपर वृक्क और बीजाशयपर उत्तेजना अति पहुँचाती है। फिर सारे शरीरमें खुजली चलने लग जाती है। ज्वरसह अतिसार और रक्तातिसारमें इसका सेवन मुलहठीके साथ कराया जाता है। यह उष्ण और रसायन होनेसे विविध त्वचारोग, फिरंगज रक्तविकारके ददौरे, शून्यकुष्ठ (Anaesthetic Leprosy), श्लीपद, गलगण्ड (Goitre) और गण्डमाला (Scrofula) आदि रोगोंमें यह व्यवहृत होती है। पीनस रोगमें इसके मूलका नस्य कराया जाता है। फिरंगज व्रण और अन्य प्रकारके क्षतोंपर इसका लेप किया जाता है या पुल्टिस बांधी जाती है। एवं जलमय व्रणोंपर इसके पानोंका चूर्ण बिखेरा जाता है।

रासायनिक पृथक्करण—मण्डूकपर्णीके मूल और ताजे पानोंमेंसे उडनशील तैल और एमीलिन (Amylene) नामक भयंकर बेहोशी लानेवाला दाहक (हाइड्रोजन और कार्बोन प्रधान) द्रव्य मिलता है। इनके अनुरूप ताजी मण्डूकपर्णीका गुण माना जाता है।

सूचना—(१) मण्डूकपर्णी के ताजे पञ्चाङ्ग का स्वरस तुरन्त फल दर्शाता है। ताजा पञ्चाङ्ग न मिलनेपर छायाशुष्क नये पञ्चाङ्ग का चूर्ण लेवें। फाण्ट-बनाने और क्वाथकरनेपर उड्डयनशील तैल उड़जाता है।

(२) अनेक विद्वानोंके मतानुसार ब्राह्मी और मण्डूकपर्णी पर्य्याय शब्द हैं। वे इसीको ब्राह्मी मानते हैं। इसके क्वाथसे (तैल उडजानेके पश्चात् रहे हुए द्रव्योंसे) मस्तिष्क और वात नाडियोंको लाभ होनेका मानते है। अनेक बार

त्रिदोषावस्थामें १-१ तोले का क्वाथ देनेपर उग्रताका शमन होकर शान्तनिद्रा आजानेका अनुभव भी मिला है।

मात्रा —छाया शुष्क पचांगका चूर्ण २ से ४ रत्ती, दिनमें ३ वार। डा० वोइलूके मतानुसार कुष्ट और वातरक्तके रोगीको कल्प करानेके लिये प्रथम सप्ताहमें ५-५ रत्ती। फिर प्रति सप्ताह २॥-२॥ रत्ती वढाकर ३२ रत्ती (४ माशे) तक वढावें। फिर २॥-२॥ रत्ती कम करके छोड देवें। १ मासतक विल्कुल वन्द रखें। पुन आवश्यकता हो उस अनुसार क्रमश ४ माशेतक वढावें। प्रारम्भसे यह चूर्ण रात्रिको सोनेके पहले निवाये जलके साथ दिनमें १ वार लेवें। फिर उसके २ विभागकर प्रात और रात्रिको लेवें।

सामान्यत ताजे पान वडे मनुष्योंको ८ से १२ और वालकोंको २ से ४।

१ मण्डूकपर्णी मलहम'—१ भाग पानोंका चूर्ण और ७॥ भाग वैसलीन मिलाकर मलहम वना लेवें। सव प्रकारके त्वचा रोगोंपर लगानेमें उपयोग करें।

२ मण्डूकपर्णी शर्वत —मण्डूकपर्णी स्वरसके साथ २॥ गुनी शक्कर मिलाकर शर्वत जैसी चासनी वना लेवें। फिर तुरन्त छान लेवें। शीतल होने पर वोतलमें भर लेवें। मात्रा १ ड्राम जल मिलाकर दिनमें २ वार।

३ दिव्यारिष्ट —सारस्वतारिष्टमें ब्राह्मी मिलायी जाती है, उस स्थानपर मण्डूकपर्णी लेवें। शेष प्रयोग समान। यह अरिष्ट वर्तमानमें अनेक फार्मेसी वाले और चिकित्सक वनाते हैं। नाम सारस्वतारिष्ट दे रहे हैं। यह नाम सदोष है। सुवर्ण मिश्रितकी मात्रा १ से २ ड्राम जलके साथ दिनमें २ वार। सुवर्ण रहितकी मात्रा २ से ४ ड्राम। यह उत्तम रसायन, रक्तप्रसादक, वुद्धिप्रद, वल्य, वातनाडी पोषक और हृद्य है। कुष्ठ, उपदश, त्वचारोग, अस्थिक्षय, राजयक्ष्मा, जीर्णज्वर आदिपर हितावह है।

उपयोग —मण्डूकपर्णीका उपयोग आयुर्वेदमें अति प्राचीन कालसे हो रहा है। चरकसहितामें वय स्थापन दशेमानिमें तथा विमान स्थानके भीतर तिक्त स्कधमें मण्डूकपर्णीका उल्लेख मिलता है, विषपीडित रोगीको मण्डूकपर्णी का शाक (चि स्था २४-२२२) हितकर दर्शाया है तथा रसायन प्रयोगोंमें मण्डूकपर्णीकी योजना की है। सुश्रुत सहितामें भी मण्डूकपर्णीके शाकका गुण दर्शाया है तथा तिक्तस्कधमें उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त मण्डूकपर्णीके रसायन प्रयोग लिखे हैं। मण्डूकपर्णी और ब्राह्मी, दोनों दिव्य औषधि हैं। दोनोंमें क्या भेद है, यह ब्राह्मीमें दर्शाया है।

डाक्टर देसाई मण्डूकपर्णीको त्वचारोगमें उत्तम गुणकारी दर्शाते हैं। गलत्कुष्ठमें यह अति हितावह है। यद्यपि यह कुष्ठकी मुख्य औषधि नहीं है, तथापि वहुत लाभ पहुँचाती है। फिरगकी द्वितीयावस्थामें जव रोगका वल त्वचा और

उपत्वचापर होता है, तब यह व्यवहृत होती है। यह गण्डमालामें भी लाभदायक है। सब प्रकारके त्वचारोग, सामान्य फोडे, क्षय कीटाणुजन्य सड़ा हुआ व्रण और श्लीपदपर यह मूल्यवान औषध है। व्रणोंपर लेप करने या चूर्ण छिड़कनेपर जल्दी भर जाता है, त्वचारोगपर इसका चूर्ण खानेको दिया जाता है। जब त्वचा लाल हो जाय और खुजली आने लगे, तब मात्रा कम कर देवें तथा विरेचन देवें या कुछ दिनोंतक औषधि बन्द रखें। मण्डूकपर्णीके सेवनसे पेशाब बढता है। फिर भी इसका उपयोग मूत्रल गुणकी प्राप्तिके लिये नहीं कराया जाता। कारण, यह वृक्कोंकी श्लैष्मिक कलामें उग्रता उत्पन्न कराती है।

गुजराती वनस्पति गुणादर्शके भीतर डा० बोइलूका अनुभव, जिनको कुष्ठ रोग होने पर मण्डूकपर्णीका प्रयोग करके लाभ उठाया था, वह महत्वका होने से अत्र देते हैं।

"मण्डूकपर्णी देनेसे प्रारम्भमें कुष्ठवाले रोगीके हाथ पैरकी त्वचामें उष्णता लगती है और खुजली चलती है। फिर थोड़े दिनके पश्चात् सारे देहमें गर्मी बढ़ जाती है, वह इतनी कि, सारे शरीरमें अति खुजली चलती है। त्वचा लाल हो जाती है, रक्ताभिसरण क्रिया अति बल पूर्वक होती है। नाड़ी अति तेज और पूर्ण बहती है। सप्ताहके बाद रोगीकी क्षुधा बढ जाती है और पचन क्रिया बहुत अच्छी होने लगती है। कुछ दिनोंके बाद त्वचा मुलायम और एक समान हो जाती है। उपत्वचाके छिल्टे निकल जाते हैं। स्वेद आने लगता है। त्वचा अपना कार्य फिर प्रारम्भ करती है। जठराग्नि दिन प्रति दिन सुधरती जाती है और क्षुधा अच्छी लगती है।"

"यदि यह मण्डूकपर्णी स्वस्थ मनुष्यको अल्प मात्रामें दी जाय, तो थोडे समयमें मूत्रल गुण दर्शाती है। यह रक्ताभिसरण क्रिया बढा देती है और फिर खुजली प्रारम्भ हो जाती है। यदि इसके चूर्णकी मात्रा १ से २ माशेकी दी जाय, तो तन्द्रा आने लगती है तथा मस्तिष्कमें वेदना Cephalalgia, होने लगती है। फिर यह औषधि बन्द कर देवें, तो भी यह असर १ मासतक रह जाता है। एवं इससे भयकर प्रवाहिकाभी होजाता है। डाक्टर बोइलू इस औषधिका अपने पर प्रयोग करता गया और मात्रा बढ़ाता गया। फिर उसे अनुभव हुआ कि, इस औषधिका सत्व भीतर सगृहीत होता है, जो विषप्रकोप दर्शाता है। इसके विषप्रभावसे मुझे इतनी ठढक लगने लगी कि, अनेक रजाई ओढनेपर एक घण्टे के पश्चात् देहमें उष्णता आयी। इसके बाद स्वरयन्त्रमें खिंचाव होने लगा। ऐसा प्रतीत होने लगा कि, इसी समय हृदयकी गति बन्द हो जायगी। फिर आक्षेप के चिह्न प्रारम्भ हुये और शामको वमन और रक्तातिसार होगया, वे तो तुरन्त

ही मिट गये। फिर दूसरे दिन सुवह जव मैं उठा, तव विपके प्रभावसे मुक्त हो गया; किन्तु निर्वलता और गलेमें वेदनाका अनुभव होता था। इसपरसे अनुमान कर सकते हैं कि मण्डूकपर्णी योग्य मात्रामें दीजाय तो रुधिराभिसरण क्रियाके लिये उत्तम उत्तेजक है और इसका असर विशेषत त्वचापर होता है। मात्रा अधिक देनेपर तन्द्रा लादेती है और कभी मूर्च्छा भी आजाती है।"

"आगे वनस्पति गुणादर्शकारने लिखा है कि "त्वचाके सव प्रकारके रोगोंमें रुधिराभिसरणको सवल वनानेकी इसमें अधिक शक्ति रही है। यद्यपि यह वातरक्त और फिरंग रोगपर पूरा लाभ नहीं पहुँचा सकती, तो भी उक्त शक्तिके हेतुसे लाभ पहुँचाती है।

यद्यपि वातरक्तके वढे हुये रोगोंपर इससे लाभ नहीं पहुँचता, तथा प्राथमिक अवस्थामें यह हितावह है। यह पुराने दृढ व्यूचीपर अति प्रशसनीय लाभ पहुँचाती है। सामान्यत व्यूचीपर तो थोडेही दिनोंमें इससे लाभ पहुँच जाताहै। क्षत, सुजाकके साथ उत्पन्न फिरंगकी द्वितीया और तृतीयावस्थामें भी मण्डूकपर्णीसे अच्छालाभ पहुँचता है। एव पुराने और सडे हुए व्रण, वालकोंके अतिसार और पीनस आदि रोगमें निकलनेवाले पूय, आम, कफादिका सुधारकर शक्तिदेनेमें यह औषधि चमत्कारिक लाभ पहुँचाती है।

जव जव शरीरके किसी भागमें क्षत हो, तव तव इस औषधिका सेवन कराना चाहिये तथा उसके चूर्णका लेप या पुल्टिस रूपसे भी उपयोग करना चाहिये।"

१ जलोदर—विशेषत निशोथके पान और एकाध तोला मण्डूकपर्णीके पान, दोनोंको निशोथके ही स्वरसमें (या जलमें) उवालें। फिर खटाई, नमक या घृत मिलाये विना इसका सेवन करें। तृषा लगनेपर निशोथके पानोंका स्वरस पीवें। भोजन विल्कुल न करें। इस तरह १ मास (उदरमेंसे जल निकलजाय, उदर नरम पड़े और क्षुधाकी प्रतीति होने) तक प्रयोग करें। फिर दुर्वल रोगीके प्राणोंकी पुष्टिके लिये ऊटनीके दूधका सेवन करानेपर वढा हुआ, प्रवल जलोदर भी नष्ट होकर देह निरोगी और सवल वन जाती है।

वक्तव्य—यह प्रयोग महर्षि आत्रेयने चरक सहितामें लिखा है। इस प्रयोगसे विरेचन होकर पतले जल सदृश दस्त लगते हैं। वर्तमानमें ३ से ५ दिन प्रयोग करनेपर उदर नरम हो जायगा, ऐसा अनुमान है। जिस रोगीको उदरमें से जल निकालनेकी सुविधा न हो वैसे वढे हुए रोगवाले रोगीको यह प्रयोग करा सकते हैं।

२ मेधा और आयुवृद्धिकेलिये—धारणाशक्तिकी वृद्धि और पूर्ण आयुकी

कामना वालोंको पहले स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन और वस्ति, इन पंचकर्मोंसे शुद्धकर अन्नादि भोजनका परित्याग कराकर विधिवत् मद प्रकाशयुक्त, कुटीमें प्रवेश करावें। शौच आदिकी योजना कुटीमें ही करानी चाहिये। कल्प पूरा न हो, तब तक कुटीसे बाहर नहीं निकलना चाहिये। पहले दिन ३ माशे मण्डूकपर्णीको पीस कल्ककर दूधमे मिला लेवें या खाकर ऊपर दूध पीवें। फिर शक्ति अनुसार मात्रा सप्ताहके वाद बढावें। औषध पच जानेपर दोपहरको जौकी थूली या रोटी और दूधका सेवन करें।

अथवा मण्डूकपर्णी और तिलका कल्क करें और दूधके साथ सेवनकरें। औषध पच जानेपर दोपहरको दूध और घीके साथ भातका सेवन करें (रात्रिको क्षुधा लगनेपर दूध या दूध-घी भात लेवें)। इस तरह ३ मास तक प्रयोग करनेवाला तेजस्वी और अति धारणशक्तिवाला वन जाता है। यदि केवल १२ दिन प्रयोग करें तो भी प्रयोग करनेवाला मेधावी और शतायु हो जाता है।

३ मेधाकर रसायन–आयु, बुद्धि,वल.अग्नि,वर्ण और स्वरको बढ़ाने और स्वरभगका नाश करने केलिये मण्डूकपर्णीका स्वरस दूधमें मिलाकर सेवन करावें।

४ कुष्ठ, त्वचारोग, वातरक्त और गण्डमाला आदि—पहले दर्शाये डाक्टर वोडल्के अनुभव अनुसार मण्डूकपर्णीका सेवन करावें।

(५२) महुआ

सं० मधूक, गुडपुष्प, माधव, मधुस्राव। कोल–मदुकम्, मदकोम। वं० महुल, मौआ (फलोंको कोचरा) ता मधूकम्। ते० इप्पचेट्टु। फलको वनारसमें कोइदा, फतेहपुर जिलेमें गुल्हु। गुजरातीमें डोलिया और मराठीमें टोलंबी कहते हैं।

ले० (1) Bassia Latifolia (चौडे पानवाला)
(2) Bassia Longifolia (लम्बे पान वाला)

परिचय—वसिया=यह इटालियन वागके अध्यक्ष वासीके संमानार्थ संज्ञा। पहली जातिके वृक्षकी ऊंचाई लगभग ५० फीट। उत्पत्तिस्थान मध्य भारत, पश्चिम वंगालसे पश्चिम घाट तक, राजपूताना, विहार, गुजरात, दक्षिण आदि अनेक प्रान्तोंमें। शाखाके अन्तमें पानोका गुच्छ। नया भाग ऊन सदृश रुएंदार। पानकी लम्बाई ५ से ६ इंच, चौड़ाई २॥ से ३॥ इंच। पुष्प मासल, मलाईके सदृश रगके (पीताभ सफेद), पुंकेसर सामान्यत २४ से २६। परागकोष पीछेकी ओर रुएंदार, क्रमश ३ प्रकारके, नीचे चौड़ा. ऊपरतंग। फल १ से २ इंच लम्बे, हरी आभावाले, अण्डाकार, १ से ४ वीजयुक्त। वम्बईमें फूल जनवरीसे अप्रेल तक।

दूसरी जातिके वृक्ष विशेषत दक्षिण (मद्रास, कर्णाटक, मैसूर, सिलोन आदि) में होते हैं। ऊचाई ५० फीट। सब नया भाग गाढ़े रुएदार। पान ४ से ५ इच लम्बे, १॥ इच चौडे। फूल शाखाके अन्तमें पानोंके नीचे। पुकेसर १६ से ३०, दो पक्तिमें, एक ऊपर और १ पक्ति नीचे। परागकोप रुएदार, ऊपरमें ३ दातेवाले, आधारस्थानपर हृदयाकृति। फल १ से १॥ इच लम्बे, पकनेपर पीले, १ से २ वीजयुक्त (कचित ३-४)। पुष्प नवम्बरसे जनवरी तक वम्बईमें। छाल ग्राही, छालका दूध ग्राही।

औषधि रूपसे फूलोंका अधिक उपयोग होता है, फूलोंका स्वाद मधुर है, फूल पकने पर गिर जाते हैं। फल खानेके काम आते हैं, तथा औषधरूपसे भी उपयोग होता है। इसके फलोंका तेल, जलाने, नकली घी वनाने और सावुन आदिमें व्यवहृत होता है।

रसशास्त्र—फूलोंमें ६० प्रतिशत एक प्रकारकी शर्करा होती है। उसकी शराब जल्दी होती है। फूलोंसे सर्वदा कुछ अशमें शराव वन जाती है। इस हेतुसे पुष्प खानेपर कुछ नशा आता है। वीजोंका तेल जल्दी खट्टा हो जाता है। इस हेतुसे उसका उपयोग औषध रूपसे नहीं होता। केवल सावुन और मोमवत्ती वनानेमें व्यवहृत होता है।

फूलोंसे शराव वनाते हैं। स्वाद तैलीय और कसैला होता है, तथा उसमेंसे प्रस्वेदके समान दुर्गन्ध निकलती है। यह दुर्गन्ध शरावको अनेक वर्ष रखनेपर कम होती है। महुएकी शराव एक दो वार फिरसे निकालनेपर दुर्गन्ध अधिकाशमें नष्ट हो जाती है।

पुन पुन छानकर शुद्ध की हुई शराव अर्क वनानेकेलिये उपयोगमें ले सकते हैं, किन्तु नारियल, ताड़ या रोंदी (विट खर्जुर) की शराव मिले तव तक उनका ही उपयोग करना चाहिये। अर्क बनानेके लिये भिन्न भिन्न परिमाणमें जलमिश्रित शरावको उपयोगमें लेते हैं। किसी भी पदार्थका मुख्य द्रव्य शरावमें मिलनेमें जितना कठिन जाता है, उतनी ही अधिक तेज शराव लेनी पडती है। द्रव्य जल्दी मिलने योग्य हो, तो मन्द शराव भी चल सकती है। वच्छनाग, हींग, लोहवान और कुचिलामें रहे हुए द्रव्य मिश्रित होना कठिन पडता है। इस हेतुसे इनके लिये ९०% शराव प्रयुक्त होती है। जव कोई भी द्रव्य शराव एव जलमें भी मिल जाता है, तव ५०% शराव ली जाती है। अर्कमें शरावके उपयोगका उद्देश्य अर्क टिक जाय, यह होता है। कभी-कभी वनस्पतियोंके द्रव्य जलमें नहीं उतरता तव शरावमें अर्क निकालना, यह ही मार्ग रहता है।

निम्न कोष्ठकमें शराब कितनी और जल कितना तथा उसे कितने प्रति-शतकी शराब कहते हैं, यह दर्शाया है।

संज्ञा	शराब	जल	उपयुक्त नाम
९९%	९५	१	पवित्र
९०%	९०	१०	औषधिके लिये शुद्ध
७०%	१००	३१	
६०%	१००	५३½	
५०%	५०	५०	आबकारी विभागका निर्णित
४५%	१००	१०५⅓	
२०%	१००	३५५	

आवकारी विभागकी निर्णित शराब लेकर पलाशके कोलमेंसे (छाननेके यन्त्र द्वारा) छान लेनेके पश्चात् उसकी दुर्गन्ध कम हो जाती है। इसे शनै-शनै छाननी चाहिये। जिससे शराब ९०% मिल जाती है। यह ९०% शराब सुखाये हुए जवाखारके साथ मिलाकर छानते हैं, और छाने हुये कलीचूनेके साथ मिलाते हैं। शराब और कली चूनेका परिमाण समान लेते हैं। फिर कुछ दिनोंके बाद पुन छान लेते हैं। जिससे ९०% पवित्र शराब मिल जाती है।

गुणधर्म—रस और विपाक मधुर, शीतवीर्य तथा पित्तप्रकोप, दाह और श्रमको दूर करता है। वातशामक नहीं है, वीर्यवर्द्धक और पौष्टिक है। फूल बृंहण (शरीरको मोटा बनानेवाला), शीतल, गुरु, बलवर्द्धक, शुक्रवर्द्धक, वात-पित्तशामक, हृदयके लिये अहितकर। फल शीतल, गुरु, मधुर, शुक्रल, वातपित्तनाशक और हृदयके लिये अहितकर है। तृषा, रक्तविकार, दाह, श्वास, क्षत और क्षयको दूर करता है। क्षेमकुतूहल ग्रन्थकारने लिखा है कि तुरन्त तोड़े हुए फूलोंका शाक घीमें बना, शक्कर मिला और जीरेका छोंक देकर रोज खाते रहनेपर शरीर स्वस्थ होता है और आयुकी वृद्धि होती है।

डाक्टर देसाई लिखते है कि, महुएकी शराब अहितकर है। नयी छानी हुई तो विष ही है। इससे आमाशयमें दाह होता है, मनुष्य शुद्धि रहित होता है, निद्रा विकृति होती है। शिरदर्द होता है; एव थोड़ेसे कारणसे सताप होता है, प्रतिदिन पीते रहनेपर हृदयाधरिक प्रदेश (कौडी स्थान) में वेदना होती है, भोजनपर रुचि कम होती है, विचारशक्ति बिगडती है, एवं मस्तिष्क को शान्ति बिल्कुल नहीं मिलती। इस शरावके पीनेवालोंको अविचारी कर्तव्य करनेकी इच्छा बहुत हो जाती है। एवं इस शराबके सेवन करनेवाले सहज रोगाक्रान्त हो जाते हैं। इस दोषके हेतुसे महुएकी नयी शराब पल्टनके सिपाहियोंको नहीं देते।

पुरानी और पुन छानकर शुद्ध की हुई अच्छी शराबको योग्य परिमाणमें जल मिलाकर पिलानेसे लालास्राव बढ जाता है, तथा उदरमें जानेपर आमाशयमें उष्णता भासती है। आमाशयकी रक्तवाहिनियोंका विकास होता है, पाचक रस बढता है, क्षुधा लगती है, अन्न स्वादिष्ट लगता है, आहार जल्दी पचन होने लगता है, और वह जल्दी रक्तमें मिल जाती है।

शराब अन्त्रमें पहुचनेपर वहाँपर पचनक्रिया सुधरती है। वायु उत्पन्न नहीं होती, एव होनेपर भी सरलतासे निकल जाती है, तथा मल गाढा होता है।

रक्ताभिसरणपर शराबकी अति उपयुक्त क्रिया होती है। इससे हृदयकी क्रिया बढती है, और उसी समय त्वचागत रक्तवाहिनियोंका विकास होता है और देहमें अन्यत्र रही हुई रक्तवाहिनियोंका आकुचन होता है। इन दो क्रियाओंका परिणाम ऐसा होता है कि, रक्तदबाव बढ जाता है और प्रवाह जल्दी चलता है, शराबसे हृदयका प्रत्यक्ष पोषण होता है, यह अति महत्वका लाभ है।

वातवाहिनियोंपर शराबकी क्रिया अति स्पष्ट होती है। इसका परिणाम प्रारम्भमें मस्तिष्कपर होता है, फिर पीठमें रही हुई सुषुम्णा केन्द्रपर होता है, विचारशक्ति बढ जाती है, मनको प्रसन्नता भासती है। शारीरिक व्यापार सब व्यवस्थित चल रहा है, ऐसी भावना होती है, तथा स्त्री सहवासकी इच्छा प्रबल होती है।

शराबसे त्वचागत रक्तवाहिनियोंका विकास होनेसे उष्णता भासती है, फिर प्रस्वेद छूटता है, पश्चात् शारीरिक उष्णता कम हो जाती है। देहकी विनिमय क्रिया (चयापचय) पर शराबका गुण प्रत्यक्ष और अति उपयुक्त होता है, शराबसे आमदनी चालू रहती है और बढ जाती है, उत्पत्ति योग्य होती है, किन्तु विनाश मात्र कम होता है। लकड़ी जिस तरह चूल्हेमें जलती है, उस तरह शराब शरीरमें जलती है, इस हेतुसे उष्णता बढती है, और उत्तेजना आती है। शक्कर और आटेकी अपेक्षा शराबसे अधिक उत्तेजना आती है, शारीरिक भट्टीमें उष्णता और उत्तेजना लानेके लिये शराबका जलन सहज मिल जानेसे चर्बी और मास रूप जलनकी आवश्यकता नहीं रहती। शराब पीनेसे चर्बी कम नहीं होती, तथा मासका ह्रास भी नहीं होता। जिससे शरीर मेदमय बन जाता है। ये सब क्रिया अन्नसे होती है अत शराब को अन्नके समान मानते हैं। अन्नसे आमदनी और चयापचय क्रिया समान परिमाणमें होती है, किन्तु शराबसे नाशक्रिया कम होती है। इस महत्त्वके गुण के हेतुसे शराबसे मासवृद्धि होती है, नि सन्देह मास ह्रास तो नहीं होता।

शराव मूत्र और श्वासमार्गसे वाहर निकलती है। उससे मूत्रका परिमाण वढ जाता है।

ऊपर लिखी हुई सव उपयोगी क्रिया शराव अधिक मात्रामें देनेपर विगडती है, पचनक्रिया विकृत होती है, मल पतला हो जाता है, मानसिक और शारीरिक थकावट आती है, त्वचागत रक्तवाहिनियोंका विकास कायम हो जाता है। चर्वी वढती है और अपचनरोग उत्पन्न होता है। प्रतिदिन वडे परिमाणमें शराव पीते रहनेसे वातसंस्थानको वहुत हानि पहुचती है।

मन्द शरावको त्वचापर लगा उस भागको खुला रखकर शरावको उडने देनेसे त्वचागत रक्तवाहिनियोंका सकोच होता है, वह भाग शीतल होनेके समान भासता है, तथा प्रस्वेद आनेका वन्द होजाता है।

तेज शरावकी त्वचापर मालिशकर, उस भागको खुला रखनेपर त्वचा मोटी और कठोर वन जाती है, किन्तु उस भागको ढक देनेपर त्वचा लाल वनती है; तथा त्वचाके नीचे रही हुई इन्द्रियोंमें रक्तप्रवाह वढ जाता है। शरावसे श्लैष्मिक कला कठोर होती है, और व्रणपर लगानेसे स्रावमें मासल द्रव्य जमते हैं।

मधूक कल्पः—

१ मधूक कन्द—जिस तरह गुलावके फूलोंसे गुलवन्द तैयार किया जाता है, उस तरह महुएके फूलोंकी १ तह और मिश्रीकी १ तह अमृतवानमें भरकर मधूककन्द वनाया जाता है। मात्रा १–१ तोला। यह प्रमेह, मूत्रदाह, निर्वलता और अग्निमान्द्यपर व्यवहृत होता है।

२ मधूकादि नस्य—महुएकी लकडीका सत्व अथवा फल १० तोले वच, कालीमिर्च, पिप्पली और सैंधानमक, चारों २॥–२॥ तोले मिलाकर कपड छान चूर्णकर वोतलमें भर लेवें। कण्ठरोहिणी, कफ-प्रकोप, सन्निपातमें कासप्रकोप, मूर्छा और अपस्मारमें सुघाया जाता है। एवं इसका उदरसेवन भी कराया जाता है। यह अति निर्दोष और उत्तम औषधि है।

३. मधूकामृत—महुएके तनेको चीरनेपर वीचमेंसे कत्थे जैसा मृदु सत्व मिल जाता है, उसे कूट चूर्णकर दूधकी भावना देकर छायामें सुखावें। सूखनेपर पुन भावना देवें। इस तरह ७ या २१ भावना देनेसे चूर्ण मक्खन सदृश वन जायगा। फिर चूर्णसे ४ गुना शहद मिलाकर अमृतवानमें भर देवें। मात्रा—६–६ माशे १ तोले गोघृत मिलाकर २१ दिन तक रोज सुवह सेवन कराते रहनेसे नपुसकता दूर होती है। पचनशक्ति वलवान वनती है तथा वीर्य शुद्ध और गाढा वनता है।

उपयोग—महुएका और महुएकी शराबका उपयोग अति प्राचीन कालसे भारतमें हो रहा है। महामहारथी बलदेवजी आदि मद्य यादव अत्यधिक शराब पीते रहते थे। चरकसंहिता और सुश्रुतसंहितामें महुएका उपयोग अनेक रोगोंपर किया है। वातप्रकोप और पित्तप्रकोपज व्याधियोंपर यह अधिक व्यवहृत होता है। एवं वातशूल, वातप्रकोपसे उत्पन्न फुफ्फुसावरणमें शूल और उदरशूलादिपर प्रयुक्त होता है।

डाक्टर देसाई लिखते हैं कि रोग चिकित्सामें अच्छी शराब अमृततुल्य है। ज्वरघ्न, मांसरञ्जक और स्वप्नजनन गुणके हेतुसे ज्वर या किसी भी प्रकारके प्रबल रोगमें रोगी गलता जाता है, तब शराब देनेका अति रिवाज है। शरीरका ह्रास न हो और जो हानि हुई हो, उसकी पूर्ति हो जाय रक्ताभिसरण क्रिया योग्य चले, वातसंस्थाको थकावट न आवे अथवा उत्तेजना उत्पन्न हो और उष्णता कम हो, इन उद्देश्योंके लिये ज्वरमें शराब देते हैं। नाडी त्वरित चलना सूखी या नीले रंगकी जिह्वा निद्राभंग, व्याकुलता और वायुका बल बढ़ना आदि लक्षण प्रतीत होनेपर शराब देनी चाहिये। ज्वरकी उष्णता, नाडीकी स्थिति, हृदयका स्पन्दन, बल आहार लेनेकी शक्ति, पूर्व स्थिति और आयु, इन सबका विचारकर शराब न्यूनाधिक परिमाणमें दी जाती है। रोग नष्ट होनेतक रोगीकी शक्ति कायम रहे, इस हेतुसे जल्दी पचन हो ऐसा सामान्य भोजन देना चाहिये, किन्तु ऐसा अन्न यदि पचन नहीं हुआ या रोगीको पोषक नहीं होता ऐसा प्रतीत होनेपर शराब अन्नके समान दी जाती है। ज्वरमें शराब उत्तम आहार रूप ही है। ज्वरमें शराब अधिक दी, तो भी चलता है, किन्तु वह छोटी मात्रामें और बार-बार देनी चाहिये। जितनी ज्वरकी उष्णता अधिक, उतनी ही शराब अधिक सहन होती है। ज्वरमें निद्रा लानेके लिये शराब उत्तम औषध है।

आहार—जीर्णरोग, अशक्ति, अग्निमान्द्य, ज्वर और अस्वस्थता होनेपर शराबको अन्न और औषधरूप मानकर देते हैं। कफक्षय, जीर्णज्वर, जीर्ण हृद्रोग, हलीमक (एक प्रकारका पाण्डु) आदि कृशता लानेवाले रोगोंमें पुरानी शराब अति उपयोगी होती है।

दीपन, पाचन, वातहर, ग्राही गुणके हेतुसे—प्रबल रोगोंमें उठे हुये रोगी, नगरनिवासी और अतिशय काम करनेवाले लोग उतरती आयुवाले और अपचन रोगसे पीडित, इन सबको शराब भोजनके साथ देते हैं। शराबके साथ कडवे पदार्थ देना विशेष हितावह है। इस हेतुसे विशेषत काटेदार करञ्जके फल, कलम्भा कुचिला चिरायता अथवा कुटकी (Gentiana Kurroa) मिलाकर शराब कडवी की जाती है, और यह कडवी शराब जलमें मिलाकर

भोजनके पहले पीते है। उदरवेदना और अतिसारमें शराबसे लाभ होता है। सग्रहणीमें शराब गुणावह है।

उत्तेजक—शराबके उत्तेजक धर्मका मुख्य उपयोग हृद्रोगमें होता है। ज्वरमें हृदयकी शिथिलता या चक्कर, मानसिक धक्का या रक्तस्रावके हेतुसे हृदय यकायक दुर्वल हो जाना आदि विकारोंपर शराब देते है। जीर्ण हृदय-रोगमें भी शराब अति गुणावह है।

वक्तव्य—वातसंस्थानके रोगमें शराब नहीं देनी चाहिये। कारण, इससे वह रोग दूर नही होता और रोगीको शराबका व्यसन भी लग जाता है।

कोथप्रशमन सग्राहक, व्रणशोधन, व्रणरोपण, शोणितोत्क्लेशन, वेदना स्थापन, दाह प्रशमन, वेदनापनयन और शोथहर गुणके हेतुसे शराबमे मासद्रव्य सगृहीत होते हैं। इस धर्मके हेतुसे यह पूतिहर (दुर्गन्धनाशक) है। जखम और व्रणोंको धोनेके लिये शराबको जलमें मिलाकर उपयोगमें लेते है। एव मसूढ़ेका रक्तस्राव, मुखव्रण और तपीडामें जल मिश्रित शराबसे कुल्ले कराते है। शराबसे व्रणका शोधन होकर रोपण हो जाता है। तेज शराबको त्वचापर मर्दनकर उस भागको खुला रखनेसे त्वचा मोटी और कड़क हो जाती है। इस धर्मके हेतुसे दिनोंतक शय्यापर पड़े रहनेवाले कृश, अशक्त रोगियोंको शय्याव्रण या त्वचामें सलवट न होनेके लिये पीठ और चूतड़पर शराबकी मालिश कराते हैं। तेज शराबसे मर्दनकर उस भागको बाध देनेपर त्वचा लाल होती है; और उस भागके नीचेके अवयवोंमें रक्ताभिसरण क्रिया बढ जाती है। इस हेतुसे सधिशोथ, साधे जकडना जीर्ण आमवात, फुफ्फुसावरणप्रदाह श्वासनलिकाका प्रदाह (खासी) इन रोगोंमें तेज शराबसे मर्दन कराते हैं, और ऊपर गरम कपडा बाधकर रखते है। अति जल मिली हुई शराबको त्वचापर लगा उस भागको खुला रखकर शराबको उडने देनेसे त्वचागत रक्तवाहिनियो का संकोच होता है। फिर वह स्थान शीतलसा भासता है। इस धर्मके हेतुसे व्रणशोथमें अति जल मिली हुई शराबकी पट्टी रखते हैं तथा प्रस्वेद बन्द होनेके लिये सब शरीरको अति जलमिश्रित शराबसे धोते हैं।

महुएके फूल शीतल, बल्य पौष्टिक और स्नेहन होनेसे वह ज्वर और कफ-रोगमें देनेके क्वाथके साथ मिला देनेका रिवाज है; और वह शास्त्र सिद्ध है।

तैल निकालनेके पश्चात् बीजोंकी खली धतूराके विषपर वमन करानेके लिये देते हैं, उसमे अवश्य वमन होती है। (देसाई)

१. शिरदर्द—पित्तप्रकोप अथवा रक्तदबावबृद्धि होकर मस्तिष्कमें भारीपन चक्कर आना अथवा शिरदर्द होनेपर महुएके फूलोका रस, मुनक्का और मिश्री

मिलाकर सेवन करावे और महुएके फूलोंके रसका या फलके चूर्णका नस्य करावें, लाभ पहुचता है।

२ हिक्का—महुएके रसके साथ नागकेशर, मिश्री और शहद मिलाकर पिलावें या महुएकी पुरानी शराबमें जल मिलाकर आध-आध घण्टेपर थोडा-थोडा पिलाते रहनेपर हिक्का शमन हो जाती है। एव महुएके रस और शहद मिलाकर नस्य भी कराया जाता है।

३ वमन—अपचन होकर वान्ति होनेपर महुएके रसमें शहद और घी मिलाकर चटाया जाता है, अथवा शराब पिलायी जाती है।

४ अस्थिभग—हड्डी टूटनेपर महुएकी ताजी छालको कुचलकर बाध देवें। २-३ दिनतक पट्टी रहने देवें और उस भागको कष्ट न पहुचने देवें तो हड्डी जुड जाती है।

५ मूत्रदाह—मधूककल्क रोज सुवह १-१ तोला खिलानेपर एक सप्ताहमें मूत्रशुद्धि होती है, प्रमेह दूर होता है, अग्निप्रदीप्त होती है, शौचशुद्धि होती है और शरीर बलवान बनता है।

६ मूर्च्छा—मधूकादि नस्य सुघानेसे या नाकमें फूक देनेसे मूर्च्छा दूर होती है। सर्पदश और अफीम विषमें मूर्छित मनुष्यको भी इसका नस्य कराया जाता है।

७ अपस्मार—मधूकादिनस्य सूघाते रहनसे मस्तिष्क शोधन होकर कुछ दिनोंमें अपस्मार निवृत्त हो जाता है। हिस्टीरिया और उन्माद रोगसे पीडितोंको भी यह नस्य सूघाया जाता है।

८ कण्ठरोहिणी—मधूकादि नस्य सूघाने और मधूकादि नस्य २-२ माशेका २-२ घण्टेपर शहदके साथ उदरसेवन करानेपर गलेमेंसे कफ सरलता स बाहर आकर कण्ठ स्वच्छ हो जाता है। सन्निपात, कास और श्वासरोगमें भी कण्ठमें कफ सगृहीत हो जानेपर मधूकादि नस्यका प्रयोग किया जाता है।

९ नपुसकता—मधूकाघृतका २१ दिनतक सेवन करानेसे नपुमकता दूर होकर शरीर सबल और तेजस्वी बनता है, अथवा महुएकी लकडीका गर्भ घी शहदके साथ देकर ऊपर दूध पिलाया जाता है।

१० पित्तप्रकोपज अग्निमान्द्य—पित्तप्रकोप होनेपर छातीमें दाह, मुँहमें कडवापन, मस्तिष्कमें उष्णता, किसी-किसीको जिह्वापर या मुँहमें क्षत होजाना, मूत्रमें पीलापन, शारीरिक निर्बलता और अग्निमाद्य आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। उसपर महुएकी छाल २-२ तोलेको ३२-३२ तोले जलमें उबाल छटाकभर रहनेपर उतार ३-४ माशे शक्कर या शहद मिलाकर पिलाते रहनेसे पित्तप्रकोप, दाह, उदरकृमि, अग्निमान्द्य, अरुचि और उदरवात आदि दूर होते हैं। यह क्वाथ छोटे बालकोंको भी निर्भयतापूर्वक दिया जाता है।

(५३) माजूफल

सं० मायाफल, मायिफल, छिद्रफल । म० मायफल । गु० मायां । ब० माजूफल । फा० माज् । क० मायूफल । तै० माचकाय । मला० मासिकाय । अ Gall tree ले०1 Quercus Infectoria 2 Quercus Lucitanica

परिचय—क्वेर्कस=यह लेटिन संज्ञादी है । इन्फेक्टोरिया=रगरेजके उपयोगी फल । लुसीटेनिका=शुद्ध टॉनिक एसिड युक्त फल । उक्त दोनों प्रकारके वृक्ष दक्षिण पूर्व यूरोपमें (ग्रीस) एशिया माइनर, सिरिया और इरानादि प्रदेशों में होते हैं । वहासे फल इस देशमें आते हैं । यथार्थमें ये फल नहीं है । एक प्रकारकी मक्खिया पतली टहनियो और शाखाओंको कुतरकर उनमें अपने अण्डे रख देती हैं, फिर शाखामें वेदना या उत्तेजना होकर रसस्राव होता है, जो अडे को चारों ओरसे घेर लेता है । परिणाममें वह सुपारी जितना बड़ा कृत्रिम फल (Gall) बन जाता है । इन फलोंके भीतर अण्डे या भ्रूणका विविध रूपान्तर होता है । जब उसे पाख आनेपर तोडकर बाहर निकल जाता है, तब रूपान्तर बन्द होजाता है । जो माजूफल मक्खी निकलनेके पहले इकट्ठे किये जाते हैं, वे उत्तम माने जाते हैं । छिद्रयुक्त सफेद या हल्के रगका माजूफल कम गुणवाला होता है ।

मात्रा—२ से ८ रत्ती तक ।

गुणधर्म–शीतल, रूक्ष, कषैला, लघु, दीपन, विपाक चरपरा, ग्राही, कफ-पित्तहर । एव यह रक्तस्रावरोधक, श्वेत प्रदर हर अर्शोघ्न गुणयुक्त भी है ।

नव्यमतानुसार माजूफलमें उत्तम, स्तम्भन, श्लेष्महर, वातनाड़ी आकुंचन, शोणितस्राव रोधक है । एव इसमें विषघ्न और ज्वरघ्न औषधोंके सहायक गुण भी अवस्थित हैं ।

माजूफल कल्पः—

१ माजूफलका मलहम—माजूफलके चूर्णको ४ गुने धोये घीमें मिलाकर मर्दन कर लेनेसे मलहम तैयार होजाता है । यह मलहम स्थानिक आकुंचन और रोपण कार्यके लिये हितावह है । यदि इस मलहममें ९२॥ भागके साथ ७॥ भाग अफीमका चूर्ण मिला लेवें, तो माजूफल अहिफेन मिश्रित मलहम बन जाता है । इस मलहम के १०० भागमें ७॥ भाग अफीम रहता है । यह वेदना वाले भाग पर लगाया जाता है । यह मलहम अर्शके मस्से पर वेदना होनेपर लगाया जाता है ।

२ माजूफल फाट—१ सेर जलको उबालें । उफाण आनेपर उसमें १ छटाक माजूफलका चूर्ण डालें । फिर मन्दाग्नि पर ५ मिनट उबालें । नीचे उतारकर ढक देव । १५–२० मिनटपर कपड़ेसे छान लेवें ।

यह फाण्ट कुल्ले करने, व्रण धोने तथा बस्ति और उत्तरबस्ति करानेकेलिये उपयुक्त है। एवं विष प्रशमनार्थ इस फाण्टको पिलाया भी जाता है।

उपयोग—माजूफलका उपयोग विशेषतः ग्राही और स्तम्भन गुणकेलिये होता है। यह अतिसार, रक्तातिसार, अर्शप्रदाह, मसूड़ेकी शिथिलता, गुदभ्रंश, योनिभ्रंश, श्वेतप्रदर आदि रोगोंमें प्रयुक्त होता है।

१ जीर्ण अतिसार और संग्रहणी—इसके चूर्णके साथ दालचीनी मिलाकर शहदके साथ दिनमें २ बार देते रहना चाहिये। यदि उदरमें पेचिश सदृश वेदना होती हो तो चौथाई चौथाई रत्ती अफीम भी मिला लेना चाहिये। अथवा फाण्ट ४-४ तोले जलमें बनाकर लेना चाहिये।

२ जीर्ण आमातिसार—माजूफल १॥-१॥ माशे दिनमें ३ बार देते रहने से अन्त्रकी शिथिलता और उग्रता दूर होती है, तथा आमप्रकोप शमन होता है।

३ रक्तातिसार—माजूफल और सोंठका चूर्ण ३-३ माशे घी और मिश्री मिलाकर उसमेंसे दिनमें ४-५ बार चटाते रहनेसे दो तीन दिनमें रोग निवृत्ति होजाती है। छोटे बालकको यदि रक्तातिसार हो तो उसे भी बार बार एक एक अंगुली चटाने पर रक्तातिसार दूर होजाता है।

वक्तव्य—रक्तातिसार होनेपर आम न गिरता हो और ४-६ दिन होगये हों, तो माजूफलके चूर्णमें चौथाई रत्ती अफीम मिला देना चाहिये।

४ अपचन—आमाशयका चिरकारी प्रदाह होनेसे अपचन बना रहता हो तो वह माजूफलके सेवनसे दूर होता है।

५ शीतसह जीर्ण विषमज्वर—जीर्ण ज्वरमें शारीरिक यन्त्र सब शिथिल होजाते हैं। जिससे उनकी क्रिया निर्बल होती है। इस हेतुसे प्रत्यक्ष ज्वरघ्न औषध लागू नहीं होती। अतः इसपर माजूफलका चूर्ण १ से १॥ माशे तक दिनमें ३ बार चिरायतेके क्वाथके साथ देते रहें। माजूफल सप्तपर्णत्वक्, कूड़ेकी छाल इन्द्र जौ आदि द्रव्य कषाय और ग्राही हैं। इनको ज्वरघ्न और आमाशय पौष्टिक भी मानते हैं। तथापि यह औषध प्रत्यक्ष ज्वरघ्न और आमाशय पौष्टिक नहीं है। ग्राही औषधोंसे विविध यन्त्रोंकी शिथिलता दूर होने पर अन्य ज्वरघ्न औषध लागू पड़नेका प्रारम्भ होता है, और आहार रस भी योग्य बनने लगता है। इस हेतुसे जीर्ण विकारोंपर कषाय द्रव्यों और काली मिर्च, सोंठ, पिप्पली, दालचीनी, लौंग आदि सुगन्धमय अग्निप्रदीपक द्रव्योंका उपयोग करना, यह शास्त्रके अनुकूल है। इन औषधियोंके सेवन कालमें पचन शक्ति पर लक्ष्य रखकर शनैः शनैः दूध और घी का सेवन बढ़ाना चाहिये।

६ जीर्णसुजाक—माजूफल १०-१० रत्ती मात्रामें दूधकी लस्सीके साथ प्रातःकालको १-१ घण्टेपर ३ बार देना चाहिये। इससे मूत्रप्रसेक नलिकापर

ग्राही असर पहुँचनेसे पूयस्राव कम होजाता है। बिना कष्ट जब आतशय पूयस्राव होता रहता है, तब इसका व्यवहार किया जाता है।

७ जीर्णश्वेतप्रदर—माजूफलका चूर्ण १-१ माशा दिनमें २ बार शहदके साथ सेवन कराया जाता है, तथा माजूफलके फाण्टकी उत्तरबस्ति दी जाती है।

८. योनिभ्रंश—प्रसवावस्थामें योग्य सम्हाल न रहनेपर गर्भकमल शिथिल-होकर बाहर निकल आता है उसे योनिभ्रंश कहते हैं। इसपर माजूफलके फाण्टकी उत्तरबस्ति दीजाती है। एवं माजूफलके चूर्णमें ८वा हिस्सा फिटकरी का चूर्ण मिला जामुन सदृश पोटली बना, योनिपथमें धारण करायी जाती है। पोटलीके साथ लम्बी लटकती डोरी रहनी चाहिये। जिससे पोटली इच्छानु-सार वापस खैंच सकें। यह उपचार रोग नया होनेपर लाभ पहुँचा सकता है। प्रसूताको पूर्ण आराम देना चाहिये।

९ विषप्रकोप—कुचीला, काकमारी, धतूरा, अफीम आदिके विषके सेवन करनेपर वमन कराने बाद विषके प्रशमनार्थ माजूफलका निवाया फाण्ट थोडे थोडे समय पर बार बार पिलाते रहें।

१० स्तनोंपर घाव—स्त्रियोंके स्तनोंपर घाव होजानेपर माजूफलका मलहम लगावें या माजूफलको जलमें घिसकर लेप किया जाता है। इस तरह माजूफल अन्य स्थानोंके व्रणोंपर लगानेसे उन व्रणोंका भी सकोच होकर जल्दी रोपण होता है।

११ आगन्तुक घाव—शस्त्रजनित घावपर लगानेसे छोटी छोटी रक्तवा-हिनियोंके मुखबन्द हो जाते हैं। इनका कुछ अंश सकोच होता है तथा चारों ओरकी वातवाहिनियोंका आकर्षण होता है। इन तीन हेतुओंसे रक्तस्राव बन्द होजाता है। रक्तस्रावपर माजूफल, अनारकीछाल और कपूरका चूर्ण लगानेसे तुरन्त लाभ पहुँचता है।

१२ मसूढ़ेसे रक्तस्राव—मसूढे सूजकर उनमेंसे शोणित स्राव और लालास्राव होनेपर माजूफलके चूर्णका मंजन रूपसे उपयोग किया जाता है।

१३ गलग्रन्थिप्रदाह—(Tonsillitis) माजूफलको सिरकेमें घिसकर लगानेपर बढी हुई गलग्रन्थियां घट जाती है। इस तरह गल शुण्डिका शिथिल हुई हो तो उसका आकुञ्चन होजाता है। फिर उससे उत्पन्न शुष्ककास शमन होजाती है। इसके अतिरिक्त गलग्रन्थि और गलशुण्डिकापर लाभ पहुँचानेके लिये माजूफलके फाण्टमें फिटकरी डालकर कुल्ले भी कराये जाते हैं। मसूढे-मेंसे रक्तस्राव होता हो, तो वह भी कुल्ले करानेपर दूर होजाते हैं।

१४ दांतोंका हिलना—मसूढे शिथिलहोनेसे दांत हिलते हों, तो माजूफल, कपूर, सफेदकत्था और फूली हुई फिटकरीका कपड़छान चूर्ण १-१ भाग और

सेलखड़ीका चूर्ण १२ भाग मिलाकर दन्तमञ्जन रूपसे उपयोग करनेसे दाँत दृढ बन जाते हैं।

१५ गुदभ्रंश—बालकोंके अन्त्रमें उष्णता बढ जानेपर गरम गरम पतले दस्त बार बार होते रहते हैं और गुदा बाहर निकल आती है, उसपर बाह्य-उपचार रूपसे माजूफलका चूर्ण लगाते रहें, माजूफलके फाण्टसे रोज धोते रहें और फाण्टमें कपडा भिगोकर भी गुदभ्रंशपर रखते रहनेपर जल्दी लाभ पहुँच जाता है। खानेके लिये पिप्पल्यादि चूर्ण या इन्द्रजौका चूर्ण देते रहना चाहिये।

१६ वृषणवृद्धि—माजूफल और असगंधको जलके साथ घिस गरमकर लेप करनेसे वृषणवृद्धिका निवारण होता है।

१७ रक्तस्राव—स्थानिक लेप करनेपर जिस तरह बाह्य रक्तस्राव बन्द होता है, और श्लेष्मा आदिका ह्रास होता है, उसतरह कफमें रक्तस्राव, आमाशय या अन्त्रमेंसे रक्तस्राव, मासिकधर्ममें अतिरिक्त रक्तस्राव, रक्तप्रदर और मूत्रके साथ रक्तस्राव आदिपर इसका उदरसेवन कराया जाता है। माजूफलकी क्रिया श्लैष्मिककलापर अधिकांशमें होती है। जिससे उसका आकर्षण होता है और श्लेष्मका ह्रास होता है। कफरोगमें जब अधिक मात्रामें पतला कफस्राव होता रहता है तब माजूफल और उसके समान काकडासिंगी आदि स्तंभन द्रव्यका उपयोग किया जाता है।

स्थानिक शिथिलता सह रक्तप्रदर होनेपर उदर सेवनकी औषधिके साथ माजूफलके फाण्टकी उत्तरबस्ति भी देते रहना चाहिये।

रासायनिक संगठन—माजूफलसे २ अम्लद्रव्योंकी प्राप्ति होती है। १ मायाफलाम्ल (Gallic Acid) और २ कषायाम्ल (Tannic Acid) दोनोंका मिलकर परिमाण ५० से ७०%होता है। शेष शर्करा और श्वेतसार मिलते हैं।

इनमेंसे दोनो अम्लोंका औषधोपयोग पहले फार्मोकोपियामें होता था किन्तु अब एक कषायाम्लका ही उपयोग होरहा है।

१ मायाफलाम्ल—मात्रा ५ से १५ ग्रेन। क्रिया विशुद्ध ग्राही। यहक्रिया मूत्र संस्थानपर विशेष प्रकाशित होती है। मात्रा कम लेनेपर गुण प्रतीत नहीं होता। मात्रा अधिक होनेपर कुछ उष्णताका भास होता है। बाह्यप्रयोगसे त्वचाका कुछ आकुञ्चन होता है। इसकी क्रिया कषायाम्लकी अपेक्षा मंद होती है।

मायाफलाम्ल सौम्य होनेसे कोमल प्रकृतिके रोगीको निर्भय रूपसे दे सकते

हैं। राजयक्ष्मामें उर क्षतज कास, रक्त वमन और रक्तस्रावका निरोध करनेके लिये यह हितावह है।

राजयक्ष्मामें रात्रि प्रस्वेदके निरोध और श्वासप्रणालिका प्रदाह (कासरोग) में श्लेष्मा निःसरणका ह्रास कराने केलिये यह प्रयुक्त होता है।

जीर्ण अतिसार रोगमें अफीम मिलाकर देनेसे सत्वर लाभ पहुँच जाता है। अर्शके प्रदाहयुक्त मस्से पर, इसका अफीम मिश्रित मलहम लगानेसे वेदना शमन होजाती है और थोडेही दिनोंमें सूजन दूर होजाती है।

इसके सेवनसे स्तन्याधिक्यका ह्रास होता है। एवं रक्तप्रदर और श्वेतप्रदर पर स्रावके दमनार्थ इसका व्यवहार किया जाता है।

मूत्रमें एल्ब्युमिन (लस्सीका) जानेपर मायाफलाम्लके सेवनसे अच्छा लाभ पहुँचता है। यह जीर्ण प्रमेह रोगोंपर उपयोगी है। यदि मूत्रमें रक्त जाता हो, तो उसे भी यह बन्द कर देता है। एवं बहुमूत्र (बार बार पेशाब अत्यधिक आने) पर इसका उपयोग अफीम के साथ किया जाता है।

२ कषायाम्ल-हल्का, किंचित पीला-सा या हल्का हरा भूरा होता है। स्वाद अति कषैला और गन्ध प्रकृति निर्देशक है। प्रतिक्रिया अम्ल है। यह जल और ग्लिसरीनमें द्रवणीय है। तैलमें द्रव नहीं होता। इथरमें अपेक्षाकृत कम मात्रामें द्रव होता है। इसे वायु खुलनेपर कार्बोलिक एसिड गैस निकलकर क्रमश मायाफलाम्ल (गैलिक एसिड) बन जाता है।

मात्रा —५ से १० ग्रेन।

क्रिया —इसका मुख्य प्रभाव प्रबलग्राही और रक्तस्रावरोधक है। यह जीवित तन्तुओंके रसस्रावका ह्रास कराता है। यह परिणाम एलब्युमिन और जिलेटिनको अधःस्थ करने रूप एसिडकी मुख्य शक्ति पर निर्भर है। यदि इस कषायाम्लकी विशेष शक्ति क्षार और एल्ब्युमिनसे नष्ट होजाती है तो उसका ग्राही गुण भी नष्ट होजाता है।

इसके सेवन करनेपर यह शोषित होकर मायाफलाम्ल और अग्निजात मायाफलाम्लरूप बन जाता है। रक्तमें मिश्रित होनेपर रक्तके ग्रथिनतत्त्व (Fibrin) एल्ब्युमिन, जिलेटिन और श्लेष्मस्राव आदिको जमा देता है। परिणाममें रक्ताभिसरण क्रियामें प्रतिबन्ध होता है। इस हेतुसे कषायाम्लकी सकोचनशक्ति मायाफलाम्लकी अपेक्षा प्रबलतर होनेपर भी दूर स्थानमें क्रिया प्रकाशनकेलिये मायाफलाम्लको ही श्रेष्ठ माना जाता है।

बाह्य क्रियाः-स्थानिक सकोच के लिये यह कषायाम्ल उत्कृष्ट औषध है। बाह्य त्वचापर बार बार लगानेपर त्वचाको कठोर और खुरदरी बनाता है, और अधिक प्रस्वेदको कम कराता है। विच्छिन्न चर्मके ऊपर और श्लैष्मिककला।

पर लगानेपर उत्तान एल्व्युमिन और सयोजक तन्तु सब घनी भूत होते हैं। एव रक्त रस और लसीका आदि तरल पदार्थ जम जाते हैं। दाह-शोथ और दानेकी वृद्धिका रोध होता है, तथा स्थानिक वातनाडियोंके चेतनाका ह्रास होता है। सकुचित सयोजक तन्तु द्वारा उस स्थानकी रक्त प्रणालियां इतने परिमाणमें सचापित होती है फिर परम्परागत उनका आयतन कम होजाता है। और रक्त सचालन भी कम होजाता है।

यह सामान्यत आगन्तुक घाव, रक्तस्राव और क्षत पर सूखे चूर्ण या मलहम या द्रव रूपमें प्रयोजित होता है। मलहममें १० प्रतिशत और द्रवमें ३ से ५% मिलाया जाता है। यह अधिक स्रावपर अत्यन्त उपयोगी है। इस हेतुसे फूटे हुए फौड और जीर्ण और चिरकारी प्रदाहके स्रावको दूर करनेके लिये व्यवहृत होता है। शय्याक्षत और जूतेसे हुए पैरोंके फालेपर ग्लिसरीनके साथ और चूर्ण रूपसे भी लगाया जाता है। एव प्रस्वेद को कम करनेके लिये ग्लिसरीनमें मिलाकर लगाया जाता है। त्वचापर आघात लगजाने आदि किसी भी हेतुसे स्रावका ह्रास कराना हो, और फाले या क्षतका रोपण कराना हो उन पर यह उपयुक्त है।

मूत्र प्रसेक नलिकाके प्रदाह (Urethritis) और श्वेत प्रदरपर इसका उत्तर वस्ति रूपसे उपयोग होता है। रक्त प्रदर या रक्तार्शपर इसके मलहम और वात का उपयोग किया जाता है। किन्तु अहिफेन युक्त मायाफल मलहमका जो उपचार किया जाता है, वह स्थानिक रूपसे व्यर्थ है, केवल केन्द्रिक प्रभावके लिये है।

अन्तर क्रिया.—मुँहके भीतर इसको लगानेसे स्थानिक संकोच होता है। शुष्कता लगना, जिह्वा और कण्ठ नलिकाका अकड जाना, तथा प्यास लगना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। सब स्थान सकुचित होते हैं, चेतना कुछ कम होती है। मसूढेमेंसे रक्तस्राव, गलग्रन्थि प्रदाह, गलेमें घाव हो जाना, ग्रसनिका प्रदाह आदि पर इसके १० से १५% के कुल्ले कराये जाते हैं। एव १६%ग्लिसरीन या जलमें मिलाकर लेप किया जाता है। प्रतिश्याय और नासा रक्तस्रावमें इसे सुघाया जाता है, और पिचकारी रूपसे भी उपयोग किया जाता है।

आमाशय —आमाशयमें मेवन करनेपर आहार सत्वोंको अध स्थ कर देता है। पश्चात् फिरसे ये पचन होते हैं, और आमाशयिक रसके प्रभावसे पेप्टोन (Pepton) प्रथिन वन जाता है। जो कषायाम्लके साथ सम्मिलित नहीं होता। जिससे कषायाम्ल पुन पृथक् हो जाता है। यदि आमाशयमें थोडासा भी आहार अवस्थित हो, तो आमाशयकी दीवारोंपर ग्राही गुण प्रबल होता है। फिर रसस्रावको दूर करता है। एव यदि रक्तस्राव होता हो, तो इसकाभी दमन करता है।

यदि अधिक मात्रामें सेवन कराया जाय, तो अपचन या आहारके अधःपतन अथवा आमाशयकी दीवारोंकी उग्रताकी उत्पत्ति होती है। इस हेतुसे कपायाम्ल उदर सेवन में सत्वर अत्यधिक ग्राही असर पहुँचाता है। अतः किसी वनौषधिके साथ मिलाकर देना यह अच्छा माना जायगा कारण जब यह कोषोंमें बन्द हो जाता है अथवा चिपचिपे प्रवाहीके साथ मिल जाता है, तब यह तन्तुओंके साथ मन्द वेगसे सम्बन्धमें आता है। यह आमाशयके चिरकारी प्रदाह या आमाशय विद्रधिमेंसे जीर्ण प्रसेक युक्त आमाशय प्रदाह (अजीर्ण) और रक्तस्राव में लाभदायक है।

धातु घटित क्षार और उपक्षार से विपाक्त होनेपर पहले वमन और विरेचन द्वारा विषको निकाल देना चाहिये। फिर लीन विषके दमनार्थ कषायाम्ल अति लाभदायक है।

अन्त्रमें—कपायाम्लका अन्त्रमें ग्राही असर सत्वर नहीं होता। कारण, आन्त्रिकरस क्षारीय होनेसे कपायाम्लमेंसे मायाफलाम्ल और मायाफलाम्लज लवण रूप परिवर्तन हो जाता है। ये दोनों रूपान्तरित द्रव्योंमें ग्राही गुण नहीं है। अतः अन्त्रमें ग्राही गुण दर्शानेकेलिये माजूफल, कत्था, विजयसार आदि मूल द्रव्योंका उपयोग ही हितावह है। कारण इन द्रव्योंमें रहा हुआ कपायाम्ल धीरे-धीरे पृथक् होता है, जिससे वे सब पचन हो जाते हैं।

कपायाम्ल अन्त्रसे अपाचित आहार सत्वोंको तल भागमें फेंक देता है जिससे अन्त्रके उत्तान कोषोंमें रहे हुए रस और आहार सत्व आदि भी पुनः कठोर बन जाते हैं। इस हेतुसे यह उनके ऊपर संरक्षक आवरण निर्माण करके उग्रताका उपशमन करता है, और आन्त्रिक गतिका ह्रास करता है। इन प्रभावों के हेतुसे अन्त्रमें अवस्थित द्रव्योंका स्थानान्तर देरसे होता है। परिणाममें मल मेंसे जलका अधिकांश शोषित हो जाता है, और कब्ज उत्पन्न होता है।

कपायाम्ल और अन्य कितनेक वनौषध द्रव्य अतिसार चिकित्सामें मुख्यौषधि रूपसे प्रयोजित होते हैं; विशेषतः जब प्रदाह चिरकारी या कुछ मंद वेगवाला (Chronic) हो, और श्लैष्मिकस्राव अधिक होता हो, तब इसका उपयोग करना चाहिये। ऐसे समयपर यह चाक मिट्टी, शंखभस्म, अफीम या बिस्मथके साथ मिला देना विशेष हितकारक है। अफीमके साथ मिश्रण लघु अन्त्रसे होनेवाले रक्तस्रावको सत्वर बन्द करता है।

तीव्रावस्थामें अफीम वाले मिश्रणका उदर सेवन करानेपर वे बृहदन्त्रतक नहीं पहुँच सकते हैं। एवं ये आमातिसार, प्रवाहिका और विसूचिकामें बस्ति रूपसे व्यवहृत होता है।

यकृत्—इस कषायाम्लसे यकृत्की पित्त निसरण क्रियापर कुछ भी प्रभाव नहीं पहुँचता।

रक्त—कषायाम्लका रक्तमें शोषण कषायाम्लजक्षार (Tannates) और माया फलाम्लजक्षार (Gallates) रूपसे होता है। इनमेंसे मल रूप कुछ अंश मूत्रके साथ बाहर आता है। अथवा सम्पूर्ण प्राण वायुके अधीन हो जाता है, जो दूरवर्ती धातुओं असरके लिये बल प्रयोग नहीं करता।

कषायाम्ल वृक्क प्रदाह (Nephritis) में एल्ब्युमिनका ह्रास कराने, तथा फुफ्फुस वृक्क और गर्भाशयमेंसे रक्तस्रावका रोध करानेके लिये, प्रयोजित होता है। एवं चिरकारी प्रदाह पूर्ण स्रावोंपर भी इसका उपयोग किया जाता है। फिर भी इन सब अवस्थाओंमें यह लाभ पहुँचा ही सकेगा. ऐसा विश्वास नहीं किया जाता।

सूचना—(१) इसका प्रवेश इञ्जेक्शन द्वारा सिरामें कराया जाय, तो रक्त को जमाकर शल्य रूप बनाता है। जिससे परिणाम तुरन्त अति कष्ट प्रद उपस्थित होता है।

(२) प्रदाह या रक्ताधिक्यका निवारण करनेके लिये यदि किसी स्थानमेंसे रक्त या रसस्राव होनेपर आमाशयमें उग्रता या आशुकारी प्रदाह होनेपर और कोष्ठबद्धता (कब्ज) होनेपर कषायाम्लका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

उपयोग—कषायाम्ल विविध प्रकारके रक्तस्रावपर महोपकारक है। यथा थूक या कफके साथ रक्त आना रक्तवमन, रक्तातिसार. रक्तप्रदर और मासिक धर्ममें अति रज स्राव आदिपर यह अफीमके साथ प्रयोजित होता है। मसूढ़ेमें से रक्तस्राव होनेपर उसपर घर्षण किया जाता है। नासिकामेंसे रक्तगिरनेपर इसको सुंघाया जाता है। एवं बाह्य प्रदेशमें किसी स्थानमें रक्त स्राव होनेपर इसका स्थानिक प्रयोग किया जाता है।

रोमान्तिका और शोणित ज्वरके बाद बहुधा नासिकासे अधिक परिमाणमें तरल रस या गाढा पूयमय श्लेष्म निकलता है। ये सब रक्त सूखनेपर छिद्र रुक जाते हैं। एवं सामान्यतः ओष्ठपर खुर्ची होजाता है। उस स्थानको अच्छी तरह साफकर उसपर ग्लिसरीन मिश्रित कषायाम्ल लगा देनेसे श्लेष्म स्राव बन्द हो जाता है।

कभी-कभी प्रौढव्यक्तिको नाकके भीतर पूयपूर्ण फुन्सी होती है। जो नासारन्ध्रके बालपर होती है। जिससे नाक स्थूल और लाल बन जाता है। हाथ लगानेपर वेदना होती है। कभी-कभी सूजन गालपर भी फैल जाती है। और मुँहको भी लाल बना देता है। इसपर ग्लिसरीन मिश्रित कषायाम्लको दिनमें २-३ बार लगानेपर सत्वर लाभ हो जाता है।

जीर्ण श्वास प्रणालिका प्रदाह (कासरोग) में अधिक श्लेष्मा निकलनेसे रोगी दुर्बल हो जाता है। इसपर कषायाम्लका उपयोग करनेसे कफका दमन होजाता है।

उत्कट व्याधिके बाद दुर्बल और कृश बालकके कानमेंसे पूय स्राव होने लगता है। इसपर ग्लिसरीन मिश्रित कषायाम्ल डालते रहने और रूईसे कान बन्द रखनेसे थोडे दिनोंमें रोग निवृत्त हो जाता है। किन्तु रोगकी प्रबलावस्थामे इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

यदि मध्यकर्णकी त्वचा नष्ट होगई हो और अस्थि प्रतीत होता हो, तो रोग मूलसे निवृत्त नहीं हो सकता। फिर भी कषायाम्लको सर्वदा डालते रहनेसे दुर्गन्ध निवृत्त होती है; और पूयनिर्गमनका दमन होता है। किन्तु औषध स्थगित करनेपर फिरसे पूयस्राव होने लगता है।

राजयक्ष्मा रोगमें जब बड़े गह्वर बन जाते हैं, और अत्यधिक श्लेष्मस्राव होता है; तब कषायाम्ल द्वारा श्लेष्म और पूयके परिमाणका ह्रास होता है। इसके अतिरिक्त यक्ष्मा रोगमें अति प्रस्वेदके निवारणार्थ यह विलक्षण उपकार दर्शाता है। किञ्चित् अफीम या जल मिश्रित सोरेके तेजाबके (Acid Nitric) के साथ प्रयोजित करना चाहिये। एवं कोष्ट शुद्धिके लिये आवश्यकतापर रेवाचीनीका उपयोग करना चाहिये।

जीर्ण अतिसार हो और आमाशयकी पचन शक्तिके दोष या अपथ्य सेवन से हुआ यकृत या हृदयपिण्ड आदि कोई आन्त्रिक रोग या अन्त्रस्थ श्लैष्मिक कलामें प्रदाह या क्षतके हेतुसे न हुआ हो, तो अहिफेनके साथ कषायाम्लके सेवन से सत्वर लाभ हो जाता है।

विसूचिका रोगमें कषायाम्लकी बस्ति देनेसे लाभ पहुँचता है। जल ३ से ५ पिण्ट लेकर निवाया करें। उसमें १ पिण्ट पर १ ड्रामके हिसाबसे कषायाम्ल मिला लेवें। फिर इसकी बस्ति देनेसे अन्त्रस्थ रक्त प्रणालिकाएं कुञ्चित होती है; बेसिलस कीटाणुओंकी वृद्धि रुक जाती है; अन्त्रस्थ पदार्थ अम्लगुण विशिष्ट होता है; वातवाहिनिया उत्तेजित होती है; देहमें उष्णता आती है, और मूत्ररोध नहीं होता।

अपचन होनेपर जलमिश्रित सोरेके तेजाबके साथ कषायाम्ल देनेसे क्षुधा बढ जाती है; अफारा निवृत्त होता है, और प्रकृति स्वस्थ हो जाती है। आमाशयमें श्लेष्मा (आम) की उत्पत्ति बढ जानेपर कषायाम्ल संकोचकरके लाभ पहुँचाता है। एवं आध्मान और अम्लपित्तमें भी यह उपकार दर्शाता है।

श्वेत प्रदर रोगमें कषायाम्लका आभ्यन्तरिक और बाह्य प्रयोग करनेपर उपकार दर्शाता है। आभ्यन्तरिक प्रयोग जलमिश्रित सोरेके तेजाबके साथ किया

जाता है। बाह्य प्रयोग उत्तर वस्ति रूपसे होता है।

पूय प्रमेहमें प्रदाह होनेके पश्चात् और सुजाक जनित जीर्ण मूत्रप्रसेक नलिका प्रदाह (Urethritis) पर इसकी पिचकारी लगानेसे अच्छा लाभ पहुँचता है। पूय निकलना बन्द होनेपर भी ७-८ दिनतक पिचकारी देनी चाहिये। इस पिचकारी से शुक्रपातकी सभावना है। इस हेतुसे पिचकारी सोने के समय नहीं देनी चाहिये। पिचकारीकेलिये केवल ग्लिसरिन मिश्रित कषायाम्लका उपयोग नहीं करना चाहिये। यह अति उग्र है। ग्लिसरिन मिश्रित कषायाम्ल ३ औंस, जेतूनका तैल १ औंस और गोंदका प्रवाही १ औंस मिलाकर उपयोगमें लिया जाता है।

भगदर रोगमें इसकी पिचकारी लगानेसे स्थानिक शिथिलताको दूरकर लाभ पहुँचाता है। गुदाकी त्वचा फट जानेपर कषायाम्लको १६ गुने ग्लिसरिन में मिलाकर लगाया जाता है।

अर्शरोगमें प्रदाहका दमन होनेके पश्चात् इसका मलहम लगाते रहनेसे लाभदायक है।

पारद सेवन करनेपर या अन्य कारणसे मसूढेपर सूजन आगई हो, मसूढे मेंसे रक्तस्राव होता हो, तो कषायाम्लका स्थानिक प्रयोग करना चाहिये।

दन्तक्षत होनेपर दातकी पोलमें कषायाम्ल भर देनेसे जल्दी लाभ पहुँच जाता है। पीनस (नासिकामेंसे अति दुर्गन्ध युक्त श्लेष्म निकलने) पर ग्लिसरिन मिश्रित कषायाम्ल उत्तम औषध है।

उरक्षतजकास, कण्ठरोहिणी, स्वरयन्त्रका क्षत, स्वरयन्त्र द्वारपरशोथ, जीर्णक्षत, फुफ्फुसका पाक गलौघ (CrouP) और जीर्ण प्रतिश्याय आदि रोगों पर १ से २० ग्रेन कषायाम्लको १ औंस जलमें मिला कण्ठमें छिडकने (Spray) से लाभ पहुँच जाता है। इनके अतिरिक्त त्वचा निकल जाने, दूषित रस स्राव-युक्त क्षत होने और क्षतपर अधिक ऊचा अकुर आनेपर कषायाम्लका लेप करने से क्षतपर आवरण आ जाता है। जिससे वायुकी हानिकर क्रियासे सरक्षण होता है।

नेत्र प्रदाह (अभिष्यद) होनेपर कषायाम्लको जलमें मिला बूद डालनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है। वालकोंके पूययुक्त अभिष्यद रोगमें भी यह उत्कृष्ट लाभदायक है। २ से ५ ग्रेन कषायाम्लको १ औंस जलमें मिलाकर उपयोग करना चाहिये।

कण्ठनलिकाकी विविध व्याधियोंमें ग्लिसरिन मिश्रित कषायाम्ल लाभ-दायक है। प्रबल प्रदाह होनेपर इसका प्रयोग किया जाता है। जब श्लैष्मिक कला लाल हो, सूजन अपेक्षा कृत कम हो, श्लैष्मिककला श्लेष्मा या पूयसे

आवृत हो, तब ग्रसनिकापर इसे फुरेरीसे लगाना चाहिये। कण्ठक्षत (Sore-throat) होनेपर यह लाभदायक है। कण्ठनलिका जीर्ण प्रदाहमें श्लैष्मिक कला शिथिल, स्फीत और दानेदार हो जानेपर एवं पूय या श्लेष्मासे आवृत्त रहनेपर कषायाम्लके लगानेसे स्थानिक तन्तु सबल बनते हैं; स्वरभंग निवृत होकर आवाज सुधर जाती है। गलनलीकी इन सब व्याधियों में गलग्रन्थि कुछ रुक जाती है। यह विकार बालकोंको बहुत हो जाता है। कभी कभी बधिरता, रात्रिको निद्रा न आना और कास भी उपस्थित होते हैं। इस बधिरता और कासका निवारण भी ग्लिसरिन मिश्रित कषायाम्लसे होजाता है।

गलशुण्डिका बढनेपर शुष्ककास आती रहती है, और निगलनेकी इच्छा निरन्तर बनी रहती हैं। इसपर कषायाम्ल और ग्लिसरिनके मिश्रणका लेप हितकारक है। इसके अतिरिक्त राजयक्ष्मा रोगमें कण्ठनली प्रदाह और क्षत जनित कासको शान्त करनेके लिये ग्लिसरिन मिला हुआ कषायाम्ल विशेष उपयोगी है। यदि इसमें किञ्चित् अहिफेन सत्व (मोर्फिया) मिलाया जाय, तो वह विशेष लाभदायक है। इसका लेप रात्रिको सोनेके पहले करनेसे रात्रिको अच्छी निद्रा आजाती है।

काली खासीमें कास अतिवेग पूर्वक चलती रहती है, इसवेगका ह्रास कराने के लिये ग्रसनिका अधिजिह्विका और उसके समीपमें रहे हुए स्थानपर ग्लिसरिन मिश्रित कषायाम्लका मर्दन किया जाता है। यथार्थमें काली खांसी, फुफ्फुस प्रसेक सह प्रदाह, क्षय प्रकोप और दात निकलने आदि हेतुसे किसी प्रकार की उग्रता होनेपर इससे विशेष लाभ नहीं पहुँचता, तथापि उपद्रव रहित काली खासीमें यह फल प्रद है।

स्ट्रिक्निया, मोर्फिया आदि उपक्षारके सेवन करनेसे विष चढा हो, तो कषायाम्लके सेवनसे वे अपेक्षाकृत अद्रवणीय रहते हैं। इस तरह इपिकाक्युहाना या इसके उपक्षारके सेवनसे अतिशय वमन होनेपर उसके दमनार्थ भी यह प्रयोजित होता है।

व्युचीरोगमें ऊपरकी पतली त्वचा निकाल प्रदाहमय, लाल त्वचापर ग्लिसरिन मिश्रित कषायाम्ल लगा देनेसे रस स्राव, लाली, उष्णता और शोथ आदिपर आश्चर्य कारक लाभ पहुँच जाता है। उस स्थानपर रात्रिको पुल्टिस बाधनी चाहिये। यदि कषायाम्लसे दर्द होजाय, तो दिन-रात पुल्टिस बाधते रहनेसे व्युचीका जलन, खुजली और वेदना सत्वर शान्त हो जाती है।

कषायाम्लकल्पः—

ग्लिसरिन मिश्रित कषायाम्ल (ग्लिसरिनम् एसिडी टेनिसी (Glycerinum Acidi Tannici) कषायाम्ल १ औंसको उतने ग्लिसरिनमें मिलावे, कि

मिश्रण ५ औंस तैयार हों। दोनों मिला मर्दनकर मिश्रण बना लेवें। मात्रा १० से ३० बूंद।

कषायाम्ल वर्त्ति—कषायाम्ल १ भाग और कोकम आमचूरका तैल—(Supposi toria Acidi Tannici) ४ भाग लें। पहले तैलको गरम करें। फिर उसमेंसे थोड़े तैलमें कषायाम्ल मिला लें। फिर शेष तैल मिला मर्दनकर शीतल होनेपर १-१ माशेकी वर्त्ति बना लेवें।

(५४) माधवी

सं० माधवी, वासन्ती, अतिमुक्ता, भ्रमरोत्सव। हि० माधवी, मदमालती, वसती। व० माधवीलता, वोसन्ती। गु० माधवी, रक्तपिति, म० हलदवेल, पिंवलीवेल, माधवी। नेपा० चरपटेलहर। प० वेंकार, चवुक, चोपर। सन्ता० संग करला। कना० आदिमुर्ति, आदिर्गन्ति, माधवी, वसतद्रुति। मला० सीतामपु। ता० आदिगम, आदि गन्दी, ते० अतिमुतम्। ओं० वोरोमालती।

ले० Hiptage Benghalensis

प्राचीन संज्ञा—"Hiptage Madablota

परिचयः—वेंगा लेन्सिस वगालमें उत्पन्न। हिप्टेज = फल ३ पक्ष युक्त। मदव्लोटा संस्कृति माधवी लताके अनुरूप वसत पुष्पकी वेल। वडी काष्ठमय, अनेक शाखा प्रशाखा युक्त, चढने वाली सर्वदा हरी वहुत लम्बी झाडी नया भाग रेशम सदृश रुएदार। काडकी लकड़ी पीली। काड कभी कभी जाघ सदृश मोटा होजाता है पान अभिमुख, चर्म सदृश ४ से ७ इञ्च लम्बे और १॥। से ३ इञ्च चौडे, अण्डाकार-लम्वेगोल तीक्ष्ण नोकदार अखण्ड, चिकने, निम्न और दृढ शिरा युक्त, नोकदार आधार स्थान युक्त। पत्र वृन्त छोटा रुएदार। पुष्प॥ से ॥। इञ्च व्यासके अति सुगन्धिदार (भ्रमरोंको

आकर्षित करने वाले) सफेद, पान जितनी लम्बी सुन्दर रुएदार, मजरीमें। पुष्प पत्र भल्लाकार। पुष्प वाह्य कोष दृढ़ ५ विभाग युक्त सघन रुएंदार बाहर की ओर। पुष्पान्तर कोषके दल ५, एक पीला पुकेसर १०, इनमें से १ औरोंसे लम्बा। पुष्पकाल फरवरी, मार्च। फलकाल अप्रेल, मई। बहुधा इसकी लता मंडपके सदृश अपनी रचना करती है। इससे इसका परिचय सरलतासे मिल जाता है।

उत्पत्ति स्थानः—सौराष्ट्र, कोंकण, पश्चिम घाट, मद्रास इलाका, कर्णाटक, सिलोन, आबु, सिवालिक, कुमाउन, नेपाल, बंगाल, बर्मा, आसाम, आंदामन, मलाय द्वीप, सियाम, चीन, मलाय द्वीपसे फार्मोसा और फिलीपाइन तक।

गुण धर्म—राजनिघण्टुके मतानुसार माधवी रसमें कडवी विपाकमें चरपरी, अनुरस कषैला तथा पित्त, कास, व्रण, दाह और शोफका नाशक है। भाव प्रकाशकारने माधवी शीतल, लघु और त्रिदोष हर दर्शायी है।

नव्य मत अनुसार माधवीके छाल और पान उग्रता प्रद, उष्ण, कडवी, कृमिघ्न, संधानक (Vulmerary) त्रिदोष हर तथा पित्त प्रकोप, कास, दाह, तृपा, प्रदाह, चर्मरोग और कुष्ठको दूर करने वाले हैं।

उपयोगः—माधवीका उपयोग भारत वर्षमें अति प्राचीन कालसे हो रहा है। सुश्रुत संहितामें माधवीके कोमल पानोंका शाक रक्तपित्त पीडितको देनेका कहा गया है। कवि कालिदास आदि प्राचीन साहित्यकारोंने माधवीका उल्लेख किया है।

पानोंका रस कृमिघ्न है। और फोडेपर लगानेमें अति लाभप्रद है। प्रदाह, पीडित स्थान पामा और कण्डूपर बार बार उसका मर्दन करनेपर प्रदाह दूर हो जाता है।

चिरकारी आमवात और श्वास रोगमें पानोंके रसका सेवन हितावह है। एवं छालभी सुगन्धित कडवी आमाशय पौष्टिक रूपसे गुण दर्शाती है।

(५५) मानकन्द

स० मानकन्द, माणक, महापत्र महाकन्द। हि० मानकन्द। व० मानकच्चू। म० कासालू। गु० माणकन्द। क० मानक ले० Alocasia Indica
प्राचीन नाम Arum Indicum

परिचय—एरम=हृदयाकार, सफेद सिरायुक्त पानवाला। इण्डिकम और इण्डिका=भारतीय। एलोकेशिया=काण्डमेंसे निकले हुये पत्र (वृन्तमय युक्त क्षुप। कन्दमय क्षुप। कन्द १ से २ फीट लम्बा। काण्ड ८ फीट ऊंचा, सुदृढ़, १ से ८ इंच व्यासका, अनेक प्ररोहिणी शाखायुक्त। पान २ से ३ फीट

लम्बे तेजस्वी, हरे, श्वेत सिरायुक्त। पत्रवृन्त पानसे लम्बा। पुष्प वृन्तमे छोटा, सर्वदा जोड़ेमें। आच्छादक पुष्पकोष (Spathe) ८ से १२ इञ्च लम्बा, हल्का पीला, हरा कुछ खराब गन्धवाला। स्त्रीपुष्प रचना पीली, १ इञ्च लम्बी। नर-पुष्प रचना सफेद १॥ से २ इञ्च लम्बी। फल लाल सूक्ष्म। पुष्पकाल अक्टूबर। फलकाल नवम्बर।

वक्तव्य—मानकन्दमें मीठी और कड़वी २ जाति होती हैं। इनमें से मीठी जातिका उपयोग किया जाता है।

उत्पत्ति स्थान—एशियाके उष्ण प्रदेशमें नैसर्गिक। भारतके अनेक प्रान्तों में बोया जाता है। बंगालमें यह अत्यधिक होता है।

औषधार्थ व्यवहार—विशेषत शुष्क कन्द, छाल और पत्रवृन्तका उपयोग औषध कार्यमें होता है। कन्दके चूर्णकी मात्रा आधसे १ तोला तक।

मानकन्दका चूर्ण १ वर्षतक अच्छा रहता है। यह साबूदाना और आरारूट के सदृश उपयोगी है। यह लघु सुपाच्य पौष्टिक, मूत्रल और सारक है। इसका मण्ड जलोदर और शोथ पीडित निर्बल रोगियोंके लिये अति लाभदायक आहार है।

रासायनिक संगठन—मानकन्दमें श्वेतसार और चूना मिश्रित ओक्जलिक क्षार (Calcium Oxalate) मिलता है। यह ओक्जलिकाम्लके कारण उग्रता दर्शाता है।

उपयोग—मानकन्दका उपयोग सुश्रुत संहितामें हुआ है। बंगालकी यह घरेलू ओषधि है। कन्दका शाक अर्श और मलावरोध वालोंको दिया जाता है।

१ उदर रोग—पुराने मानकन्दका आटा १ भाग और २ भाग चावलको दूध और जलमें मिला खीर बनाकर देनेसे वातोदर, शोथ संग्रहणी और पाण्डु आदि रोग दूर होते हैं। आचार्य चक्रदत्तने इसे सिद्ध योग कहा है।

सर्वाङ्गशोथके रोगीको केवल मानकन्दकी खीर अथवा चूर्णका मण्ड देने से मूत्रमार्गसे संगृहीत विकार निकलकर शोथ बहुत जल्दी दूर होजाता है। नमकका बिल्कुल त्याग करा दिया जाता है।

२ प्लीहोदर और शोथ—मानकन्दके चूर्णको दूधमें घोलकर पिलाने से प्लीहोदर और सब प्रकारके शोथ रोग दूर होते हैं।

जिह्वा जाड्य—माणक भस्मके साथ थोडा नमक और तैल मिलाकर रोज सुबह जिह्वा पर घर्षण करते रहनेसे जीभ पतली और मुलायम होजाती है।

४ कर्णपाक—पत्रवृन्त अथवा शाखाके टुकडेको सेक, रस निचोड़कर २-४ बून्द बालकोंके कानमें डालनेसे लम्बे समयका कर्णपाक भी एक समयके उपचारसे अच्छा होजाता है।

५. सन्धिशोथ—ताजे कन्दको पीस, सेक, पुल्टिस बनाकर बाध देनेसे घुटने और अन्य संधि स्थानोंकी सूजन वेदनासह दूर होजाती है।

(५६) मालती

सं० मालती, बालपुष्पी, राजपुत्रिका। चेतिका हिं मालती, सुगन्धित चमेली, चम्पा। जौन० होलवली। काश्मीर चम्बा, चिरिचोग। कुमा० चम्बेली, जाई। प० वासु, जाई, दासी। कना० सन्नाजाजी मल्लिगे।

अ० Garden Jasmine, White Jasmine

ले० Jasminum Officinale

परिचय—ऑफिसिनल=राजस्वीकृत या औषधोपयोगी। बागमें होनेवाली ऐठी हुई, चढ़नेवाली, नूतनावस्थामें रुए दार झाडी। शाखाएं धारीदार।

पान अभिमुख, असम, पक्ष युक्त, २ से ४ इञ्च लम्बे। पत्रवृन्त और मध्यदण्ड सकड़ी किनारी युक्त। पत्र-दल ३ से ७। अन्तिम दल १ से ३ इञ्च लम्बा, ॥ से १ इञ्च चौड़ा, सामान्यत दूसरोंकी अपेक्षा बड़ा, लम्बगोल या भल्लाकार, नोकदार। पुष्प पीताभ श्वेत ॥ से १ इञ्च व्यासके, शाखा के अन्तमें कुछ पुष्पोंके गुच्छ या मजरीके भीतर पत्रकोणीय पुष्प दण्ड कुछ पुष्पों की मंजरी युक्त। मजरीके फूल ॥ इञ्च लगभग लम्बे। एकाकी पुष्प और गुच्छस्थ पुष्प अधिक लम्बे। पुष्पपत्र लगभग ॥ इञ्च लम्बे। पुष्प वाह्यकोष १/३ से १/२ इञ्च लम्बा। नलिक १/१० इञ्च लम्बी। खड ५। पुष्पान्तर कोषके भी ५ खड। गर्भ कोष २, लगभग गोलाकार या अडाकार, वर्णहीन, अर्धपारदर्शक।

उत्पत्तिस्थान—नैसर्गिक उत्पत्ति हिमालयमें ३००० से ९००० फुट ऊंचाई तक। सिन्धुके किनारे पर, अफगानिस्थान, इरान, भारत, चीन और यूरोप के बागों में बोयी जाती है।

गुणधर्म—मालती राजनिघंटुकारके मत अनुसार रसमें कड़वी, शीत-

वीर्य, कफहर, मुखपाक नाशक तथा नेत्ररोग, कर्णरोग, व्रण, विस्फोट और कुष्ठकी नाशक है।

धन्वन्तरि निघटुकारने पित्तहृत्‌भी कही है, एव कलीको कफ वातजित्‌कहा है। और भावप्रकाशकारने उष्णवीर्य, अनुरस कसैला, शिरोरोग दन्तशूल और विष-प्रकोपकी नाशक भी कही है।

नव्य चिकित्सकोंके मत अनुसार मालती पुष्प कडवा, उग्रताप्रद, अनु-रस मधुर, सुगन्धित, शामक, तथा हृद्रोग, मधुमेह, पित्तप्रकोप, दाह, तृषा, रक्तविकार, चर्मरोग, मुखपाक, दन्तशूल, चक्षुप्रदाह, इन सब पर उपयोगी तथा कफ वर्धक और वातप्रद है।

मूल दादपर लगानेमें उपयोगी है।

वक्तव्य—विशेष उपयोग दूसरी जाति में लिखा है।

दूसरीजाति–स० मालती, सुमना, जाति, जाती। हि०मालती, जाति, चमेली। ब० जाति। म० चम्बेली। गु० जाई, चवेली। ओ० मालोनी, जातिफूलो। ते० जाति, मालती कना० अज्जिगे, अज्जुगे। कोंक० जयिचे-मोगरे। ता० चादि मल्लिगे। मला० मालती।

अं० Spanish Jasmine लै० Jasminum Grandiflorum

परिचय—ग्रेण्डीफ्लोरम-बडे पुष्प युक्त। लम्बी लिपटने वाली झाड़ी, लगभग चिकनी। शाखाएँ धारीदार। पान अभि-मुख, असम पत्रयुक्त. २ से ५ इञ्च लम्बे। पत्र दल ७ से ११, अन्तिम १-१॥ इञ्च लम्बा, नोक-दार। पुष्प १।-१॥ इञ्चव्यासका। सफेद, बाहर गुलाबी आभा-युक्त, पत्रकोणीय या शाखाके अन्तमें रही हुई मंजरीमें। पुष्प ॥ से १ इञ्च लम्बा। पुष्पान्तर कोष नलिका ॥ से १ इञ्च लम्बी। पखड़िया ५ अण्डाकार या लम्ब-गोलाकार। गर्भकोष २, ये पके हुये प्रतीत नहीं हुये। पुष्पकाल सब ऋतुओंमें।

उत्पत्ति स्थान—उत्तर पश्चिम हिमालयके उप-उष्ण प्रदेशमें २००० से ५००० फुट ऊंचाई तक बंगाल, आसाम, राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात। यह प्राय. अनेक प्रान्तोंके बागोंमें बोई जाती है।

गुणधर्म—भाव प्रकाशके मतानुसार श्वेत मालती और सुवर्ण मालती, दोनों रसमें कड़वी, उष्णवीर्य, लघु दोषजित तथा शिर, नेत्र, मुख और दात की पीड़ा, विष, कुष्ठ और वात रक्तको दूर करती है।

राजनिघंटुकारने मालतीको शीतवीर्य और कफपित्त हर कहा है। धन्वन्तरि निघण्टुकारने मालतीकी कली और पुष्पको वातहर, कफघ्न तथा नेत्ररोग, व्रण विस्फोटक, और कुष्टका नाशक कहा है।

नव्यमतानुसार सफेद चमेली उग्रताप्रद, कड़वी, तेज,स्वादयुक्त वामक,विष-हर, संधानक तथा आमाशय प्रदाह, मुखपाक, शिरदर्द, दन्तशूल और चक्षुपाक में उपयोगी। दन्तशूल पूय प्रकोप और कर्णरोगमें अति हितावह। रक्तविकार, गलत कुष्ट, वात और पित्त प्रकोपमें प्रयुक्त होती है।

डा० वामन देसाईके मत अनुसार चमेलीके पान शीतल, कडवे, व्रणशोधन और कुष्ठघ्न है। पुष्प मूत्रजनन, आर्तवजनन और वाजीकर है।

यूनानी मतअनुसार सफेद चमेली प्रतिवन्ध नाशक, (Deobstruent) कृमिघ्न, मूत्रल और रजःस्रावी है। मूल विरेचन, कफनिसारक, कृमिघ्न निद्राप्रद विषनाशक तथा शिरदर्द, पित्तप्रकोप,अर्धाङ्गवात और आमवातको दूर करता है। पुष्प शिरदर्द, श्वास, दातपर मैल जमना और आमाशय प्रदाहमें लाभदायक तैल कडवा, वृद्धोंके लिये हितावह, प्रदाहशामक, त्वचाको मुलायम करनेवाला, मस्तिष्क पौष्टिक, कामोत्तेजक, कृमिघ्न तथा सान्धाओंमें पीड़ा,कर्ण पीड़ा और फोडेपर लाभदायक है।

मात्रा—श्वेत चमेलीके पानोंका रस ३ से १० बूंद।

उपयोग—मालती, चमेली जाति इनका उल्लेख चरक सुश्रुत आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें मिलता है। अमरकोषकारने तीनों पर्य्याय शब्द माना है। भाव प्रकाशकारने "जातिर्जाती च सुमना मालती राजपुत्रका" इस वचनसे जाति और मालतीको एक माना है। श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य ने तीनोंको पृथक् माना है। ग्रेण्डिफ्लोरम को चमेली औरिक्युलेटमको जाति और अर्बोरेसन्स को मालती माना है। फिरभी गुण धर्म सबका समान मानकर वर्णन किया है। यहापर बंगाली नाम बगालके वनस्पति शास्त्रीके लिखे हुये और मद्रासी भाषाओंके नाम मद्रास सरकारके ग्रन्थसे लिये हैं।

दुर्गन्धयुक्त कर्णस्राव—चमेलीके पानोंके स्वरससे सिद्ध किया हुआ तैल डालने पर दुर्गन्धयुक्त कर्ण पूय दूर होता है।

मुखपाक—चमेलीके पान चबाकर थूंकते रहनेसे मुखपाक दूर होता है। दांतोंमें वेदना होती है और मसूढ़ेमें शोथ आया हो, वह भी दूर होता है।

मूत्रदाह—श्वेत चमेलीके मूलको बकरीके दूधमें पीस छानकर पिलानेसे एवं पानोंको कुचलकर मूत्राशय पर बांधनेसे मूत्रमें दाहसह उष्णता शमन होजाती है।

आर्तव शूल—श्वेत चमेलीके पानोंको कुचल नाभिके नीचे बांधने और मलावरोध हो, तो मृदु विरेचन लेलेनेसे शूल निवृत्त होता है और मासिक धर्म साफ आजाता है।

वमन—श्वेत चमेलीके पानोंका स्वरस कालीमिर्च और शक्कर मिलाकर १-१ घण्टे पर २-३ बार देनेपर लाभ होजाता है।

जीर्ण ज्वर—श्वेत चमेलीके मूल ६-६ माशेका दुग्धावशेष क्वाथ कर दिन में २ बार ३ दिन तक पिलानेसे ज्वर शमन होजाता है।

ताजेघाव—चमेलीके पानोंकी पुल्टिस बांधनेसे घावका रोपण होजाता है।

तृतीय जाति—सं० जाति मालती, युवती, वासन्ती। हि० मालती। बं० गंध मालती, मालती। गु० म० मालती। ओ० गोंधोमालती, मालोती। ते० गुडापलतिगे, मालती। मला० चेक पावल, कवेर वल्ली। कना० मालतीलता अं० Clove Scented Echites Malbar Nutmeg ले० Aganosma Dichotoma पुराना नाम—Aganosma Caryophyllata

सूचना—यह सच्ची मालती नहीं है। उपयोगी मानकर वर्णन किया है। चित्र पृष्ठ १९९ पर दिया गया है।

परिचय—अगनोस्मा=कोमल सुगन्धयुक्त। कार्यो फाइलेटा=लौंगयुक्त डिकोटोमा द्विविभाजित दूध सदृश रसयुक्त, कड़ी, सर्वदा हरी, काष्टमय, लम्बी सुन्दर चढनेवाली झाडी। छाल पिंगल फटीहुई डाट सदृश, लकडी हल्की, रक्ताभ-श्वेत। पान अभिमुख, चिमडे अण्डाकार या गोलाकार, नोकदार या नोकहीन या छोटी तीक्ष्ण नोकयुक्त ३ से ६ इंच लम्बे, १॥ से ३ इंच चौडे। पत्र वृन्त । से ॥ इंच लम्बा। पुष्प बडे सफेद, १॥ इंच व्यासके। स्त्री पुंपदण्ड नत। गर्भकेसर रुएदार। मंजरी शिथिल, रुएदार। पुष्प गुच्छ मय ६ से ८ इंच लम्बा पुष्पाभ्यन्तर कोष नलिका रीढदार (Ribbed), बर्फ सदृश सफेद रुएण्ड युक्त। फली (एक स्फोटी) सघन पीले ऊन सदृश रुए दार विभिन्नाकार की, ४ से १४ इंच लम्बी। बीज चिपटे ॥ से १ इंच लम्बे। केश गुच्छ (Coma) लम्बा। पुष्पकाल बंगालमें शीत ऋतुमें तथा कोंकणमें गर्मी में।

उत्पत्ति स्थान—निम्न बंगाल, पूर्व महाराष्ट्र, कर्नाटक, आसाम।
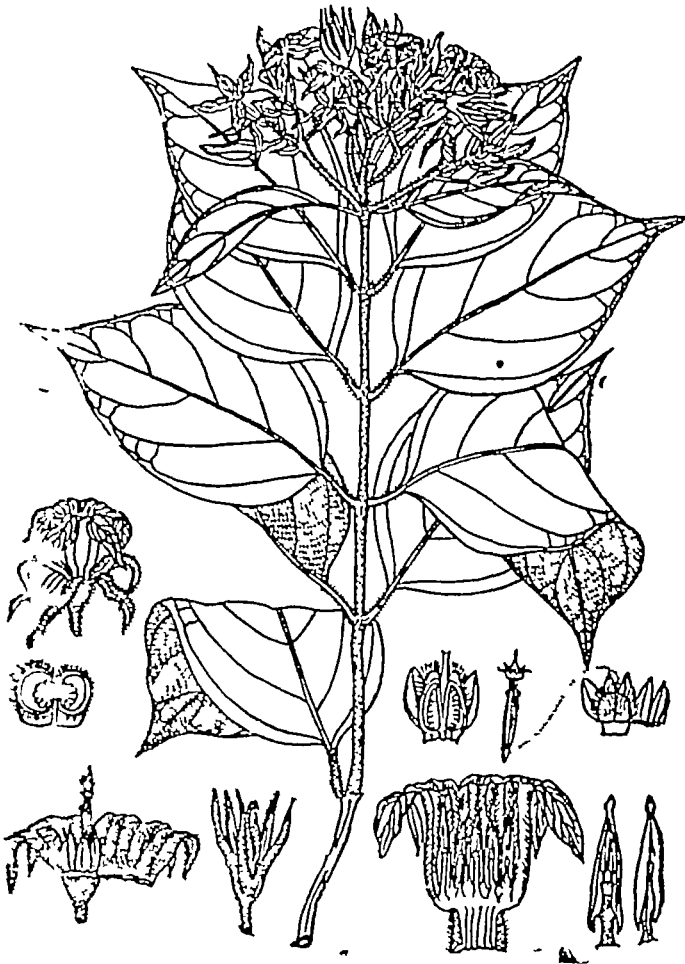
कृत्रिम मालती

गुणधर्म—यह मालती वामक तथा कृमिघ्न, कासरोग, महाकुष्ठ, चर्मरोग, व्रण, प्रदाह युक्तरोग, कर्णपाक और मुख पाकमें उपयोगी है। पुष्प चक्षुरोगमें लाभदायक। पान पित्त हर, कफघ्न।

मूल जंगम विषको वमन कराकर दूर करता है। मूल का काथ मूत्राशयके रोगों पर दिया जाता है। ज्वरके पश्चात्की निर्वलताको दूर करता है। एवं मासिक धर्मको साफ लाता है।

(५७) मुगलाई एरण्ड।

हिं० मुगलाई एरण्ड, विदेशी एरण्ड, वाघरण्डी। व० वागभेरण्ड, वनभेरण्ड संता० भेरण्ड मु'० टोटका विदी। म० मोंगली एरण्ड। गु० मोगली एरण्डो,

रतनजोत, विलायती नेपाली। को० आडयातला एरण्ड। अं० Purging nut physic nut ले० JatroPha curcas

परिचय—कर्कस=यह इस वृक्षका, अमरिकन नाम है। मुगलाई एरण्डके वृक्ष छोटे होते हैं। मूल अमरिकाके वृक्ष वर्तमानमें भारतके समशीतोष्ण प्रदेशमें सर्वत्र नैसर्गिक वन गया है। वृक्ष सर्वदा हरा या झाडी। पान ४ से ६ इञ्च व्यासके. ३ से ५ खण्डवाले. चित्रविचित्र रंगके। पुष्प पीले (हरे-पीले)। फल १ से १॥ इञ्चके। फलमेंसे एरण्डके समान बीज निकलते हैं। पान तोडनेपर दूध निकलता है। बम्बईमें फूल सप्टेम्बरसे नवेम्बरतक, बिहारमें मईसे अक्टोबरतक औपध रूपसे दूध और मूल उपयोगी है।
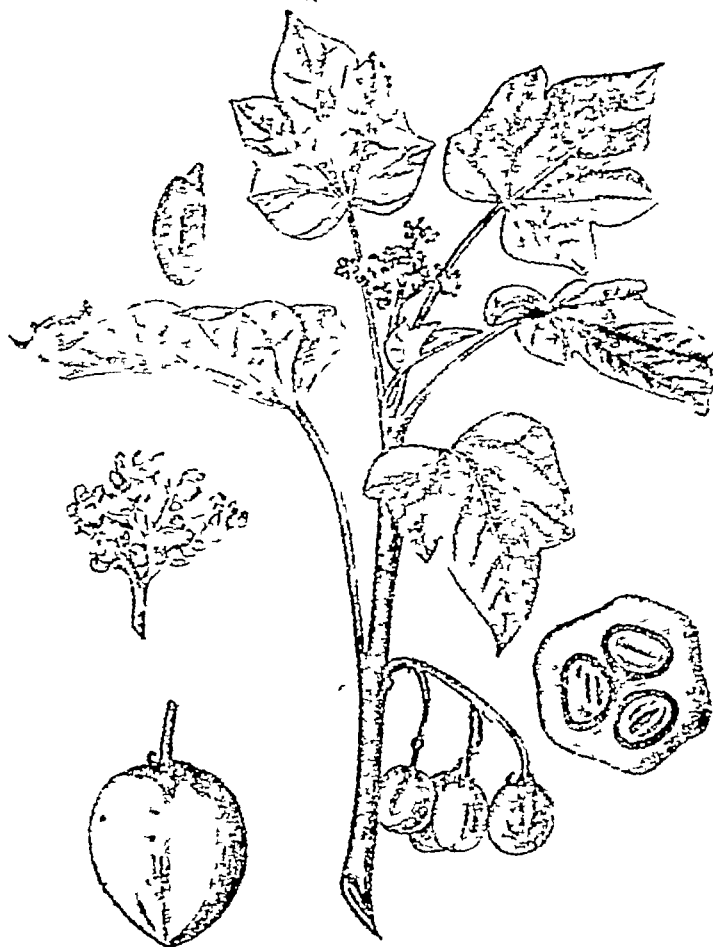
गुण धर्म —नव्य मतानुसार दूध रक्तस्रावरोधक और व्रणरोपण। मूल वातहर पाचन और ग्राही। वीजोंके तैलसे जलके सदृश पतला जुलाब लगता है। यह तेल विरेचन और वामक है। इसकी क्रिया जमालगोटेके समान तीव्र और अनिवार्य है अतः इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। पान स्तन्य जनन है।

उपयोगः—डाक्टर देसाई लिखते हैं कि. इसका दूध उत्तम औषध है। ताजे घावपर लगानेसे रक्तस्राव वन्दहोकर घावका मुंह वन्द होजाता है, और फिर जल्दी घावभर जाता है। व्रणपर लगानेस उसका संकोच होता है, तथा उसपर दूध सूखकर कोलोडियन (Collodion) के समान पतला पर्दा उत्पन्न होजाता है। जिससे वायु और वायुमें रहे हुए कीटाणुओंसे व्रणको हानि नहीं पहुँचती। इन दो हेतुओंसे व्रण जल्दी भर जाता है। इस दूधसे किसीभी प्रकारकी हानि नहीं होती।

तार्जा शाखाका दतौन करनेसे मसूढेमेंसे होने वाला रक्तस्राव वन्द हो जाता है, तथा दांत वलवान वन जाते हैं।

दाद पर दूध लगाना हितावह है।

अजीर्णजनित विसूचिका. अतिसार और उदरशूलपर ताजे मूलका १ अंगुल जितना टुकड़ा, ७ काली मिर्च और किञ्चित् हींगको पीस मट्ठेमें मिला कर पिलाया जाता है। यह कोंकणमें घरेलू उपचार है।

स्तनोंपर पान वाधनेसे दूध वढ जाता है।

पामा, व्युची, खाजपर वीजोंका तेल लगानेसे कीटाणु जल्दी नष्ट होकर रोग जल्दी दूर हो जाता है।

पुराने आमवातजनित संधिस्थानोंकी पीडापर इसके तैलकी ४ गुने सरसों के तैलमें मिलाकर मालिशकी जाती है।

(५८) मुनक्का

सं० द्राक्षा, मधुरसा, स्वादुफला, गोस्तनी, मृद्वीका। हिं० मुनक्का, दाख, अंगूर। वं० द्राक्षलता, अंगुरफल। म० द्राक्ष गु० दराख। सि० द्राक। पं०अंगूर चूरी, ममरे,। ता० ते० क० द्राक्ष। मला० मुंदीरींग, चारुफल गोस्तनी। ओ० कारूफोला, द्राक्षा ओंगूरो। अफ० ताक। फा० अंगूर. मुनक्का। अ० हवुस, जवीन, एनव। अं० Grapevine ले० Vitis vinifera

परिचय —वाइटिस=वर्जिल आदि लेखकोंके समानार्थ संज्ञा। विनिफेरा शराव (Wine) जिसमेंसे वनता है वह। पतनशील पानवाली. वड़ी, वृक्षपर चढ़ने वाली. लम्वे तन्तु प्रतानयुक्त वेल। लता विशेषत लकडियोंकी टट्टीपर। पान ३ से ६ इञ्च लम्वे, द्वि विभाजित, सामने सामने. गोल-हृदयाकार, न्यूना-

धिक गहरे, ३-५ खण्ड वाले (कुछ हाथके पंजेसे मिलते जुलते), किनारी अनियमित, भद्दी दांतेदार, पतले। पानका डण्ठल २ से ३ इञ्च लम्बा। उपपान नहीं हैं। पुष्प हरे, विभाजित तोरेमें, गुच्छोंमें सुगन्धवाले। पुष्प बाह्यकोष हल्के, ५ दांते वाले। पखड़िया ५, ऊपर चिपकी हुई। पुकेसर ५। बीजाशय, नलिका बहुत छोटी, मोटी। फल, गुच्छोंमें, अनेक आकारके, नीलाभ कृष्ण या हरिताभ। बीज २ से ४।

उत्पत्ति स्थान—पश्चिम एसिया वर्तमानमें हिमालय, पंजाब, काश्मीर, दक्षिणप्रदेश आदि भारतके शीतल स्थानोंमें बोयी जाती है। द्राक्षा ताजी होने पर उसे अंगूर कहते हैं। इसमें किसमिस और मुनक्का, ये दो मुख्य प्रकार है। काला, लाल सफेद, और हरा रंग, आकार और स्वाद (मधुर, मधुराम्ल, अम्ल) भेदसे अनेक प्रकारके होते हैं। मुनक्का लाल और काली, दोनों मधुर हैं। किसमिसमें मधुराम्ल रस रहा है। इन दोनोंका उपयोग औषधकार्यमें होता है। मुनक्कासे द्राक्षासव, और द्राक्षावलेह विशेष बनता है। ताजे फलोंके मधुराम्ल रसमेंसे शर्बत बनाते हैं और कितनेक चिकित्सक बड़ी अंगूरसे अंगूरासवभी बनाते हैं।

रासायनिकपृथक्करण—मुनक्कामें द्राक्षशर्करा (Glucose) १३ ८%, काली मुनक्कामें द्राक्षशर्करा २२ % तक द्राक्षाम्ल (Tartaric Acid) २ से ८% (किसमिसमेंसे अधिक मिलता है) कुछ जम्भीराम्ल (Citrec Acid) तथा लोह, क्षार, स्फुर, गोंद और जल आदि मिलते हैं। बीजोंमेंसे गाढा तेल १५ से १८% और कषायाम्ल (Tannin) ५-६% मिलते हैं। ताजे फलकी छालमें कषायाम्ल रहा है।

द्राक्षामें प्रथिन आदि सत्व—प्रति औंस निम्नानुसार रहा है।

जाति	मलभाग (प्रतिशत)	प्रथिन (ग्राम)	कर्बोदक (ग्राम)	उष्मैक	चूना (मि. ग्राम)
अंगूर ताजी	१०	०२	४१	१७	५
मुनक्का	५०	०२	१४	६	५
डिब्बेकी अंगूर	०	०१	३६	१५	५

द्राक्षामें चूना, लोह और जीवन सत्व—

जाति	लोह मि ग्रा	अ.यूनिट	ब १ यूनिट	ब २ मि ग्रा	निको मि.	क मि ग्रा.
अंगूरताजी	०१	१४(c)	३	(० ०१)	(० १)	१
मुनक्का	०१	६(c)	७	(० ०१)	(० १)	१४
डिब्बोंमें	०१	४(c)	४	(०.०१)	(० १)	७

गुणधर्म—शीतवीर्य, रस और विपाकमें मधुर, अनुरस कषाय, हृद्य, रुचिकर, वृष्य, तृप्तिकर, स्निग्ध, चक्षुष्य और श्रमहर है तथा तृषा, दाह, ज्वर, श्वास, रक्तपित्त, क्षत, क्षय, वातप्रकोप, पित्तप्रकोप, उदावर्त, स्वरभेद, मदात्यय, मुहका कड़वापन, मुखशोष, कास, वमन, भ्रम, शोथ और मूत्रावरोध को नाश करती है। द्राक्षाको वाग्भट्टाचार्यने फलोत्तमा कहाहै।

यूनानी मतके अनुसार द्राक्षा दूसरे दर्जेमें गर्म तर है। यह कफको शिथिल करती है, मासिक धर्म साफ लाती है, कब्जको दूर करती है, रक्त बढ़ाती है. मासको पुष्ट करती है और वातनाडी प्रदाहको शमन करती है। किसमिस मधुराम्ल, दीपन, पाचन है,फुफ्फुस,यकृत् और मूत्राशयके रोग और जीर्ण ज्वरमें लाभदायक है। वीज शीतल, कामोत्तेजक और ग्राही है। पान अर्शोहर है। पञ्चाङ्गकी राखका जल मूत्राशयमेंसे अश्मरीको निकालनेमें सहायक है, संधि स्थानोंकी पीडाको दूर करती है, तथा अर्शके शोथको मिटाती हैं।

द्राक्षाप्रयोगः—

१ द्राक्षासव—५ सेर मुनक्काको धो, कुचलकर ५१। सेर जलमें मिलाकर उबालें। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतार मलकर छान लेवें। फिर मिश्री और शहद ५-५ सेर, शीतलमिर्च, तेजपात, दालचीनी, छोटी इलायचीके दाने, नागकेशर, लौंग, जायफल, कालीमिर्च, पीपल, चित्रकमूल, चव्य, पीपलामूल और निर्गुण्डी के वीज, ये १३ औषधियों ४-४ तोले का जौकूट चूर्ण मिलाकर अमृतवानमें भरकर मुखमुद्रा करके १॥ मास रखदेवें। परिपक्व होनेपर (परीक्षाकर) निकालकर छानलेवें। एक वोतलमें थोड़ा आसव भरके चलावें, यदि झाग न आवे या आकर तत्काल उतर जाय, तो पक्का मानें। नहीं तो पुन कुछ दिन रहने देवें। इसमेंसे १। से २॥ तोले दिनमें २ वार जल मिलाकर पिलावें।

द्राक्षासव बृंहण, बलवर्णवर्द्धक, अग्नि प्रदीपक, और सारक है ग्रहणी, अर्श, उदावर्त, रक्तगुल्म, उदररोग, कृमि, कुष्ठ, विविध प्रकारके व्रणरोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, गलरोग, ज्वर, आम, पाण्डु और कामला रोगका नाशक है। किसी भी रोगमें शक्तिके सरक्षणार्थ और निर्वलताको दूर करनेकेलिये यह दिया जाता है। अरुचि, आलस्य, थकावट और वेचैनी को दूरकर उत्साह वढ़ाता है। शान्त निद्रा लाता है मल शुद्धि करताहै और मनको प्रफुल्लित वनाता है।

२. द्राक्षावलेह—१ सेर मुनक्काको १ घण्टे जलमें भिगो मसलकर धो लेवें। फिर वीज निकाल दूध मिला चटनीकी तरह पीसकर कल्क तैयार करे। पश्चात् २० तोले गोघृतमें मदाग्निपर भूने। वादमें २ सेर शक्करकी चाशनी करके

मिलादेवें। साथमें जायफल, जावित्री, छोटी इलायची, वशलोचन, लौंग, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर और छिलके और जिह्वी निकाले हुए कमल गट्टेकी गिरी, ये ९ ओषधिया १।-१। तोलेका कपडछान चूर्ण और केशर ३ माशे मिलावें।

इसमेंसे १-२ तोले दिनमें २ वार दूधके साथ देवें।

यह अवलेह अम्लपित्त, रक्तपित्त, दाह, पाण्डु, कामला, क्षय, भ्रम, शोथ, शिरदर्द, बद्धकोष्ठ, अतिसार, अरुचि, मंदाग्नि और रक्तार्शमें जलन आदिको दूर करता है।

३ द्राक्षादि चाटण—काली बीज निकाली हुई मुनक्का १ सेर, सनाय, हरड़के छिलके, मिश्री, तीनों ८-८ तोले, जावित्री १ तोला और केशर ६ माशे को मिला खरलकर अमृतबानमें भर लेवें। इसमें से ६ माशे से १ तोला तक रात्रिको सोनेके समय जलके साथ लेवें। इससे सुवह १ या २ दस्त साफ आ जाता है। यह चाटण मलावरोध, उदरवात और अम्लपित्त वालोंकेलिये हितावह है।

उपयोग—द्राक्षाका उपयोग भारतवर्षमें पथ्य और औषधरूपसे अति प्राचीनकालसे हो रहा है। यह बालक, युवा, वृद्ध, कुमारी, सगर्भा, प्रसूता तथा रोगी और निरोगी, सबके लिये पौष्टिक है। नव्य अनुसंधान अनुसार इसमें जीवन सत्त्व अ, ब, क, खट, लोह आदि शरीर बल पोषकद्रव्य अवस्थित है। ज्वर, राजयक्ष्मा आदि रोगोंमें शारीरिक बलकाक्षय हो जानेपर उसके संरक्षण और संवर्द्धनार्थ अंगूर, किसमिस, मुनक्का, और उनमें से बनेहुए शर्वत आदि अमृतके समान उपकारक होते हैं।

चरकसंहिताके भीतर कण्ठ्यानि, स्नेहोपग, विरेचनोपग, कासहर, ज्वरहर और श्रमहर दशमानियोंमें तथा आसवयोनि औषध समूहमें उल्लेख किया है। एवं इसका गुणधर्म भी लिखा है तथा ज्वर, मदात्ययज दाह, तृषा, कासआदि अनेक रोगोंपर उपयोग किया है। सुश्रुत संहितामें परूपकादि गणमें उल्लेख किया है, तथा गुणधर्मभी लिखा है।

१ ज्वर—मुनक्का और अंगूर ज्वरादि रोगोंपर हितावह है। दाह, तृषा, अरुचि, व्याकुलता, मलावरोध, शिरदर्द, कास आदि लक्षणोंको दूर करती है और शारीरिक उत्तापका ह्रास कराती है। साम ज्वरमें द्राक्षा, पित्तपापडा और धनिया, इन तीनोंको जलमें भिगो छानकर पिलानेसे आम जल्दी पककर ज्वर शमन हो जाता है।

यदि मुंह सूखता हो, अरुचि रहती हो, तो, थोडी मुनक्काको सैंधानमक कालीमिर्च लगा, थोडी सेककर खिलाया जाता है। पित्तज्वरमें अतिदाह.

इस कासमें मुहके भीतर मुनक्का और मिश्री का टुकडा रखकर रस चूसते रहनेपर स्वरयन्त्र, श्वासनलिकादिकी उत्तेजना शनै शनै कम होकर कास निवृत होजातीहै।

द्राक्षा, आवले, खजूर, पीपल, और कालीमिर्च को समभागमें मिला पीसकर ३-३ माशे लेकर घी और शक्कर (या शहद) मिलाकर दिनमें ३ वार चटाते रहनेसे शुष्ककास शमन होजाती है।

८ राजयक्ष्मा—इस रोगमें शक्ति धीरे धीरे क्षीण होती जाती है। इस क्षीणताको दूर करने और शक्तिका संरक्षण करनेकेलिये प्रथमावस्था,द्वितीयावस्था और तृतीयावस्थामें भी द्राक्षासव हितावह है। द्राक्षासवसे क्षयरोग दूर नहीं होता, किन्तु शक्तिका संरक्षण होता है। इसतरह रात्रिको ४-४ तोले मुनक्का खिलाकर जल पिलाते रहनेसे रात्रिका स्वेद कम आता है सुबह उदरशुद्धि होती है, खाँसी कम आती है, कफ सरलतासे बाहर निकलता है। स्वरभंग हुआ हो, तो उसमें लाभ पहुँचता है, तृषा और दाह रहते हों तो दूर होते हैं तथा शक्ति का अच्छीतरह संरक्षण होता है।

क्षयरोगमें मलावरोध होजाय तो ज्वर बढजाता है विरेचन द्रव्य दिया जायगा, तो निर्बलता बढजायगी और अन्त्र निर्बल हो जायगा। ऐसी अवस्थामें द्राक्षासव और मुनक्का हितकारक माने गये हैं।

यदि उर क्षत होकर रक्त वमन होती हो, या कफके साथ रक्त गिरता हो तो मुनक्का, अनारदाने, खजूर और चावल का सत्तू १-१ तोले को २० तोले जलमे घोल मिश्री मिलाकर पिला देनेसे वमन, उबाक, रक्तस्राव दाह, मूर्च्छा और घबराहट दूर होते हैं। यदि वार वार रक्त वमन होती हो, तो मुनक्का आदिका जलमें घोल न करें। घी शहद मिलाकर चाटण बनावें। फिर वार वार थोडा चाटते रहनेसे उसी दिन लाभ पहुँच जाता है।

९ रक्तपित्त—ऊर्ध्व रक्तपित्त अर्थात् नाक, मुह नेत्र या कानसे रक्तस्राव होने या अधो रक्तपित्त अर्थात् गुदा, मूत्रेन्द्रियसे रक्तस्राव अथवा अधोर्ध्व, दोनो मार्गसे रक्तस्राव होनेपर मुनक्का शहद मिलाकर चटायी जाती है, एव मुनक्का, मुलहठी और ताजी गिलोय १-१ तोलेको ४८ तोले जलमें मिलाकर अष्टमांश क्वाथ करके पिलावें। इस तरह दिनमें २ वार क्वाथ पिलाते रहनेपर थोडे ही दिनोंमें तृषा और दाह निवृत्त होकर रक्तस्राव शमन होजाता है। इसतरह मुनक्का और गूलरके मूल १-१ तोलेका या ६ माशा और मुनक्काका क्वाथभी दिया जाता है। इनदोनों प्रकारके क्वाथसे दोनों प्रकारके रक्तपित्त और उर स्थान के शूलका सत्वर निवारण होता है। यदि द्राक्षावलेहके साथ प्रवालपिष्टी और गिलोय सत्व मिला दिया जाय, तो लाभ जल्दी होता है।

१० निर्बलता—ज्वरके पश्चात् निर्बलता आई हो तो, द्राक्षासवका सेवन दिनमें २ बार कुछ दिनोंतक कराते रहें, अथवा रोज सुबह बीज निकालीहुई २-२ तोले मुनक्का खिलाकर ऊपर १०-२० तोले दूध पिलाते रहनेपर क्षुधा बढती है, शौच शुद्धि होती है, तथा ज्वर विष नष्ट होकर शक्ति आजाती है।

११ नेत्रदाह—अधिक जागरण, अधिक पठन-पाठन, ज्वरजन्य उष्णता, विषप्रकोप, मलावरोध, अम्लपित्त, धूपमें घूमना, अग्निका अधिक सेवन और धूम्रपान आदि कारणोंसे उत्पन्न नेत्रदाहमें २ तोले मुनक्काको रात्रिको जलमें भिगो सुबह मसल छान शक्कर मिलाकर पिलाते रहने तथा जो रोगोत्पत्तिका कारण हो उसे छोड़देनेपर थोडेही दिनोंमें नेत्रदाह शमन होजाता है।

१२ चक्करआना—मुनक्का २-२ तोलेको घीवाला हाथ लगा तवेपर सेक थौडा सैंधानमक और कालीमिर्च लगाकर रोजसुबह सेवन करते रहनेसे वातप्रकोप और निर्बलतासे आनेवाले चक्कर दूर हो जाते हैं।

१३. गांजेका नशा—गाजेकासेवन अधिक होजानेपर किसमिस १ छटाक को पीस जल मिलाकर छानलेवें। फिर उसमें जीरा कालीमिर्च और सैंधानमक स्वाद आवे उतना मिलाकर पिलादेवें। आवश्यकता होनेपर १ घण्टाबाद फिर दूसरीबार पिलानेसे गांजा, चरस, भाग और धतूरेका नशा उतरजाता है।

१४ मूत्रावरोध—काली मुनक्का १ तोला, पाषाणभेद, धमासा, लाल पुनर्नवाकीजड और अमलतासकी फलीका गूदा ६-६ माशे मिला कुचल-कूट ४८ तोले जलमें मिलाकर अष्टमाश काथकरें फिर छानकर पिलादेनेसे १-२ घण्टेमें रुकाहुआ पेशाब साफ आजाता है। सुजाकमें मूत्रावरोध और जलनपर भी यह दियाजाता है।

१५ मूत्रकृच्छ्र—धूपमें घूमने, अधिक मिर्च खाने आदि कारणों से मूत्रकृच्छ्र हुआ हो तो २ तोले किसमिस और २ माशे छोटी इलायची के दानेको चटनीकी तरह पीस, ४० तोले जल मिला छान, शक्कर मिलाकर पिलानेसे प्रदाह शमन होकर मूत्र साफ आजाता है।

(५६) मूसली काली

सं० तालमूली, मुसली, हिरण्य पुष्पी। हिं० काली मुसली, स्याह मूसली ब० तालमूली। म० गु० काली मुसली। ते० नेलाताडी।

ले० Curculigo Orchioides प्राचीन सज्ञा CurculigoMalabarica.)

परिचय—कर्कुलिगो=सीधा खड़ा क्षुप। आर्किआइडिस=दर्शनीय विविध रंगका। मलबारिका=मलाबारमें उत्पन्न। कन्द सुदृढ, अगुली जैसे मोटे। कांड

१ फुट ऊंचा, पत्रयुक्त। पान वृन्त रहित। ६ से १६ इञ्च लम्बे, ।। से १ इंच चौडे, रेखाकार, नोकदार। पान खजूरके सदृश, कन्दके निम्न भागके लम्बे, ५ शिरावाले, किनारा दांतेदार या बिना दांतेदार। पुष्प तेजस्वी, पीले। पुष्प मंजरी और बीजकोष पुष्पपत्रके भीतर आच्छादित। मंजरीकी सलाका चपटी, फली ।। इञ्च लम्बी। बीज १ से ४, कोमल, चोंचयुक्त। पुष्पकाल ग्रीष्म और वर्षाऋतु आगे फलकाल।

उत्पत्ति स्थान—बंगाल, आसाम, पश्चिम घाट, जावा।

गुणधर्म—राज निघण्टुके मतानुसार, मुसली रसमें मधुर (स्वादमें कडवा) शीतवीर्य, कामोत्तेजक, पौष्टिक, बलवर्द्धक, पिच्छिल, कफकारक, पित्तहर, वात शामक और श्रमहर है। कैयदेवजीने उपरस तिक्त, वातहर,व्रण हरण और अर्शोहर भी कहा है। कैयदेवजीने इसे उष्णवीर्य माना है। बृहन्निघण्टुकारने काली मुसलीको सफेद मूसलीकी अपेक्षा अधिक पौष्टिक मानी है।

यूनानी मतानुसार मुसली कडवी, मधुर, उदर वातहर, पौष्टिक, कामोत्तेजक ज्वरहर तथा कास, नेत्राभिष्यन्द, अपचन, वमन, अतिसार, कटिवात, श्वास-कृच्छ्रता, सुजाक, सुजाक जनित जीर्ण मूत्रप्रसेकनलिका प्रदाह (Gleet) अलर्क विष और सन्धि पीड़ा आदि रोगोंमें हितावह है।

नव्य मतानुसार काली मुसली स्नेहन, मूत्रजनन, बल्य और कामोत्तेजक है। श्वास, अर्श, कामला, अतिसार, शूल और सुजाक पर व्यवहृत होता है। यह सुगन्धित और कडवे द्रव्योंके साथ मिलाई जाती है।

रासायनिक संगठन—वसा १। भाग, राल और कषाय द्रव्य (Tannin) ४ भाग, गोंद २० भाग और श्वेतसार ४३।। भाग मिलता है। कन्दकी राख करने पर ८।। भाग होती है। उसके भीतरसे एक्जलेट (Oxalate) क्षार और चूना (Calcium) मिलता है।

मात्रा—४ से ८ माशे।

उपयोग—काली मूसलीका उपयोग सुश्रुत संहिताके भीतर अश्मरी, विद्रधि और श्वास रोगके प्रयोगोंमें मिलाई गई है। वर्तमानमें शुक्रवर्द्धक और कामो-त्तेजक औषधियोंके साथ इसका अधिक उपयोग होरहा है। पौष्टिक रूपसे मुसली पाक सेवन शीतकालमें किया जाता है।

१ वीर्यवृद्धि केलिये—२० तोले दूधमें १ तोला मुसलीका चूर्ण मिलाकर रबडी जैसा गाढा करें। फिर २–३ तोले मिश्री, २ तोले बादाम और ६ माशे घी मिलालें। पश्चात् जायफल, केशर और इलायचीका चूर्ण थोडा डालदें। इस तरह बनाकर रोज सुबह २१ दिन तक सेवन करनेसे वीर्य गाढा बन जाता है।

२ प्रदर—मुसलीका चूर्ण और कुसुमजपाकी २-३ कलीको शक्करके साथ मिलाकर खा लेवें ऊपरसे दूध पीवें।

३ अतिसार—काली मूसलीके चूर्णको मट्ठेके साथ दिनमें ३ वार देते रहने और मट्ठा-भात का सेवन करनेपर थोड़े ही दिनोंमें अतिसार दूर होजाता है।

४ सुजाक—(अ) काली मुसलीके ६ माशे चूर्णको उबलते हुये दूधमें थोडा थोड़ा डालकर मिला लेवें। फिर मिश्री मिलाकर सेवन करनेसे पुराना सुजाक दूर होता है। इस प्रकारसे मुसलीका चूर्ण मूत्रकृच्छ्र और अत्यार्तवकी रुग्णाको भी दिया जाता है।

(आ) मूसली ६ माशे, शक्कर ६ माशे और चन्दनका तैल ३ से ५ बूंद डालकर दूध जलकी लस्सीसे सुबह ३ दिन तक लेते रहनेसे सुजाक जनित तीव्र वेदनासह मूत्रकृच्छ्र दूर होजाता है।

(६०) मूसली सफेद

सं० श्वेत मुसली। हि० सफेद मुसली। ब० श्वेत मुसली। म० पाँढरी-मुसली। गु० धोली मुसली। अ० फा० सकाकुले हिन्दी। ले० Asparagas Adscendens.

परिचय—एसपेरेगस=पतली शाखावाली झाड़ी। ऐसेण्डेन्स=ऊपर चढने वाली झाड़ी। लगभग खड़ी कांटेदार झाड़ी। मूल सफेद गांठयुक्त। काण्ड ऊंचा, सुदृढ़ लगभग खड़ा नलिकाकार चिकना सफेद अनेक शाखा और चढ़ने वाली उपशाखायुक्त, सूक्ष्म खुरदरी छालवाला। कांटे ॥ से ||| इञ्च लम्बे सुदृढ़ सीधे। चपटी शाखायें पानोंका कार्य करती है। पुष्प मुकुट १ से २ इञ्च लम्बा अनेक पुष्पयुक्त। पुष्प १ इंच व्यासका। पुष्पदल सूक्ष्म। फल लाल काला, बहुत छोटा १ बीजवाला। पुष्पकाल अक्टूबर नवम्बर।

उत्पत्ति स्थान—पश्चिम हिमालय, पंजाबसे कुमाऊं तक अफगानिस्तान मेवाड़।

गुणधर्म—आचार्योंने सफेद मुसली को काली मुसली के समान गुणवाली किन्तु कुछ कम गुणवाली मानी है। यूनानी मतानुसार पहले दर्जेमें गर्म खुश्क वाजीकर है। पतले वीर्यको गाढा बनाती है। शुक्रमेह और नपुसकतामें हितावह है।

डा० वामन देसाई के मतानुसार इसमें प्रथिनाश और श्वेतसारका अभाव होनेसे यह मधुमेह वालोंकेलिए उपयोगी है। यह शीतवीर्य स्नेहन और उत्तम बल्य है। निर्बलता दूर करनेकेलिए दूधके साथ दीजाती है।

मात्रा—३ से ६ माशे।

उपयोग—प्राचीन ग्रन्थोंमें इन मुसलीका उपयोग नहीं मिलता। घरेलू औषध रूपसे दीर्घकालसे प्रयोग होरहा है।

१. शक्ति वृद्धि के लिए—मुसलीके चूर्णको शक्करके साथ मिलाकर दूधके साथ प्रात काल और रात्रिको लेते रहनेसे सब प्रकारकी निर्बलता दूर होजाती है। शुक्रस्राव बन्द होता है और बलकी वृद्धि होती है।

(आ) मुसलीके १० तोले चूर्णको ५ सेर दूधमें उबालकर उसका खोवा बनावें। फिर इसे आध सेर घीमें मिलाकर सेक लेवें। पश्चात् १। सेर शक्कर की चासनी कर, मावा मिलाकर थालमें जमा लेवें। इसमें केशर, इलायची, जायफल, और प्रवाल, मोती, बंग भस्म आदि इच्छानुसार मिला लेवें। इसे जमानेके समय कितनेक श्रीमन्त और आध सेर घी मिला लेते हैं। इस पाकमें से ५-५ तोले रोज सुबह लेकर ऊपरसे दूध लेते रहें। इस तरह इसका सेवन शीतकालमें १ मास तक करनेसे कृशता और निर्बलता दूर होजाती है।

(इ) सफेद मूसली बड़े गोखरू, तालमखाना और शतावरी चारों सम भाग मिलाकर ४-४ माशे समान शक्कर और दूधके साथ दिनमें २ बार सेवन करते रहनेसे शुक्रमेह, कटिवेदना, मूत्रकृच्छ्र, मूत्रदाह और शिरदर्द आदि दूर होकर शरीर सबल बन जाता है।

(६१) मूर्वा

सं० मूर्वा, त्रिपर्णी, स्निग्धपर्णी मोरटा। हिं० मूर्वा, मोरवेल, चूरनहार, धन्नियाली मुरहरि। गु० मोरवेल। काठि० त्रेखड़ीवेलो। क० नाड़ीमोरहरी। नि० मरवा। म० रानजाई। ले०—Clematis Triloba.

दक्षिणकी मूर्वाका परिचय—क्लिमेटिज=द्राक्षाके समान वृक्षपर चढ़नेवाली बेल। ट्राइलोबा=तीनखण्डयुक्त। बहुत लम्बी अन्यवृक्षपर चढ़नेवाली बेल। उत्पत्ति वर्षाऋतुमें। नया भाग रेशम सदृश मुलायम, रुएँसे आच्छादित। तना धारीदार। पान १ से ३ इञ्च अण्डाकार, हृदयाकार गोलाकार, ३ नसवाला। ३ पान साथमें पुष्प चमेलीके फूल जैसे सफेद (यथार्थमें अनेक रंगके) १॥-२ इञ्च व्यासके। बीज सदृशकल अण्डाकार, दबाहुआ, मुलायम, रुएंदार और लम्बी पूंछसह। बेल जमीनपर फैलनेपर संधि-संधिपर अंकुर निकलते हैं। काण्ड और शाखा भूरे लालरंगके या फीके हरे, खड़ी रेखायुक्त। मूल लम्बा, उपमूलयुक्त।

उत्पत्तिस्थान दक्षिण, कोंकण पश्चिमघाट गुजरात काठियावाड़। औषधरूपमें पंचांगका उपयोग होता है।

वर्तमानमें अलग अलग प्रान्तोंकी मूर्वा अलग अलग है। ऊपर लिखी हुई मूर्वा गुजरात, महाराष्ट्रकी है। बिहार बंगालकी मूर्वा गोराचक्र (Sansevieria
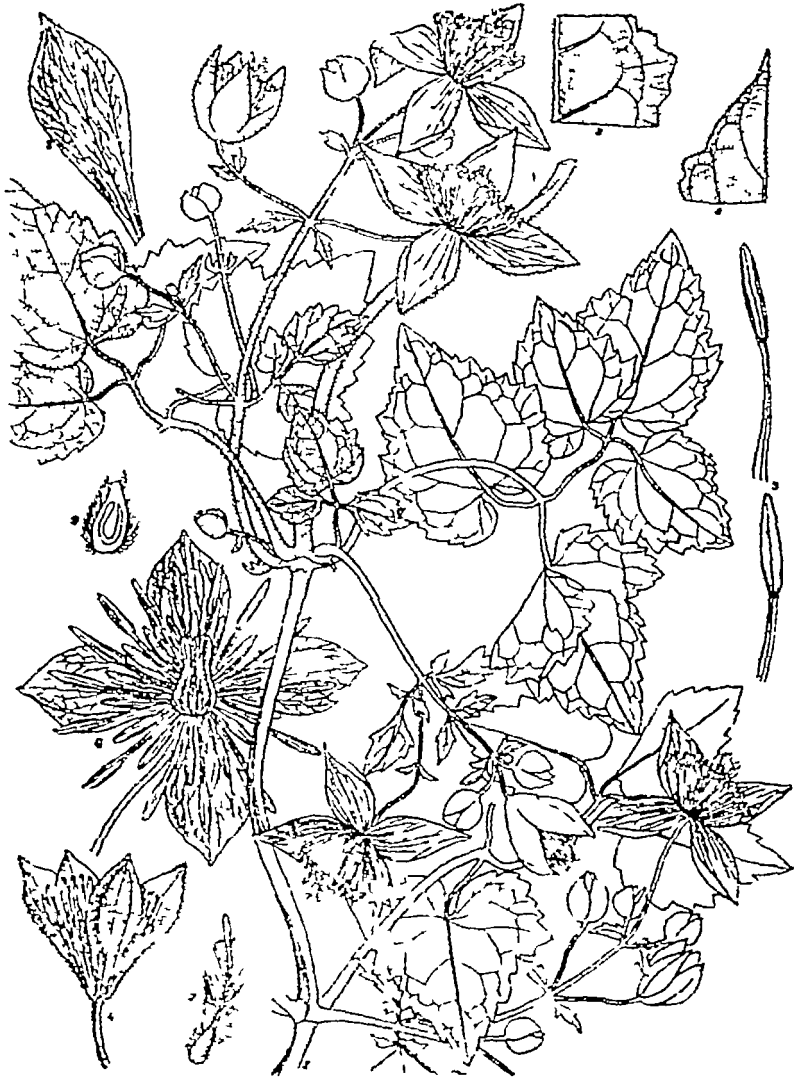
Clematis Triloba मूर्वा (दक्षिण और गुजरात)

Roxburghiana) है। पंजाब और यू० पी० की मूर्वा (Clemitis Gouriana) है। सुश्रुत संहिता और सुश्रुत टीकाकार डल्हणाचार्यकी मूर्वा अनिश्चित है। क्योंकि, वहाँ डल्हणाचार्यने लिखा है कि, "मूर्वा चोरस्नायु यथा पूर्वदेशे गुणान् कुर्वन्ति धनुषाम्। अन्ये कोविदार सदृशयुग्मपत्रां लता विशेषा मूर्वामाचक्षते।" इस प्राचीन शास्त्रोक्त मूर्वाको, अन्य विद्वान् वौहिनिया वाहली

उपयोग—प्राचीन ग्रन्थोंमें इस मुसलीका उपयोग नहीं मिलता। घरेलू औषध रूपसे दीर्घकालसे प्रयोग होरहा है।

१ शक्ति वृद्धि केलिए—मुसलीके चूर्णको शक्करके साथ मिलाकर दूधके साथ प्रात:काल और रात्रिको लेते रहनेसे सब प्रकारकी निर्वलता दूर होजाती है। शुक्रस्राव बन्द होता है और बलकी वृद्धि होती है।

(आ) मुसलीके १० तोले चूर्णको ५ सेर दूधमें उबालकर उसका खोवा बनावें। फिर उसे आध सेर घीमें मिलाकर सेक लेवें। पश्चात् १। सेर शक्कर की चासनी कर, मावा मिलाकर थालमें जमा लेवें। इसमें केशर, इलायची, जायफल, और प्रवाल, मोती, वग भस्म आदि इच्छानुसार मिला लेवें। इसे जमानेके समय कितनेक श्रीमन्त और आध सेर घी मिला लेते हैं। इस पाकमें से ५-५ तोले रोज सुवह लेकर ऊपरसे दूध लेते रहें। इस तरह इसका सेवन शीतकालमें १ मास तक करनेसे कृशता और निर्बलता दूर होजाती है।

(इ) सफेद मूसली, बडे गोखरू, तालमखाना और शतावरी चारों सम भाग मिलाकर ४-४ माशे समान शक्कर और दूधके साथ दिनमें २ वार सेवन करते रहनेसे शुक्रमेह, कटिवेदना, मूत्रकृच्छ्र, मूत्रदाह और शिरदर्द आदि दूर होकर शरीर सबल बन जाता है।

(६१) मूर्वा

स० मूर्वा, त्रिपर्णी, स्निग्धपर्णी, मोरटा। हिं० मूर्वा, मोरवेल, चूरनहार, धन्तियाली, मुरहरि। गु० मोरवेल। काठि० त्रेखडोवेलो। क० नाडीमोरहरी। सिं० मरुवा। म० रानजाई। ले०—Clematis Triloba

दक्षिणकी मूर्वाका परिचय—क्लिमेटिज=द्राक्षाके समान वृक्षपर चढनेवाली वेल। ट्राइलोबा=तीनखण्डयुक्त। वहुत लम्बी अन्यवृक्षपर चढनेवाली वेल। उत्पत्ति वर्षाऋतुमें। नया भाग रेशम सदृश मुलायम, रुए से आच्छादित। तना धारीदार। पान १ से २ इञ्च, अण्डाकार, हृदयाकार, गोलाकार, ३ नसवाला। २ पान साथमें पुष्प चमेलीके फूल जैसे सफेद (यथार्थमें अनेक रगके), १॥-२ इञ्च व्यासके। वीज सदृशफल अण्डाकार, दवाहुआ, मुलायम, रुए दार और लम्बी पूछसह। वेल जमीनपर फैलनेपर संधि-संधिपर अंकुर निकलते हैं। काण्ड और शाखा भूरे लालरगके या फीके हरे, खडी रेखायुक्त। मूल लम्बा, उपमूलयुक्त।

उत्पत्तिस्थान दक्षिण, कोंकण, पश्चिमघाट, गुजरात, काठियावाड। औषधरूपसे पचागका उपयोग होता है।

वर्तमानमें अलग अलग प्रान्तोंकी मूर्वा अलग अलग है। ऊपर लिखी हुई मूर्वा गुजरात, महाराष्ट्रकी है। बिहार बंगालकी मूर्वा गोराचक्र (Sansevieria
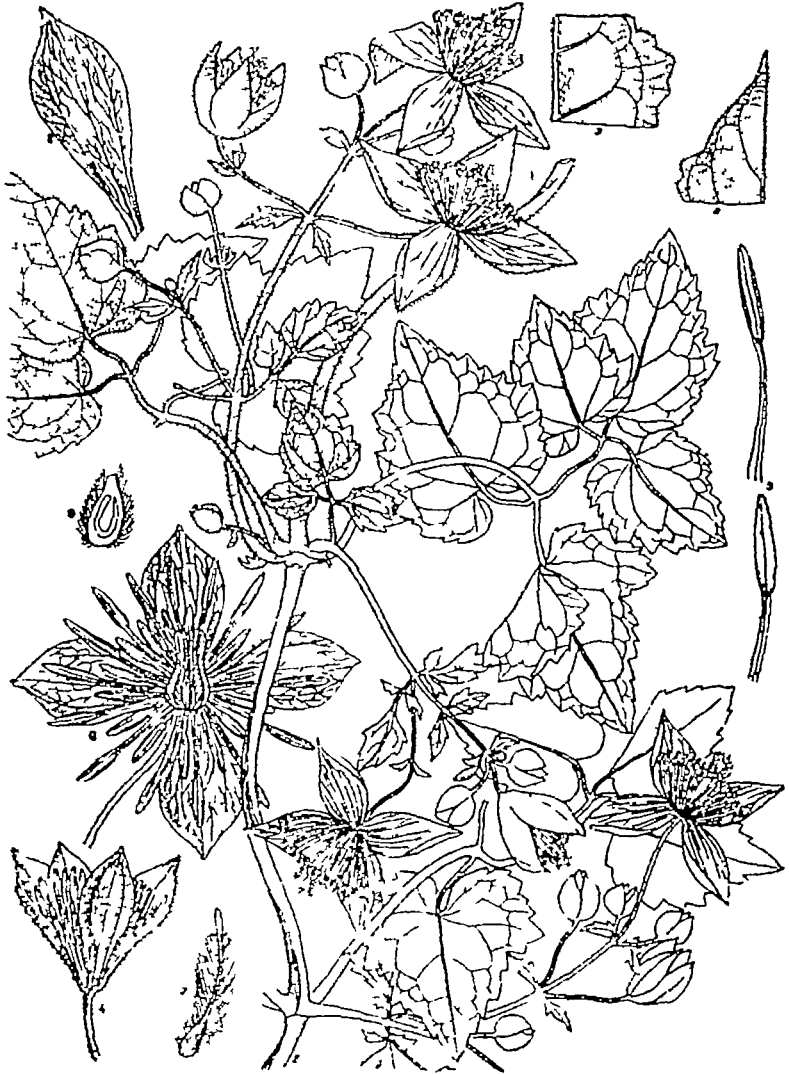
Clematis Triloba मूर्वा (दक्षिण और गुजरात)

Roxburghiana) है। पजाब और यू० पी० की मूर्वा (Clemitis Gouriana) है। सुश्रुत संहिता और सुश्रुत टीकाकार डल्हणाचार्यकी मूर्वा अनिश्चित है। क्योंकि, वहाँ डल्हणाचार्यने लिखा है कि, "मूर्वा चोरस्नायु यथा पूर्वदेशे गुणान् कुर्वन्ति धनुषाम्। अन्ये कोविदार सदृशयुग्मपत्रा लता विशेषा मूर्वामाचक्षते।" इस प्राचीन शास्त्रोक्त मूर्वाको, अन्य विद्वान् वौहिनिया वाहली

(Bauhinia Vahlii) संज्ञा देते हैं। उक्त सब मूर्वाका वर्णन आगे क्रमशः किया जायगा।

गुणधर्म—रसमें मधुर, अनुरसतिक्त, विपाक मधुर, उष्णवीर्य, हृदयरोग, कफप्रकोप और वातप्रकोपकी शामक तथा कुष्ठ, कण्डू, वमन, प्रमेह और विषम ज्वरकी नाशक है।

डाक्टर देसाईके मत अनुसार मूर्वा सारक, कुष्ठघ्न, वेदनाशामक, कफहर, वातशामक, स्वेदल स्वादमें मधुर और तेजवान है। उदरमें जानेपर त्वचाद्वारा बाहर निकलती है। उस समय त्वचा और त्वचाके उपभाग रस ग्रन्थियोंको उत्तेजित करती है। जिससे प्रस्वेद आता है। और त्वचाकी जीवन विनिमय (Metabolism) क्रिया सबल बनती है, इसमें शामक गुण विशेष है। त्वचा परकी क्रिया सारिवा की क्रिया के समान होती है। इसमे उदरशुद्धि भी होती है, और मल पीले रंगका आता है।

मूर्वाफाण्ट—सूखे पान २० रत्ती को २८ तोले गरमजलमें डालकर ढक देवें। शीतल होनेपर छानलेवें। इसमेंसे ३ भागकर दिनमें ३ बार पिलावें। उपदंश, गंडमाल, गलत्कुष्ठ, कुष्ठ और व्यूचीपर इस मूर्वाके फाण्टका उपयोग किया जाता है। ज्वर और नये संधिवातमें भी फाण्ट लाभदायक है। इससे तृषा कम होती है, और प्रस्वेद आता है।

मात्रा—मूल या शाखाका चूर्ण १ से १॥ माशेतक।

उपयोग—मूर्वाका उपयोग प्राचीनकालसे ही अत्यधिक हो रहा है। मूर्वा चरक संहितामें तृप्तिघ्न और स्तन्य शोधन दशेमानियोंमें तथा वमनोपग और तिक्तस्कंधमें प्रतीत होती है। एवं ज्वर, कुष्ठ, व्रण, अपस्मार, क्षतक्षीण, संग्रहणी, पाण्डु, हिक्का, श्वास, कास, विषप्रकोप, पीनस, ऊरुस्तम्भ, शिरोरोग, मुखरोग आदिके प्रयोगोंमें मिलायी है। सुश्रुतसंहितामें आरग्वधादि और पटोलादिगण पित्तसंशमन वर्ग, विरेचन विकल्प अध्याय, आमपाचन, कषाय अनुवासन और निरूहबस्ति, शोधनतैल और रोपण प्रयोगमें उल्लेख किया है। एवं ज्वर, अरुचि, उदावर्त्त, कास, शोष, अपस्मार, मूत्ररोग, प्रमेह कुष्ठ और वातव्याधिके प्रयोगमें मिलायी है।

वंगसेनने लिखा है कि, मूर्वा मूल, तैल, सैंधानमक, और सौवीर (सिर्का) को समभाग मिला कासीके वर्त्तनमें घोटकर नेत्रपर लेप करने से नेत्र शूल शमन होजाता है।

इस मूर्वाके कोमल पान और कूडेके पानको समान वजनमें मिला रस निकाल एक दो बूंद दिनमें एक वार नेत्रमें डालनेसे नये फूले और श्वेत पटल

या शुक्ल मण्डलके वहिर्गमनमें लाभ पहुँचता है। रस डालनेके समय एक सेकण्ड झटका बैठता है, परन्तु लाभ होता है। शुक्ल मण्डलकी स्थानभ्रष्टता (Staphyloma) की पीड़ा भी कम होजाती है।

इसका स्वरस दाद, न्युची आदि चर्मरोगोंपर लगानेसे चर्मरोग निवृत्त होते हैं। इसके स्वरस और कल्कके साथ सरसोंका तैल सिद्धकर मालिश करनेसे सन्धिवात दूर होता है।

(२)

यू०पी० की मूर्वाका परिचय—सं० मूर्वा, त्रिभग्ना, स्निग्धपर्णी। हिं० मोरवेल।
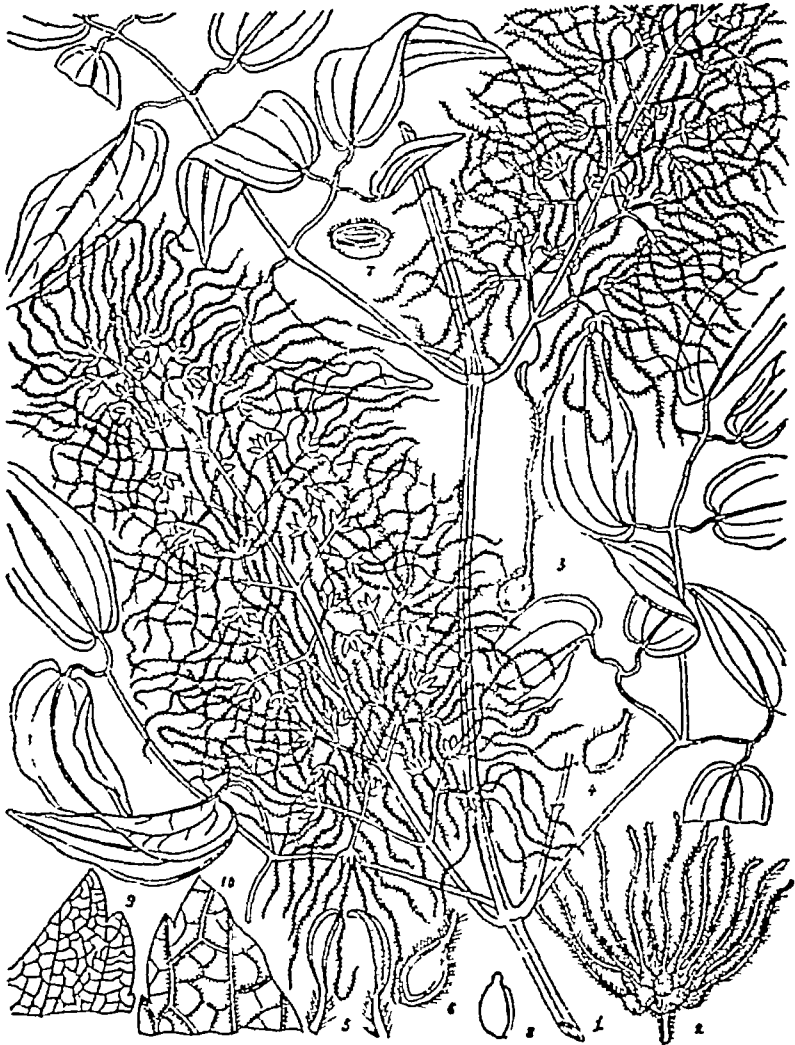
Clemates Goarisnna. मूर्वा (यू० पी०)

बम्बई—मोरवेल। कना० तेलेजादारी। डेहरा० बेलकगु। सर० वेलकगु। उरण गोलारंग। ओरि० वोरोमो भाटी। विसायन फालुयद। अ० (Indian Traveller's Joy ले० Clematis Gouriana)

वनस्पति परिचय—गौरियाना—गौरी (पार्वती) के नामानुरूप संज्ञा। बहुत ऊंचाईपर चढनेवाली वेल। नयी शाखाके अतिरिक्त सब भाग रुएदार। तना मोटा, झुर्रिदार, पिंगल। शाखाएं बैंजनी। पान ६ से १० इञ्च लम्बे, विशेषत त्रिभग्न। पर्ण १ से ५ इञ्च लम्बे अण्डाकार या लम्बगोल। पत्रवृन्त लम्बा, पतला पुष्प छोटे आधसे पौन इञ्च व्यासके, सुगन्धित, पीताभ या हरिताभ श्वेत, मिश्रित कलगीमें। विहारमें पुष्प अक्टोबर–नवेम्बरमें पंजावमें ऑगस्ट सप्टेम्बरमें। वीजमय फल (Achene) अण्डाकार, रुएदार, लम्बी पूछयुक्त। फलोत्पत्ति डिसेम्बर–जनवरी।

उत्पत्तिस्थान—पश्चिम हिमालय, पंजाव, देहरादून विहार और भारतके अनेक प्रान्तोंमें १००० से ३००० फीट ऊंचाई तक। वॉट साहिबने लिखा है कि इसका मुख्य द्रव्य दाहक जहरयुक्त है।

उपयोग—ताजे पानोंको कुचलकर त्वचापर बाधनेसे फाला हो जाता है विशेष उपयोग पहले प्रकारकी मूर्वामें लिखा है।

(३)

बंगाल की मूर्वाका परिचय—सं० मूर्वा

हिं० मूर्वा, मरूल। वं० गोराचक, मुरहरा, मूर्वा, मुर्गा, मुर्गली। बम्बई–मोर्वी। कना० मरुगा। काठि० नागफणि केतकी। म० घणसाफण, नागफण। मुदाहुरिंगकोंगा। ता० मकल। ते० चमकड, साग।

ले० Sansevieria Roxburghiana

परिचय—खडा, मासल क्षुप। ऊंचाई १२ से १८ इञ्च। चौडा १–१। इञ्च। पान नये ४ से ८ इञ्च लम्बे। पक्व पान ऊपर मुलायम, नीचे खुरदरा, १ से २ फीट लम्बे, सकडे,। पुष्प आध इञ्च लम्बा। कलगी (पुष्पदण्ड) १२ से १८ इञ्च लम्बी, पानोंके गुच्छसे निकली हुई, उसके ऊपर पुष्पगुच्छ। १ गुच्छमें लगभग ४ पुष्प। पुष्प जून जुलाईमें। फल डिसेम्बरमें।

यह क्षुप जहाँ बोते हैं, वहीं बडे परिमाणमें हो जाते हैं। काठियावाडमें पान ३ फीट तक लम्बे होजाते हैं। पुष्पदण्ड २ फीट लम्बा। पुष्प ४ से ६ तक पास पास। उत्पत्ति स्थान कोरोमण्डल, विहार, काठियावाड। इसके पानों में से रेसा केतकी की अपेक्षा अति मुलायम, तेजस्वी और सुदृढ निकलते हैं। इसमें से बनी हुई डोरी अति टिकाऊ होती है। एवं इनमेंसे रंग लगानेके झाडु (Brushes) चटाई आदि बनाते हैं।

गुणधर्म और उपयोग-विषहर और कफघ्न। इसके मूलका क्वाथ राजयक्ष्मा और कफप्रकोपमें व्यवहृत होता है। कोमल शाखाका रस बालकों को
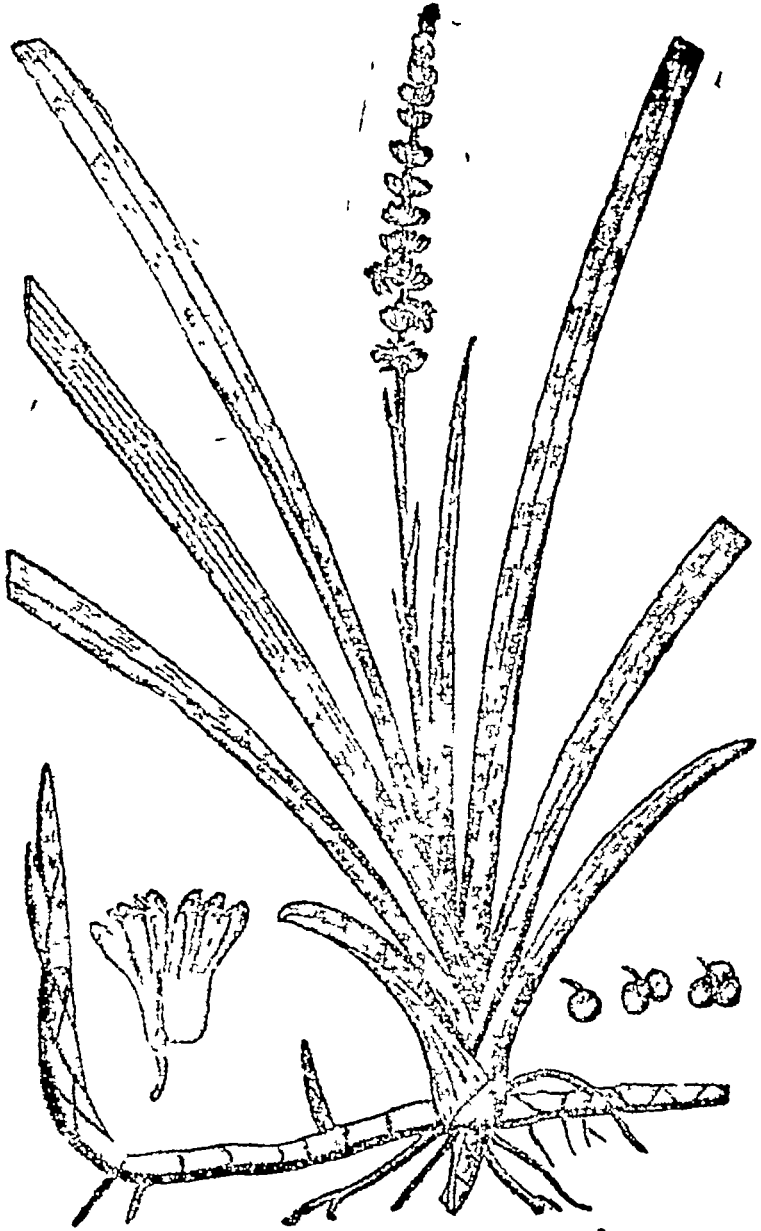
Sanseviería Rexburghiana मूर्वा

कण्ठशोधनार्थ तथा कफ प्रकोपमें दिया जाता है। पानोंका स्वरस क्षय रोगीको दिनमें दो बार १-१ ड्राम दिया जाता है।

मूलका स्वाद कुछ उग्र है।

पहाड़ीमूर्वा—स० मूर्वा, दृढसूत्रिका, धनुर्गुणा, सुरंगिका, मधुलिका, युग्मपत्रिका। हि० महोलन, मालजन, महूल, । सताली–गौमलार। डेहरा० मालजन, मालो, अल्मोरा–मओ। व० चेहुर। काल्का–टौर गढ० मल्। गोंडी- वेला, पावुरतिगे। क० अनेपाट, कम्वीहू। ते० अड्डतिगे, परद, मद्दुपु। ता० मंदौरयिलै। मला० मोट्टनवल्ली। ओ० सियाली, पैरमल। म० महूल (सी पी)

Bauhinia Vahlii मूर्वा (सुश्रुतोक्त)

अं० Enormous Camels foot climber.

ले० Bauhinia vahlii

परिचय—यह कचनार वर्गकी जुडे हुए पानवाली लता है। अन्य वृक्षपर चढनेवाली, सर्वदा हरी, अति बड़ी बेल। लम्बाई २० से ३०० फीट। तनेका घेरा १ से ८ फीट तक। पहले १०-१५ फीट ऊँचा पेड़, फिर दूसरे वृक्षपर चढनेवाली बेल बनजाती है। छाल खुरदरी, गहरी रक्ताभ पिंगल या काली आभायुक्त तथा चिमड़े, तेजस्वी रेशेवाली रग सफेद या पीले पट्टेसह, तेजस्वी गुलाबी, अलग करलेनेके पश्चात् धीरेधीरे रंग नारंगी भूरा होजाता। प्रशाखाके अन्तमें प्राय: परिवर्तनशील, युग्म अंकुर होता है। नया हिस्सा पीताभ पिंगल या मैले रुएंदार। पान ४ से १८ इञ्च लम्बे, लगभग उतने चौडे, ऊपर विभाजित, तृतीयभागतक, तलभागमें हृदयाकार, गहरे हरे, ऊपर चिकने, नीचे रुंएदार, कचनारके समान दो गोल विभाग युक्त, ११ से १५ नसवाले। वृन्त ३ से ६ इच लम्बा, दृढ, रुएंदार। पुष्प १॥-२ इच चौडे, गुलाबी-बैंगनी। शाखाके अन्तमें तोरेमें। पुष्प वृन्त १ से २॥ इच लम्बा। पुष्प बाह्यकोषनलिका .२ से .३ इञ्च लम्बी। पखडी ।॥ से १॥। इञ्च लम्बी। पु केसर ३। फली कठोर, चपटी, ऊपर मखमल सदृश, ९ से १२ इञ्च लम्बी, २ से ३ इञ्च चौडी। बीज ६ से १२ चपटे, १ इञ्च व्यासके, गहरे भूरे, चिकने, लगभग गोलाकार।❀

उत्पत्तिस्थान भारतके सब पहाड़ी जिले, लगभग २५०० से ४००० फीट ऊंचाई तक। पंजाब, देहरादून, बिहार, बंगाल, आसाम, मद्रास, सी० पी० आदि सब प्रदेश। डेहराडून, पंजाब, बिहार, सी० पी० में पुष्प अप्रेल से जून, फलीडिसेम्बरसे मार्च। नये पान मईमें आते हैं। पान छोटेबड़े अनेक साइजके।

❀ इस मूर्वाकी ओर लक्ष्य श्री वैद्यराज कृष्णदत्तजी गुप्त (कटनी) के लेखपरसे गया है। धन्यवाद। अभीतक इस मूर्वाका उपयोग नहीं होता, किन्तु यह सच्ची हो सकती है, उन्होंने लिखा है कि, सी० पी० में धनुहार लोग इसे मोरवालेन, मुंहलाइन, मोहरलाइन, मूर्वारोडन—कहते हैं। वे लोग अब भी इसकी छालके रेशेमेंसे धनुषकी डोरी बनाते हैं। ग्रीष्मकालमें प्यास शमनार्थ पक्के फलोंको भून या उबालकर खाते हैं। इसका स्वाद शहद जैसा लगता है। सुबह उदरशुद्धि हो जाती है। पान, फूल और कच्चे फलका स्वाद कडवा होता है।

नकसीरमें इसे (पान, फूलों को) पीसकर शिरपर लेप करते हैं और कोई कोई पिलाते भी हैं। गोंड स्त्रिया लीक और जुएं मारनेकेलिये जडको पीसकर रात्रिको शिरपर लगाती हैं। इस मूर्वाका उपयोग जगली लोग रक्त सम्बन्धी रोगोंमें और पौष्टिक रूपसे भी अन्य ओषधिके साथ मिलाकर करते हैं।

पानका उपयोग भोजनकार्यके लिये पत्तल, दोने बनानेमें तथा हलवाई लोग ग्राहकोंको मिठाई देनेमें करते हैं। जंगली लोग वर्षामें रक्षण करने के लिये छाता, टोपी, और छप्परभी बनाते हैं।

रेवरएडनेर्न साहिवने लिखाहै कि, सरकारकी ओरसे पान बेचनेका कएट्राक्ट दियाजाता है। कोमल फलका शाक बनाते हैं। पक्के बीजभी खानेमें आते हैं। फलीको कोल और संताल लोग लम और लमक कहते हैं।

अन्तस्त्वचामेंसे कोमल तन्तुओंके गुच्छ मजीठके रंगके या भूरे निकलते हैं। उसमेंसे धनुषकी डोरी बनायीजाती है। एवं खाट और छींके बांधनेकी डोरी तथा रस्से बनाते हैं।

ट्रेकरी आफ बोटनीकारने (१८७० ईस्वी में प्रकाशित ग्रन्थके भीतर)लिखा है कि, "इसके रस्से अति दृढ होते हैं। इसहेतुसे जमनाजीको पार करनेकेलिये अस्थायीपुल (Suspension bridge) के रचनाकार्यमें उपयोग होता था तथा खाणोंमें बारूद जलाने और देशी बन्दूकोंको चलानेके लिये इसके रस्से की बत्ती बनाते थे।" छालमें टेनिन (टेनिकाम्ल) रहा है, किन्तु साथमें गोंद सदृश रस रहनेके हेतुसे वह निकल नहीं सकता।

शार्ङ्गधरके टीकाकारने उस समयका प्रचलित नाम मोरहरी और भानुजी दीक्षितने 'मुहार' लिखाहै, ये दोनों नाम सी० पी० के धनुहारोंमें वर्त्तमानके प्रचलित मोहरलाइन, मुहलाइन तथा मराठी नाम 'मूहर' से मिलते हैं। मूर्वाके स्थानपर इसी मूर्वाका उपयोग करना चाहिये।

गुणधर्म—वैद्यराज कृष्णदत्तजी गुमाके मतानुसार इसमूर्वामें चरकाचार्य और सुश्रुताचार्य कथित सब गुण प्रतीत होते हैं। किन्तु अन्य आचार्यों ने इस ओषधिका मूर्वा रूपसे स्वीकार नहीं किया है। इसके मूल या छालका उपयोग ज्वर, संग्रहणी, अरुचि, उदावर्त, कास, श्वास, पाण्डु,अपस्मार,कुष्ट, व्रणरोपण, वातरोग, वातरक्त, उरुस्तम्भ, विषप्रकोप, नेत्रपाक, पीनस, शिरदर्द, प्लीहावृद्धि और मलावरोध आदि रोगोंपर होता है। छालके भीतर स्नेहन और ग्राही गुणरहा है। इस हेतुसे मूर्वा अन्त्रस्थ मलको आगे सरका कर फि आकुंचित कर लेती है। पान और फूलमें शामक, स्नेहन, और वान्तिहर गुणरहा है। अत वान्तिशमनार्थ पान और फूलका उपयोग अधिक हितावह माना जायगा।

(६२) मूली

स० मूलक। हस्तिदन्तक, हरिपर्ण। वं० गु० म० मूला। सिं० मूरे। प० मूली। फा० तुर्ब । क० मूलगी। ता० ते० मला० मुल्गी। अं० Radish. लै० Raphanus Sativus

परिचय—भारतवर्षके सब जिलोंमें मूली होती है। यह वर्षायु और द्विवर्षायु है। इसमें सफेद बडी जात, सफेद छोटीजात और लाल. गोल आदि कई जातियां हैं। यह विशेषत शीतकालमें होती है, किन्तु कितनेक स्थानोंमें सब ऋतुओंमें मिलती रहती है। इसके क्षुप पक्व होनेपर उसमें फली आती है, उसे मोगरी कहते हैं, उसमें बीज रहते हैं। बीजोंको मक्खनमें डालकर बोनेसे मूली कोमल और बड़ी होती है। कोमल कदका आचार और रायता बनता है। कोमल कद, पान और कोमल फलीका शाक भी किया जाता है। कद और बीजमेंसे तैल निकलता है। तैलके सुगन्ध और स्वाद मूलीके समान है। यह तैल जलसे भारी और रंग रहित है। इन गाढे तैलके अतिरिक्त इसमेंसे उड्डयन शील तैल गन्धक और फास्फारिक एसिड भी मिलता है।

सूचना—एक जातिकी मूली स्पजके समान जलका शोषण कर लेती है। उसे नहीं रखना चाहिये। चरकसहिताकारने अहित तम आहारके भीतर मूलीको अति अधिमन्थ कद कहा है।

मात्रा—पानोंका स्वरस २॥ से ५ तोले। बीज ४ से ८ माशे।

गुणधर्म—कच्ची मूली दोषहर और पक्की त्रिदोषकारक है। सूखी मूली लघु कफ वात जित और विषहर है। सामान्यत. मूली उष्णवीर्य, रुचिकर, अग्निप्रदीपक। उदर कृमिघ्न और कफ वात जित है।

ताजे पानोंका रस मूत्रल, सारक अश्मरीहर और रक्तपित्तनाशक है। पुष्प कफपित्तहर और फली कफ वात हर है। इनको भोजनके पहले खानेपर आमाशयमें पित्तवृद्धि कराता है। भोजनके साथ सेवन करना हितकर है।

रासायनिक सगठन—नव्य अनुसंधान अनुसार मूलीमें प्रथिन ॥ मेद ॥। और कर्बोदक ७॥% है तथा खट ४ ६, स्फुर १ ७ और लोह ४७ प्रति दशसहस्र है। उष्मैक प्रति १०० ग्रामोंमें ३५ होती है। जीवनसत्व अ (कॅरोटिन) ३, ब ६० और क १७ एक प्रति १०० ग्रामोंमें अवस्थित हैं। इनके अतिरिक्त पालाश और ताम्रभी सूक्ष्म परिमाणमें मिले हैं। जलानेपर राख क्षारीय होती है।

डाक्टर वामन देसाईके मतानुसार मूली उष्णवीर्य है। ताजे पानोंका रस और बीज मूत्रल, आनुलोमिक और अश्मरीहर है। ताजे पान रक्तपित्तशामक है। इसकी क्रिया प्रजननसंस्थान और मूत्रसस्थानपर कुछ होती है।

पुराने मलावरोधमें मूलीका शाक रोज खानेपर लाभ होता है। पानोंका रस उदरशूल, अर्श और अफारेमें हितावह है। आनाह रोगमें यह निर्भय और उत्तम औषध है। मासिक धर्म न आनेपर इसके बीज (३-३ माशे) दिये जाते हैं और सुजाकमें भी बीज (६-६ माशे) देनेसे पूयस्राव होकर वेदना शमन होजाती है।

यूनानी मतानुसार मूली दूसरे दर्जेमें तरगर्म है यह भारी भोजनको पचन

कराती है, किन्तु स्वय देरसे पचती है। यह अर्शरोगमें हितावह है। शाक मूत्रल है, वृक्क और मूत्राशयकी अश्मरीका भेदनकर बहा देती है। मूली जीर्ण कास और दूषित रसमें हितावह है। यह कफको निकालती है। मूलीका प्रतिनिधि शलगम है। दर्पघ्न जीरा और नमक है। मूलीके बीज दूसरे दर्जेके गर्म, खुश्क, वृक्क और यकृतको हानिकर है। दर्पघ्न कपिस्तां (लिहसोड़ा), कतीला और शक्कर है।

उपयोग—मूलीका उपयोग प्राचीनकालसे होरहा है। चरक और सुश्रुत संहितामें अनेक रोगोंपर मूलीका उपयोग किया है। अग्निमान्द्य, अरुचि, पुराना कब्ज, अर्श, अफारा, मासिक धर्ममें कष्ट होना, पुराना सुजाक, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, कफवात ज्वर, श्वास, हिक्का और शोथ इन सब रोगोंमें लाभदायक है। आफरा, अपचन और वातिक कासपर मूलीका शाक हितकर है। पित्ती (शीतपित्त) के जीर्णरोगीको सूखी मूलीके यूपका सर्वदा सेवन करते रहना चाहिये।

आचार्य चक्रदत्तने कफवातज ज्वर, अर्श, अतिसार, प्रवाहिका, श्वास, हिक्का और शोथ आदिपर मूलीके यूपकी योजनाकी है। अफारा, अपचन और वातज कासपर मूलीका शाक हितकर है। जीर्ण शीतपित्त पीडित रोगीको मूलीका यूप सर्वदा देते रहना लाभदायक है।

१ शुष्कार्श—सूखी मूलीकी पुल्टिसकर सेक करनेसे मस्सेकी वेदना दूर होती है। एवं सूखी मूलीका यूप पिलानेसे भी लाभ पहुँचता है।

२ रक्तार्श—रसौंतको मूलीके रसकी ७ भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लेवें। फिर २-२ गोली दिनमें दो बार मक्खनके साथ खिलानेसे रक्तार्श दूर होते हैं। अथवा ४-६ या अधिक मूलीके कदमेंसे ऊपरके सफेद भाग और पानोंको अलगकर हरे भागको कूटकर रस निकालें। इस रसमें ६ माशे घी मिलाकर प्रतिदिन सुबह सेवन करानेसे रक्तार्श दूर हो जाता है। एवं शुष्कार्शमें भी लाभ पहुँचता है।

३ विसूचिका—कोमल मूलीका काथकर पीपलका चूर्ण मिलाकर पिलानेसे अग्नि प्रदीप्त होती है। फिर अपचन, अपचनसे उत्पन्न विसूचिका (वमन और अतिसार) आदि दूर हो जाते हैं।

४ हिक्का—सूखी मूलीका निवाया ५-१० तोले काथ १-१ घण्टेपर पिलावें।

५ अम्लपित्त—कोमल मूलीको मिश्री मिलाकर खिलावें। या पानोंके रसमें मिश्री मिलाकर पिलावें।

६ शोथ—तिल और मूलीका सेवन करनेसे त्वचाके नीचे संगृहीत जलका आकर्षण होकर शोथ दूर हो जाता है।

७ सिध्मकुष्ठ—मूलीके बीजोंको अपामार्गके रसमें पीसकर लेप करें।

८ मूत्रशुद्धिके लिये—मूलीके पानोंके रसमें कलमीशोरा मिलाकर पिला देनेसे मूत्र साफ आजाता है। मूत्रावरोध दूर होता है। अर्श रोगमें भी आवश्यकतापर प्रात: साय दिनमें दो बार यह पिलाया जाता है।

९ मुर्दासंगका विष—मूली और सोये खिलाने या मूलीका स्वरस पिलाते रहनेसे शीशा और मुर्दासंगका विष, जो रक्त आदि धातुमें लीन हुआ है, वह नष्ट होजाता है।

१० पीठमें वातज पीड़ा—अकस्मात् वात वाहिनियोंपर आघात पहुँच जानेपर पीठकी कोई नाडी स्थानभ्रष्ट होजाती है। फिर तीव्रवेदना होती है। चलने फिरनेमें बडा कष्ट होता है। उसे ग्रामीण लोग 'चणक-चितक पड़ गई' ऐसा कहते हैं। उसके लिये मूलीके बीजोंका चूर्ण दिया जाता है। एवं वेदना स्थानपर सूची बूटी या धतूराका लेप लगाया जाता है।

(६३) मूसाकर्णी

स आखुकर्णी, आखुपर्णी, । हि॰ मूसाकानी, मूषाकरनी, चूहाकानी, मूषाकर्णी बं॰ इन्दुरकानीपाता । म॰ उंदिरकानी । उन्दरकानी । वरा॰ भोपली । अ आजानुलफार । फा॰ गोशेमुशा । ते॰ तोइन्नुअतली । ता॰ पेरेट्टैकैरई मला॰ येह्लीकडुकिरै ले Ipomoea Reniformis.

परिचय-इपोमिया=ऐंठी हुई वेल। रेनिफॉर्मिस वृक्काकार । वर्षाऋतुमें उत्पन्न होकर जमीनपर फैलनेवाली अनेक शाखायुक्त छोटी वेल । लम्बाई १ से ४ फूट । काण्ड के पर्वोंसे मूलोंका जमीनमें प्रवेश तथा ऊपरमें शाखा और पानोंकी उत्पत्ति, लम्बे कोमल रुएंसे आच्छादित । पान हरद्वारकी ब्राह्मी (मण्डूकपर्णी) के सदृश, ।। से १ इञ्च चौडा, सामान्यत लम्बाईसे अधिक चौड़ा, वृक्काकार, चूहेके कान सदृश आकारवाला । पुष्प पीले (देशभेदसे गुलाबी) पत्रकोणीय शाखासे निकले हुए एकाकी या २-३, छोटे पुष्प वृन्तपर । पुष्पपत्र छोटे, अण्डाकार, नोकदार, रुएदार। पुष्पवृन्त छोटा । फली ४ रेखा युक्त, पकनेपर हरे-बैंजनी, चने जितनी बड़ी, २ बीजयुक्त । बीज चिकना लाल काले भूरे ।

उत्पत्ति स्थान—बंगाल, बिहार, मध्य प्रदेश, कोंकण, दक्षिण कर्णाटक, राजस्थान, सौराष्ट्र, गुजरात ।

वक्तव्य-आर्यभिषक्कारने मूसाकर्णीकी अनेक जाति होनेका दर्शाया है । इनमें ४ जातिके पृथक् २ उपयोग दर्शाये हैं। इनमेंसे एक श्वेतपुष्पकी दुग्धमय जाति दर्शायी है। उसका उपयोग गोलकृमिपर लिखा है।

बंगाली ग्रन्थकारने भी जलीय फर्न (Water Ferns) वर्गसमूहके सेल्विनिएसी कुटुम्बकी (Salvinia Cucullata) को इन्दुरकानीपाता संज्ञादी है। उसे कृमिघ्न गुणयुक्त माना है। इसकी उत्पत्ति रेणु (Spore) द्वारा होती है।

गुणधर्म—भावप्रकाशके मतानुसार मूसाकर्णी रसमें चरपरी (मूलकिञ्चित-कड़वा और पान स्वादमें चिपचिपा और उग्र), विपाक चरपरा, अनुरस कषाय, शीतवीर्य, लघु तथा मूत्रविकार, कफरोग और कृमिरोगकी नाशक है।
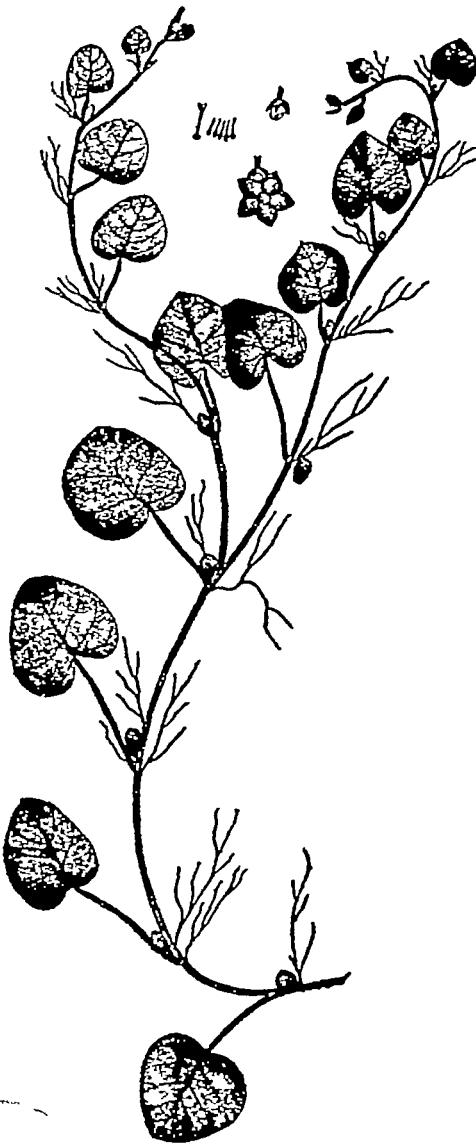
निघण्टरत्नाकरने रसायन, सारक, पित्तशामक तथा शूल, ज्वर, कृमि, ग्रन्थि, मूत्र कृच्छ्र,प्रमेह, मलावरोध,हृद्रोग विषप्रकोप, पाण्डु, भगदर और कुष्टकी नाशकभी कही है। एव वृहद्‌दाखुपर्णीको पारदको बाधने वाली, चक्षुष्य, मधुर और चूहेके विषकी नाशक कही है।

यूनानी मतके अनुसार मूसाकर्णी उष्ण और रूक्ष है। यूनानी मत वालोंने गुलाबी फूल और पीले फूलके भेदसे २ प्रकारकी मानी है, गुलाबी फूल वालीको कडवी और खराब स्वादवाली तथा मस्तिष्क और नाकके रोगोंमें उपयोगी। निर्बलता, पक्षाघात, आगन्तुक घाव प्रदाह और शिरदर्द पर लाभदायक मानी है। एव पीले फूल वालीको मूत्रल,सारक तथा मसूढे और चक्षुपर लगाने योग्य कही है। वेल ज्वरहर तथा शिरदर्द, कास, पक्षाघात, प्रदाह, नासारोग और यकृत् प्लीहावृद्धि जनित ज्वर में उपयोगी माना है।

नव्य मत अनुसार वेल कड़वी, उग्रताप्रद, दाहक, शीतल, कृमिघ्न, सारक उदरपीड़ाहर तथा वृक्कविकार, मूत्राशयके रोग, फुफ्फुसरोग और गर्भाशयके रोग में वेदना, ज्वर, मलावरोध (मूत्रत्यागमें वेदना–Strangury), मूत्रप्रसेक-नलिकासे स्रावहोना, पाण्डु, भगंदर और श्वेतकुष्ठमें हितावह। हृद्रोग और उदर रोगमें उपयोगी तथा अर्बुदको कम करनेवाली है।

मात्रा–६ से १२ रत्ती तक फाण्टरूपसे।

उपयोग–मूसाकर्णीका उल्लेख सुश्रुतसंहिताके भीतर सुरसादि गणमें मिलता है। एव सुश्रुतसंहिता और चरकसहिताके भीतर उदरकृमि, अश्मरी, योनिरोग और शोथ आदि रोगोंके प्रयोगोंमें उपयोग हुआ है।

१ उदरकृमि–मूसाकर्णीका रस निचोड लाल चावलके आटेको गोंद तैल में पूरी तल लेवें। फिर वायविडगका चूर्ण और नमकके साथ सेवन करानेसे उदरकृमि, कृमिजन्य पाण्डु और अग्निमान्द्य सब दूर होजाते हैं।

२. रजोधर्म में कष्ट—योनि मार्गमें मूसाकर्णी के मूलको धारण करनेसे मासिकधर्म साफ आजाता है। और गर्भाशय शुद्ध होजाता है।

३ शिरमें उष्णता—मूसाकर्णीके पानोंका चूर्ण सुघानेसे उग्रता शमन हो जाती है।

४. कर्णपाक—मूसाकर्णी का रस निवाया करके कानमें डालें।

५ चर्मरोग—अनन्तमूल और मूसाकर्णीका फाण्ट देनेसे रक्तशुद्धि होती है और चर्मरोग दूर होते हैं।

महाराष्ट्रकी मूसाकानी—म० उन्दिरकानी। गु० सौ० सोनकी। कच्छी अछी कंढेरी, परदेसी कढेरी, गडवल। गोआ टेरेक्सको। बम्बई पाथरी। ले० Lactuca Runcinata पुराना नाम Lactuca Heyneana

परिचय—हियनिना=जर्मन वनस्पति शास्त्री हियनके सम्मानार्थ संज्ञा। रुन्सिनेटा=वडिशसदृश मुड़े हुये। लेक्टुका=दुग्धसदृश रसयुक्त, ऊचा, चिकना दूध जैसे रसयुक्त क्षुप। ऊंचाई १ से ५ फुट तक। कांड सीधा, नलिकाकार, नीचे पोला, प्राय. अति दृढ़ और वहुत शाखायुक्त। पान वृन्तहीन, वहुधा मूलोद्भूत, गोजिह्वाकार (Runcinate) या कटे हुये विभागयुक्त (Pinnatifid) कोमल,दोनों ओर चिकने, किनारा केश सदृश कण्टक युक्त और दन्तुर। मूलोद्भूत पान ४ से १२ इंच लम्वे, ऊपरमें चौड़ा, नोकहीन, आधार स्थान पर सकड़ा काण्डोद्भूत पान थोड़े छोटे (१॥ से ९ इंच लम्वे),सकड़े, कर्ण सदृश। पुष्पकी गुण्डी ॥ इञ्च लम्वी, पीली या गुलाबी सफेद नलिकाकार सामान्यत वृन्तहीन, एकाकी या थोड़ी दूर पर गुच्छमें (पत्रहीन शाखाके ऊपर) पुष्पके वाह्यकोषके पत्र थोडे, अण्डाकार, नोकदार, अन्तरोपकोषके पत्र वाह्य उपकोषसे

दूने लम्बे, रेखाकार, लम्बगोल, बालोंकी दाढी (Pappus) श्वेत, कोमल बीज फलीकी अपेक्षा लम्बा। बीजफल दबा हुआ, किञ्चित धारीदार १/८ इञ्च लम्बा। पुष्पकाल दिसम्बर। शाखा, पान तोड़नेपर दूध निकलता है।

उत्पत्ति स्थान—पंजाब, गंगाजीका उर्ध्व प्रदेश, बिहार, सिन्ध, कच्छ, गुजरात, सौराष्ट्र, मद्रास, राजस्थान।

महाराष्ट्रकी दूसरी मूसाकानी—गु० पाथरड़ी। कच्छी-छतरडी और छत्री। गोवा Teraxco ले० Lactuca Remotiflora

परिचय—रिमोटीफ्लोरा=दूर दूर चौड़े पृथक् पुष्पयुक्त। लेक्टुका=दुग्ध सदृश श्वेत रसमय। ८ से १८ इञ्च ऊंचा कोमल क्षुप। काण्ड कोमल शाखा-मय पान बहुधा मूलोद्भूत, अखण्ड, वृन्तहीन, २ से ४ इञ्च लम्बे, १ से १॥ इञ्च चौडे, लम्बगोल या ऊपर चौड़े, किनारे कटे हुये, ऊपरमें गोल, सुन्दर पतले, दांतेदार, चिकने। पुष्प शिर सामान्यत एकाकी, क्वचित गुच्छमय। पुष्प के बाह्योपकोषके पत्र पुष्प, बालोंकी डाढी, बीजफल, ये सब पहली जातिके अनुरूप। बीजफल काले खुरदरे।

उत्पत्ति स्थान—बादा, सिन्ध, सौराष्ट्र, कच्छ, दक्षिण, अरबस्तान। उक्त दोनों प्रकारकी आखुपर्णीमें निघण्टरत्नाकर कथित गुण "रसबन्धकरी, नेत्र्य, रसायनी, शूलनुत। ज्वरं, कृमि व्रण वाखुविष चैव विनाशयेत्॥" सम्भवित है।

गुणधर्म—उक्त आखुपर्णी स्वादमें कडवी, रसायन और सारक है। अपचन जीर्ण मलावरोध और यकृद् विकारको दूर करने के लिये व्यवहृत होती है।

इसके पानोंका उपयोग व्रणोंके शोधनार्थ पुल्टिस रूपसे होता है।

नव्य मतानुसार क्षुपमें शामक गुण है। सुखाये हुये दूधमें शामक और निद्राप्रद गुण अवस्थित हैं। बीजमें स्नेहन गुण हैं। सूखे दूधका उपयोग अफीम के स्थानपर हो सकता है।

टेरेक्सेकमके प्रतिनिधि रूपसे ये दोनों आखुपर्णी प्रयोजित होती हैं।

टेरेक्सकम (पंजाब दूदल, गु० कानफुल) बल्य, यकृतशोधन और मूत्रल है। यकृत् पर अति उपकारक है। यकृत्का पित्तस्राव कम हो तो बढाता है और अधिक होता हो तो घटाता है। पहले डाक्टरीमें टेरेक्सकमके मूल (Taraxaci Radix) के प्रवाही सत्वका और क्षुपके रसका उपयोग होता था। वर्तमानमें ब्रिटिश फार्माकोपियासे पृथक् होगया है। गोवामें टेरेक्सकम रूपसे इन आखुपर्णियोंका उपयोग होता रहता है।

(६४) मेथी

स० मेथिका, मेथी, दीपनी, बहुपत्रिका, कुञ्चिका, पीतबीजा। हि० म० ब०

गु० प० मेथी । क० मेंथिया, मेन्ते । ता० वेन्याम् । ते० मेन्ती कुरा फा० तुख्मे शमपीत, अ० बजरूल हुल्वह् । अं० Fenugreek ले० Trigonella Foenum-Graecum

परिचय—ट्रिगोनेला=पान ३ धारीवाले वर्षायु, छोटा, खडा, कोमल, तेज वासवाला क्षुप। ऊँचाई १ से २ फीट। पान ३ पर्णयुक्त। पर्ण ॥ से १॥ इञ्च लम्बे, कुछ लम्बगोल दांतेदार। उपपान दांतेरहित। फूल पत्रकोणमें, पीले रंगके वृन्तरहित। फली २ से ४ इञ्च लम्बी, १०–२० दानेवाली। बीज पीले (हरे भी होते हैं।)

उत्पति स्थान—मूल स्थान मिश्र और भूमध्य प्रदेश। भारतके अनेक प्रान्तोंमें बोयी जाती है। कोमल पानोंका शाक बनता है। बीजोंका औषध-रूपसे उपयोग होता है।

गुणधर्म—मेथी स्वादमें कड़वी, विपाक चरपरा, उष्णवीर्य, रक्तपित्त-प्रकोपक, रुचिकर. दीपनपाचन, ग्राही, लघु, रूक्ष, हृद्य, बलवर्धक, शुक्रनाशक, वातहर और कफघ्न तथा ज्वर, अरुचि, वान्ति, वातरक्त, कफकास, अर्श, उदर-कृमि और क्षयका नाश करती है।

मेथी वातप्रकृति और कफप्रकृतिवालोंको हितावह है। मेथीका कार्य क्षेत्र मुख्य पचनसंस्था है। गौण क्षेत्र रक्तादि धातु और वातनाड़िया है। मेथीका सेवन करनेपर लालास्राव अधिक होता है, आमाशय पित्त तेज बनता है और यकृन् पित्तका स्राव भी अधिक होता है। आमाशय, यकृत्, अन्त्र रक्ताभिसरण और वातनाड़ियोंपर उत्तेजक असर दर्शाता है। मुँहमें मीठापन रहता हो, तो वह दूर हो जाता है। आमाशय रसस्राव बढता है और सबल बनता है। आमाशयकी मंथन क्रियामें तेजी आती है फिर आगे अन्त्रको यकृत् पित्त अधिक मिलता है। जिससे आमका पचन होता है, उदरके छोटे कृमियोंका नाश होता है तथा यकृत् पित्त अधिक मिलनेसे मलरंजित होता है। अन्त्रका कुछ आकुंचन कराती है; आहार रसमेंसे शोषण अधिक कराती है और परिचालन क्रिया सबल बनती है। जिससे बृहदन्त्रमें मल जल्दी गमन करता है और उसमें कुछ गाढापन भी आता है।

रस सबल बनता है, जिससे रक्तादि धातु बलवान बनती है और धातुओंके भीतर पचनक्रिया भी सतेज होती है। जिससे लीन विष और मल जल जाता है। इस हेतुसे आमवातादि रोगोंमें लाभ पहुँचाती है; तथा शरीरको नीरोगी और सबल बनाती है।

मेथीमें एक प्रकारका तैल, स्फुराम्ल (Phosphoric Acid), ये दो द्रव्य वातनाड़ियोंपर असर पहुँचानेवाले रहे हैं। इन द्रव्योंके कारणसे मेथी वात-

नाडियोंको लाभ पहुँचाती है। अन्य वातनाड़ियोंकी अपेक्षा उदरस्थानमें स्वतन्त्र वातनाडी मण्डलके फैले हुये तन्तुपर विशेष असर पहुँचाती है। जिससे अफारा, उदरशूल, उदरमें वायु भरा रहना आदि दूर होते हैं।

मेथी गर्भाशयका आकुंचन कराती है। इस हेतुसे अनेक प्रान्तोंमें प्रसव होनेके पश्चात् स्त्रियोंको मेथीके लड्डू खिलाते हैं।

रासायनिक पृथक्करण—मेथीमें तैल ८.८% (उसमें उड्डयन तैल ००–१४ भाग), स्फुराम्ल २.७% राल सदृश द्रव्य १७.४% तथा आमवातनाशक द्रव्य ट्राइमेथिलेमिन (Trimethylamin), वातनाडी पोषक न्यूरिन (Neurin) आदि द्रव्य कम परिणाममें अवस्थित हैं। इनके अतिरिक्त कर्बोदक, गोंद, पीला रग आदि द्रव्य मिलते हैं। मेथीदानेमें ऊपर रहे हुए कवचके भीतर कषाय द्रव्य (Tannin) मिलता है।

मेथी प्रयोग—

१ मेथी मोदक—हरड, बहेड़ा, आवला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, नागरमोथा, अजवायन, कलौंजी, जीरा, शाहजीरा, धनिया, लौंग, दालचीनी, छोटी इलायचीके दाने, तेजपात, नागकेशर, जायफल, जावित्री, कायफल, कूठ, काकड़ासिंगी, तालीसपत्र, सफेद चन्दन, कपूर, ये २५ ओषधिया १–१ तोला मेथी २५ तोला, २॥ तोला गोंद, ५ तोले नारियलकी गिरी, २५ तोले गेहूँका आटा, घी २५ तोले और पुराना गुड ६२॥ तोले लेवें। आटेको घीमें भून लेवें। गोंदके छोटे-छोटे टुकड़ेकर घीमें भून लेवें। औषधियों और मेथीको कूट लेवें। नारियलकी गिरीको घियाकसपर कस लेवें। फिर सबको मिला २–२ तोलेके मोदक बना लेवें। इनमेंसे १–१ मोदक सुबह-शाम प्रसूताको खिलाते रहनेसे गर्भाशयका आकुंचन होता है, कीटाणुनाश होता है, वातप्रकोप नहीं होता, कमरमें बल आता है, पचनक्रिया सबल होती है, दूध अधिक उतरता है, मलावरोध नहीं होता और शरीर सबल बनता है।

२ मेथिकापाक—मेथी, सोंठ और घी ४०–४० तोले, दूध ४ सेर, पीपल, पीपलामूल, चित्रकमूल, अजवायन, जीरा, धनिया, कलौंजी, सोंफ, जायफल, शठी, दालचीनी, तेजपात, कालीमिर्च १२॥–१२॥ तोले लेवें। दूधको उबालें। पतली रबड़ी जैसा बननेपर सोंठ और मेथीका चूर्ण मिलावें। फिर मावाकर घीमें भून लेवें। इसके साथ और औषधियोंका कपड़छान चूर्ण मिलावें। तत्पश्चात् ४ सेर शक्करकी चाशनीकर, गरमी कम होनेपर मावा और औषधियोंका चूर्ण मिलाकर पाक बना लेवें। इसमेंसे ४–४ तोले सुबह शाम देवें।

यह पाक आमप्रकोपसे पीडितोंके लिये हितावह है। वात और कफप्रधान रोगोंपर प्रयोजित होता है। जीर्ण आमवात, सब प्रकारके वातरोग विषमज्वर

जानेके पश्चात् निर्वलता, पाण्डु, कामला, उन्माद, अपस्मार, सब प्रकारके प्रमेह, वातरक्त, प्राथमिक अम्लपित्त, शिरोरोग, नासारोग, नेत्रदाह, प्रदर और सूतिका रोगके उपद्रवरूप वातरोग, इन सबके लिये हितावह है। यह शरीरको पुष्ट करता है, बल बढाता है और वीर्यवृद्धि करता है।

मात्रा—मेथी दाने २ से ४ माशे।

उपयोग—मेथीका उपयोग शाक और घरेलू औषधरूपसे प्राचीनकालसे हो रहा है। चरकसंहिता और सुश्रुत संहितामें इसका औषध प्रयोग नहीं मिलता। मेथीके कोमल पानोंका शाक अरुचि, ज्वर, अतिसार, आमवात, सूतिकारोग, अग्निमांद्य, उदरशूल, अफारा, कण्ठ वेदना, शोथ, मूत्रावरोध, वातपीड़ित और कफपीडित रोगियोंको पथ्यरूपसे दिया जाता है।

२ जीर्ण आमवात—आमवातकी तीव्रावस्था दूर हो जानेके पश्चात् आम और लीन विष रक्तादि धातुओंमें रहा हो तथा हृदयकी निर्वलता प्रतीत हो, ऐसे रोगियोंको मेथीके पाकका सेवन कराया जाता है। अथवा मेथी और सोंठका चूर्ण ४-४ माशे दिनमें २ वार गुड़ मिलाकर सेवन कराया जाता है।

२ जीर्ण आमातिसार—मेथीके पानोंका रस ४ तोला ३-४ माशे शक्कर मिलाकर पिलावें अथवा मेथीका चूर्ण ४-४ माशे सुवह शाम मठ्ठेमें मिलाकर (स्वाद आवे उतना भूना जीरा और सैंधानमकसह) पिलाते रहें। यह आमातिसार या आम संग्रहणीवालोंके लिये हितावह है। जिसमें ४-८ दिन प्रकृति स्वस्थ रहती है। आम वढ़नेपर उदरमें पीडा होती है और पतले आमप्रधान शौच होने लगते हैं। उस विकारमें मेथी हितावह है।

३ मलावरोध—अन्त्रकी निर्वलताके हेतुसे मलावरोध बना रहता हो तो मेथीका चूर्ण ३-३ माशे सुवह शाम गुड या जलके साथ कुछ दिनोंतक लेते रहना चाहिये। मेथीसे यकृत्को भी वल मिल जाता है।

४ वहुमूत्र—मूत्राशयमें मूत्र धारणशक्ति कम हो जानेपर वार वार थोड़ा-थोड़ा मूत्रस्राव होता रहता है। विशेपन यह विकार यकृत्की निर्वलता होनेके पश्चात् होता है। यकृत् निर्वल होनेपर घी-तैल, शक्करका अधिक सेवन होता रहेगा, तो मूत्रयन्त्रपर भार वढता है। फिर मूत्राशयको हानि पहुँचती है। यह कारण हो, तो घृतादिका सेवन मर्यादित करें। फिर मेथीके पानोंका रस २ से ५ तोले, ४ रत्ती सफेद कत्था और ६ माशे मिश्री मिलाकर सुवह शाम ४-८ दिनतक देते रहनेसे वहुमूत्र दूर हो जाता है।

५ सूतिकाकी निर्वलता—मेथी मोदक खिलाते रहनेपर चक्कर आना, अग्निमान्द्य, कानोंमें गुंज होना, हाथ-पैर टूटना, कमरमें वेदना होना, उदरमें भारीपना रहना, रात्रिको मंद ज्वर आ जाना, गर्भाशयका संकोच न होना

और श्वेतप्रदर (पतला जल जैसा स्राव होना) आदि विकार दूर होकर शरीर सबल हो जाता है।

६ श्वेतप्रदर—गर्भाशय शिथिल होनेसे जल सदृश पतला स्राव होता हो, तो गर्भाशयके आकुंचनार्थ मेथीका चूर्ण ४-४ माशे गुड़में मिलाकर कुछ दिनों तक खिलावें, तथा जामुनके आकारकी पोटलीमें मेथीका चूर्ण भर योनिमार्गमें धारण करावें। इस पोटलीके साथ लम्बा डोरा लटकता रहना चाहिये। जिससे आवश्यकता होनेपर पोटलीको बाहर निकाल सकें। पोटली गंदी होनेपर बारबार बदलते रहें।

७ गालोंपर शोथ—कनपेडा (Mumps) होनेपर या वात प्रकोपसे गालों पर सूजन आई हो, तो मेथी और जौके आटेको मठ्ठे, कांजी या नींबूके रसमें मिलाकर दिनमें ३-४ बार लेप करते रहें।

८ चोट—लकड़ी पत्थर आदि लग जाने या गिर जानेपर सूजन होने और दर्द होनेपर मेथीके पानोंकी पुल्टिस या मेथीके बीजोंके आटेकी पुल्टिस घी लगाकर बाधी जाती है।

(६५) मैनफल

सं० मदन, छर्दन, करहाट, राठ। हिं० मैनफल, मैनर, करहर। पं० मैणफल। बं० मयनाफल, मदनफल। ने० अमुकी, मैदल। म० गेलफल। गु० मींढल, मींढोल। ते० चिनामगा, मदनमु। ता० मरुक्कालन, चिरत्तगालगम्। ओ० पोटुआ। मला० कार, करलिककाया। क० मागरे, अरेमादलु। अ० जौजुल कै। अं० Bushy Gardenia, Emeticnut लें० Randia Dumetorum

परिचय—रेण्डिया=वनस्पति विशारद डम्फाकरेण्डके सम्मानार्थ सञ्ज्ञा। डूमेटोरम=कांटेदार झाड़ी। तीक्ष्ण कांटेदार, पतनशील पर्णमय बड़ी झाड़ी या छोटा वृक्ष। तना कलई सदृश मोटा। ऊंचाई ६ से २० फूट। कांटे १–१॥ इञ्च लम्बे। शाखाएं आड़ी (Horizontol), छोटी छोटी, सामने सामने उपशाखा युक्त। पान हरे या गहरे हरे, ऊपर तेजस्वी, नीचे रुएंदार, लम्बगोलाकार, नोकरहित, छोटी शाखापर पास-पास, झुर्रीदार, १॥ से २। इञ्च लम्बे और १ से १। इंच चौड़े, छोटे वृन्तयुक्त, अप्रिय वास और अप्रिय स्वादवाले। पुष्पपीले या सफेद, १ इञ्च व्यासके सुवासित, उपशाखाके अन्तमें, एकाकी या २ कभी ३, छोटे वृन्तयुक्त। पुष्पबाह्य कोष सघन रोमयुक्त। पुष्पाभ्यन्तरकोष पहले सफेद, फिर पीला, ५ दलयुक्त पुष्पनलिका छोटी। फल पीताभ, लम्बवर्तुल, १ से १॥ इञ्च लम्बा, ॥। से १। इंच चौड़ा, दो खण्डयुक्त। बीज सूक्ष्म, अनेक, अप्रिय गर्भके भीतर। पुष्पकाल मई और फलकाल शीतऋतु। लकड़ी

अति कठोर, खेतीके औजारोंके लिये उपयोगी।

उत्पत्ति स्थान—भारतमें सर्वत्र, सिलोन, जावा, सुमात्रा, दक्षिण चीन, पूर्व आफ्रिकाका उष्ण प्रदेश।

रासायनिक संगठन—फलोंमें चतुर्थांश गर्भ होता है। जिसमें वामक, साबुनसदृश द्रव्य (Saponins) लगभग ⅓ (१ फलमें २ रत्ती लगभग), वेलेरियनिक अम्ल, मोम (Wax), राल (Resin), रंग आदि मिलते हैं।

गुणधर्म—भाव प्रकाशके मतानुसार मदनफल रसमें तिक्त उपरस, मधुर, उष्णवीर्य, लेखन, लघु, वान्तिकारक, विद्रधिहर, प्रतिश्याय नाशक व्रणघ्न, रूक्ष तथा कुष्ट, कफ, आनाह, शोथ, गुल्म और व्रणोंका नाशक है। अन्य निघण्टु-कारोंने रसमें चरपरा-कडवा, ज्वरहर, शोफनाशक और वातहर गुण भी दर्शाये हैं। वृक्षकी छाल ग्राही है। एवं फलोंमें भी कुछ कषायद्रव्य अवस्थित है।

सुश्रुतसंहिताकारने सूत्रस्थानमें और चरकसंहिताकारने कल्पस्थानमें मदनफलको वमन द्रव्योंमें श्रेष्ठतम कहा है। क्योंकि इसके सेवनमें हानि होने का भय नहीं है। एवं सिद्धि स्थानमें लिखा है कि मदनफल तो सब रोगोंके अविरोधी है। रसमें कषाय और तिक्तसह मधुर, अरूक्ष, चरपरा, उष्णवीर्य और पिच्छिल है। एवं कफपित्तनाशक, शीघ्रकार्यकारी, अनत्ययरहित और वातानुलोमन है। सूत्रस्थानमेंभी मदनफलमें वमन, आस्थापन वस्ति और अनुवासन वस्तिमें उपयोगी माना है।

डाक्टर देसाईने लिखा है कि मैनफलके बीज और फलके गर्भके गुणमें अन्तर है। बीज वामक और कफघ्न है। फलगर्भ और फलत्वचा (छिल्टे) की क्रिया आमाशय और अन्त्रपर होती है। इससे रक्त और पूयमिश्रित कफ दूर होते हैं और उस स्थानकी वेदना कम हो जाती है। समग्र फल कफघ्न है, मैन-फल उत्तम वमन द्रव्य है। १ फलको जौकुटकर २॥ तोले जलमें १ घण्टा भिगोदें। फिर खरलमें घोट, कपड़ेसे छान, उसमें शहद (६ माशे) और सैंधा-नमक (३ से ६ रत्ती) मिला प्रातःकाल खालीपेट पिला देनेसे १ घण्टेमें १-२ अच्छे वमन हो जाते हैं। कभी-कभी इससे विरेचन भी हो जाता है। आशु-कारी रक्तप्रवाहिकामें मैनफल सेवनसे अच्छा लाभ पहुँचता है। एक फलके कवचका कपड़छान चूर्णकर, ३ विभागकर, दिनमें ३ वार (शहदके साथ) दिया जाता है। प्रवाहिकामें भीतरके बीज नहीं देना चाहिये।

मूदीन शेरीफके मतानुसार मदनफल इपिकाकके प्रतिनिधिरूप उत्तम प्रवा-हिकानाशक द्रव्य है। उन्होंने फलगर्भका चूर्ण उदरसेवनार्थ उपयुक्त माना है। वमनार्थ मात्रा ४० ग्रेन और प्रवाहिकामें १५ से ३० ग्रेन। (वमन कार्यार्थ बीज और छिल्टेका उपयोग करना चाहिये, फल गर्भसे वान्ति नहीं होती।)

अमरिकन मेडिकल डिक्शनेरीमें भी मदनफलमें प्रबल वामक द्रव्य दर्शाया है। अर्क (Tincture) की मात्रा १५ से ६० बूंद लिखी है। मदनफलमें वेलेरं-यनिक एसिड होनेसे यह अर्क जटामासीके समान कुछ अंशमें वातशमन कार्य भी करता है। अतः अर्क आक्षेप शमनार्थ काली खांसी और उन्मादमें देसकतेहैं।

फल संग्रह विधान—चरकसंहिताकारके मतानुसार मदनफल संग्रह वसन्त और ग्रीष्म ऋतुके मध्यकाल पुष्प और अश्विनी नक्षत्रमें या मृगशिरा नक्षत्रके मैत्र मुहूर्तमें करें। जो फल हरे न हों, सडे गले न हों, कृमियोंने न खाया हो, वैसे पके पाण्डु वर्णके लेवें। उनको पोंछ कुशाके समान गुच्छोंसे लपेटकर ऊपर गोबर लपेट देवें। फिर सुखाकर ८ दिनतक अनाजके ढेरमें दबा दें। जिससे वे नरम और मधु सदृश प्रिय गन्धवाले हो जाते हैं। फिर उन फलोंको निकालकर धूपमें सुखा लेवें। अच्छी तरह सूख जानेपर तोड़कर बीजोंको निकाल लें। उनको घी, दही, शहद तथा तिल कल्कमें मसलकर सुखा लें। पश्चात् सम्हालकर घडे (अमृतवान) में भर लें।

वमनविधि—भूतकालमें जिस रोगीको वमन कराते थे, उसे पहले २-३ दिनतक स्नेहन और स्वेदन कराते थे। पश्चात् मांस रस, दूध, दही, उड़द या तिल आदि पदार्थका भोजन करा, कफका उत्क्लेश कराते थे। एवं मैनफलके बीजोंको मुलहठीके क्वाथ या अन्य अनुपान द्रव्यके रसमें रात्रिको भिगो देते थे। फिर सुबह अगले दिन सेवन किया हुआ भोजन पच जानेपर, स्नान, बलि-कर्म, होम, मंगलकर्म तथा प्रायश्चित्त विधि (जप आदि) करा (अत्यधिक स्नेहन न किया हो ऐसे रोगीको) खाली पेट यवागूके साथ घृतपान कराते थे। पश्चात् मदनफलके बीजोंको मसल निचोयाकर घी, शहद और सैंधानमक मिली शराव (प्याला) में मिलाकर पिला देते थे। पिलानेके समय रोगीको पूर्व दिशा या उत्तर दिशामें मुख रखकर बैठाते थे। एवं औषधको अभिमन्त्रित भी करते थे। विशेषतः कफज्वर, गुल्म, उदरशूल और प्रतिश्याय रोगीको इस प्रकार वमन कराया जाता था। इस प्रकारकी अन्य विधि भी और रोगोंकेलिए दर्शायी है। यह औषध आमाशय पित्त आनेतक पिलाते रहनी चाहिये। यह विधि चरकसंहिताकारकी है। अष्टांगसंग्रहकारने भी यही दी थी।

मात्रा—वमनार्थ-१० से ३० रत्ती। आमातिसारमें १ से २ माशे। वात शमनार्थ अर्क १५ से ६० बूंद (अर्क १ से ५)

उपयोग—मदनफलका उपयोग चरकसंहिता और सुश्रुतसंहिता दोनोंमें हुआ है। कफप्रकोपयुक्त अनेक रोगोंमें वमन, आस्थापन वस्ति और अनुवासन वस्ति कर्ममें इसकी योजना की है। इसके अतिरिक्त बाह्य लेपादिरूपसे भी प्रयुक्त होता है।

वान्तिकर द्रव्यके २ प्रकार है। एक आमाशयकी वातवाहिनियोंपर उत्तेजक कार्य करके वमन कराता है। दूसरे प्रकारके द्रव्य मस्तिष्कस्थ वमन केन्द्र पर असर पहुँचाकर कार्य करता है। इनमें मदनफल पहले प्रकारका द्रव्य है। अत आमाशय और श्वसनसंस्थानमें सगृहीत कफपर कार्य करता है। निर्बल मनुष्य और बालकोंको भी यह निर्भयतापूर्वक दिया जाता है। बालकको सारक, उदरकृमिघ्न और कफपित्तघ्न गुणकी प्राप्ति होती है।

मदनफलके अतिरिक्त रीठा, वच, अंकोल, आक, फिटकरी, नीलाथोथा आदि अनेक वामक औषधिया हैं। किन्तु इन सबमें कफशोधन कार्यमें मदनफलको श्रेष्ठ कहा है। कारण, इससे विषप्रकोप या हृदयावसादन नहीं होता। एवं यह आमाशय आदिको हानि नहीं पहुँचाता।

मदनफलका कार्य कफको बाहर निकालना है और शोधन करना है। इस हेतुसे आमाशयके साथ श्वसनयन्त्रको भी लाभ मिलता है।

लघु मात्रामें उदरसेवन करनेपर तिक्त रसके कारण आमाशयकी श्लैष्मिक कलासे निकलने वाले रसका शोधन होता है। किन्तु मदनफलमें मधुर रस और लेखनगुण होनेसे तिक्त रसके कार्यमें अन्तराय आता है। अर्थात् दीपन-पाचन क्रिया कर नहीं सकता। यदि दीपन पाचन गुणकी प्राप्ति इष्ट हो तो मदनफलके साथ मुलहठी, पीपल, आवला और सैंधानमककी योजना करनी चाहिये।

मदनफलका कार्य आमाशयपर होनेके अतिरिक्त अन्त्रमें जानेपर वहा अपने कसैले उपरसका प्रभाव पहुँचाता है अर्थात् ग्राहीगुण दर्शाता है। इस हेतुसे यह अतिसार और सग्रहणीमें हितावह रहता है।

मदनफलको वातहर वस्तिद्रव्योंके साथ मिलानेपर कफ, विष, आमको दूर करके वातशमन करनेमें और वातनाडियोंके बलकी वृद्धि करनेमें अच्छी सहायता पहुँचाता है। एव अनुवासन वस्तिके अनधिकारीको और अनुवासन बस्ति लेने वालोंको आस्थापन (अर्धमात्रिक आदि) बस्ति दी जाती है। उसमें मैनफल मिलानेपर अन्त्रशोधनमें सहायता मिलती है। एव बलवर्द्धक, वर्णकारण वृष्य और शक्तिप्रद गुणकी प्राप्ति होती है।

१ कफपित्तप्रकोप—रात्रिको १ या २ मदनफलका जौकुटकर ५ तोले जलमें भिगों देवें। सुबह निवायाकर, मसल, छान, शहद ६ माशे तथा पीपल और सैंधानमक ४–६ रत्ती मिलाकर पिला देनेसे बिना कष्ट वमन होकर दूषित कफ पित्त निकल जाते हैं।

कफप्रकोपमें बालकको भी फलका कवच जलमें घिसकर पिलाया जाताहै।

२ विषप्रकोप—लगभग १० तोले निवाये जलमें २–३ फलोंकी छालके चूर्णको मसल शहद और सैंधानमक मिलाकर पिला देनेसे १५–२० मिनटमें

वान्ति होकर आमाशयमें रहा हुआ सब विष निकल जाता है। जल्दी वमन करानी हो तो नमक मिला हुआ निवाया जल आध पोन सेर और पिला देना चाहिये।

३ अतिसार—फलगर्भका चूर्ण ४ से ८ रत्ती शहदके साथ दिनमें ३ बार देनेसे पक्क अतिसार, आमातिसार, रक्तातिसार और प्रवाहिका ३ दिनमें नष्ट हो जाते हैं।

४ उदरकृमि—१ माशा फलगर्भको शहदमें देनेसे शौच शुद्धि होती है और कृमि नष्ट हो जाते हैं।

५ मासिक धर्मविकृति—मैनफल गर्भ दूने गुड़में मिला लम्बी गोली बना जननमार्गमें धारण करनेसे कीटाणु नष्ट होते हैं। प्रदाह दूर होता है, मासिक धर्ममें होनेवाली वेदना दूर होती है और मासिकधर्म साफ आजाता है।

६ शीघ्र प्रसवार्थ—जननेन्द्रियको मैनफलका धुआँ देवें और कलिहारीके मूलको डोरेसे बाधकर सूतिकाके हाथ और पैरोंपर बांधनेसे कष्ट दूर होकर तुरन्त प्रसव हो जाता है।

७ जूवें मारनेके लिये—मैनफलका रस शामको शिरपर लगाकर मर्दन करें और सुबह रीठेके जलसे शिर धो लेनेपर सब जू मर जाती हैं।

८ अस्थिशूल—ज्वर आदि कारणसे हड्डीके आवरणमें प्रदाह (Periostitis) हो जाता है। फिर हड्डीमें वेदना होती रहती है। उस स्थानपर मदनफलको जलमें घिसकर लेप करनेसे लाभ हो जाता है।

सूचना—वमनार्थ, हो सके तब तक सगर्भाको नहीं देना चाहिये।

(६६) मोरशिखा

सं० मयूरशिखा, नीलकण्ठशिखा, मधुच्छदा। मोरशिखा। बं० मयूरशिखा। मा० म० गु० क० मोरशिखा। ले० Adiantum Caudatum

परिचय—एडिएण्टम=बालसदृश शिखावाले पर्ण। कौडेटम=काण्डके अन्तमें पुच्छसदृश मृदु, सकडा, उपाङ्गयुक्त। डोरेसदृश मूलोंके गुच्छयुक्त क्षुद्र क्षुप (Fern)। कोमल मध्यदण्ड (Rhachis) युक्त छोटा क्षुप। मध्य-दण्डके दोनों ओर अन्तरपर रचना। पर्णदण्ड (Stipes) २ से ४ इञ्च लम्बा। गुच्छेदार, पर्णयुक्त, तार जैसा, फैला हुआ, तेजस्वी काले गहरे धूसर। पान (Fronds) मध्यदण्डके दोनों ओर अन्तरपर ६ से १६ इञ्च लम्बे, रेखाकार या रेखाकार लम्बगोल, पत्ताकार, बहुधा तेजस्वी हरे। पत्रयुक्त, छोटे वृन्तयुक्त। रचना चर्म सदृश। मध्यदण्ड (Rhachis) और पर्णदण्ड लवे कोमल बालोंसे आच्छा-दित। बीज समूह पानोंके अन्तमें। बीज जुलाईसे दिसम्बरतक। जनवरीमें सूख जाते हैं।

उत्पत्तिस्थान—भारतमें सर्वत्र, सिलोन, मलाया, पेनिनसुला, दक्षिण चीन, अफ्रिका का उष्ण प्रदेश, मलाया, जावाद्वीप। यह तालावके किनारे पर और दीवारोंपर एवं तरीवाले स्थानोंमें उत्पन्न होती है।
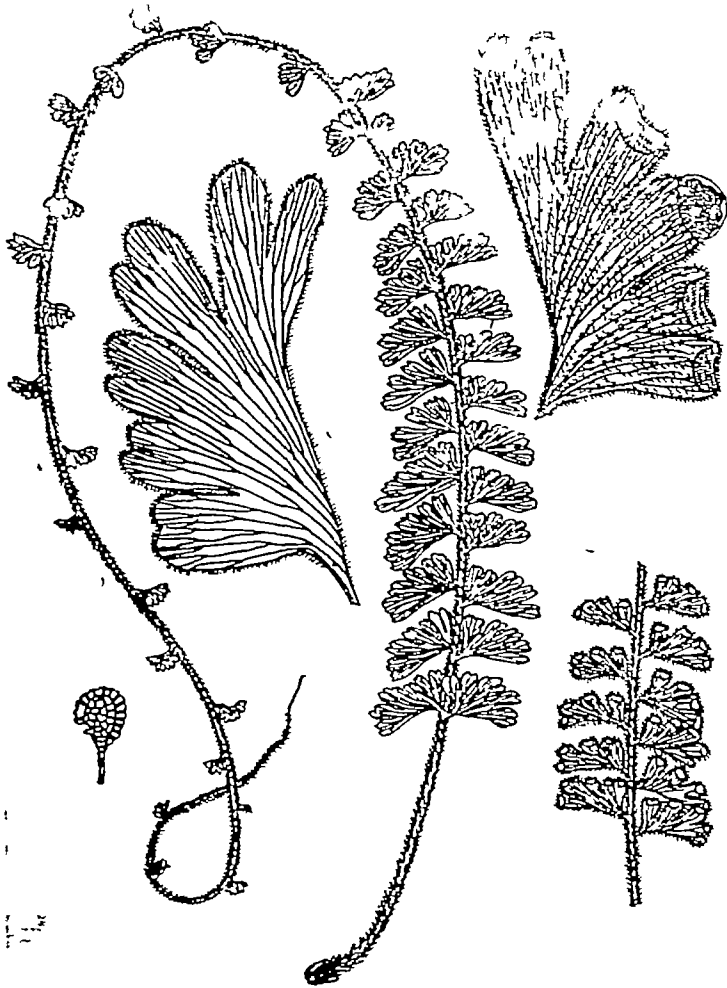
गुणधर्म—भावप्रकाशकारके मतानुसार, मयूरशिखा लघु, पित्त, कफ, और अतिसारकी नाशक है। कैयदेवजीने रसमें काषायाम्ल, विपाकमें अम्ल, शीतवीर्य, तथा पक्व और अपक्व अतिसारकी नाशक कही है।

डाक्टर कीर्तिकरने पानोंका उपयोग कफ और ज्वरपर हितावह माना है। एव चर्मरोगमें वाह्योपचारमें उपयोगी कहा है।

मात्रा —पञ्चाङ्ग चूर्ण १ से २ माशा। पानोंमें अधिक गुण रहता है।

उपयोग—मयूरशिखा प्राचीनग्रन्थोंमें प्रतीत नहीं होती। ऊपर जो वनस्पति शास्त्रने नाम दिया है और उसके अनुरूप परिचय लिखा है, वह हंसराज जातिसमूहकी औषधि है। अत हंसराजकेगुणोंसे मिलते जुलते गुण इस मयूरशिखामें हैं।

१ अतिसार—पञ्चाङ्गका चूर्ण शीतल जलके साथ दिनमें ३ वार २-३ दिनतक देनेसे अतिसार शमन होजाता है।

२ गर्भ धारणार्थ—मोरशिखा ६ माशेको घीमें (थोडी शक्कर मिला) चौथेसे १० वें दिन तक (७ दिन तक) रोज सुवह ऋतुस्नाता स्त्रीको देते रहें। पहलीवार न हो तो दूसरे और तीसरे मासिकधर्मके पश्चात भी देना चाहिये।

३- वालकोंकी कास—मयूरशिखाका चूर्ण १-१ रत्ती शहदके साथ दिनमें ३ वार देनेसे खासी दूर होजाती है।

(२)

मयूरशिखा द्वितीय जाति—सं० मयूरशिखा, मतान्तरमें मुर्गशिखी। हि० मयूरशिखा, पीलामुर्गा, लालमुर्गा। व० लालमुर्गा, मोरगफूला रा० कुकरडी, म० देवकुरडु। गु० लालफूलनी लावडी। काश्मीर-मवाल। विहार-सिरवारी। अं० Cocks Comb लें० Celosia Argentea var Cristata

परिचय—वर्षायु, खडा, शाखायुक्त, सूक्ष्मरुएंदार या चिकना क्षुप। ऊंचाई १ से ४ फीट। पान रेखाकार या वल्लमाकार नोकदार, क्रमान्तर, ९ इञ्च लम्बे और २ इञ्च चौडे। पुष्पदण्ड नलिकाकार, कठोर, कभी कभी शाखायुक्त। मंजरी (Cocics Comb), तेजस्वी गुलावी, लगभग १ से ४ इञ्च लम्बी, प्रारम्भमें नोकदार। पुष्प छोटे (¼ इञ्चके), वहुधापीले। वीज छोटे, काले तेजस्वी। फल और वीजकाल अगस्तसे डिसम्बरतक।

उत्पत्तिस्थान—वंगाल, विहार, काश्मीर आदि। यह अन्य स्थानोंमें वागकी शोभाके लिए वोया जाता है।

वक्तव्य—राजनिघण्टु कारने " वर्हिचूडा रसेस्वादुर्मूत्रकृच्छ्र विनाशिनी, वालग्रहादिदोषघ्नी वश्यकर्माणि शस्यते ॥" इस गुणभेदसे ओषधि दूसरी होनेका अनुमान होता है। यह दूसरी जाति राजनिघन्टुकारकी मयूरशिखा होनेका अनुमान है।

गुणधर्म--यह मयूरशिखा (मुर्गशिखा) रसमें मधुर, विपाक मधुर, मूत्रकृच्छ्रनाशक, वालग्रहहर और वशीकरणमें उपयोगी है।

निघण्टुरत्नाकरने इस लाल मुर्गेको संस्कृतमें देवकुक्कुट और मराठीमें देवकुरडू संज्ञादी है। शीतल, वृष्य, मूत्ररोग और अश्मरीका नाशक कहा है। विशेषगुणधर्म सफेद मुर्गेके गुणधर्ममें देखें।
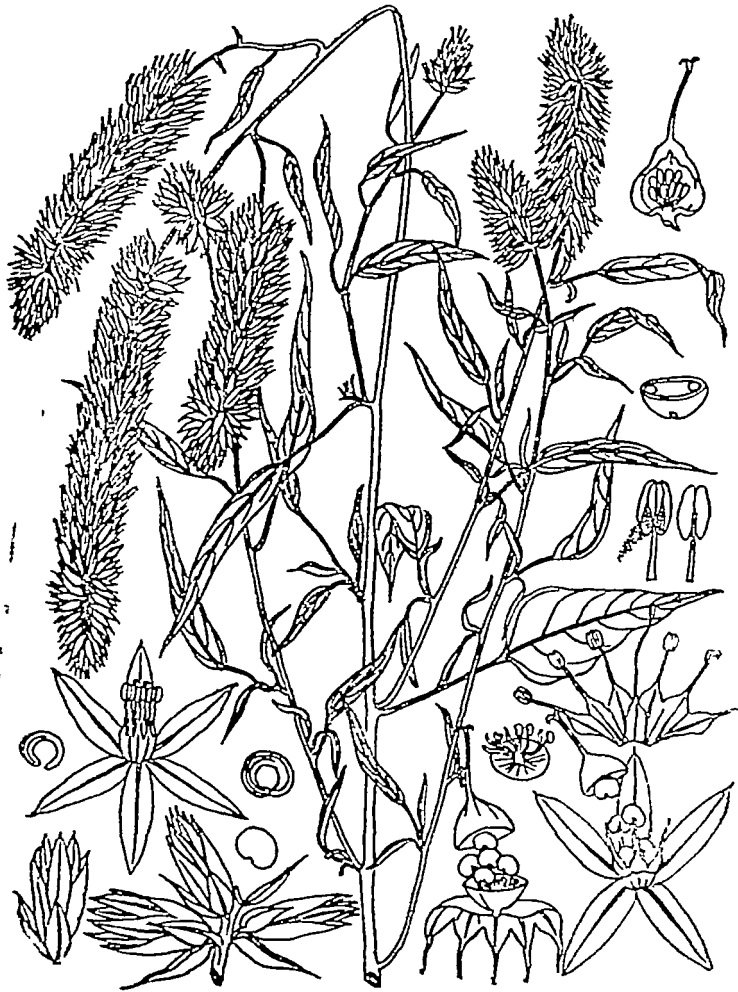
बंगालमें प्राय इस जातिके फूल और बीजोंका उपयोग होता है। पुष्प संग्राहक तथा अतिसार और अत्यार्तवमें हितावह है। बीज स्नेहन, शीतल, मूत्रजनन, रक्तप्रवाहिकानाशक और कफघ्न है। मूत्रल होनेसे शोथपर भी हितावह है। १ माशा बीज जलके साथ देनेसे मूत्र साफ आजाता है। शर्करा या सिकता जन्य मूत्रकृच्छ्र हो तो वह दूर होजाता है।

(६७) मौलसरी

सं० वकुल, मधुगन्ध, सिंहकेसरक, चिरपुष्प। हिं० मौलसरी, मौलश्री, मौलछिरी, बं० वकुल, बोहल, बुकुल। म० बोरसली, बकुली, ओवागी, वावली। गु०-बोलसरी। काठि० बरसडी, बकुली। ओरिसा—बोकुलो, बौलो। ते० केसर, पुन्नी, पोगडा, पारिजातमु, वकुलमु। को० ओवल। ता० अलगु, वगुलम मगिलम। मला० वकुलम, इरान्नी, मकुरम, इलनी। क० वकुल, कलहाले, केसर ओकुल। अ० West Indian Medlar

ले० Mimusops Elengi

परिचय—मिमुसोप्स=पुष्पाभ्यन्तरकोषका आकार बन्दरके मुँह जैसा। इलङ्गी=मलायलम नाम इलन्नी और तामील इलन्नीपरसे शास्त्रीयसंज्ञा। बडा, सर्वदाहरा, चिकना, वृक्ष। ऊँचाई ४० से ५० फीट, छाल काली धूसर, चिकने छिलकेवाली। शाखाएं चारोंओर फैली हुई, ऊँची चढनेवाली, मस्तिष्कका भाग सघन। पान अन्तरपर, अखण्ड, लम्बगोल, ऊपर सकडा, तलमें तीक्ष्ण या गोल, २ से ४ इञ्च लम्बे, १ से २ इञ्च चौडे, दोनों ओर चिकने तरंगदार किनारेवाले, चिमडे, ऊपरकी तहपर गहरे हरे और तेजस्वी, नीचे हल्के हरे। उपपान छोटे। पुष्प श्वेताभ, तारेके सदृश सुन्दर, १ इञ्च व्यासके सुगन्धित, पत्रकोणोंमेंसे निकली हुई सलाकापर एक एक। पुष्पबाह्यकोष जरा जैसे रुएदार। पुष्पाभ्यन्तर नलिका बहुत छोटी। पखडियां समान्यत ४-४, किन्तु कभी उसी वृक्षपर ३-३ भी। पुकेसर ८। स्त्रीकेशर १। फल अण्डाकार, चिकना पकनेपर पीले नारङ्गी रंगका, ॥। से १ इञ्च लम्बा, अण्डाकार। बीज लम्बगोल।

उत्पत्तिस्थान—मद्रास, महाराष्ट्रमें नैसर्गिक। गुजरात, बंगाल, बिहार पंजाब आदिमें बागोंमें बोया जाता है। बम्बईमें फूल जनवरीसे मार्चतक। बिहारमें फूल अप्रेल-मई। फल वर्षा ऋतुमें। सी०पी० में फूल फल मार्च-अप्रेल।

इस वृक्षकी छाल चमडेको रंगनेमें उपयोगी है। लकडी अति दृढ रक्ताभ धूसर। बीजोंमेंसे तैल निकलता है। औषधकार्यमें सर्वाङ्ग उपयोगी।

गुणधर्म—मौलसरी रसमें कसैली अनुष्ण वीर्य, विपाक चरपरा, हृद्य, ग्राही, गुरु तथा कफ, पित्त विषविकार, श्वित्र (उपकुष्ठ), कृमि, दंतरोगको दूर करती है। पक्के फल मीठे-कसैले, स्नेहन, ग्राही, बीजकी गिरी मूत्रल। पुष्प रुचिकर, सुगन्धित, शीतल मधुर-कषाय, स्निग्ध, मलसंग्राहक और दन्तरोगनाशक। पित्त, दाह, कफ, श्वास, मूत्रकृच्छ्र, विष, श्रम और अश्मरीका नाशक।

उपयोग—मौलसरीका उल्लेख चरक, सुश्रुतादि प्राचीन संहिताओंमें मिलता है। चरक संहितामें आसवयोनि फलवर्ग और सुश्रुतमें कषायवर्गके भीतर यह प्रतीत होता है। बकुलका दन्तरोग और मूत्रावरोधमें विशेष उपयोग होता है।

छालके क्वाथसे दुष्टव्रण, पूयप्रधान व्रणको साफ करते रहनेपर वह जल्दी भर जाता है।

१ दंतदृढ होनेके लिये—कच्चे फल या छालको चबावें, मोलसरीका दतौन करें या छालके चूर्णका उपयोग दन्तमंजन रूपसे करने अथवा छालके क्वाथके कुल्ले करनेसे १ सप्ताहमें लाभ होजाता है।

२- जीर्ण रक्त प्रवाहिका--पेचिश पुराना होनेपर यदि रक्त भी जाता हो, तो पक्के फल खिलानेपर बन्द हो जाता है।

३ शोथ—सर्वांग शोथ होनेपर मोलसरीके बीजोंकीगिरी, हरड और पुनर्नवा, तीनोंको २-२ माशे मिला फाण्ट बनाकर पिलानेसे मूत्रल असर होकर शोथ कम होजाता है। वात, व्रण या विषप्रकोपसे स्थानिक शोथ होनेपर बकुलकी छालको जलमें घिसकर लेप किया जाता है।

४ बालकोंकी कास--रात्रिको मौलसरीके २-४ फूलोंको १ तोले जलमें भिगो देवें। सुबह छानकर जल पिलावें। इस तरह ७ दिनतक प्रयोग करनेपर शुष्ककास निवृत्त हो जाती है।

५ मूत्रमें जलन—बकुलके पक्के १०-१२ फल रोज सुबह खाते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमे दाह शान्त हो जाता है। अथवा २५-३० फलोंको कुचल २० से ४० तोले उबलते जलमें डालकर फाण्ट बनालें। फिर उसमे २-५ तोले शक्कर मिलालेवें। शीतल होनेपर छानकर पिलादेनेसे २ घण्टेके भीतर दाह शान्त होता है और मूत्रावरोध दूर होता है। यह शर्बत अश्मरी और मूत्रकृच्छ्र में भी दिया जाता है अश्मरी होनेपर यह शर्बत १-२ मासतक नियमित रोज सुबह देना चाहिये।

६- शिरदर्द—मौलसरीके फूलोंका चूर्ण सुंघानेपर वातज और पित्तज शिरदर्द शमन होजाता है।

७ रक्तमेह—मौलसरीकी छालका क्वाथ पिलानेसे पेशाबमें रक्तजाता हो, तो बन्द होजाता है। यदि जलनसह रक्तस्राव होता हो, तो पक्के फल खिलाना चाहिये।

(६८) राई

स० राजिका, राजसर्षप, क्षुज्जनका। बं० राईसरिषा। गु० राई। म० मोहरी। क० सासिवे। तै० वर्णालु। ता० कडुगु। मला० कडुक। फा० सर्शप। अ० खर्दल, कुब्र। का० आसुर। अं० Indian Mustard ले० Brassica Nigra (काली बडी राई), B Juncia (काली छोटी राई) B Alba (सफेद राई)।

परिचय—यह वर्षायु क्षुप है। काली राईके बीज काले और सफेद राईके बीज मैले सफेद रगके होते हैं। राईका उपयोग मसालेमें सब देशोंमें होता है। राईमेंसे उड्डयनशील और स्थाई तैल २५ प्रतिशत मिलत हैं। स्थाई तैल सरसोंके तेलके समान होता है, किन्तु गुणमें अधिक उग्र है। इस तैलको सरसोंके तैलके साथ मिलाकर खाया जाता है।

राईका तैल उड्डयनशील या ईषत्त पीत होता है, वह ईथरमें मिल जाता है। आपेक्षिक गुरुत्व १०१५ से १०२० है। प्राय २९८ फार्नहीट तापांशपर उबलने लगजाता है। यह तैल उग्र गन्ध, तीक्ष्ण और चरपरे स्वादयुक्त है। त्वचापर लगानेसे थोडे ही समयमें फाला कर देता है। इस तैलका उपयोग डाक्टरीमें राईका मर्दन (Liniment of Mustard) में होता है।

गुणधर्म—राई चरपरी, कड़वी, उष्णवीर्य, अग्निप्रदीपक, शूलहर, कण्ठ-विकारनाशक, कृमिघ्न, उत्तम श्लेष्महर, रुचिवर्द्धक, पित्तकर और कफवातनाशक है। नेत्र और वृक्कोंको प्रदूषित करती है। अधिक मात्रामें रक्त पित्तकर और दाहक है। शाक चरपरा, उष्ण कृमिनाशक, वातशामक, कफहर, कण्ठरोगहर, स्वादु और अग्निप्रदीपक है।

राईका तैल दीपन, चरपरा, लघु, तीक्ष्ण, वातहर, पुरुत्वनाशक, केश्य, त्वचादोषहर, कफघ्न और मेदोहर है। अर्श, शिरदर्द, कर्णरोग, कण्डू, कुष्ठ, कृमि और शीतपित्तको दूर करता है। यह विशेषत मूत्रकृच्छ्रकारक है।

यूनानी मतानुसार राई अधिक सेवन करनेपर नशा लाती है और देहके भीतर जख्म करती है। दर्पनाशक काशनी और बादाम तैल हैं। प्रतिनिधि सलगमके बीज हैं। राई उत्तेजना, बल और प्रसन्नता प्रदान करती है। आमाशयके कृमियोंको मारकर निकाल देती है। रक्तको शुद्ध करती है। प्रतिश्याय, अग्नि-माद्य और वातरोगको भी दूर करती है। छातीपर शहद मिली राई लगानेसे शुष्ककास और यकृतकी वेदनामें लाभ पहुचता है।

डाक्टर वामन देसाईने राईकी क्रिया तिलपर्णी (हुलहुल) के समान दर्शायी है। यह छोटी मात्रामें दीपन-पाचन, उत्तेजक और स्वेदल है। बड़ी मात्रामें वामक है। राईसे तुरन्त वमन होती है और थकावट नहीं आती (कारण प्रतिफलित क्रिया द्वारा हृदय और फुफ्फुसकी क्रिया उत्तेजित हो जाती है।) राईके लेपसे त्वचा लाल हो जाती है। त्वचा और त्वचाके नीचे रक्ताभिसरण क्रिया उत्तेजित होती है। फिर उस स्थानमें बधिरता आजाती है। यदि लेप अधिक समयतक रह जायगा, तो वहां फाला हो जाता है। फिर फालेका सम्बन्ध वातवाहिनियों या रक्तवाहिनियों द्वारा जिन जिन स्थानोंसे होता है, उन सबके रक्ताभिसरणमें उत्तेजना आ जाती है। फिर फाले वाले

स्थानकी विनिमय क्रिया सुधर जाती है। राई मिलाये हुये निवाये जलसे किसी अवयवको धोने या स्नान करनेपर त्वचामें रक्तवाहिनिया विकसित होती हैं। देहके भीतरके अवयवोंका रक्तदवाव कम हो जाता है। फिर शोथ कम हो जाता है, इस हेतुसे राईके लेपको शोथहर माना है।

सूचना—फाले उठानेके लिये राईका उपयोग न करें। क्योंकि यह अति दाहकारक है। फुन्सिया या फाला हो जाता है। फिर फालाका क्षत भी शीघ्र नहीं सूखता। केवल चर्मप्रदाहक (Rubefacients) अर्थात् त्वचा लाल बना कर शोथ शमनार्थ हो सकता है।

वाह्य प्रयोगसे सज्ञावहा नाड़िया (Sensory Nerves) में उग्रता उत्पन्न होनेपर प्रतिफलितक्रिया द्वारा हृदय और श्वासोच्छ्वास क्रिया उत्तेजित होती है। इस हेतुसे कभी-कभी मूर्च्छित मनुष्यको चेतना आ जाती है।

आभ्यन्तरिक प्रयोगसे (मसालेमें राई खानेसे) आमाशय और अन्त्रके भीतर उत्तेजना उत्पन्न होती है। जिससे आमाशयका रसस्राव वढ़ जाता है। और मंथनक्रिया सतेज होती है। परिणाममें क्षुधा प्रदीप्त होती है। अन्त्रमें इसकी उत्तेजना पहुचनेसे मल आर्द्रतर वनता है। इसके अतिरिक्त राई मूत्र-जनन क्रिया भी दर्शाती है।

राजिका शोधन—राईका औषध रूपसे उपयोग करनेकेलिये ऊपरका छिल्टा निकाल देना चाहिये। इस हेतुसे राईको थोड़ा जल लगाकर कुछ समय तक फैला दें। फिर चक्कीमेंसे निकाल लेनेपर छिलके पृथक् हो जाते हैं। उसे सूपसे फटककर अलग कर लेवें। इसे चक्कीमेंसे पीस आटा बनाकर बोतल में भर लेवें।

उपयोग—राईका उपयोग प्राचीन कालसे हो रहा है। चरक सहिता और सुश्रुतसहितामें भी राईका प्रयोग मिलता है। अग्निमाद्य, अपचन, विषप्रकोप, आफरा, उदरशूल, कफ प्रकोप, आमवृद्धि, कृमिरोग, श्वासरोग और हिक्का रोगमें तथा मृत गर्भको वाहर निकालनेकेलिये राईका उदरसेवन कराया जाता है। एव वाह्योपचार रूपसे, कर्णपाक, कर्णमूलशोथ, सधि स्थानकी पीडा, वातशूल, कक्षा, शोथ, वालकोंकी खासी, व्रण, गांठ, अंजनी, पीनस, शिरदर्द, अर्श, उदरकृमि, श्वेतकुष्ठ, वातरक्त, गर्भाशयकी विविध वेदना, बालकोंका अजीर्ण तथा विविध अन्तर प्रदाह (फुफ्फुसावरणप्रदाह, यकृदावरणप्रदाह, श्वासनलिका प्रदाह, बीजाशयप्रदाह, मस्तिष्कावरण प्रदाह) आदिमें राईका लेप किया जाता है। सन्निपातमें देह शीतल होनेपर और प्रसवकष्ट होनेपर राईसे मर्दन कराया जाता है। अपस्मारकी मूर्च्छामें राईका नस्य दिया जाता है। प्रत्युग्रता साधक (Counter Irritants) अर्थात् जिन उग्रतासाधक ओषधियोंकी क्रिया

सम्बन्धवाले स्थानपर प्रतिफलित करनी हो, ऐसे विविध रोगोंपर राईके प्लास्टर या पुल्टिस लगाये जाते हैं। इसकी क्रिया सत्वर प्रकाशित होती है। ज्वर, विसूचिका आदिकी अवसन्नावस्थामें उत्तेजना देनेके लिये काख (Armpit), छाती, माथल आदि स्थानोंपर पुल्टिसका प्रयोग किया जाता है।

सूचना—राईकी पुल्टिस बनानेकेलिये शीतल जल या सिर्का मिलाना चाहिये। कारण, उष्णजलमें राईका प्रधान वीर्य द्रवीभूत नहीं होता।

मासिकधर्मका स्राव अल्प होना, उन्माद और रोमान्तिका आदि पिटिका प्रधानरोग, इन सबमें राईके जलसे स्नान कराया जाता है। गर्भाशयका व्रत-प्रधान अर्बुद रोग होनेपर उत्तर बस्ति लगायी जाती है।

आखमें फूला पड़नेपर राईका अञ्जनमें उपयोग होता है। कर्णपाकमें राई और कपूर मिश्रित तैल कानमें डाला जाता है।

१ अपचन और उदरशूल—राईका चूर्ण १ से २ माशेको थोडी शक्करके साथ खिलाकर ऊपर ५-१० तोले जल पिलावें।

२ आफरा—राई २ माशेको शक्करके साथ खिलावें। ऊपर ६ रत्ती चूनेको ५ तोले जलमें मिलाकर पिला देवें। उदरपर राईका तैल लगावें।

३ विषसेवन—राईका चूर्ण १ तोलेको शीतल जलमें पीसें। फिर उसे ४०-६० तोले जलमें मिलाकर पिला देनेसे तत्काल वमन होकर विष निकल जाता है। एव अन्य वामक ओषधियोंके समान शिथिलता भी नहीं आती।

वक्तव्य—अफीम आदिसे विषाक्त होने, विसूचिकाकी प्रथमावस्था, सन्न्यास रोग (मूर्च्छा) का उपक्रम तथा जुखाममें कफाधिक्य होनेपर वमन करायी जाती है। इन सबपर राई सेवन कराना,यह अति निर्भय और उत्तम उपाय है।

४ मृतगर्भको बाहर निकालनेके लिये—राईके ३ माशे आटे और भूनी हींग ४ रत्तीको थोडी काजी (या शराब) में मिलाकर पिला देवें।

५ कफज्वर—जिह्वापर सफेद मैल, क्षुधानाश और तृषानाशसह मन्दज्वर रहता हो, तो राईका आटा ४-४ रत्ती सुबह-शाम शहदके साथ देते रहनेसे कफ प्रकोपसे उत्पन्न ज्वर दूर होजाता है।

६ श्वास—राई आध आध माशेको घी शहदमें मिलाकर प्रात सायं देते रहनेसे कफ प्रकोपसह श्वासरोग शमन हो जाता है। यदि अपचन होकर श्वास का दौरा हुआ हो, तो २-२ घण्टेपर २-३ बार राई देनेसे वेगशमन होजाता है।

७ कफप्रकोप—कासमें कफ अधिक गाढा हो जानेसे निकालनेमें अति कष्ट होता हो, तो राई ४ रत्ती, सैंधानमक २ रत्ती और मिश्री २ माशे मिलाकर प्रात. सायं देते रहनेपर कफ पतला होकर सरलतासे बाहर निकलने लगता है।

८ उदरमें छोटे छोटेकृमि—उदरमें चूरव (सूति) कृमि अथवा धान्याकुर

के सदृश मुड़े हुए अन्त्रदा कृमि हो जानेपर राईका आटा १-१ माशे, गोमूत्र ५-१० तोलेके साथ प्रातःकालको कुछ दिनतक लेते रहनेसे रहे हुए कृमि निकल जाते हैं और भावी उत्पत्ति बन्द होजाती है।

९ वातवृद्धि—राईके तैलमें पकवड़े या पूरी आदि तलकर खिलावें। राई और सरसोंके तैलको मिलाकर मालिश करें, फिर निवाये जलसे स्नान करें।

सूचना—मस्तिष्कादि कोमल स्थान और नेत्रपर तैल नहीं लगाना चाहिये। अन्यथा जलन होती है।

१० विसूचिका—यदि विसूचिका उत्पन्न हुये अधिक समय न हुआ हो, रोग प्रथमावास्थामें हो, तो राई १ माशेको शक्करके साथ सेवन कराया जाता है।

११ प्रतिश्याय—राई ४ से ६ रत्ती और शक्कर १ माशेको मिलाकर थोडे जलके साथ दे देनेसे प्रतिश्याय दूर हो जाता है।

१२ कर्णमूल शोथ—सन्निपात होनेपर कभी-कभी कानके मूलमें सूजन आजाती है। इस तरह कानमें पूय होनेपर भी सूजन आजाती है। दोनों प्रकारकी सूजनोंपर राईके आटेको सरसोंके तैल या एरण्ड तैलमें मिलाकर लेप कर देनेसे रक्त बिखर जाता है।

१३ सधिशूल और अर्धाङ्गवात—आमवात या सुजाकके हेतुसे या अन्य कारणसे सांधेपर सूजन आ जाती है और उसमें वेदना होती है। उसपर तथा नये अर्धाङ्गवातसे शून्य हुए अंगपर कपूर मिलाये हुए राईके तेलकी मालिश करनेसे रक्ताभिसरण क्रिया बलवान होकर दोषको दूर कर देते हैं। यदि अति चलनेके हेतुसे या व्यायामसे साधे साधेमें थकावट आगई हो और सारा शरीर टूटता हो तो भी तैलकी मालिशसे लाभ हो जाता है।

सूचना—सधिशोथमें त्वचाके नीचे जल (द्रव) सगृहीत हुआ हो, तो तैल की मालिश न करें। उसपर स्वेदन, सेक, लेप आदि उपचार किये जाते हैं।

१४ कक्षा—काखमें गाठ (कखौरी) होनेपर वह अति दुःख देती है। न बिखरती है और न जल्दी पकती है। दिनोंतक त्रास देती रहती है। उसे बिखेरने या पच्यमान अवस्थामें सत्वर पकानेके लिये गुड, गूगल और राईको मिला कपडेकी पट्टीपर लगा निवाया करके चिपका देवें। यदि पक गई हो तो फोडने के लिये राई और लहसुनको पीस पुल्टिस बनावें। फिर कखौरीपर एरण्ड तैल या घी वाला हाथ लगाकर पुल्टिस बाध देनेसे जल्दी फूट जाती है।

१५ शोथ—हाथ पैर मुड़जानेसे या अन्य आगन्तुक कारणसे सूजन आई हो तो एरण्डपानपर राईका तैल लगा निवायाकर बाध देनेसे वेदनासह शोथ दूर हो जाता है। इस तरह राई और नमकको जलके साथ पीसकर भी लेप किया जाता है।

१६ शीतलता और कम्प—शीतज्वरमें अधिक ठण्डी लगती हो तथा वेपन (कम्प) हो रहा हो, जल्दी शीतलता दूर न हुई हो तो राईको शहदमें मिलाकर पैरोंके तलपर लेप करें। फिर आध घण्टे बाद लेपको पोंछ लेवें। ठण्डी और कम्प दूर हो जायेंगे और शरीरमें तेजी आ जायगी।

१७ वातज वेदना—राई और थोड़ी शक्करको जलमें पीस, कपडेकी पट्टी पर लेपकर शूल स्थानमें चिपका देवें। लगभग आध घण्टेमें जलन होनेपर खोल लेवें। उस स्थानको जलसे धोकर घी या तैल लगा लेवें। यदि वेदना दिनोंसे मन्द-मन्द बनी रहती हो, तो राई और सुहिंजनेकी छालको मट्ठेमें पीसकर पतला लेप करें।

१८ व्रण—फोड़ेमें कीडे पड गये हों तो सब कीड़ोंको निकालकर उसे शुद्ध करनेके लिये राईके चूर्णको घी-शहदमें मिलाकर लेप कर देनेसे कृमि मर जाते हैं।

१९ गाठ—किसी भी स्थानकी गाठ बढती हो तो उसपर राई और काली मिर्चके चूर्णको घीमें मिलाकर लेप करनेसे वृद्धि रुक जाती है। रसौली और अर्बुदोंकी वृद्धिको रोकनेमें राई अच्छा काम देती है।

२० अञ्जनी—नेत्रकी पलकपर फुडिया होनेपर राईके चूर्णको घीमें मिला-कर लेप करनेसे तुरन्त लाभ होजाता है।

२१ पीनस—नाकके भीतर व्रण होकर दुर्गन्धवाला पूय मिला श्लेष्मा निकलता रहता है, उसे पीनस कहते हैं। श्लेष्मा बहुधा अति पीला और अति दुर्गन्धवाला होता है। उसपर राईका आटा १ तोला, कपूर १॥ माशे और घी १० तोलेको मिला मलहम बनाकर लगाया जाता है। उसे लगानेपर छींके आकर पूयप्रधान श्लेष्मा निकलकर क्षत शुद्ध हो जाता है। फिर कपूर और सफेद कत्थेको घीमें मिलाकर बनाये हुए मलहम लगाते रहनेसे सरलतासे घाव भर जाता है।

२२ कर्णपाक—राई १ तोला, लहसुन १ तोला, कपूर १॥ माशे और तिल या सरसोंका तैल १० तोला लेवें। तैलको गरम करें। उफाण आनेपर नीचे उतार लेवें। वाष्प कुछ कम हो जानेपर राई और कपूर डालकर ढक्कन ढक देवें। शीतल होनेपर छानकर बोतलमें भर लेवें। इस तैलमेंसे २-४ बूंद कान में डालते रहनेसे पूयस्राव दूर होता है और क्षत भर जाता है।

२३ अर्श—अर्श रोगमें कफ प्रधान मस्से हों अर्थात् खुजली चलती हो, देखनेमें मोटे हों और स्पर्श करनेपर दुःख न होता हो, अच्छा मालूम होता हो, ऐसे मस्सेपर राईका तैल लगाते रहनेसे मस्से मुरझा जाते हैं।

२४ श्वेतकुष्ट—राईको आचार्योंने कुष्ठघ्न कही है। राईके आटेको ८

गुने पुराने गोघृत या धोये गोघृतमें मिलाकर लेप करते रहनेसे थोड़े ही दिनों में उस स्थानकी रक्ताभिसरण क्रिया प्रवल होकर दाग दूर हो जाते हैं। इस तरह पामा. व्युची, दाद आदिपर भी राईका मलहम लगाते रहनेपर लाभ पहुँच जाता है।

२५ कांटा दव जाना—त्वचाके भीतर काटा, काच या धातुकण घुस गया हो, जो सरलतासे नहीं निकल सकता, उसपर राईको घी शहद्में मिलाकर लेपकर देनेसे विजातीय द्रव्य ऊपर आ जाता है और स्पष्ट दृष्टिगोचर होजाता है।

२६ सन्निपातमें भ्रम—गलेपर राईका लेप करें। फिर त्वचालाल होनेपर लेपको हटाकर घी-तैल लगा लेवें।

२७ हृदयकी शिथिलता—हृदयमें कम्प होता हो या वेदना होती है। या व्याकुलता मालूम होती हो अथवा निर्वलता आ गई हो, तो हाथ पैरोंपर राईका मर्दन करनेसे रक्ताभिसरण क्रिया वलवान वनकर मानसिक उत्साह और हृदयकी गतिमें उत्तेजना आ जाती है।

२८ अफ़ीम विषज मूर्च्छा—अफीमका जहर अधिक वढ जानेसे रोगी मूर्च्छित हो गया हो या सर्प विषसे मूर्च्छा आ गई हो तो रोगीको जागरित करने या रखनेके लिये काख, छाती और सांथल आदि स्थानोंपर राईका लेप लगाना चाहिये। यह लेप जागरित होनेतक या अधिकसे अधिक १ घण्टे तक रखें। फिर खोलकर घी या तैल लगा लेवें।

२९ ज्वर और विसूचिकामें आसन्नावस्था—वुखार और कालेरामें रोगी कभी-कभी विल्कुल ठण्डा और अचेत हो जाता है, उसे उत्तेजना देनेके लिये कांख, छाती, सांथल आदि भागोंपर ऊपर कहे अनुसार राईका लेप लगाया जाता है।

३० अन्तरप्रदाह और शूल—देहके भीतर अवयव या अन्त्र त्वचासे संयुक्त हो, उनके प्रदाह, जैसे फुफ्फुसावरणप्रदाह, श्वासनलिकाप्रदाह, हृदयावरणप्रदाह, यकृदावरणप्रदाह, आमाशयप्रदाह, वीजाशयप्रदाह, मस्तिष्कावरणप्रदाह, वातनाड़ियोंमें शूल, उदरशूल आदि रोगोंपर प्रत्युग्रतासाधनार्थ राईके पानका प्रयोग किया जाता है। इस प्रयोगमें पीड़ित स्थानके निकटमें किसी सम्वन्धवाले स्थानपर प्लास्टर लगाया जाता है। यह क्रिया वातनाडियां और रक्तवाहिनियों द्वारा प्रतिफलित होकर लाभ पहुँचता है।

आशुकारी तीव्र प्रदाहमें जव प्रदाहजनित रसका शोषण कराना हो, तव यह प्रत्युग्रतासाधक प्रयोग किया जाता है। प्रदाहशमन और रस शोषणार्थ फुफ्फुसावरण. हृदयावरण मस्तिष्कावरण, उदर्य्याकला (Peritonium)

अर्थात् सारे उदरपर रहा हुआ आच्छादन, इन सबपर राईके प्लास्टरका उपयोग होता है।

मूत्राशयमें अश्मरी और पित्ताशयमेंसे अश्मरीकी नलिकामें प्रवेश होनेपर उत्पन्न शूल तथा वातनाडियोंके शूलकी वेदना निवारणार्थ प्रत्युग्रतासाधक प्रयोगका व्यवहार होता है। हिस्टीरियामें मस्तिष्कगत वातनाडीकेन्द्रकी उग्रता दमनार्थ प्रयोग होता है। गृध्रसी नाडी (Scitic nerve), जो चूतडसे नीचे पैरों की ओर जाती है, उसके शूल और उदरके पार्श्वभागमें नीचेकी ओर रहे हुए कटित्रिकोण प्रदेश (Lumbar Triangle) में शूल होनेपर लेप रखनेपर लगानेमें लाभ पहुँच जाता है।

विसूचिकामें मासपेशियोंका आक्षेप (दृढता) होनेपर प्लास्टर लगाया जाता है। आमाशयप्रदाहके हेतुसे होनेवाली दुर्दमनीय वमनके निवारणार्थ प्लास्टर प्रयोग अति उपकारक सिद्ध हुआ है।

सूचना—(१) जब सगृहीत रक्तको बिखेरकर वेदना निवारण कराना हो तब प्रत्युग्रतासाधक प्रयोग नहीं होता।

(२) फुफ्फुसावरणप्रदाहमें लेप या प्लास्टर छातीपर लगाया जाता है।

(३) मस्तिष्कावरण प्रदाहमें प्लास्टर गोस्तन प्रवर्द्धनक (Mastoid Process), जो शखास्थि ऊपर उठे हुए भागमें शंकु आकारका भाग है, उसके नीचे लगाया जाता है। शीर्षोदर अर्थात् मस्तिष्कमें जलसग्रह (Hydro-cephalus) होनेपर भी द्रव शोषणार्थ उसी स्थानपर लेप लगाया जाता है। एव हिस्टीरिया से किसी अगका पक्षवध होनेपर भी वहा ही लेप करना चाहिये।

(४) प्रलाप, मूर्च्छा, सन्यास, पक्षवध और विविध प्रकारके प्रदाहिक ज्वर, जिनमें मस्तिष्कमें रक्तसग्रहीत होता है, उन सबपर पैरोंके तल, चूतडोंके पश्चाद्देश या साथलके भीतरके भागमें राईका लेप लगाना चाहिये। एव राईके जलमें पैरोंको २०-३० मिनट तक भिगोना भी हितकारक है।

(५) श्वासकृच्छ्रताप्रधान रोगोंमें छातीपर राईका प्लास्टर लगाना चाहिये।

(६) गर्भाशयकी विविध वेदना अति तीव्र और कष्टप्रद होनेपर नाभिके नीचे या कमरपर राईकी पुल्टिसका प्रयोग वारवार करते रहना चाहिये।

३१ फुफ्फुसकी दृढता—फुफ्फुसप्रदाह (निमोनिया) शमन हो जानेपर यदि फुफ्फुसकी कठोरता (Consolidation) रह जाय तो उस भागपर उग्रता पहुँचानेके लिये राईकी पुल्टिस लगाई जाती है। फुफ्फुसकी दृढताके हेतुसे फुफ्फुसावरण या हृदयावरणमें रक्तसग्रह हुआ हो, तो वह भी शोषित होजाता है।

सूचना—(१) यदि प्रदाह युक्त स्थानसे बिल्कुल समीपमें राईका लेप लगाया जायगा, तो रक्तसंग्रहका ह्रास नहीं होता, अपितु वृद्धि होती है। जिससे उपकार नहीं होता, बल्कि अपकार होता है।

(२) हृदयके लिये यह नियम लागू नहीं होता। हृदयावरणके प्रदाहमें उससे थोड़ी दूरीपर (छातीपर) ही प्रयोग किया जाता है।

(३) प्रदाहकी प्रारम्भिकावस्थामें या उग्रता ह्रास होनेके पहले (तीव्र वेदना कालमें) लेप या पुल्टिस नहीं लगाना चाहिये।

(४) सगर्भावस्थामें स्तन आदि कोमल भागपर प्लास्टरका प्रयोग निषिद्ध है।

३२ स्वरवध—हिस्टिरियामें स्वरवध होगया हो अर्थात् बोलनेकी शक्ति नष्ट होगई हो तो कण्ठमें स्वरयन्त्रपर उग्रता पहुँचानेके लिये राईकालेप करना चाहिये।

सूचना—यदि स्वरयन्त्र प्रदाह हो और उस स्थानपर दबानेसे वेदना होती हो तो लेप नहीं लगाना चाहिये।

३३ अपस्मारकी बेहोशी—राईके चूर्णका नस्य देवें।

३४ दन्तशूल—राईको निवाये जलमें मिलाकर कुल्ले करानेसे वेदनाका दमन होता है।

३५ गञ्ज—मस्तिष्कमें किसी स्थानपर बाल उगना रुक जाय अथवा सूक्ष्म कृमि, जुए उत्पन्न हो जाय, तो राईके हिमसे (या फाण्टसे) शिर धोते रहनेपर बाल उगने लगते हैं। दारुणक (शिरपर छोटी छोटी फुन्सियां होना और खुजली चलना) और अरुषिका (छोटी छोटी पूयवाली फुन्सिया), दूर होते हैं तथा जुएं मर जाती हैं।

३६ मासिकधर्मके स्रावमें प्रतिबन्ध—मासिक धर्मके समय कष्ट होता हो या स्राव कम होता हो, तो जलको गरम (निवाया) कर उसमें राईका चूर्ण मिलाकर कमर डूबे उतने जलमें रुग्णाको १ घण्टे बैठानेपर योग्य परिमाणमें स्राव बिना कष्टसे होता है। डाक्टरीमें इस स्नानको हिपबाथ और सिट्ज बाथ (Hipbath or Sitz bath) संज्ञा दी है।

३७ गर्भाशयके क्षयमय कर्कस्फोट—गर्भाशयमें कर्कस्फोट (Cancer) होनेपर जीवन अति भयमें आ जाता है। कर्कस्फोटकी वृद्धि होती है और रक्तवाहिनियोंद्वारा दूर दूरके स्थानोंपर भी अर्बुद बनाये जाते हैं। उसमें शिरा या कैशिकाके टूटनेपर रक्त निकलता है। लसीकास्राव भी होता है। यह स्राव अति दुर्गन्धमय होता है। इस स्रावकी अधिक हानिसे बचनेके लिये सप्ताहमें २-३ बार राईके निवाये जलकी उत्तर बस्ति द्वारा धोते रहना चाहिये। स्राव पतले जल जैसा होनेपर चिकित्सासे अधिक लाभ होता है। स्राव गाढा होने पर कुछ चुनचुनाता है।

सूचना—राई २॥ तोलेको १० तोले शीतल जलमें भिगोवें। फिर मसल लुआब बनाकर ७० तोले निवाये जलमें मिला देवें।

राईका स्नान—राईके १० से ४० तोले चूर्णको पहले थोड़े शीतल जलमें भिगोवें। फिर मसल लुआब (Paste) बनाकर टबमें भरे हुए सब जलमें मिला लेवें। यह स्नान उत्तेजक है। रक्ताभिसरण क्रिया बढाता है।

स्थानिक स्नान अर्थात् कटितक स्नान, पैरोंका स्नान अथवा केवल हाथोंको डुबानेके लिये जलकी उष्णता १०० से १०५ तक रखनी चाहिये। कटि स्नानमें राई लगभग १० तोले मिलानी चाहिये।

राईकी पुल्टिस—बड़े मनुष्यके लिये अलसी ३ भाग और राई १ भाग तथा बालकोंके लिये अलसीका चूर्ण १० से १५ गुना लेना चाहिये। पुल्टिस सिरके या ठण्डे जलसे बनानी चाहिये। उसे चमडी लाल होनेतक १०-१५ मिनट रखनी चाहिये।

राईका लेप—राईको तीन गुने चावल या गेहूँके आटेके साथ मिलावें और ठण्डे जलसे लपटी जैसा बनावें। फिर ४-६ या ८ इञ्च चोकोन ब्राऊन पेपर या मलमलपर लेपनीसे पतला लेप करें। कागजके किनारेको मोड देवें। उसपर पतला मलमलका टुकडा चिपकाकर दुखते स्थानपर या जहा लगाना हो वहा लगा देवें। १०, २०, या ३० मिनटमें चमड़ी लाल होनेपर लेपको हटा लेवें। १० मिनटके बाद ५-५ मिनटपर देख लेवें। लेप हटानेपर तेलवाले हाथ से सब राईको पोंछ लेवें। फिर तैल या घी लगावें (राई लगी हो तो शीतल जलसे धोकर फिर तैल लगावें।)

राईके पान—राईके लेप लगे हुए कागज बाजारमें मिलते हैं, उसे राईके पान कहते हैं। तस्तरीमें थोडा गरमजल लेकर उसमें पानको फैलावें। राईकी बाजूको नीचे रखें। गीलापन आनेपर इच्छित स्थानपर लगा देवें। ऊपर रूई रखें, किन्तु पट्टी न बांधें। २० मिनटसे अधिक समय तक न रखें। अन्यथा फाला हो जायगा।

(६९) रामफल

स० रामफल. अग्रिमा, लवनी। हिं० रामफल, लवनी। म० गु० क० रामफल। कों० अतोन। मला० मनीला, नीलम। अ० Bullocks heart ले० Annona Reticulata

परिचय—यह वृक्ष छोटा है। मूल वेस्ट इण्डिसका है। पान ५ से ८ इञ्च लम्बे, १॥ से २ इञ्च चौडे। फल सीताफलसे बडे, लगभग गोलाकार। वर्षा ऋतुके अन्तमें पकते हैं। स्वाद सीताफल से मिलता, किन्तु कम मधुर, बीज सीताफल जैसे। शाखाकी छालके रेसेमेंसे डोरी बनती है। ताजे पानोंमेंसे नीलके सदृश रग निकलता है।

गुणधर्म—कसैला, मीठा और खट्टा, कफवात वर्द्धक, रुचि, दाह, तृषा, पित्त, श्रम और क्षुधाको मंद करता है। फल ग्राही और कृमिघ्न होनेसे आमातिसारमें पिलाया जाता है। फल सेवनसे उदरके सूक्ष्म कृमि मर जाते हैं।

उपयोग—रामफल अतिसार पेचिसमें पीडितके लिए हितकारक है। मूल का उपयोग अपस्मारपर होता है।

(७०) रूसा

स रोहिष, कतृण। हि० रूसा, रूसाघास, मिरचागन्ध। व० अग्नघास, रूसाघास। म० रोहिसजवन। बरार-तिरवाडी, गु० रोंसडों। अ० Geranium-grass. ले० Cymbopogon Schoenanthus.

(प्राचीन संज्ञा Andropogon—Schoenanthus)

परिचय—सिम्बोपोजन=नाव और पक्षीके पर सदृश आकारवाला, स्कीनेन्थस=सुगन्धित परागकोपयुक्त। एण्ड्रोपोजन—मजरी नरमादा विभागवाली। बहुवर्षायु, सुगन्धित तृण। मुख्य सनाका ३ से ६ फुट ऊंची, खडी। पान लम्बा, क्रमशः पतले अग्रभागवाले, तीक्ष्ण नोकदार। पुष्प युग्मोंमें उत्पन्न। पुपरचना विभाजित, १ से २ फुटलम्बी, सघन। मजरीविषम ३-४ पर्व युक्त। अन्य ४-६ पर्व युक्त, वृन्त रहित। उपमजरी ½ इन्च लम्बी, छोटी, चोंच सदृश। आच्छादक पुष्पकोष मजरी अनुरूप लम्बा, वृन्तयुक्त। उपमजरी २-४ युग्मों में हरी। वृन्त रहित उपमजरी बहुत छोटी। पुष्प काल वर्षा ऋतु। फलकाल शीत ऋतु।

उत्पत्ति स्थान—भारत के उष्ण प्रदेशों में नैसर्गिक और बोये जाने वाला। पंजाब से ब्रह्मदेश तक, बरार, दक्षिण भारत, सीलोन और अफ्रीका का उष्ण प्रदेश। इस घास की अनेक उपजाति भारत के भिन्न भिन्न प्रदेश में उत्पन्न होती है। बरार और निजाम स्टेट में इसका तैल निकाला जाता है। बरार में इस तैल को 'तिखाडीचे तेल' (Oil geranium) कहते हैं।

गुण धर्म—कैयदेवजी के मतानुसार कतृण रस में चरपरा, कड़वा, उष्ण वीर्य, विपाक में चरपरा, वात कफ नाशक तथा रक्त विकार, कण्डू, हृद्रोग, कृमि, कास, ज्वर, श्वास, शूल, अजीर्ण और अरुचि का नाशक है। धन्वन्तरि निघण्टु कारने विसूचिका हर भी कहा है। चरक संहिता में स्तन्यजनन दशेमानि में इसका उल्लेख किया है।

डाक्टर देसाई के मतानुसार रोहिष तैल उष्ण, स्वेदजनन, मूत्रजनन, ज्वरघ्न, उत्तेजक और चेतना प्रद है। नूतन आमवातज वेदना और गंज (खालित्य) में इसका मर्दन कराया जाता है। प्रतिश्याय और कफ ज्वर में रोहिष फाण्ट (चाय) देने से लाभ होता है।

डाक्टर कीर्तिसर ने लिखा है कि आमवातज शूल और वात नाडी शूल में रोहिष तृप का मर्दन कराया जाता है।

(७१) रुद्रवन्ती

स० रुद्रवन्ती, चणपत्री, अमृतस्रवा, सजीवनी, रुद्रवन्ती। हि० रुद्रवन्ती, लाणा। सौ० पडियो। गु० रुदन्ती, पडीयो, लाणो। कच्छी–उण गुण। सि० गुण। म० रुदती, करडी, लोणा। सिलोन–पनीट्टकी। नामिक–चवेल। ते० उप्पुसनग। ले० Cressa Cretica
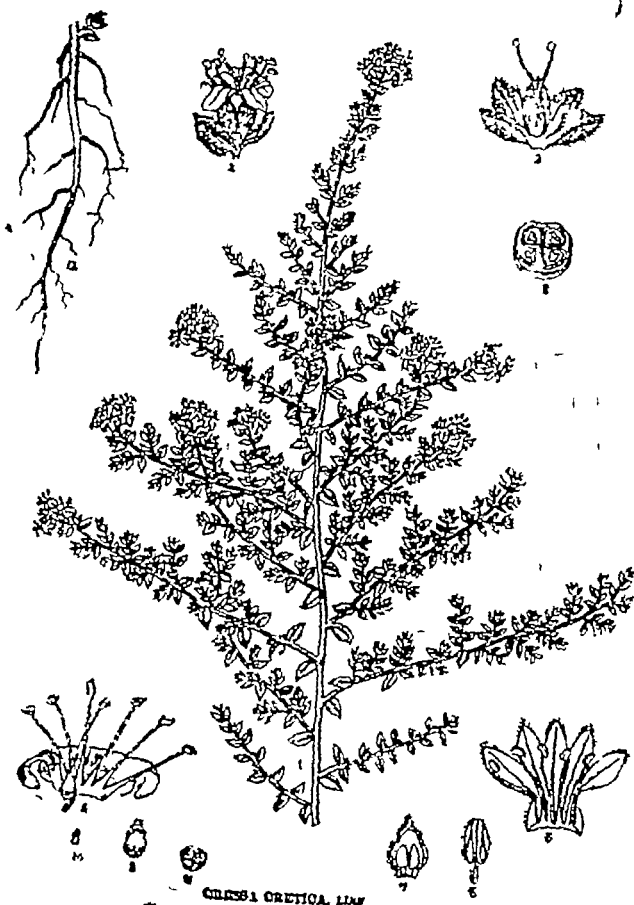
परिचय—क्रेसा=भूमध्य समुद्र के कीट द्वीप में होने वाला। क्रिटिका=

कीटसे सम्बन्ध वाला। खडा अनेक शाखा युक्त, वामन (Dwarf) गुल्म (क्षुप) ऊचाई ६ से १८ इन्च। काण्ड कोमल, अनेक शाखायुक्त, तेजस्वी, श्वेत वालो से आच्छादित। शाखाए सघन और क्रमश ऊपर छोटी छोटी। शाखाएं लगभग त्रिकोणाकार। शाखाएं लगभग मूलपरसे ही निकलती है। पान अनेक, लगभग वृन्तरहित, लगभग ¼ इन्च लम्बे, कुछ मोटे, निम्न पान, हृदयाकार, ऊपरके पान अण्डाकार या भल्लाकार, कोमल या रुएंदार, उग्र-वासयुक्त, स्वाद चिपचिपा, कसैला, नमकीन। पुष्प सफेद या गुलाबी, सामान्यत छोटे गुच्छमें, उपरके पानोंके अक्षस्थानमे निकली हुई पुष्पसलाकापर, वृन्तरहित, १/५ इन्च व्यासका। पुष्प बाह्यकोष सघन रुएंदार, ⅛ इन्च लम्बे, एक दूसरेके किनारेपर रहे हुए दलयुक्त पुष्पान्तरकोष चौगासदृश, गहरे पाच खण्डयुक्त, १/५ इन्च लम्बे। लम्बा। पुंकेसर ५ श्वेत, पखडियोंसे लम्बे, स्त्रीकेसर १, हरे, गोल, गर्भाशय और २ कोषयुक्त। बीजाणु (Ooules) ४।

मूल सफेद (स्थान भेदसे पीताभ या रक्त पीताभ) सूतली जैसा पतला ६ इन्च से २ फूट तक गहरा। विशेषत वह चार प्रधान जमीनमें होता है। इसी हेतुसे इसके नीचेकी जमीन आर्द्र भासती है। इस क्षुपपर शीतकालमे ओसके जल विन्दु पड़े हुए प्रतीत होते हैं। इस क्षुपका देखाव दूरसे चनेके क्षुप समान भासता है। पानपरसे रस बिन्दु टपकते रहते हैं। पुष्पकाल जुलाई से दिसम्बर। विहार बोटनीमें लिखा है कि जब गर्मीके दिनोंमें भूमि फट जाती है, तब पुष्प प्रतीत होते हैं।

उत्पत्ति स्थान—भारतके सब प्रान्तोंमें, सिलोन और उष्ण प्रदेशोंमें।

वक्तव्य—श्री शोढलाचार्य कथित रुद्रवन्तीका परिचय.—

चणपत्रसमं पत्रं क्षुप चैव यथाम्लकम्।
शिशिरे जलविन्दुना स्रवतीति रुदन्तिका॥

इस वचनके आधारसे इण्डियन मेडिसिनल प्लॅण्ट्स और गुजरात के सुप्रसिद्ध वनस्पति शास्त्री स्व० जयकृष्णभाई आदि ने इसे रुद्रवन्ती माना है। किन्तु वनस्पति सृष्टिकार रुद्रवन्तीकेलिये सन्देह दर्शाते हैं। शास्त्रकथित सब गुण इसमें प्रतीत नहीं होते।

रसायन (किमिया) बनानेवाले सवाई माधोपुरके समीपसे शीतकालमें मिलनेवाली रुद्रवन्ती लेजाते हैं या बहुधा वहा ही रस निकालकर लेजाते हैं। वह इससे भिन्न है। इसके पान बड़े होते हैं। क्षुपकी ऊचाई १॥-२ फुट होती है। पान कुछ बडे होते हैं। पानोंका स्वाद अम्ल होता है। किन्तु उसमेंसे बिन्दु नहीं टपकता और भूमि आर्द्र नहीं रहती। इसका क्षुप लानेका प्रयत्न १ वर्षसे होरहा है। आने पर विशेष जान सकेंगे।

गुणधर्म—राजनिघण्टुकारने रुद्रवन्तीको रसमें चरपरी, कडवी, उष्णवीर्य और रसायन है तथा क्षय, कृमि, रक्तपित्त,कफ, श्वास और प्रमेहकी नाशक है। उसे निघण्टु रत्नाकरकारने रसमें कपैली कडवी और विपाकमें चरपरी कही है।

मात्रा—पानोंका चूर्ण २ से ४ माशे।

उपयोग—प्राचीन ग्रन्थोंमें रुद्रवन्तीका नाम नहीं मिलता। रसायन बनाने वाले और रस प्रधान चिकित्साशास्त्रने रुद्रवन्तीका उपयोग किया है। घरेलू उपचार रूपसे प्रान्तीय भाषाके नामसे उपयोग होता रहता है।

यूनानी मत अनुसार यह रुद्रवन्ती खट्टी और बेस्वादु है। पान पौष्टिक, कामोत्तेजक और क्षुधावर्धक हैं।

रुद्रवन्ती कच्छ और सौराष्ट्रमें भैंसोंको खिलानेका रिवाज है इससे दूध बढ़ता है और मधुर भी बनता है तथा घी भी विशेष स्वादु और सुन्दर (बडे कणमय) बनता है। (गौ रुद्रवन्ती पसन्द नहीं करती।)

कफकास—रुद्रवन्तीके पानोंका चूर्ण शहदके साथ दिनमें ३ बार देते रहने से थोडेही दिनोंमें कफ निकलकर खासी शमन होजाती है।

रक्तपित्त—रुद्रवन्तीको जलमें उबाल कर उस जलसे स्नान करावें या उसकी वाष्प देवें।

स्तन्य बढ़ानेको—दूध बढानेके लिये स्त्रियोंको पञ्चाङ्ग का दुग्धावशेष क्वाथकर पिलाते रहना चाहिये।

रक्त विकार—रुद्रवन्ती पञ्चाङ्ग १ तोला और कालीमिर्च ४ रत्तीको जल के साथ पीस छानकर पिलाते रहने और पथ्य पालन करनेसे थोडेही दिनोंमें खुजली चलना, फुन्सियां होना, त्वचाशुष्कता, रक्तविकारके धब्बे आदि दूर होजाते हैं।

(७२) रेणूक बीज

स० रेणुका, कौन्ती, हरेणुका, पाण्डुपत्री। हि० म०गु० व० रेणुक बीज। चीन-नानटग। ले० Piper Aurantiacum

परिचय—प्राय दृढ चलनेवाली वेल। सूखनेपर पीताभरंग। काण्ड मूल देनेवाला, चिकना। शाखाएं न कठोर या काष्ठमय चिकनी। पानके नये अकुर पत्र वृन्तसह २ से ३ इञ्च लम्बे। पान मुख्यकाण्डपर और शाखापर ३ से ४ इञ्च लम्बे, चिमडे, लगभग १ इञ्चके पत्रवृन्तसह। अण्डाकार-गोलाकार या लम्ब गोल अण्डाकार, लम्बी नोकवाले, ऊपर तेजस्वी, नीचे रुएंदार। मंजरी १॥ से ३ इञ्च नीचे मुडी हुई। नरमादा मंजरीके पुष्प दण्ड लगभग १ इञ्च लम्बे पुष्प सघन गुच्छ रूप। पुष्पपत्र ढाल सदृश पुकेसर २। परागकोष वृक्काकार। यानि छत्र अति छोटे। फलमंजरी विविध लम्बाईकी। फल नये होने और

सूखनेपर शुण्डाकार (Pyramidal) । पकनेपर गोलाकार । 1/6 इञ्च व्यासका ।
उत्पत्तिस्थान—नेपाल और आसाम ।

वक्तव्य—पान नागरवेलके पानके समान । बीज शीतल मिर्चके जैसे गोल, सुगन्धवाले और स्वादमें दाहक और कडवे होते है । इन बीजोंका ही औषध-कार्यमें उपयोग होता है ।

आचार्य कथित वर्ग, स्थान, प्रयोग आदिकी दृष्टिसे रेणुक बीज सुगन्धित कीटाणुनाशक, उत्तेजक, दीपन, पाचन, कुष्ठहर, विषहर, वातकफनाशक और पित्तवर्द्धक द्रव्य विदित होता है । ये सब गुण इस रेणुक बीजमें रहे हैं । निर्गुण्डीके बीज या मेंहदीके बीजसे उक्त सब गुणोंकी प्राप्ति नहीं हो सकती । अतः रेणुक बीजके स्थानपर इसीका उपयोग करना चाहिये ।

गुणधर्म—भावप्रकाशके मतानुसार रेणुका पाकमें चरपरी, रसमें कडुवी, साधारण उष्ण, अनुरस चरपरा (गरम), लघु, पित्तवर्धक, दीपन, बुद्धिवर्द्धक, पाचक और गर्भपातक है, तथा कफ, वात, व्याकुलता, तृषा, कण्डू, विष और दाहकी नाशक है ।

निघण्ट रत्नाकरने रेणुक बीजको चरपरा, शीतल, मुखको विमल करनेवाला (रुचिकर), कडुवा, पित्तवर्द्धक, लघु, मेध्य, पाचक और गर्भपातक है, तथा दद्र, कण्डू, तृषा, दाह, विष, नपुंसकता, कफ, वात दुर्बलता और गुल्मका नाशक कहा है ।

उपयोग—रेणुकाका उपयोग प्राचीनकालसे हो रहा है । चरकसंहिताके भीतर रक्तपित्तशामक यवागू, विसर्पकी औषधि, शिरोविरेचन, वमनोपग औषधियां, ग्रहणी रोगपर मध्वरिष्ट, व्रणपीड़न और विषशमन आदि औषधियोंमें मिलायी है । एवं स्तन्यविकृतिको दूर करनेकेलिए खाने पीनेकी वस्तुमें रेणुका मिलानेकी सूचना की है । सुश्रुतसंहितामें पिप्पल्यादिगण और एलादि गणके भीतर रेणुका है । एवं सर्प विषके अनेक औषधोंमें विषशमनार्थ रेणुक बीजको मिलाया है । भगंदर, नाड़ीव्रण और उपदंश चिकित्सामें भी प्रयुक्त किया है । रेणुक बीजका उपयोग विषशमनार्थ अंजन, नस्य और पान रूपसे करानेका विधान किया है । सुश्रुतसंहिताका टीकाकार व्रणचिकित्सा चि० स्था० अध्याय २।७५ में हरेणुके लिए लिखते हैं कि, हरेणु रेणुकानाम गन्धद्रव्यम् । धन्वन्तरि निघण्टुकारने सुगन्धवाले चन्दनादि वर्गमें और राजनिघण्टुकारने पिप्पल्यादिवर्गमें रेणुका लिखी है ।

१ कासरोगपर—रेणुका बीज और पीपलको समभाग मिलाकर दहीके साथ सेवन करानेसे कासरोग शमन हो जाता है । जीर्ण शुष्क कास, जो वातप्रकोपसे उत्पन्न होती है उसपर यह शामक असर पहुँचाकर रोगका

निवारण कराती है।

२. हिक्कापर—रेणुका और पीपलका क्वाथकर उसमें १-१ रत्ती भूनी हींग मिलाकर पिलावें। आवश्यकतापर २-२ घण्टेबाद और २-३ बार देवें।

३ पित्तगुल्म—रेणुक बीजका चूर्ण शहद के साथ दिनमें २ बार देते रहें।

४ नूतनपक्षाघातपर—रेणुक बीजका क्वाथ पिलानेसे वातकफ प्रकोप सह पक्षाघातकी निवृत्ति हो जाती है।

५ दृष्टिमान्द्य—रेणुकबीजके चूर्णको ४ गुने आम और जामुन के फूलोंके रसमें खरल करें। फिर घी और शहदमें मिलाकर अंजन करनेसे पित्तप्रकोपसे उत्पन्न दृष्टिकी निर्बलता आदि अनेक रोग निवृत्त होते हैं।

६ नक्तान्ध्य—(अ) काला सुरमा, सैंधानमक, पीपल और रेणुकाको समभाग मिला अजामूत्रमें खरलकर बत्तिया बनावें। फिर जलमें घिसकर अंजन करनेसे रतौंधी दूर हो जाती है।

(आ) रेणुका पीपलके बीज छिलके निकाले हुए और छोटी इलायचीके दाने, तीनोंको मिला खरलकर यकृद्रस (पित्त) में अंजन करनेसे श्लेष्मप्रकोप-जनित रतौंधी दूर होती है।

(७३) रेवन्दचीनी

सं० क्षीरिणी, काञ्चन क्षीरी, हेमदुग्धा, हिमावती। हिं० रेवन्दचीनी, रेवन्द खटाई। ने० पद्मचाल। गढ़० अचु। गु० रेवची। म० रेवन्दचिनी, रेवाचीनी। ब० रेउचिनी। ता० ते० क० मला० रेवलचिन्नी। फा० रेवन। अं० Rhubarb ले० 1. Rheum Emodi (हिमालयकी रेवन्दचीनी) 2 Rheum Officinal (चीनकी रेवन्दचीनी)

परिचय—रेवन्दचीनीकी अनेक जाति हिमालयमें होती है। इनमें एक जो विशेष प्रचलित है वह यहा दर्शायी है। दूसरी जाति चीनकी है, उसका उपयोग डाक्टरीमें अधिक होता है। हिमालयकी जातिकी ऊंचाई ५-६ फीट। यह क्षुप नैसर्गिक है और इसे बोते भी हैं। इसका अदरखके समान किन्तु बडा कन्द होता है, पान पीपल (अश्वत्थ) के समान गोल, २ फीट व्यासके, ऊपर फीका हरा, नीचे पीला। पानोंका दण्ड २-३ फीट ऊंचा। व्यवस्थित मंजरीमें लाल फूल। फूल १/८ इञ्च व्यासके। फूल आध इञ्च लम्बा बैंजनी। इसके कन्दपरसे छाल निकाल टुकड़े कर सुखाते हैं, उसे रेवन्दचीनी कहते हैं, भारतीय मूलक.ले और चीनके मूल पीले होते हैं।

मात्रा—बारंबार देनेके लिये २ से ५ रत्ती शहद या नितारे जलके साथ। १ बार देनेके लिये ८ से १५ रत्ती। १ वर्षके बालकको १ रत्ती।

गुणधर्म—रेवन्दचीनी रसमें कड़वी, विपाकमें चरपरी, शोधनी और ग्राही है। पित्त, क्रमि, विष, कफ, मल, ज्वर, शोफ और रक्तपित्तको दूर करती है और दोष सघातका शमन करती है।

हिमालयके भीतर गढवाल जिलाके लोग रेवन्दचीनीके मूल, मजीठ और क्षार, तीनों मिलाकर कपडेको लालरंग चढाते हैं। ये मूल सारक, दीपन-पाचन और ग्राही हैं।

अकेले मूलोंका उपयोग करनेपर उदर में मरोडा आता है। जिससे उसके साथ सोडा बाई कार्ब या अन्य क्षार, सोंठ और इलायची आदि मिलाकर उपयोगमें लेना चाहिये। अन्य रेचक औषधोंके समान यह अन्त्रको शिथिल नहीं बनाती, किन्तु इसमें रेचनके साथ ग्राही गुण होनेसे अन्त्रको दृढ़ बनाती है। इसके अतिरिक्त इसकी शाखाको काट उबाल या कूट नमक मिलाकर खाते हैं। एव इसमेंसे मुरब्बा और अचार डालते हैं। तथा चटनी रूपमे भी खाते हैं। डा० सरचार्ज वाटे ने परीक्षा करनेकेलिये रेवन्दचीनी की डांडियोंको उबाल कर खाई थी उनको खूब जुलाव लगा था।

रेवन्दचीनीके सेवनसे पहले अधिक पित्त नि सरण होनेसे मल काले रगका होजाता है। फिर हल्दीके समान पीला निकलता है। सामान्यत १० रत्ती मात्रामें यह मृदुविरेचन कार्य करता है। ग्रहणीसे लेकर गुदनलिका तक समस्त अन्त्र पेशियों पर संचालन क्रिया करके उनके रसस्रावको बढा देती है। ३० रत्ती मात्रामें अन्त्रमेंसे वहुत जल नि सरण कराती है।

पहले विरेचन और फिर कब्ज करनेके स्वभाव वाली दो औषधियां हैं। एक रेवन्दचीनी और दूसरी एरण्ड तैल, किन्तु एरण्डतैलमें क्षार न होनेसे उदरस्थित अम्लताको दूर नहीं कर सकता। अत छोटे बच्चोंको एरण्डतैल देने की अपेक्षा रेवन्दचीनी विशेष हितावह है। रेवन्दचीनी का यह धर्म अति सौम्य है। इस हेतु से रेवन्द चीन्यादि चूर्ण में सज्जीखार (सोडा बाई कार्ब) मिलाया है। जिससे खराब स्वाद और आकुंचन क्षमता भी दूर हो जाते हैं। एव रेवन्द चीनीमें उदरमें मरोड़ा लानेका दोष है। इसे दूर करनेकेलिए सोंठ मिलायी है। सोंठकी उग्रताके शमन, स्वाद वृद्धि और अन्त्रकी श्लैष्मिक कलाको शान्ति पहुँचानेकेलिए इलायची मिश्रित की है। अन्त्रमें अम्लता बढनेपर अतिसार हो जाता है। उस अम्लताको दूर करनेमें रेवन्दचीनीका विरेचन प्रशस्त है। एक वर्षके शिशुको भी यह चूर्ण दिया जाता है। एव छोटे बच्चोंको मलावरोध होनेपर भी इस चूर्णसे विशेष उपकार होता है।

काञ्चन क्षीरी कल्पः—

रेवन्द चीन्यादि अर्क-मूलका चूर्ण २ औंस छोटी इलायचीके दाने और

धनियेका चूर्ण २ २ ड्राम, उत्तम शराब (४५%) २० औंस लेवें। सब चूर्ण को शराबमें भिगोवें। फिर पर्कोलेशन-यन्त्रद्वारा टपका लेवें। १८ औंस में कम हो, तो शेष रहे हुए रेवन्द चीनी चूर्णमें और शराब मिलाकर चुवा लेवें। फिर २ औंस शहद मिलाकर २० औंस पूरा करें। मात्रा-½ से १ ड्राम बार बार देनेकेलिये। एक समयकेलिये २ से ४ ड्राम।

फाण्ट—चूर्ण १ भागको उबलते हुए २० भागमें डालकर १५ मिनट बन्द रक्खें। फिर छान लेवें। मात्रा ½ से १ औंस।

सत्व—चलनीमें चूर्ण डाल ऊपर (६०%) शराब मिलावें। जब तक सत्व निकलता रहे, तबतक शराब डालते जाँय। तलेमेंसे, ऊपर रही शराब निकाल लेवें। फिर शेष थोडी शराब जो सत्वके साथ रही हो, उसे सुखा लेवें। मात्रा २ से ८ ग्रेन।

रेवन्दचीन्यादि वटी—मूलका चूर्ण २५ भाग, एलुवा २० भाग, बीजाबोल १४ भाग, साबुन १४ भाग, पीपरमेण्टका तैल २ भाग तथा शर्बत २५ भाग मिलाकर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। मात्रा—१ से २ गोलीतक। उपयोग मलावरोध और अपचनमें यह गोली रात्रिको सोनेके समय देनेसे सुबह उदरशुद्धि कराती है।

रेवन्दचीन्यादि चूर्ण—मूलका चूर्ण ६ तोले, सोंठ ३ तोले, सोडाबाईकार्ब २ तोले तथा और इलायचीके दाने १ तोला लेकर मिला लेवें। मात्रा—२ से १२ रत्ती तक।

उपयोग—रेवन्दचीनीका उपयोग बालक और बडे, सबकेलिये निर्भय रूपसे उदरशुद्धिकेलिये होसकता है। अपचन, आमातिसार, प्रवाहिकाकी प्रारम्भावस्था, शोथ, कामला, शीतपित्त, वातरोग और दुष्टव्रणपर व्यवहृत होता है।

ज्वरादि रोगमें निर्बलता अधिक होनेपर विरेचनकेलिये रेवन्दचीनीकी व्यवस्थाकी जाती है। स्वाभाविक मलावरोध दूरकरनेकेलिये रात्रिको भोजनकेबाद रेवन्दचीन्यादि चूर्ण अल्प मात्रामें दिया जाता है। अर्श रोग में भी आवश्यकता पर विरेचनार्थ यह दिया जाता है। किन्तु आकुंचन क्षमताके संशोधनार्थ रात्रिको दूधके साथ दो ड्राम एरण्डतैल देना चाहिये।

शिथिलताप्रधान अजीर्णरोगमें कभी कभी पतले दस्त लगजाते हैं। ऐसे रोगियोंकेलिये रेवन्दचीनी अति उपकारक है। अजीर्णके रोगीको रेवन्दचीनीके अर्क या चूर्णका सेवन स्वल्प मात्रामें प्रतिदिन करानेसे विलक्षण लाभ पहुँचता है।

शीतपित्त रोगमें बालक और स्त्रियोंके रक्तकी शुद्धिकरा रोगको निवृत्त करानेकेलिये रेवन्दचीनी विशेष उपयोगी औषध है।

वातरोगमें पीड़ा तीव्र न हो, ऐसी विरामावस्थामें भावी आक्रमणके दमनार्थ रेवन्दचीनी प्रशस्त औषध है। इस रोगमें अन्नपचन न होता हो, तो प्रतिदिन रात्रिको सोनेके समय रेवन्दचीन्यादिचूर्ण सेवन कराते रहना चाहिये। यह विरेचन छोटे बच्चेको देनेमेंभी हानिका भय नहीं है। अस्थिमार्दव पीडित बालक जिसकी हड्डियां अतिकमजोर या मुडी हुई हो, शरीर अस्थिपञ्जरवत् प्रतीत होता है, उदरबडा हो, उसकेलिये भी यह हितकर है।

१ **अतिसार, आमातिसार और प्रवाहिका**—गर्मीकेदिनोंमें अधिक धूपमें फिरने, या विगड़ने लगे हों, ऐसे फल खानेसे उत्पन्न अतिसार (ग्रीष्म कालीन अतिसार-Summer Diarrhea), आमातिसार, जिसमें मलके भीतर कच्चे सफेद आम जाते हैं और मलमेंसे दुर्गन्ध आती है उन सब पर और पेचिशके आरम्भमें विरेचन देनेकेलिये रेवन्दचीनी अन्य सब औषधियोंसे श्रेष्ठ है। कारण, इसके द्वारा अन्यस्थ बद्ध मल निकल जाता है। फिर इसकी संकोच क्रिया द्वारा अतिसारका दमन होता है। इस विकारपर सोडाबाई कार्ब और सोंठ मिश्रित चूर्ण विशेष लाभदायक है। मल निकल जानेके पश्चात् भी उदर पीडा और अतिसार रहजाय, तो अफीममिश्रित औषधि देनी चाहिये।

२ **बालातिसार**—छोटे बच्चोंको अधिक दूध पिलानेपर दूध उदरमें सडने-लगता है। फिर अम्लता बढ जाती है। जिससे अतिसार होता है। ऐसी अवस्थामें रेवन्दचीनी देनेसे सड़ने वाला दूध बाहर निकल जाता है, अम्लता कम होजाती है। तथा उदरशुद्धि होकर अतिसार स्वयमेव दूर होजाता है। यह कार्य रेवन्दचीनीके समान अन्य ओषधिसे नहीं होता।

३ **दुष्टव्रण**—जीर्ण और दुष्टव्रणपर रेवन्दचीनीका चूर्ण बुरकते रहनेसे या घिसकर लेप करते रहनेसे व्रण भरजाता है।

४ **मूत्रकृच्छ्रता**—मूत्रविरेचनके लिये रेवन्दचीनी हितकारक है। रेवन्द-चीनी, सोरा, शीतलमिर्च और छोटी इलायचीके दाने, इन चारोंको मिला ६-७ माशे चूर्ण दूधकी लसीके साथ सेवन करानेसे मूत्रशुद्धि होजाती है। सुजाक, मूत्रकृच्छ्र, मूत्रदाह होनेसे वार वार थोडा थोड़ा मूत्र आते रहना आदि विकारोंपर यह हितावह है।

५ **कामला**—पित्तनलिकामें पित्ताश्मरी रुकजानेपर कामला होता है। ऐसे समयपर रेवन्दचीनीका सेवन दूधके साथ करानेसे वह पित्तस्राव बढा अश्मरीको दूर हटा देती है। फिर पित्तस्राव अपने मार्गपर नियमित गति करने लगता है। जिससे कामला दूर होजाता है।

सूचना—(१) नवज्वर और आशुकारी प्रदाहमें रेवन्दचीनीका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

(२) जीर्णकोष्ठ बद्धता रोगमें विरेचन देनेके लिये रेवन्दचीनीका उपयोग नहीं करना चाहिये। अन्यथा कोष्ठबद्धता बढ़ जायगी।

(३) व्रणशोथ होनेपर रेवन्दचीनी को जल में घिसकर लेप किया जाता है।

(७४) लज्जालु

स० लज्जालु, समङ्गा, अञ्जलिकारिका, रक्तपादी। हि० लज्जालु, लाजवन्ती, लजउनी छुईमुई। बं० लज्जावती, लाजक। म० लाजाळू लाजरी।

लज्जालु - Mimosa Pudica के पान
- सामान्यावस्था और उत्तेजनावस्थामें

गु० रीसामणी, लजामणी। मला० तितरमणी, तोत्तावती। कना० लज्जा। ता० तोत्तलवादी। ते० पेद्दनिद्रकान्ति। प० लजवन्ती। ओ० लाजकुरी।

अं० Humble plant, Sensitive plant ले० Mimosa Pudica

A Normal Position — साम्यवस्था ।
b. After Stimulation — उत्तेजनावस्था ।
a. Petioles — पत्रवृन्त ।
s Secondary petiosle (petiolute) — दलवृन्त ।
p Pulvinus or leaf cushion at base of petiole — पत्रवृन्तका स्फीताधार (पत्रवृन्त के आधार स्थान की ओर स्फीत पत्र)

वक्तव्य—मिश्र पानको लम्बा वृन्त रहता है, जो ४ दलके अन्तमें होता है। इन प्रत्येक दलोंको गौण वृन्त, जो आधार स्थानमें स्फीत होता है और मध्य नाडी, जो छोटे गौण दलोंको आधार देती है। यह उभाड़ मुख्य पत्र वृन्तोंके आधार स्थानकी बडी स्फीतिको सूचित करते हैं। वह पिछलेका पतन और सामने सामने रहे है। दलोंकी प्रत्येक जोडीकी ऊपरकी सतह के साथ दलोंका एक दूसरेके विरुद्ध उत्थान कराता है।

परिचय—चारों ओर फैलने वाला छोटा गुल्म। ऊंचाई १॥ से ३ फूट। काण्ड और शाखाएनीचे झुके हुए, काटेदार और लम्बे रुए से आच्छादित। मूल आधसे २ फूट तक गहराईमें गया हुआ, रक्ताभ. सुगन्धित, दृढ तन्तुमय त्वचायुक्त। पान स्पर्शासहिष्णु. २ से ३ इञ्च लम्बे, द्विपक्षाकार, ४ द्वितीय वृन्तयुक्त। पत्रवृन्त १ से २ इञ्च लम्बा, रुए दार, आधार स्थानमें स्फीत। उपपान छोटा, रेखाकार-भल्लाकार, २ से ३ इञ्च लम्बा, लगभग वृन्तरहित। पत्र दल १२ से २० जोडी वृन्तरहित, चिमड़े। रेखाकार-लम्बगोल, नोकदार, ऊपर चिकना, नीचे रुए दार।

पुष्प गुलाबी लगभग ½ इञ्च चौड़ा, गोलाकार गुण्डी। इन पुष्पोंमें कतिपय नर और कुछ स्त्री पुष्प होते हैं। पुष्प बाह्यकोष घटाकार (Campanulate) और किंचित् दातेदार, अंतरकोषकी पखडिया आधार स्थानकी ओर सयुक्त युग्म (Connate) अथवा निम्न ओर ⅓ लगभग विभक्त, गुलाबी (गुजरात, सौराष्ट्रमें पीली), पुंकेसर ४ (सौराष्ट्रमें १०)। पुष्पदण्ड लगभग १ इञ्च लम्बा, काटेदार शाखाओंपर पत्र कोणमेंसे जोडी रूपसे निकले हुए। पुष्प पत्र एकाकी, रेखाकार, नोकदार। फली ॥ से ||| इञ्च लम्बी चिपटी, किञ्चित् मुडी हुई। पुष्पफलकाल वर्षा ऋतुसे शीतकाल तक। किसी किसी स्थानपर वसन्तमें भी फली मिलती है। इसके पानोंको छूनेसे वे सिकुड़ जाते हैं। फिर थोड़ी देरमें पत्ते फैल जाते हैं।

उत्पत्तिस्थान—पाश्चात्य वनस्पति शास्त्रियोंकी मान्यतानुसार मूलप्रदेश अमरिकाका उष्ण कटिबंध। भारतके सब प्रान्तोंमें न्यूनाधिक परिणाममें नैसर्गिक।

गुणधर्म—भावप्रकाशके मतानुसार लज्जालु रसमें कडवी, अनुरस कसैली और शीतवीर्य है तथा कफप्रकोप, पित्तवृद्धि, रक्तपित्त, अतिसार और योनिरोग-को दूर करती है।

निघण्टरत्नाकरके मतानसार लज्जालु चरपरी, कडवी और कसैली, शीतवीर्य, स्वादु, विपाकयुक्त, रूक्ष तथा वात, पित्त, कफ, रक्तरोग, योनिदोष, रक्तपित्त, अतिसार, श्रम, शोफ, दाह, व्रण, श्वास और कुष्ठरोगकी नाशक है।

यूनानी मतके अनुसार लज्जालु दूसरे दर्जेमें शीतल, रूक्ष, ग्राही, रक्तस्तम्भन, रक्तप्रसादन, पित्तहर और रक्तसशमन है।

डाक्टर देसाईके मतानुसार लज्जालु उत्तम रक्तसग्राहक है। छोटी रक्तवाहिनियोंका सकोच कराती है। उसका प्रयोग रक्त और पित्तप्रधान रोगोंपर होता है। रक्तमिश्रित प्रवाहिका और सिकतामेहमें इसके मूलका क्वाथ दिया जाता है। अर्शपर पानोंका चूर्ण दूधके साथ देते हैं।

मात्रा—मूलका चूर्ण ४ से ८ रत्तीतक। पान २ से ४ माशेतक।

उपयोग—लज्जालु भारतवर्षमें प्राचीनकालसे परिचित है। चरकसहिताके भीतर सधानीय और पुरीपसगृहीय दशेमानियोंमें तथा सुश्रुतसहिताके भीतर प्रियग्वादि गण और अम्बष्टादि गणमें समङ्गा नामसे दर्शायी है।

सौराष्ट्रमें इसके मूलकी छाल उदरवायु, सग्रहणी, अतिसार, प्रमेह, भगदर और वमन रोगपर व्यवहृत होता है। पानोंको कुचल पुल्टिस बनाकर फोडेपर बाधते हैं।

डाक्टर डीमकने लिखा है कि इसके रसका वाह्य प्रयोग करनेपर भगदर रोग दूर होता है। माडागास्कर (अफ्रिका) में बालकोंके आक्षेपको दूर करनेके लिये पानोंका रस देते रहते हैं।

ब्राजील (अमरिका) में इसके पानों का उपयोग कण्ठमालपर होता है और इसकी जडको वमनकारक मानकर कफप्रकोप पर देते हैं।

कालीखासी—लज्जालुके मूलका चूर्ण १-१ रत्ती शहद या शक्करके साथ दिनमें ३-४ बार बालकको देते रहनेसे कालीखासीके वेगका दमन होजाता है।

२ मूत्रावरोध—मूल या पञ्चाङ्गका क्वाथ पिलानेसे मूत्रावरोध दूर हो जाता है। अश्मरी कण हो तो बाहर निकल जाता है और मूत्र नलिकापर शोथ (Oenitis) आया हो तो वह भी दूर होजाता है।

३ अर्शशोथ—लज्जालुके पानोंका रस दिनमें २-३ बार लगाते रहनेसे मस्से

की सूजन जल्दी दूर हो जाती है ।

४ आगन्तुक क्षत—नयी चोट लग जाने या घाव हो जानेपर इसके पानों की पुल्टिस बांधी जाती है या रुईको पानोंके रसमें भिगोकर बांध दीजाती है ।

५ गलगण्ड और कण्ठमाल—लज्जालुके पानोंका रस १ से २ तोलेतक दिनमें २ बार २-३ मासतक पिलाते रहनेपर नये और पुराने रोगमें लाभ पहुँचता है ।

६ अन्त्रावतरण—लज्जालुके पान पीस गरमकर अवतरण स्थानपर बांधे । ऊपर थोडा सेक करें । फिर नीचेसे ऊपरकी और मसलनेपर आंत ऊपर चढ जाती है ।

७ योनिभ्रंश—योनिमार्गसे कमल बाहर आजानेपर लज्जालुके पानोंका रस या मूलका घासा कमलपर लगावें और हाथोंपर लेपकर ऊपर चढा कोपीन बंधवाकर आराम करानेसे कमल ऊपर रह जाता है। नया रोग हो तो लाभ होता है। ऐसी रुग्णाको कुछ दिन अधिक बोझा उठाना, दौड़ना और अधिक श्रम नहीं करना चाहिये ।

८. नेत्रपुतलीपर मांसवृद्धि—नेत्रमें वेल (Pterygium) या मांसवृद्धि होकर काले भागपर फैलती है, उसपर लज्जालुके पानोंका रस और अश्व-मूत्रको समभाग मिलाकर प्रात साय अञ्जन करते रहनेसे वेल या मांसवृद्धि नष्ट होजाती है।

लज्जालु छोटी

लघु लज्जालु—सं० लज्जालुका, पीतपुष्पा, पक्तिपत्रा, जलपुष्पा । बं० झलै। म० लहानी लाजरी। गु० झरेर। कच्छी-झरेरो, रिसामणु। ले० Biophytum Sensitivum

परिचय—वर्षायु क्षुप। काण्ड खड़ा, १ से १० इञ्च ऊंचा, कोमल या कठोर, चिकना या रुएंदार। पान स्पर्शासहिष्णु, सयुक्त, काण्डके शिखर पर गुच्छमें, १।। से ३ इञ्च लम्बे। पर्णवृन्त छोटा, पुष्पदण्ड कोमल, चिकना या रुएंदार। पर्णदल अभिमुख ⅓ इञ्च लम्बा, ६ से १२ जोडी इनमें अन्तिम जोडी सबसे बड़ी, लम्बगोल, लगभग वृन्त रहित। पुष्प पीले। पुष्पदण्ड अनेक, न्यूनाधिक लम्बाईके, कोमल। एक पुष्पयुक्त पुष्पदण्ड अनेक। पुष्पपत्रभालाकार, छोटे पुष्पदण्डके नीचे गुच्छमें। फली लम्ब गोलाकार, कुछ बीजोंयुक्त कोषमय। बीज अण्डाकार, खुरदरे, आडाईमें पंक्तियुक्त।

उत्पत्ति स्थान—भारतके सर्व उष्ण प्रदेश, अफ्रीकाका उष्ण कटिबन्ध प्रदेश, एशियासे फिलिपाइन तक।

गुणधर्म—निघण्टुरत्नाकरके मतानुसार लघु लज्जालु रसमें कड़वी, उष्ण-

वीर्य, पारदबन्धक, कफघ्न, आमनाशक और विविध विज्ञानकारक है।

मात्रा—३ से ६ माशे।

उपयोग—इसके पानोंको घरेलू उपयोग जावामें श्वास, क्षय, और सर्पविष को दूर करनेके लिए करते हैं। फिलिपाइनमें इसके पानोंका काथ कफनिःसारक रूपसे देते हैं और रगड़ और जखम पर पानोंको कुचलकर बांधते हैं।

भारतमें पारदकी चंचलता दूर करनेके लिए अनेक कीमियागर (रसायनविद) इसे और रुद्रवन्तीको उपयोगमें लेते हैं।

सौराष्ट्रमें इसके क्षुपका काथ यकृद्विकार, मूत्ररोग और ज्वरपर देते हैं। एव रसायन (Altesative) रूपसे भी इसका उपयोग होता है। पानोंको जल में पीस छानकर ठण्डाई बनाकर पिलानेपर मूत्रल गुण दर्शाता है।

वृषणवृद्धि—छोटी लज्जालु काटेदार करंज और कुन्दरूका चूर्ण जलके साथ देते हैं।

पीत ज्वरमें—तृषा वृद्धि लघुलज्जालु का क्वाथ या हिम पिलानेसे तृषा शमन होती है।

यकृद्वृद्धि—तीव्र और चिरकारी, दोनों अवस्थाओं पर लघु लज्जालुका काथ पिलानेसे सरलतासे कफस्राव होता है।

(७५) लताकस्तूरी

सं० लताकस्तूरी। हि० लताकस्तूरी, मुश्कदाना। फा० मुश्कदाना। बं० कालकस्तूरी। म० कस्तूरी भेंड। गु० कस्तूरी भींडो। अ० हब-उल-मुश्क। ता० वेत्तिलै कस्तूरी, कट्टुक कस्तूरी। क० कडु कस्तूरी। ते० कस्तूरी भेण्ड। मला० काट्टु कस्तूरी। अं० Musk Mattow। ले० Hibiscus Abelmoscus

परिचय—वर्षायु जंगली भिण्डीके समान क्षुप। ऊंचाई २ से ४ फुट काण्ड कठोर, रुएंदार। पान न्यूनाधिक हृदयाकार, नीचेके अण्डाकार। तीक्ष्ण या गोल कोनयुक्त, ऊपरके हथेलीके सदृश ३ से ७ खण्डयुक्त (पान सामान्यत भिण्डी के पानसे मिलते जुलते), दोनों ओर बालयुक्त। पुष्पवृन्त कठोर, पुष्प ३-४ इञ्चका, शाखाके अग्र भागपर। उज्ज्वल पीतवर्ण। फल २॥-३ इञ्चका, आगेकी ओर लोममय। बीज वक्र, कृष्णाभ, वृक्काकार, कस्तूरी सदृश सुगन्धयुक्त पुष्पफलकाल जूनसे जनवरी पर्यन्त।

उत्पत्तिस्थान—मूलस्थान वेस्ट इण्डिज। वर्तमानमें भारतके उष्ण प्रदेशों में बोया जाता है।

गुणधर्म—भावप्रकाशके मतानुसार लता कस्तूरी रसमें कडवी, स्वादु, वृष्य, शीतवीर्य, लघु, चक्षुष्य, दीपन, कफनिःसारक, तथा तृषा, बस्तिरोग और

मुखरोगकी नाशक है। वान्तिपर भी हितावह है। सुश्रुतसंहिताकारके मतानुसार भी उक्त सब गुण हैं साथमें वस्ति शोधन गुण विशेष रूपसे दर्शाया है। बीजोंमें ६% उत्तेजक तैल रहा है। इस तैलके हेतुसे यह तुरन्त प्रभाव दर्शाती है।

यूनानी मतानुसार मुष्कदाने स्वादमें सुगन्धित और रुचिकर, तृषाशामक तथा आमाशय प्रदाह, अजीर्ण, मूत्ररोग, सुजाक, श्वेतकुष्ठ और पामापर उपयोगी है। यह उत्तम पौष्टिक और दीपन पाचन है ।

मुईदीन शरीफने इसके बीजोंका अर्क निकालकर उपयोग किया है। उनके मतानुसार उत्तेजक, आमाशय पौष्टिक, आक्षेपहर, वातनाड़ियोकी निर्बलता और हिस्टीरियापर हितावह है। अपचनको यह दूर करता है।

डाक्टर देसाईके मतानुसार लता कस्तूरी शीतल, स्नेहन, दीपन, रुचिकर, वातहर और बल्य है। इसके सेवनसे श्वसनमार्गमें स्निग्धता आकर संकोच-विकास कष्ट कम होता है। आध्मान, श्वास, वातरोग और अपस्मार आदि में उपयोगी है ।

श्री कन्हैयालाल देवके मतानुसार बीज सुगन्धित पौष्टिक और उदरवातहर है। वातसस्थानकी विकृति, निर्बलता और हिस्टीरियापर यह कस्तूरीके स्थानपर व्यवहृत होता है।

लताकस्तूरी अर्क—बीजके मोटे चूर्ण ५ तोलेको रेक्टीफाइड स्पिरिट १६ औंसमें भिगोदें। रोज २-३ बार चलालेवें। १ सप्ताह बाद छान लेवें। मात्रा १ से २ ड्राम। मात्रा अधिक होनेपर शिरदर्द होता है और चक्कर आता है।

मात्रा—बीजका चूर्ण ३ माशे। पानोंका रस १। स २॥ तोला।

उपयोग—लताकस्तूरीका उपयोग चरकसंहितामें और सुश्रुत संहितामें स्वतंत्र रूपसे नहीं हुआ। घरेलू उपचारमें यह प्राचीनकालसे व्यवहृत होरही है।

१, अपचन—लताकस्तूरी अर्क १-१ ड्राम दिनमें ३ बार जलके साथ देनेसे अपचन और उदरवात दूर होते है ।

२ श्वासका दौरा—लताकस्तूरीका अर्क या चूर्णका फाण्ट बनाकर देनेसे कफप्रकोप और हृदयविकारसह श्वास, दोनोंमें लाभ पहुँचता है। इस फाण्टसे हृदयको बल मिलता है। एव उदरमें वायु भरा हो और अपचन हो तो वे भी दूर होजाते हैं।

३. कालीखांसी—बीजका चूर्ण १-१ रत्ती शहदके साथ देनेसे वेग शमन हो जाता है ।

४. सुजाक—मूल और पानका लुआब देनेसे पेशाबकी जलन शान्त होती है और पेशाब साफ आ जाता है।

५ कण्डू—लता कस्तूरीके बीजोंको दूधके साथ पीसकर मर्दन करनेपर शुष्क खुजली दूर होजाती है।

(७६) लहशुन

स० लशुन, रसोन, उग्रगन्ध, महौषध, मलेच्छकन्द। हि० लहशुन, लहसुन, लहशन, लशुन। ब० रसुन। म० लसूण। गु० लसण। अ० सौम। फा० शार। क० वेल्लुली। ता० वेलॅपुण्डु। ते० वेल्लुली, तेलगड्डा अं० Garlic Root, ले० Allium Sativum

परिचय—कन्दसेही पुष्पदण्ड निकलनेवाला, वर्षायु, दुर्गन्धमय छोटा क्षुप। ऊँचाई १ से २ फीट। कन्दके भीतर १०-१२ दाने, पान कोमल, समतल, लम्बी चाचवाले, पतले, कदके चारों ओर से निकले हुये। पानों के बीच में नाल। ऊपरकी छत्र रचनाका सम्बन्ध कन्द और पुष्प, दोनोंसे, लगभग गोलाकार। पुष्प सफेद। पुष्प वाह्यकोषके पत्र ६, नीचे चौडे, ऊपर सकडे, नोकदार। भीतर पुकेसर ६, तन्तु २ या ३ दातवाले।

उत्पत्तिस्थान—सर्वत्र भारतमें बोया जाता है।

(२)

एककली लहशुन—अं० Eschallot, Shallot
ले० Allium Ascalonicum.

कंदमय क्षुप। कद लम्बा और हिस्सा तीक्ष्ण सिरेवाला, दुर्गन्धमय। वाह्यत्वचा भूरी—पीली। कली लम्बी। पान पोले नलिकाकार, अनेक, आर सदृश आकार के। छत्री गोलाकार, सघन, केवल पुष्पोंसह। मूलोद्भव पुष्पदण्ड १ से २ फीट ऊँचा। पुष्प सफेद। वाह्यान्तरकोष के आकुंचित सिरे ६। पुकेसर ६। बीजाशय ऊर्ध्व। बीजाशय नलिका कोमल डोडी। बीजोंवाली। यह लहशुन ऊपर की जातिकी अपेक्षा अधिक तेज है।

उत्पत्ति स्थान—भारतके सब प्रान्तों में।

गुणधर्म—मधुर, तिक्त आदि ६ रस हैं, उनमेंसे एक अम्ल रसको छोड़कर शेष पाँच रस लहसुनमें होनेसे इसे 'रसोन' सज्ञा दी है। इसके कदमें चरपरा रस, पानमें कड़वा, नालमें कसैला, नालके अग्र भागमें नमकीन और बीजोंमें मधुर रस रहा है। लहसुन मासपौष्टिक, कामोत्तेजक, स्निग्ध, उष्णवीर्य, पाचन, सारक, रस और विपाकमें चरपरा, तीक्ष्ण और अनुरस मधुर है। यह भग्नसधानकर, स्वरप्रद, गुरु, पित्तवर्द्धक, रक्तवर्द्धक, चक्षुष्य और रसायन है। हृद्रोग, जीर्ण ज्वर, कुक्षिशूल, मलावरोध, वातगुल्म, अरुचि, कफ, कास, क्षय अर्श, कुष्ठ, शोथ, हिक्का, अग्निमांद्य, कृमि, आमवात, वातरोग, श्वास और कफ प्रकोपको नाश करता है।

वक्तव्य—लहशुन सेवन करनेवालोंको शराव, मांस और अम्ल पदार्थ हितावह है। परिश्रम, सूर्यके तापका सेवन. क्रोध, अति जलपान, दूध और गुड़ हितकर नहीं है।

लहशुन अतिसार, वातप्रमेह, मधुमेह. रक्तपित्त, वातरक्त, वमन, इन रोगोंसे पीड़ितोंको नहीं देना चाहिए। एवं सगर्भाको भी (गर्भाशय उत्तेजक होनेसे) नहीं दिया जाता। कितनेक आचार्योंने शोष रोगमें अपथ्य माना है, किन्तु लहसुनमें कीटाणु नाशक, कोथहर, कफघ्न, ज्वरशामक और मारक गुण होने से हितावह है। जिन क्षयरोगियोंको कामोत्तेजना अत्यधिक होती हो और अतिसार हो, उनको लहसुन न दियाजाय, तो अच्छा माना जायगा। इस सारग्राही दृष्टिसे आचार्य वचनको सार्थक मान सकते हैं।

धान्याभ्रकको लहशुनके स्वरसका १० पुट देकर अभ्रक भस्म वनानेपर निश्चन्द्र, मुलायम भस्म वन जाती है, यह भस्म वातज और कफज रोगोंपर सत्वर फल दर्शाती है।

यूनानी मतमें लहशुन दाहक स्वादवाला, मूत्रल, उदरवातहर, विषघ्न और कामोत्तेजक है। प्रदाह, पक्षाघात, संधि स्थानोंमें वेदना, प्लीहावृद्धि, यकृत् और फुफ्फुसके रोग, स्वरभंग, तृपा, दाँतोंपर मल जमना, कटिशूल, जीर्णज्वर, श्वेतकुष्ट और रक्तके गाढापनको दूर करता है।

डाक्टर देसाईने लिखा है कि "लहशुन उष्ण. लघु, दीपन, उदरवातहर, उत्तम कृमिहर, सवल और मूल्यवान उत्तेजक, कफघ्न, प्रवल कोथ प्रशमन (सडेको रोकनेवाला), मूत्रजनन, वातहर और वल्य है। इसमें रहा हुआ तैल त्वचा, फुफ्फुस और वृक्कों द्वारा वाहर निकलता है। तैलके हेतुसे श्वासनलिकामें श्लेष्म शिथिल होता है; सरलतासे वाहर निकलता है; कफकी दुर्गन्धका ह्रास होता है और कफके भीतर अवस्थित कीटाणु नाश होते हैं। वातनाड़ियोंके ऊपर भी लहशुनकी प्रवल उत्तेजक क्रिया होती है। मात्रा स्वरसकी १० से ३० बूंद।"

वक्तव्य—मात्रा अधिक देनेपर आमाशय और अन्त्रमें उग्रता आकर वमन और विरेचन होता है। स्वरस शहद और घी मिलाकर देनेसे दाहक गुण श्लैष्मिककलाको हानि नहीं पहुँचा सकता।

रासायनिक पृथक्करण—इसमेंसे मुख्य द्रव्य तेज उड़नशील तैल है (यह तैल मूत्रल और कफघ्न है। रक्तद्रावत्रवृद्धिका ह्रास कराता है, रक्तप्रसादन है) इसके अतिरिक्त प्रथिन, गोंद, वसा और शर्करा मिलते हैं। उडनशील तैलका पृथक्करण करनेपर विविध प्रकारके गंधक द्रव्य मिलते हैं। तैलकी मात्रा ॥ से २ बूंद तक।

डाक्टर म्हसकरके अनुसधान अनुसार लहसुनमें प्रथिन ६ ३%, वसा ०२%, कर्बोदक २९%, १०० ग्राम (३॥ औंस) में १४२ उष्मांक तथा दश हजार भागके भीतर खट २ ५, स्फुर ३० ५, लोह १३१ भाग एव १०० ग्राममें जीवन सत्त्व क १३ मि० ग्रा० मिलता है।

रसोनशुद्धि—परिपक्व अच्छे लहशुनके ऊपरसे छिल्टे निकाल और भीतर के अकुरको निकालकर रात्रिको मट्ठेमें भिगो देवें। सुवह लहशुनको निकाल लेनेपर दुर्गन्ध ओर उग्रता, दोनों कम हो जाते हैं। यदि उग्रता अधिक कम करनी हो तो ३ दिन उसी तरह नया नया मट्ठा मिलाकर भिगोवें। इस शोधन से उग्रता जितनी कम होती है उतनी ही उसकी शक्ति कम होती है। अत रोगीको सहन हो सके तो विना शोधन किये उपयोगमें लेवें या शुद्ध लहसुन अधिक मात्रा में देवें।

रसोन प्रयोग—

१ रसोनसुरा—सुरा (वर्तमानमें अल्कोहाल ९०% का) ५ सेर, कटा हुआ छिल्टारहित लहशुन एक कलीका २॥ सेर, पिप्पली, पिप्पलीमूल, जीरा कूठ, चित्रकमूल, सोंठ, कालीमिर्च और चव्य, इन ८ औषधियोंका जौकुट चूर्ण १-१ तोला लें। सबको मिला अमृतबानमें १ सप्ताह पेक कर देवें। फिर छानकर उपयोगमें लेवें। मात्रा १० से ३० बूंद, २॥-२॥ तोले जल मिलाकर दिनमें २ या ३ वार देवें।

यह सुरा वातरोग, आमवात, कृमि, कुष्ट, क्षय, आनाह (मलावरोध और वायुका अवरोध), वातगुल्म, अर्श, प्लीहावृद्धि, प्रमेह और पाण्डुरोगका नाश करती है और क्षुधाको प्रदीप्त करती है।

२ रसोनादिवटी—साफ किया हुआ लहशुन, भूनी हींग, शुद्ध गन्धक, सैंधानमक, जीरा, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल, इन ८ औषधियोंको समभाग मिला नीबूके रसमें ३ दिन खरलकर २-२ रत्तीकी गोलिया वना लेवें। मात्रा १ से ४ गोली दिनमें ३ वार जल और मट्ठेके साथ। विसूचिकामें २-२ गोली आधा-आधा घण्टेपर।

यह वटी आमाशय और अन्त्रकेलिए उत्तेजक, कीटाणु नाशक और दीपन-पाचन है। भिन्न भिन्न आचार्योंने इसे गधक वटी, विसूचिका विध्वसनी और त्रिकटु रसायन आदि सज्ञा दी है। अपचन, अफारा, उदरशूल, उदरकृमि और विसूचिकाको दूर करती है तथा पचन क्रियाको वढाती है। उदरशूल पर कालानमक मिला अदरखका रस अनुपान रूपसे देनेपर सत्वर लाभ मिलता है।

३. रसोनपाक—शुद्ध लहशुन १ सेरको पीस चटनी बना ४ सेर दूधमें मिलाकर मावा करें। इस मावेमें २० तोले घी मिलाकर सेकें। फिर रास्ना, सतावरी, असगंध, गिलोय, शठी, सोंठ, देवदारु, विधारा, अजवायन, चित्रक-मूल, सौंफ, पुनर्नवा, हरड, बहेड़ा, आँवला, पीपल और वायविडङ्ग इन १७ औषधियोंका चूर्ण १।-१। तोला मिलावें। शीतल होनेपर शहद १ सेर मिला लेवें। इसमेंसे २ से ४ तोला तक पाक (अवलेह) शक्कर मिलाकर दिनमें २ बार सेवन करावें।

यह पाक आम प्रकोपज वातोंमें अति हितावह है। आढ्यवात (ऊरुस्तम्भ) हनुग्रह, आक्षेपवात, अस्थिभंग, कटिवात, हृद्रोग, सर्वाङ्गवात, संधिस्थानमें शूल चलना आदि सब प्रकारके वात रोगोंको दूर करता है। यह पाक वर्णप्रद, आयुवर्द्धक, पौष्टिक और पथ्य है।

४. लशुनादि अञ्जन—छिल्टे और अंकुर निकाले हुए लहशुन, कालीमिर्च, पीपल, सैंधानमक, वच, सिरसके बीज और सोंठ, इन ७ औषधियोंको गोमूत्र में ३ घंटे खरल कर वर्ति बना लेवें। इस वर्तिको जलमें घिसकर अंजन करनेपर सन्निपातमें कफ प्रकोप (प्रलाप आदि) तथा रक्तपित्त प्रकोप दूर हो जाते हैं। आचार्योंने इस अंजनको अभिन्यास सन्निपातके लिए कहा है।

५. रसोन अर्क—परिपक्व सूखे हुए लहशुनकी साफ की हुई कलियोंकी चटनी ५ तोले और २५ तोले अल्कोहाल ९५% में भिगो देवें। १५ दिन बाद फिल्टर पेपरमें छान लेवें। मात्रा ५ से २० बूंद २॥-२॥ तोले जलके साथ दिनमें तीन बार।

उपयोग—लहशुन का उपयोग चरक-सुश्रुत कालके पहलेसे हो रहा है। भूतकालमें लहशुन विदेशसे भारतमें आता होगा ऐसा श्री वाग्भटाचार्यके "तस्य कदान् वसंताते हिमवच्छक देशजान्" इस वचनपरसे विदित होता है। चरक संहितामें (सू० अ० २ और ३) अन्त परिमार्जन और बहिः परिमार्जनमें लशुनको मिलाया है। एवं सुश्रुत संहितामें भी शिरो विरेचन द्रव्योंमें लशुन लिया है। चरक संहिता और सुश्रुत संहितामें लहशुनके गुण धर्म लिखे हैं तथा दोनों आचार्यों ने ज्वर आदि रोगोंपर लहशुनकी योजना की है। क्षय रोग में लहशुन बहुत अच्छा कार्य करता है, ऐसा सुश्रुताचार्य का अनुभव है। विधिवत् रसोनकल्प करानेका विधान किया है। चक्रदत्ताचार्यने आमवात रोगपर लिखी हुई रसोन सुरा है उसका सेवन श्री वैद्यराज सुखराम-दासजीने अनेक क्षय पीड़ित रोगियोंको सफलता पूर्वक कराया है। इस सुरा से क्षय कीटाणु नष्ट होते हैं और उत्तरोत्तर लाभ होता जाता है।

लहशुनकी उपयोगिता दर्शाने केलिए श्री० वाग्भटाचार्यने उत्तर स्थान

के भीतर रसायनाध्याय में लिखा है कि —

पित्तरक्तविनिर्युक्त समस्तावरणावृते।
शुद्धे वा विद्यते वायौ न द्रव्य लशुनात्परम्॥

अर्थात् पित्त और रक्त, इनके अतिरिक्त किसी आवरणसे आवृत वायु और अनावृत वायु प्रकोपज रोगोंपर लहशुनसे कोई अच्छी औषधि नहीं है।

आचार्योंने वात रोगीकेलिए लहशुनके अनेक प्रयोग लिखे हैं। किसी भी प्रकारसे लहशुनका सेवन कराया जाय, तो लाभ हो जाता है। औषध रूपसे अलग रोगी न ले सके, तो रोटी, भात, मास रस आदि भोजनके साथ देना चाहिए। गदनिग्रह कारने लिखा है कि, जो मनुष्य हर शीत कालमें अमृत सदृश उपकारक रसोनका विधि पूर्वक सेवन करते हैं, वे नीरोगी, तेजस्वी, पुष्ट, वलवान रहते हुए १०० वर्ष तक जीवित रहते हैं।

डाक्टर देसाईने लिखा है कि, "वात विकारपर लहशुन खिलाया जाता है। एव बाह्यलेप भी कराया जाता है। गृध्रसी, पीठ अकडना, हिस्टीरिया, अर्दित (मुह टेढा हो जाना), पक्षवध, एकागवात, उरुस्तम्भ (साथल रह जाना), इन सब रोगोंपर लहशुन और वायविडगको १६-१६ गुने दूध और जलके साथ मिलाकर उबालें। पानी जल जानेपर दूध छान, ठण्डा करके पिला देवें। इस क्वाथसे वातनाडियोंकी शक्ति कायम रहती है और माम पेशिया वलवान बनती हैं। वमन, अपचन, सफेद आम जाना और उदरकृमि पर लहशुनका अति उपयोग होता है। गुल्म और उदावर्तमें लहशुन अच्छा लाभ पहुँचाता है। वर्षासे भीगने और शीत लगनेपर शूल निकलता हो, उस पर तथा जीर्ण आमवातमें और सघियोंकी सूजनपर लहशुनका सेवन और स्थानिक लेप भी कराया जाता है"

"जीर्ण कफ रोग और राज्यक्ष्मामें फुफ्फुसके भीतर क्षत होजाते हैं, उसपर लहशुन और वायविडङ्गका सेवन तथा वक्षस्थलपर लेप भी कराया जाता है। हृद्रोगपर लहशुनका सेवन करानेपर अफारा दूर होकर फिर हृदयपर दबाव कम होजाता है। इस तरह हृदयको परम्परागत लाभ पहुँचाता है। लहशुनसे पेशाब भी साफ आता है।"

"व्रणशोथ, विद्रधि, दुष्टव्रण, नाडीव्रण आदिपर लहशुनका लेप किया जाता है। यदि लेप प्रारम्भावस्थामें किया जाय, तो रोग नहीं वढता। विषम ज्वरमें लहशुन देते रहनेस थकावट नहीं आती।"

प्रेक्टिकल मेडिसिन फरवरी १९२३ ई० के लेख में लिखा है कि, "श्वसन-सस्थामें उत्पन्न कोथ (सडा), काली खासी आदि रोगोंपर लहशुन प्रधान उपचार करनेपर परिणाम अति सतोपप्रद आया है। लहशुन स्वस्थावस्था और

रोगावस्थामें पचनक्रियाको वहुत लाभ पहुँचाता है। उद्भिद्कीटाणु (Bacteria) जन्य रोगोंपर लहशुन सफलतापूर्वक अपना कार्य करता है। लहशुनके भीतर एलायल सल्फायड (Allyl Sulphide) है, वह सडनेकी क्रियाको रोकनेवाला (Antiseptic) सुप्रसिद्ध द्रव्य है। वह लहशुनका सेवन करनेपर कीटाणुओंका नाश करता हुआ निश्वासद्वारा बाहर निकलता है। अत लहशुनसे वढे हुए श्वासनलिका और फुफ्फुसके रोग—दुर्गन्धमय कफ कास, चिरकारी राजयक्ष्मा और गौण विकृति, ये सब दूर हो जाते हैं।'

"प्रो० रोचने एक ४२ वर्षके किसानको, जो फुफ्फुसकोथसे पीडित था, रसोन अर्कका सेवन कराया था। पहले ५ दिन तक दिनमें ३ बार ५–५ बूद की मात्रा दी। फिर शनै. शनै २०–२० बूदतक मात्रा वढायी। पहले ही दिनसे उसे लाभ होने लगा। फिर उत्ताप १०० डिगरी से अधिक नहीं वढा और धीरे धीरे स्वाभाविक उत्ताप आगया। कफमें दुर्गन्ध आती थी और अधिक स्राव होता था, इन दुर्गन्ध और आधिक्य, दोनोंमें लाभ होने लगा। आवाज सुधर गयी। ध्वनियन्त्रद्वारा कफकी आवाज सुनी जाती थी। वह नष्ट हो गयी। प्रस्वेदका ह्रास हो गया। क्षुधा प्रदीप्त हो गयी। फिर अर्क दिनमें २ बार दिया।

"मद्रास-रोयपुरन् हॉस्पिटलके मुख्य डाक्टर कृष्णरावने राजयक्ष्माके रोगीको ताजे लहशुनके रसका अन्त क्षेपण देकर उपचार किया। विवर ४ इञ्च गहरा था। वह क्रमश भरता गया। प्रत्येक छटवें दिन अन्त क्षेपण करते थे। २ मासमें गड्ढा बिल्कुल भर गया। इसके भीतर लहशुनके तैलका सेवन भी कम मात्रामें कराते रहे थे।"

नव्य अनुसधान अनुसार लहशुनका मुख्य द्रव्य अलायल सलफाइड जिस तरह फुफ्फुस क्षयपर आश्चयकारक कार्य करता है, उसीतरह ग्रन्थिक्षय (कण्ठमाल आदि), अस्थिक्षय, उदरक्षय, त्वचाक्षय आदि सब स्थानोंके क्षय और कोथपर, भी अमृतके सदृश उपकार दर्शाता है। अस्थिक्षय और नाड़ी भयप्रद, सडे हुए नाड़ी व्रणोंपर अनेक प्रयोग होकर सिद्ध हो चुका है कि लहशुनमें उत्तम कीटाणुनाशक और कोथहर धर्म रहा है।

प्रसूता स्त्रियोंको लहशुनका सेवन कराते रहनेसे वातप्रकोप, गर्भाशयमें विकृति, आक्षेप या कुछ भी विकार नहीं होता। शनै शनै प्रसूता नीरोगी और वलवान वनती जाती है। दीर्घकाल रोग रह जानेपर और वृद्धावस्थामें शारीरिक शिथिलता आती है। साथमें कामशक्ति भी कम हो जाती है। ऐसी अवस्थामें शीतकालमें लहशुनके पाकका सेवन कराया जाय तो शरीर सवल, नीरोगी और तेजस्वी बनजाता है और स्त्रीसेवन शक्ति भी वढ जाती है।

वक्तव्य—जिनको चेतनाधिक्य हो, कामोत्तेजना प्रवल हो गई हो, वीर्य

अतिरक्तता हो स्तम्भनशक्ति कम हो गई हो, उनको लहसुनका सेवन नहीं करना चाहिये।

इसका स्थानिक बाह्यप्रयोग करनेपर यह उत्तेजक और क्षोभोत्पादक गुण दर्शाता है। जिससे उस स्थानकी त्वचा लाल हो जाती है और पीड़ा दूर कर देता है। उत्तेजक गुणके हेतुसे हिस्टीरियाकी मूर्च्छाको सत्वर दूर करनेके लिये नासिकामें लहसुनकी चटनी सुंघाई जाती है। उदरशूल और वातनाड़ी प्रकोपज शिरःशूल होनेपर लहसुनके साथ सोंठ, धनिया, कालीमिर्च, सिंधानिमक और नमक मिला चटनी बनाकर खिलायी जाती है। पचनक्रिया मन्द होने और अन्त्रमें अन्न या मल सड़नेपर छोटे कृमियोंकी उत्पत्ति होती है। उन कृमियोंको मारने और उत्पत्तिको रोकनेके लिये लहसुनका सेवन कराया जाता है।

बालकोंको शीत लगकर दुःखदायी कास होनेपर लहसुन और प्याजको मिला कूट रस निकाल तैलके साथ मिलाकर छातीपर मर्दन करानेपर कष्ट कम हो जाता है। आवश्यकतापर त्वचाप्रदाहक (Rubefacient) गुणकी प्राप्ति करानेके लिये वक्षप्रदेशपर हृदयके समीप लहसुन प्याजकी पुल्टिस बांधी जाती है। फिर त्वचा लाल होनेपर उसे निकालकर घीवाला हाथ लगा दिया जाता है। बच्चोंके जुकाममें लहसुन प्याजके रसको तैलमें मिलाकर मालिश कराना हितावह माना गया है।

लहसुन वृक्कोंपर उत्तेजना दर्शाकर मूत्रोत्पत्ति अधिक कराता है। इस हेतुसे यह हृदयविकृति जन्य सर्वाङ्गशोथ और जलोदररोगोंको हितावह है।

बूंद बूंद मूत्र टपकने (Strangury) पर पेडु (Perineum) के ऊपर लहसुन-प्याजकी पुल्टिस त्वक्प्रदाहक गुणकी प्राप्तिके लिये बांधी जाती है। विषाक्त कीड़े काटनेपर लहसुनको पीस कल्ककर उसपर बांध देनेसे विष जल जाता है। नये दादपर लहसुनके रसकी मालिश करनेपर कीटाणु जल जाते हैं और दाद मिट जाता है।

सफेद दाग—बड़े मनुष्योंको त्वचापर लाली लाना हो या पाक लाना हो तो लहसुनके साथ गुड़ मिलाकर पुल्टिस बनानी चाहिये।

१ विषमज्वर—लहसुनका कल्ककर उसमें तिल तैल (या घी) और सैंधानमक मिलाकर सुबह सेवन करानेपर विषमज्वर वातकफज्वर और वातप्रकोप दूर होते हैं।

२ ज्वरमें शीतांग—अधिक स्वेद आकर शरीर शीतल हो गया हो तो लहसुनका रस नागरबेलके पानका रस, अदरखका रस तीनों मिला उसमें सोंठ डालकर मालिश करनेसे शरीर जल्दी उष्ण बनजाता है।

३ विसूचिका—अपचनजन्य विसूचिकाका आरम्भ होनेपर आध आध घण्टेपर रसोनवटीका सेवन करानेपर वमन और अतिसार जल्दी बन्द हो जाते हैं।

४ उदरशूल—लहशुनकी चटनी बना शराबके साथ सेवन करने या रसोन अर्कका सेवन करानेपर अपचनजनित और वातप्रकोपसे उत्पन्न शूल नष्ट हो जाते हैं।

५ वातज गुल्म—शुद्धलहशुन २ तोलेकी चटनी, दूध ४० तोले और जल ४० तोले मिलाकर दुग्धावशेष क्वाथ करें। फिर छानकर पिलाते रहनेपर वातगुल्म, उदावर्त, गृध्रसी, जीर्ण विषमज्वर, हृदयरोग, विद्रधि, क्षय और शोथरोग दूर होते हैं।

६. आमवात—लहशुनका रस ६ माशे गोदुग्ध ५ तोलेमें मिलाकर पिलाते रहनेपर भी जिस तरह अग्नि रूईको जला डालती है, उसतरह लहशुन आमवात और शीतवातको जला देता है।

लहशुन, सोंठ और निर्गुण्डी, इन तीनोंको मिला २-२ तोलेको ८ गुने जल में मिलाकर उबालें। आधा जल शेष रहनेपर छानकर पिलावे। इस तरह सुबह शाम पिलाते रहनेपर जीर्ण आमवातज वेदना शमन होजाती है।

७ ऊरू स्तम्भ—लहशुनको साफ कर १ तोला लें और भूनी हींग, जीरा, काला जीरा, सैंधा नमक, काला नमक, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल ये सब ३-३ रत्ती (या न्यूनाधिक चटनीमें स्वाद आवे उतना) मिलाकर कल्क करें। फिर उसमें थोडा तिलीका तैल मिलाकर रोगीको खिलावे, ऊपर २ तोले एरण्ड मूल का क्वाथ पिलावें। इस तरह १ मास तक औषध प्रयोग करें।

यह लहशुन योग सब प्रकारके आमप्रधान वातरोगोंको दूर करता है। एकांगवात, सर्वाङ्गवात, ऊरू स्तम्भ, गृध्रसी, कटिवात, पृष्ठवात, अस्थिशूल, सन्धिवात, अर्दित अपतन्त्रक (हिस्टीरिया), धातुगतज्वर, जीर्णज्वर और हाथ पैरोंकी शिथिलताको दूर करता है। यह योग पचनक्रिया सुधारता है। आमको जलाता है। धातुओंमें प्रवेशित आमको नष्ट करता है। कीटाणु प्रवेश होकर विषप्रकोप हुआ हो, तो विषमह कीटाणुओंका नाश करता है। ऊरुस्तम्भमें होनेवाले त्वचा की शून्यता, आकुचन, कम्प, थकावट, अतिदाह, तैल मर्दनसे रोगवृद्धि, हाथ पैर टूटना और चलनेमें अतिकष्ट आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इन सब लक्षणों सह ऊरुस्तम्भ दूर होता है।

वक्तव्य—यदि लहशुन सेवनकालमें लहशुनकी उग्रताके हेतुसे पित्त प्रकोप होजाय, तो छोटी हरडके क्वाथका विरेचन देवें।

८. कटिशूल—मासिक धर्मकी विकृतिके कारण कमरमें दर्द होता हो, तो

रसोन पाकका सेवन करानेपर लाभ होजाता है।

९ कर्णशूल—कानमें फुन्सीका पाक होनेसे समय शूल चलता हो, तो लहशुन, मूली, अदरख, इन ३ औषधियोंको मिला, रसनिचोड़, निवाया करके कानमें डालने पर २ दिनमें फुन्सी बैठकर या फूटकर वेदना शमन होजाती है। अथवा कानमें लहशुनकी कली रखने पर भी वेदना शान्त होजाती है।

यदि कानमेंसे पूयस्राव होरहा हो और शूल चलता हो, तो लहशुनके रसमें तैल मिलाकर कानमें डालना चाहिये। कानको शीतल वायु और शीतल जल न लगे, यह सम्हाले। अधिक शक्कर नहीं खाना चाहिये।

१० प्लीहा वृद्धि—लहशुन ४ माशे, पीपला मूल १ माशा, हरड़ ४ माशे और अपामार्ग क्षार (या गोमूत्र क्षार) ४ रत्ती मिलाकर मट्ठेके साथ सेवन करावें। यह प्रयोग सुवह शाम कुछ दिनों तक देते रहनेपर प्लीहावृद्धि दूर हो जाती है।

११ रक्त दबाव वृद्धि—लहशुन, पोदीना, जीरा, धनिया, कालीमिर्च, सैंधा नमक आदि मिला पीस, चटनी बनाकर सेवन करनेपर रक्तदबावका ह्रास होजाता है।

१२ मूर्च्छा—लहशुन और प्याजको मिला रस निकालकर सुघानेपर या २-२ बूंद नाकमें टपकानेपर अपस्मार और अपतन्त्रककी वेहोशी जल्दी दूर होजाती है।

१३ रतौंधी—योग्य शारीरिक पोषण न मिले ऐसा आहार लम्बे समय तक सेवन करनेपर रतौंधी होती है। उसमें पोषक आहारके साथ लहशुनका-सेवन करनेपर रतौंधी सत्वर दूर होती है। अश्रुस्राव बन्द होता है और नेत्र ज्योति बढ जाती है।

१४ दुष्टव्रण—लहशुनको चटनीकी तरह पीस व्रणपर लगा देनेसे थोडेही समयमें उसके कृमि मरकर निकल जायेंगे और घाव शुद्ध होजायगा। शुद्ध घावमें जब पाक होनेका भय हो तब लहशुन लगा देनेसे पाक नहीं होता और घाव मिट जाता है।

१५ शीतलाके व्रण—लहशुन, राल और हींगका धुआँ देनेसे कृमि गिरे होंगे, तो मर जायेंगे फिर खुजली नहीं चलेगी और व्रण भर जायगा।

१६ दाद—लहशुनको पीसकर लेप करनेसे कीटाणु मरकर दाद दूर होजाता है।

१७ कुत्तेका दंश—नीरोगी कुत्ता काटनेपर तुरन्त लहशुनको पीसकर लगा देवें। एवं २ तोले लहशुनकी चटनीको उबाल क्वाथकर पिलादेवें। या

रसोन अर्क १ ड्राम पिला देवें। अथवा भोजनमें ७ दिनतक लहशुनका अधिक सेवन करें।

१८. अस्थिभग—हड्डी पर चोट लगनेपर लहशुन और लाखको पीस चटनी बना शहद मिलाकर दिनमें २ बार चटाते रहे। ५-७ दिन चटानेपर हड्डी दृढ बन जाती है। यदि हड्डी टूट गई हो, तो बाह्य लेप भी लगाना चाहिये। ×

१९. नारू— लहसुन, चित्रकमूल और राईको पीस पुल्टिसकर नारूपर बाधनेसे वह जल्दी बाहर आजाता है। १ घण्टेसे अधिक समय पुल्टिसको न रखें। नारू बाहर आने या लाल होनेपर पुल्टिसको हटाकर घी लगा लेवें।

(७७) लौंग

सं० लवग, देवकुसुम, शिखर, श्रीपुष्प। हिं० लौंग, लवङ्ग, करनफल। बं० लोंग। म० लवग। गु० लवींग। सि० कराम्बु। फा० मेहक, मेखक। अ० करनफूल। ता० लवगम्, क्रम्बु। ते० लवगलु। क० लवंग। मला० करियाम्बू। अ०Cloves ले० (1) Eugenia Aromatica (विदेशी लौंग)

(2) „ „ Caryophylata (भारतीय लौंग)

परिचय—यूजिनिया=वनस्पति शास्त्रके आश्रयदाता प्रिन्स यूजिनके समानार्थ संज्ञा। एरोमेटिका=सुगन्धयुक्त। कार्योफाइलेटा यह लौंगका लेटिन नाम है। इसके वृक्ष २०-२५ फीट ऊंचे होते हैं। इसके वृक्ष सिंगापुर और पूर्वी अफ्रीका में अधिक हैं। इन वृक्षोंपर पुष्पकी कलिया लगती है, उनको तोड़ लेते हैं, उन्हींको लौंग कहते हैं। बाजारमें दो प्रकारके लोंग मिलते हैं। काले तीव्र सुगन्धवाले हैं, वे मूल स्थितिमें हैं, दूसरे भूरे रगके कुछकुले आते हैं, वे बाष्प-यन्त्रद्वारा तैल निकालनेके पश्चात् रहे हुए है। भारतमें भी लौंग बोने लगे हैं; किन्तु वे उतने अच्छे नहीं हैं। लौंगोंमेंसे २ प्रकारके तेल मिलते हैं। उड्डयनशील और स्थिर। इनमेंसे स्थिर तैलका आपेक्षिक गुरुत्व १०४७ से १०६० है। अत यह जलसे भारी है। तैलका रग रक्ताभ पिंगल होता है।

भारतीय लौंगके पान सामने सामने, क्वचित् ही अन्तरपर अखण्ड, वीचमें

×अस्थिसधानक लेप—एलवा, बीजाबोल, गूगल, कुंदरू, गूजर (अज्जरूत गुजद), उसारेरेवन, मैदालकड़ी, आमाहल्दी, सज्जीखार, लो[illegible] और सरेस, इन ११ औषधियोंको समभाग कूटकर चूर्ण बना लिया जाता है। इस चूर्णको २॥ तोले लेकर उबलते हुये जलमें मिलाकर लेप बना लेवें। उसे लगाकर रूई चिपका देवें। फिर कपड़ा लपेटें। आवश्यकता हो, तो लकड़ीकी पट्टी या मोटे कार्ड बोर्ड रखकर कपड़ा बांधे। ३ दिन के बाद गरम जलसे भिगोकर लेप धोदेवें। कसर रही हो, तो १२ घण्टे बाद फिरसे लेप लगा देवें।

चौडे, दोनों सिरेपर नोक वाले। फूल छोटे, फीके बैंजनी, तुर्रेमें। पुष्पवाह्यकोषके पत्र ४। पुष्पदल ४-८। पुकेसर अनेक। बीजाशय १ कोषयुक्त। आदि बीज अनेक। पान स्वादमें तीक्ष्ण। बजारमें जो लौंग बिकता है, वह इस वृक्षकी पुष्पकलिका है। अच्छे लौंग होनेपर अगुलीसे दबानेपर तैल निकलता है।

मात्रा—लौंग १ से ३ रत्ती। तैल १ से ३ बूंद।

गुणधर्म—उष्ण, तीक्ष्ण, विपाकमें मधुर, वीर्यशीतल, लघु, पित्तनाशक, हृद्य, चक्षुको हितकर, विषनाशक, शिरोरोगनाशक तथा शूल, तृषा वमन, आध्मान, कास, श्वास, हिक्का और क्षयको दूर करता है।

स्व० डाक्टर राधागोविंदकरके मतानुसार लौंग अग्निप्रदीपक, उत्तेजक और उदरवातहर है। ये सब गुण उड्डयनशील तैलके हेतुसे हैं। तैल त्वचापर मर्दन करनेपर उत्तेजक, चर्मप्रदाहक, उग्रताजनक और प्रत्युग्रतानाशक। मालिश करनेपर स्थानिक कैशिकाए सब प्रसारित होती हैं। प्रारम्भमें मर्दन स्थानपर चिनचिनत्व और वेदना होती है। फिर स्थानिक चेतनालोप। तैल कीटाणु (परोपजीवी कीटाणु) के नाशक (Parasiticide) और व्रणपाकके निवारक (पूतिहर Antiseptic)।

तैलका उदर सेवन करनेपर त्वचाके सदृश मुखके भीतर चिनचिनत्व और उग्रता अनुभूत होती है। मुखके भीतरकी सब कैशिकाए प्रसारित होती हैं, लाला निःसरणमें वृद्धि होती है फिर स्थानिक चेतनाका ह्रास होता है। स्वादकी तीक्ष्णताके हेतुसे जिह्वाकी सब वातनाडिया उत्तेजित होती हैं और सुगन्धद्वारा गधग्राही केन्द्र उत्तेजित होता है। आमाशयमें पहुचनेपर वहा उग्रता प्रकाशित होती है, वहांपर रही हुई कैशिकाए प्रसारित होती हैं, आमाशयकी मथन क्रिया बढ जाती है और आमाशयके रसस्रावमें वृद्धि होती है। इसी हेतुसे क्षुधा प्रदीप्त होती है, पाचनक्रिया उन्नत होती हैं। परिणाममें अग्नि भी सतेज होती है। यह आमाशयस्थित वायुको बाहर निकालता है, इस हेतुसे इसे वातहर कहा है।

आमाशयकी वातनाडियोंद्वारा उत्तेजना प्रतिफलित होनेपर हृदयको भी उत्तेजित करता है। इस हेतुसे नाड़ीमें कुछ तेजी और बलकी वृद्धि होती है।

तैलद्रव्य आमाशयमेंसे अन्त्रमें पहुँचनेपर उसकी कैशिकाए प्रसारित होती हैं। फिर लघु अन्त्रका स्राव बढ जाता है। मासपेशियोंका आवरण उत्तेजित होता है। इस हेतुसे अन्त्रके अनियमित आकुचनसे उदरशूल चलता हो, तो वह शान्त हो जाता है और अन्त्रस्थ वायु बाहर निकल जाती है और अन्त्रस्थ वायु बाहर निकल जाती है और अन्त्रस्थ आक्षेप दूर होता है।

अन्त्रमेंसे तैल द्रव्यका रक्तमें शोषण होनेपर रक्तके भीतर श्वेताणुओंकी सख्या बढ़ जाती है। एव रक्त सचालनमें भी तेजी आती है। आमाशयकी

वातनाडियोंकी उत्तेजना और रक्तसंचालनकी उत्तेजना, इन दोनोंद्वारा हृदय को उत्तेजना पहुँचती है।

लवंग द्रव्य वृक्क, त्वचा, श्वासनलिका, जननेन्द्रिय और मूत्रमार्गद्वारा बाहर निकलता है, जिससे बाहर होनेके समय उन स्थानोंके स्रावकी वृद्धि कराता है और संक्रामक कीटाणुओंको नष्ट करता है, किन्तु इस दूरवर्ति कार्य करनेके उद्देश्यसे प्राय लौंगका उपयोग नहीं किया जाता।

डाक्टर देसाई लिखते हैं कि, लौंग सुगन्धित, पाचन, वातहर, उत्तेजक, रक्तविकारनाशक, कफघ्न, पूतिहर (सडेकोनाश करना), दुर्गन्धहर और मूत्रल है।

१ पाचन—इस गुणके हेतुसे क्षुधा प्रदीप्त करता है, आमाशय रसस्राव अधिक होता है, मानसिक प्रसन्नता होती है और भोजनमें रुचि उत्पन्न होती है। इन हेतुओंसे सुगन्धित दीपन पाचन औषधियोंमें लौंग मिलाया है।

२ पूतिहर—इसगुणके हेतुसे मुख, आमाशय और अन्त्रमें रहे हुए कीटाणुओंसे उत्पन्न सडेको दूर करता है। कीटाणुओंके हेतुसे आफरा आया हो तो वह भी दूर होजाता है।

३ श्वेताणुवृद्धि—रक्तमें श्वेताणुओंको बढानेका महत्वका गुण रहा है। जिससे रक्तके भीतर आयेहुये (आगन्तु) कीटाणुओंका नाश होता है। इसी उद्देश्यसे आचार्योंने ज्वर विनाशक औषधिमें लौंगको मिलाया है।

४ उत्तेजना प्रधान—यह क्रिया हृदय, रक्ताभिसरण और श्वासोच्छ्वास क्रियामें स्पष्ट प्रतीत होती है। इसहेतुसे त्रिदोषघ्न औषधिमें लौंगको मिलाया है।

५ आक्षेपनिवारण—देहमें रही हुई किसी भी स्थानकी रक्तवाहिनियोंके संकोच विकासमें विकृति होकर आक्षेप आनेपर उससे होनेवाली वेदनाको दूर करता है।

६ दुर्गन्धहर—कफ, आम, लार, आदिकी दुर्गन्धको दूर करनेकेलिये लौंग दिया जाता है।

७ मूत्रजनन—वृक्कसे लेकर मूत्रेन्द्रियके मुखतक मार्गकी शुद्धि होती है। वृक्क उत्तेजित होनेसे मूत्रोत्पत्तिमें वृद्धि होती है।

८ बाह्योपचार—लेप करनेपर चेतनाप्रद, वेदनास्थापन, पूतिहर, व्रण-शोधन और व्रणरोपण क्रियाकी सिद्धि होती है।

उक्त धर्म सब (दाल चीनी, अजवायन आदि) सुगन्धित औषधियोंके भीतर न्यूनाधिक अंशमें रहे है। नव्य चिकित्सकोंके मतानुसार सामान्यत. लौंगके तैलके मर्दनका असर कपूरके तैलके सदृश होता है।

लवंग कल्प—

१ लवंग फाण्ट—लौंगका मोटा-मोटा चूर्ण १ तोलेको उबलते हुये ५० तोले

जलमें मिलाकर ढक देवें। आध घण्टेपर जल छान लेवें। मात्रा १ से २ औंस जल दिनमें ३ बार पिलानेसे उदरवात और अपचन दूर होकर अग्निप्रदीप्त बनती है।

२ लवंगादि वटी—लौंग, बहेडा, कालीमिर्च और कत्था, इन सबको सम-भाग मिलाकर बबूलकी छालके क्वाथमें १२ घण्टे खरलकर २-२ रत्तीकी गोलिया बना लेवें। मात्रा—१-१ गोली मुहमें रखकर रस चूसें, दिनमें १० गोली तक। यह कफको पतला कर सरलतासे बाहर निकालती है और खासनेमें होनेवाले अधिक कष्टको कम कराती है तथा कफोत्पत्ति को बन्द कराती है।

३ लवंगाद्य चूर्ण—लौंग, जायफल, जावित्री और पिप्पली ६-६ माशे, कालीमिर्च २ तोले, सौंठ १६ तोले और मिश्री २० तोले लेवें। इन सब को कूट छानकर चूर्ण बना लेवें। मात्रा—२ से ४ माशे दिनमें ३ बार जलके साथ। उपयोग—जीर्ण मन्द ज्वर, कफप्रकोप, पीलाकफ, बारबार गिरना, खासी आते रहना, प्रमेह, श्वास, अग्निमान्द्य, अरुचि, उदरवात, अपचन, थोडा-थोडा दस्त होते रहना आदि विकारों पर यह प्रयोजित होता हैं।

सूचना—लौंग आदि सुगन्धित औषधियोंका चूर्ण आवश्यकता अनुसार ताजा बना लेना चाहिये। पहलेसे बनाकर रख लेनेपर उड्डयनशील तैल उड जाता है और स्थिर तैल रूपान्तरित हो जाता है।

उपयोग—आयुर्वेदमें लौंगका उपयोग अनेक रोगोंपर बहुत किया है। गुटिका, चूर्ण, क्वाथ, अवलेह, आसव आदिके अनेक पाठोंमें लौंग मिलाया है। भोजनके पश्चात् ताम्बूल खानेका विधान किया है और उसमें भी लौंग मिलाया है।

१ अपचन—आमाशयकी निर्बलतासे अपचन उत्पन्न होनेपर उदरमें भारीपन, दूषित दुर्गन्धमय डकार आना, अरुचि, मुह फीका रहना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। किसी किसीको आफरा भी आजाता है। उसपर लौंग का फाण्ट अथवा लौंगका तैल देनेसे तुरन्त लाभ पहुचता है।

यदि अन्त्रमें दूषितमल अधिक रह गया हो तो लौंग २ माशे, सोंठ २ माशे और सनायपत्ती ॥ तोला लेकर २५ तोले उबलते जलमें मिलाकर ढक देवें। १ घण्टा रहने दें फिर मसलकर छान लेवें। इसमेंसे २ औंस पिला देनेसे २-३ दस्त आकर उदरशुद्धि हो जाती है। फिर अपचन, उदरशूल, आफरा आदि दूर होजाते हैं।

२- सगर्भाकी वमन—गर्भधारण होनेपर किसी किसी स्त्रीको अति वमन

होती रहती है, उनको लौंगका फाण्ट दिया जाता है। यदि ज्वर भी रहता हो, तो न देवें।

३ विसूचिकाकी तृषा—१ तोले लौंगको १२८ तोले जलमें मिलाकर उबालें। २-३ उफाण आनेपर नीचे उतारकर ढक देवें। आध घण्टेपर छान, शीतल करके दूसरे बरतनमें भर लेवें। इसमेंसे १-१ औंस जल वारवार पिलाते रहें।

४. आफरा—लौंगके फाण्ट २ औंसके साथ १० रत्ती सोडाबाईकार्ब मिलाकर देवें।

५. प्रतिश्याय—लौंगका तैल २ बूंद शक्करके साथ देवें। लौंगके तैलको कपड़ेपर छिड़ककर सुंघावें (नीलगिरी तैलका उपयोग वर्तमानमें अधिक होता है, यह सस्ता है और अच्छा काम करता है।

६ कास—कफ खांसी और शुष्क कास, दोनोंपर लवंगादिवटी लाभदायक है। लवंगादिवटीमें कत्था शामक होनेसे वेगको शान्त करती है और लौंग उत्तेजक होनेमें कफको बाहर निकालनेमें सहायता पहुँचाता है।

७ मंद-मंद ज्वर और कफप्रकोप—लवंगादि चूर्ण दिनमें ३ बार देते रहें।

८ दंतशूल—लौंगके तैलका फोहा दांतके कोतरमें रख दें या लौंगके फाण्टसे कुल्ले करावें।

(७८) वन मल्लिका

स० कानन मल्लिका, वन मल्लिका, वन राती, अरण्य प्रिया। हिं० वन-मल्लिका, वन मोगरा। गु० वट मोगरो, रान मोगरो। सौं० जगली डोलर। म० रान मोगरा, कुमर। बं० वन मल्लिका। ते० अडवी मल्ले, चिरु मल्ले। ता० अदा चलम, अडिगल। मला० कट्टु मल्लिक, कट्टु मुल्ल। कना० कटु मल्लिगे, वन मल्लिगे। अ० Wild Jasmine ले० Jasminum Angustifolium

परिचय—अंगस्टिफोलियम=सकड़े पान युक्त। काण्ड चिकना, टहनिया रुएं दार। पान सादे, अनेक, एक ही झाड़ीपर अनेक आकार के छोटे, सामान्यत ॥ से २ इञ्च के। किन्तु कभी कभी ४॥ इञ्च के भी। अण्डाकार या अण्डाकार-भालाकार, आधार पर गोल, ऊपर में नोकदार। पुष्प वृन्त लम्बा कोमल। पुष्प एकाकी या अधिक, सामान्यतः ३ छोटी प्रशाखा के अन्त में। पुष्प बाह्य कोष चिकना, भिन्न रेखाकार विभागयुक्त छोटा। पुष्पान्तर नलिका लगभग ॥ इञ्च का। पुष्पान्तर कोषके खंड ७ या ८। पञ्चगर्भ कोष $\frac{1}{3}$ इञ्च चौडा, अण्डाकार।

उत्पतिस्थान—मद्रास प्रान्त, दक्षिण प्रदेश, कोंकण, सिलोन, बरार।

और रुचिकर है।

डाक्टर देशाईके मतानुसार इसके गुण हल्दीके समान है। कण्डू, मार, चोट और शोथ आदिपर इसका लेप करते हैं।

मात्रा—कन्द १॥ से ३ माशे तक।

उपयोग—वनहरिद्राघरेलू औषधि है। इसका वाह्य उपयोग होता है। उदर सेवनार्थ यह वहुत कम प्रयुजित होती है।

१ रक्तजमाव—चोटलगनेसे रक्त जमजानेपर वनहल्दीको अथवा वन हल्दी और वीजावोलको जलमें घिस निवायाकरके लेप करनेसे रक्त विखर जाता है और सूजन उतर जाती है।

२ कण्डू—वनहल्दी और कडवीजीरीको गोमूत्र या जलमें पीसकर लेप करनेसे छोटी छोटी फुन्सिया हुई होगी तो वे सव नष्ट हो जाती है और खुजली दूर हो जाती है। पामाके पीले फाले होगये हों,तो उनपर वनहल्दी और कड़वी जीरीके लेप करनेपर फाले दूर होजाते हैं।

३ प्लीहा-यकृद्वृद्धि—प्लीहा या यकृत् वढजानेपर वनहरिद्राको जलमें पीस निवायाकर दिनमें २-३ बार लेप करनेसे थोड़े ही दिनोंमें लाभ होजाता है। शरीरके किसी भागमें गाठ हुई हो तो उसपर भी लेप लगाने से गांठ वैठ जाती है।

४ उदरकृमि—वनहरिद्राके साथ थोडा सैंधालमक मिलाकर निवायेजलसे देनेसे २-४ दिनमें कृमि नष्ट होजाते है और नई उत्पत्ति भी रुक जाती है।

५ शीतलाके दाग—वनहरिद्रा आँवला और कडवी जीरीको जलमें भिगो मर्दन करके धोते रहने या स्नान करते रहनेसे दाग और त्वचा विकृति दूर होजाते हैं।

६ रक्तविकार—शरीरके किसी भागमें दवजाने या चोट लगनेसे रक्त-नीला होगया हो तो उसपर वनहल्दी को जलमें घिस निवायाकर लेप करनेसे वेदना ओर नीलता दोनों दूर होजाते हैं।

(८०) वांकेरी ।

स० घृतकरज। हि० म० गु० वाकेरी। व० उमूल कूचि। ओ० गिलो। आसाम-टेरी। ले० Caesalpinia Digyna

परिचय—डिगिनिया=जिसजातिके फूलोंमें गर्भकोष या वीजाशय नलिका दो प्रकारकी हो, वह लता करजके समान काटेदार सर्वदा हरी अति सघन झाड़ी है। उत्पत्तिस्थान-पूर्व हिमालय, दक्षिण, विहारमें भागलपुर जिला। पान॥ से ॥। फूट लम्वे। फूलके लाल तुर्रे आते हैं। फूल जुलाईसे अक्टोवर

तक। फली फरवरीमें अप्रेलतक। जमीनमे २५-३० फीट खोदनेपर मूलके नीचे से गाठ मिलती है।

पान तथा मूल और मूलपर होनेवाली गाठोंका औषधरूपमे उपयोग होता है। इन गाठोंको महाराष्ट्रमें वाकेरीचे भाते और वलभाते कहते हैं। ये कडवी और चिमडी होती हैं। बजारमें पंठेका मूल वाकेरीकेस्थानपर दे देते है, किन्तु वह कडवा नहीं होता।

मात्रा—गाठ १५ से ३० रत्ती। पानोंका रस १से २ तोले। अनुपान दूध।

गुणधर्म—रस चरपरा, उष्णवीर्य, वातघ्न, व्रणहर, सब चर्म रोगोंका नाशक और विषके स्पर्शका नाशक है।

डाक्टर देसाईके मतानुसार बांकेरी, शोधन, ग्राही, कीटाणुनाशक, व्रणरोपण और बल्य मात्रा अधिक होनेपर कुछ नशा आजाता है।

उपयोग—इस औषधिका उपयोग रक्तशोधन और व्रणरोपण रूपसे महाराष्ट्रमें अधिक होता है। भगदर, नाडीव्रण, नासूर और शय्याव्रण आदिपर उपयोग वहुत होता है। यह जीर्ण रोगोंको भी दूरकर देती है। यह उदरसेवन और वाह्यलेप रूपसे व्यवहृत होती है। ब्रह्मदेशमें मूलको जलमें घिसकर ज्वरवालेको देते हैं।

बांकेरी अति मद गतिसे असर पहुँचाती है। प्रथम सप्ताहमें इसका असर कुछ भी प्रतीत नहीं होता। फिर दूसरे सप्ताहसे दीपन, पाचन, उदरशोधन, रक्त प्रसादन, स्फूर्तिकी प्राप्ति आदि गुणोकी प्रतीति होने लगती है। जीर्ण रोगोमें १-२ मास तक या इससे भी अधिक समय तक सेवन करनी पड़ती है।

कफ प्रधान जीर्ण श्वास, कण्ठमाल, जीर्ण फिरंग, जीर्ण सुजाक, अर्बुद तथा कर्क स्फोट, नाडीव्रण, दुष्टव्रण, मधुमेह और गर्भाशयप्रदाह आदि रोगों पर गुजरात महाराष्ट्रमें इसका प्रयोग होरहा है। किस स्थितिमें कितना लाभ पहुँचाता है, यह अभीतक प्रयोगसिद्ध नहीं हुआ तथापि यह उत्तम निर्दोष ओषधि है, इस विषयमें कुछ भी संदेह नहीं है।

(८१) वासन्ती

सं० वरकुन्द, नवमल्लिका। हि० वासंती, नेवारी, निवाड़ी। म० कुसर। गु० कुंद। बं० वडकुंद, नवमल्लिका। संता० गदाहुडवहा। ता० नागमल्ली। तें० अद्वीमल्ले, नागमल्ले। ओ० बोनामोलि, नियाली। कना० दोड्डक मल्लिगे। ले० Jasminum Arborescens प्राचीनसञ्ज्ञा Jasminum Latifolium

परिचय—जेसमिनम=अरबीसञ्ज्ञा। आर्बोरेसन्स=वृक्षकी सदृश बढने वाली। लेटिफोलियम=चौड़े पानयुक्त। बडी लगभग खडी उलझी हुई शाखाओं वाली झाडी। काण्डकी ऊंचाई ५-७ फूट। पान अभिमुख, सादे, २से ३ इञ्च लम्बे (या ३ से ५ इञ्च लम्बे) और २ से ३ इञ्च चौड़े। लम्बगोल, तीक्ष्ण नोकदार पत्रवृन्त लगभग ॥ इञ्च लम्बा, प्राय कोमल। पुष्प १से १॥ इञ्च व्यासके, सफेद सुगन्धित। मिश्रमजरी रुएदार, शिथिल, ३ शाखायुक्त। पुष्पान्तर नलिका लगभग ॥ इञ्च लम्बी। पक्व गर्भकोष सामान्यत एकाकी, लम्बगोल या अण्डाकार, प्राय मुड़ा हुआ, लगभग ॥ इञ्च लम्बा पकने पर काला। पुष्पकाल वर्षाऋतु।

उत्पत्तिस्थान—गंगाजीका ऊर्ध्वप्रदेश, हिमालयपर ३००० फूट ऊंचाईतक बंगाल मध्यप्रदेश दक्षिणभारत।

गुणधर्म—भावप्रकाशकारके मत अनुसार रसमें कड़वी शीतवीर्य, लघु और त्रिदोषजित है।
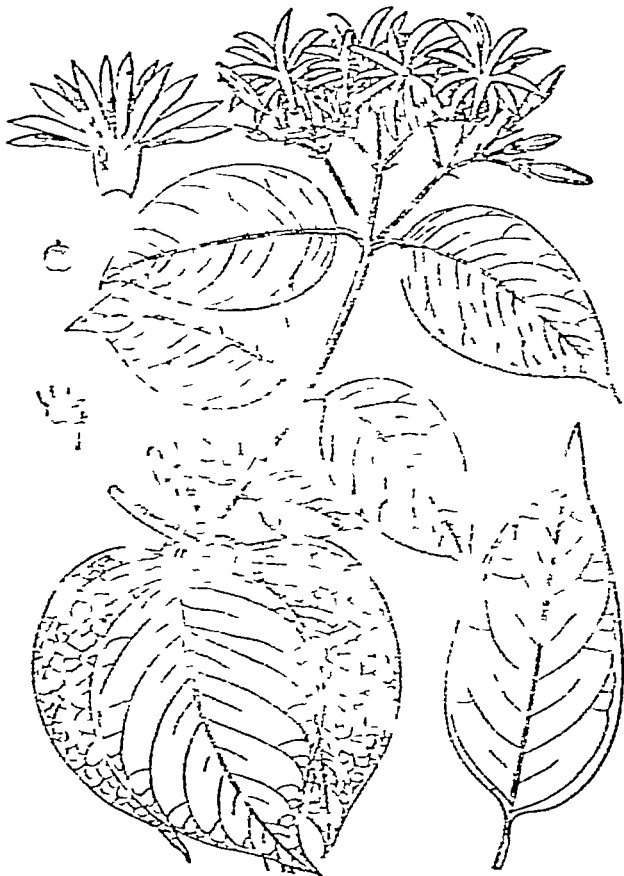
कफप्रकोप—इसके पानोंका रस लहसुन कालीमिर्च और अन्य द्रव्य मिलाकर सेवन करानेपर कफ निकल जाता है। फिर श्वासवाहिनियोंमें कफावरोध होकर घबराहट होती हो, वह दूर हो जाती है। एक समयमें ७ पानोंका रस काफी होता है। छोटे बालकको बासतीका आधापान और अगस्त (Sesbania Grandiflora) के ४ पान मिला रस निचोड़कर १ रत्ती कालीमिर्चका चूर्ण और १ रत्ती सोहागेका फूला और शहद मिलाकर दिया जाता है।

क्षुधामांद्य—पानोके रसका सेवन करानेपर अग्नि प्रदीप्त होती है।

मारिक धर्ममें कष्ट—सताल लोग मूलका क्वाथ देते है।

(८२) विधारा

सं० वृद्धदारक, छागान्त्री, अन्त कोटरपुष्पी, वृष्यगन्धिका, दीर्घदारक। हि० विधारा। ओ० वृद्धोतारेको, मुण्डानोई। वं० वीजताडक। गु० वरधारो, समुद्र-शोष। म० समुद्रशोक। मार० समन्दरशोख। ते० चन्द्रपौदा, पालसमुद्र। मला० समुद्रपाला, समुद्रयोगम्। ता० अवगर, चमुतिरपालै। अ० Elephant Creeper, Ocean drier. लै० Argyreia Speciosa

परिचय—आर्जिरिया=रौप्य सदृश तेजस्वी पानवाला। स्पेशियोसा=सुदर। ४०-५० फूट ऊंचे चढनेवाली, वहुदूरव्यापी, श्वेत या पीताभ, कोमल रुएदार (झाडी)। मूल मोटा, लम्वा वढा हुआ, कलाईसे जांघ जितना मोटा, अनेक उपमूलयुक्त। काण्ड मोटा, हल्का सफेद, १ से ३ फूट व्यासके, कोमल रुएदार (भीतर चक्राकार रचना वाला), अनेक शाखायुक्त। छालके नीचेकी चक्काकार रचना दूध सदृश रसयुक्त। छालका स्वाद कडवा, पान अण्डाकार, ३ से १२ इञ्चतक लम्वा और २ से ९ इञ्च तक चौडा, ऊपर चिकना, नीचे कोमल सफेद या पीला रुएदार, स्वादमें मधुर-सा। पत्रवृन्त १ से २ इञ्च लम्वा। पुष्प पत्र दण्डपर अर्ध छत्राकार गुच्छमें, २ से ३ इञ्च व्यासके, घण्टाकार, तेजस्वी वैंजनी, भीतर गुलावी। पत्रदण्ड शाखायुक्त ६ से १२ इञ्च लम्वा। फल आध से पौन इञ्च व्यासका, गोल या लम्वगोल, कच्चा होनेपर हलका हरा, पककर सूखनेपर पीला भूरा, ४ खण्डयुक्त। वीज ३ धारीवाले, भूरे सफेद। पुष्प-काल वर्षाऋतुसे शीतकाल पर्यन्त। फल शीतकाल (जनवरीसे अप्रेल तक) पान अप्रेलमें नये आते हैं।

उत्पत्ति स्थान—भारतके अनेक प्रान्तोंमें।

गुणधर्म—भावप्रकाशकारके मतानुसार विधारा रसमें चरपरा-कडवा, अनुरस कसैला, उष्णवीर्य, रसायन, वृष्य, वात, आमवात, अर्श, शोथ, वातमेह और कफका नाशक तथा शुक्र, आयु, वल, मेधा, अग्नि, स्वर और कान्तिको वढाने-वाला और सारक है। कैयदेवजीने वातरक्तनाशक गुण अधिक कहा है। अन्य निघण्टुकारोंने कृमिघ्न, वातोदरनाशक, तीक्ष्ण, पाचन और पित्तवर्द्धक गुण अधिक कहे हैं।

यूनानी मतानुसार मूल कडवा, कामोत्तेजक, स्वेदल तथा सुजाक, सुजाक जनित पूयमेह, मूत्रप्रसेकनलिका प्रदाह, मूत्रकृच्छ्र (Strangury) और जीर्ण क्षतपर उपयोगी है।

डाक्टर खोरीके मतानुसार वृद्धदारु रसायन, पौष्टिक, आमवात और फिरंग में उपयोगी है।

मात्रा—मूल और काण्डका चूर्ण १॥ से ३ माशे। बीज चूर्ण ६ से १२ रत्ती। उदरशुद्ध्यर्थ मूलका चूर्ण ३ से ६ माशे।

उपयोग—वृद्धदारकका उपयोग प्राचीनकालसे होरहा है। सुश्रुतसंहिताके भीतर श्यामादि गण और अधोभागहर द्रव्योंमें छगलान्त्री (विधारा) का उल्लेख मिलता है। चरकसंहिताके भीतर फलिनी औषधियोंमें अन्त:कोटरपुष्पी नामसे उल्लेख किया है।

वृद्धदारु उष्णवीर्य, वातहर, पौष्टिक, कामोत्तेजक और रसायन है। आमवात, पक्षाघात, ऊरुस्तम्भ, गृध्रसी, मेदोवृद्धि, श्लीपद, या अन्य वातप्रधान या मेदप्रधान जीर्ण रोग जनित निर्बलता और वृद्धावस्थाजनित निर्बलतापर वृद्धदारु आशीर्वादके समान लाभ पहुँचाता है। यह सातों धातुओंमें दूषित हुये लीनविष और रोगाणुओंको जला देता है। फिर धातुओंको शुद्ध और सबल परमाणु, बनाता है। यदि शारीरिक अशक्तिके कारण नपुंसकता आई हो तो वह भी दूर होजाती है।

सगर्भा स्त्रियोंको रोग होनेपर रक्तकी कमी हो जानेपर कभी कभी गर्भ-वृद्धिमें रुकावट आजाती है। ऐसी अवस्थामें वृद्धदारुका सेवन अश्वगधा के साथ या शतावरीके स्वरसकी भावनावाले वृद्धदारुका सेवन करानेपर लाभ होजाता है।

१ रसायन—(अ) असगंध और विधारेका चूर्ण समभाग मिलाकर घी-शक्करसे या दूधसे सेवन करनेपर देह नीरोगी और सबल बनता है। वीर्य गाढा बनता है।

(आ) वृद्धदारुके मूलके चूर्णको ७ भावना शतावरीके रसकी देकर १-१ माशा शहदके साथ प्रात साय सेवन करते रहनेपर देहबल, बुद्धि, स्मरण-शक्ति आदिकी वृद्धिहोती है तथा वलीपलित दूर होते हैं।

२ शुक्रकी निर्बलता—१० तोले वृद्धदारुके मूलके कल्कको १ सेर घी और ४ सेर दूधमें मिला, मन्दाग्निपर पाककर घृत सिद्ध करें। फिर रोज भोजनके साथ प्रात रात्रिको १-१ तोला सेवन करते रहनेसे वीर्य गाढा होता है और कामोत्तेजना होती है।

३ आमवात—(अ) विधारेके मूल और सोंठ (या अजवायन) का चूर्ण जलके साथ सेवन करनेसे आम प्रकोप और पीडा दूर होती है, हृदयकी क्रिया सबल बनती है और आमवात शमन होजाता है। आमवातज शोथपर मूलका लेप किया जाता है।

(आ) वृद्धदारमोदक (विधारा, भिलावा और सोंठ समभाग मिलाकर कूटें। फिर सबसे दूना गुड मिलाकर ६-६ माशेके मोदक बनालेवें) सुबह रात्रिको सेवन कराते रहनेसे आमवात दूर होजाता है।

सूचना (१)—भिलावा खानेवालोंको तैल अधिक अनुकूल रहता है सूर्यका ताप और अग्निका सेवन हानिकर होता है।

(२) वृद्धदारुमोदक खानेके पहले ६माशे घी चाटलेनेसे कण्ठभागकी रक्षा होती है और भिलावेकी उग्रता कम होजाती है।

४. श्लीपद—(अ) वृद्धदारक घृतका सेवन करानेसे श्लीपद, गृध्रसी, शोथ शूल, पाण्डु और आमवात दूरहोते हैं।

विधारेकीजड ८ तोला, सोंठ ४ तोला, पीपल, हरड, बहेडा, आंवला दारुहल्दी, चित्रकमूल और पुनर्नवा, ये ७ औषधिया २-२ तोला लें सबको जलमें पीसकर कल्क कर १॥ सेर घी और ६ सेर जलमें मिलाकर मन्दाग्निपर पाक करनेसे वृद्धदारक घृत सिद्ध होता है। मात्रा १-१तोला।

(आ) विधारेके मूलको गोमूत्रमें घिसकर लेप करते रहनेसे श्लीपद दूर हो जाता है।

५. मेदोवृद्धि—विधारेके मूलके चूर्णको सिरकेमें मिलाकर रोज मर्दन करते रहनेसे स्थूलताका ह्रास होता है।

६ ऊरुस्तम्भ—विधारेकी जड़ और सोंठका चूर्ण निवाये जलके साथ सेवन करनेपर पीडासह ऊरुस्तम्भ दूर होजाता है।

७ कोष्टुशीर्षक—गोडेपर सूजन आकर वेदना होनेपर विधारेका चूर्ण एरण्ड तैलके साथ सेवन करने या वृद्धदारुकादि मोदकका कुछ दिनोंतक सेवन करने और विधारेका लेप करते रहनेसे लाभ होजाता है।

८ कर्णपीड़ा—विधारेके पानका रस २-३ बूंद कानमें डालने पर पीडा दूर होती है।

९. व्रण—फोडा पकानेके लिए पानके रुएदार पृष्ठपर एरण्डतैल या घी या तैलवाला हाथ लगाकर बांधते रहनेसे फोडा पककर फूट जाता है और २-३ दिनमें सब पूय निकलकर शुद्ध होजाता है। फिर पानका चिकना सीधा पृष्ठ बांधते रहनेसे व्रण भरजाता है। व्रण शुद्ध होनेके पहले व्रण रोपण नहीं कराना चाहिये, अन्यथा फिरसे अन्यत्र फोड़ा हो जायगा।

वक्तव्य—कई चिकित्सकोंने वृद्धदारु हि० दोपत्तीलता, Ipomoea pes-Caprae, बं० छागलकुडी, गु० मयदिवेलको माना है। इसके मूलमें विरेचन और मूत्रल गुण हैं। इस औषधिमें शुक्रवर्द्धक, वृष्य और रसायन गुण नहीं मिल सकेगा। अतः इसे वृद्धदारु मानना अनुचित है।

जितनी। १ पुकेसर अन्य ३ पुकेसरकी अपेक्षा लम्बा। पुष्पकाल सितम्बरसे मार्च तक।

उत्पत्तिस्थान—भारतके प्राय सब प्रान्तोंमें, हिमालयमें ४००० फुट ऊंचाई तक, सिलोन, वर्मा और आफ्रिकाका उष्णकटिबन्ध प्रदेश।

(२) गुजरात-राजस्थानकी शंखाहुली—वागड-माखणी। कच्छी—मखणवल, अच्छी शखवल। राज० गु० शखावली। ले० Convolvulus Microphyllus

परिचय—माइक्रोफाइलस=छोटे पानयुक्त। कोन्वोल्व्युलुस=लपटनेकी आदतवाला। रक्ताभपिंगल, रुएदार, वर्षायुक्षुप। भूमिस्थ काण्ड काष्ठमय। काण्डकी ऊंचाई २ से ८ इञ्च। शाखाएं जमीनपर फैली हुई या जमीनपर पड़ी हुई। कभी जमीनपर छाताके सदृश फैली हुई। पान ½ से १ इञ्च लम्बे, रेखाकार, लम्बगोल अथवा ऊपर अण्डाकार, लगभग वृन्तहीन। पुष्प अक्षकोण से निकले हुए छोटी शाखापर, वृन्तरहित, १से ४ साथमें। पुष्पवाह्यकोषपत्र ¼ इञ्च, भल्लाकार। पुष्पाभ्यन्तरकोष ½ इञ्च लगभग चौडा, चोंगाकार। मूल-सग्रह काष्ठमय।

उत्पत्तिस्थान—गुजरात, राजस्थान, बलुचीस्तान से इजिप्टतक और नुबिया।

(३) काली शंखाहुली—सं० विष्णुगन्धी। हि० शखपुष्पी, श्यामाक्रान्ता म० विष्णुक्रान्ता। गु० कालीशखावली। कच्छ—कारी शखवल, कारी छात्री। ते० विष्णुक्रान्ता। ता० विष्णुकान्दी। बं० विष्णुक्रान्ति, विष्णुकान्दी। कना० विष्णुक्रान्ति। मला० विष्टनाक्लान्दी। ले० Evolvulus Alsinoides

परिचय—बहुवर्षायुक्षुप, छोटी काष्ठमय शाखायुक्त भूमिस्थ काण्डसह। मूल २से ६ इञ्चतक लम्बा, सफेद, उग्रगन्धयुक्त, तैली चरपरा स्वादयुक्त। काण्ड अनेक, प्राय. १ फुट से अधिक लम्बे, जमीनपर फैले हुए कोमल, तारसदृश, सामान्यत छातासदृश फैला हुआ। पान अण्डाकार, लम्बगोल, नोकरहित, सघनकोमल रुए से आच्छादित। पर्णवृन्त अति कठोर, पुष्प छोटे, नील या सफेद, एकाकी या दो। पुष्पदण्ड बहुत लम्बा। पुष्पवाह्यकोष सघन कोमल रुएदार। पुष्पकाल जुलाई से नवम्बरतक।

उत्पत्तिस्थान—उष्ण और उपउष्ण कटिबन्धके सब देशों में।

गुण धर्म—भावप्रकाशके मतानुसार शखपुष्पी रसमें कसैली, उष्णवीर्य, रसायन, सारक, मेध्य (बुद्धिप्रद), कामोत्तेजक, मानसिक रोगका दूर करने वाली, स्मृति, कान्ति, बल और अग्निवर्द्धक तथा दोष, अपस्मार, भूतबाधा, अश्री (शारीरिक दरिद्रता), कुष्ठ, कृमि और विषको नष्ट करनेवाली है।

कैयदेवजीने रसमें चरपरी—कडवी, सारक, स्वरप्रद, रसायन, अनुष्णवीर्य,

वर्ण, मेधा, अग्नि, बल, आयु और कान्ति देनेवाली तथा अपस्मार, उन्माद, अनिद्रा और भ्रमको नाश करनेवाली कही है। धन्वन्तरि निघण्टुकारने भी कटुतिक्तोष्णा कहा है।

चरकसंहिताकारने चिकित्सित स्थान के प्रथम अध्यायके मेधाकर रसायन मे शंखपुष्पी आयुष्य रोगहर बल, अग्नि, वर्ण और स्वरको बढानेवाली, मेध्य और रसायन गुणयुक्त है। इनमे भी मेध्य गुण विशेष है। इसके अतिरिक्त ब्राह्म्य रसायन और ऐन्द्री रसायनमे भी शंखपुष्पी मिलायी है।

पहली जाति (Canscora Decussata) के गुणधर्ममें डा० कीर्तिकर के मेडिसिनल प्लेण्टसके भीतर क्षुप कडवा, उग्रतादर्शक, तैली (Oleaginous) सारक, रसायन और पौष्टिक गुण दर्शाया है। ताजा रस उन्माद, अपस्मार और वातनाडियोंकी निर्बलतामे उपयोगी दर्शाया है।

डाक्टर दत्तके मतानुसार Can Decu प्रथमजाति सारक, रसायन, पौष्टिक और वाततन्तु पौष्टिक है। दूसरी जाति (Can Microphyllus) के गुणधर्ममें वनस्पति वर्णन कारने लिखा है कि मूल स्वादमें तेजी और उग्रतादर्शक है। पान नमकीन चिरचिरे हैं। सर्वाङ्ग रसायन, पौष्टिक, ज्वरघ्न, पाचक, ग्राही, उपलेपक और सारक है। मूल और बीज सारक है। पौष्टिक कार्यमें मूल व्यवहृत होता है। पानोंका शाक वातहर, पाचक, सारक, शक्तिवर्द्धक और पित्तहर है। शंखाहुली मस्तिष्कबलवर्द्धक होनेसे उन्माद, अपस्मार, और मस्तिष्ककी निर्बलतामें दी जाती है। शंखाहुली मधुमेहवालेके लिए भी हितावह है।

तीसरी जाति (Evo Alsinoides) के गुणधर्ममें डा० कीर्तिकरके मतानुसार रसमे कडवी, उग्रतादर्शक, सारक, रसायन, पौष्टिक, कृमिघ्न तथा श्वास, पित्तविकार (Biliousness), अपस्मार, श्वेतकुष्ठ, बालकोंके दांत आना इन रोगोंके नाशक, बुद्धिवर्द्धक, कान्तिप्रद और अग्निवर्द्धक है।

वनस्पतिवर्णनकार लिखते हैं कि इस तीसरी जातिके मूलका स्वाद तेली और उग्रतादर्शक है। इसका उपयोग दूसरी जातिकी शंखाहुलीके समान है।

श्री प० यादवजी त्रिकमजी आचार्यने इस तीसरी जातिको विशेष उपयोगी और प्राचीन आचार्य कथित शंखपुष्पी माना है।

बंगाली भारतीय वनौषधिकार इस गुल्म का विष्णुगन्धि नाम देते हैं। गुणधर्म, शंखाहुलीके कीर्तिकार आदिने लिखे है, वे ही दिये हैं।

मात्रा—ताजा स्वरस २से ४ तोले। चूर्ण ३से ६ माशे। फाण्ट ४से ८ तोले।

उपयोग—शंखाहुली का उपयोग प्राचीन संहिताओंमे भी मिलता है। चरकसंहिताकारने रसायन अध्यायमें ली है। सुश्रुतसंहिताकारने तिक्तवर्गमें

शखपुष्पा नाम दिया है।

पहली जातिका उपयोग बगाल और विहारमें शास्त्रीय शखाहुली रूपसे उन्मादपर करते हैं और छोटा नागपुरमें ज्वरपर देते है। एव ताजे घावपर पानोंकी पुल्टिस बाधते हैं।

दूसरी जातिका उपयोग राजस्थान, गुजरात और कच्छमें स्मरणशक्ति बढाने मस्तिष्कको शान्ति देने और उन्माद अपस्मारपर करते हैं। यूनानी द्रव्य-गुण विज्ञानकारने इसे शंखाहुली माना है।

यूनानी द्रव्यगुणविज्ञानकारने दूसरी जातिको शखाहुली कहा है। इसे उष्मा और तर माना है और फिरंग, सुजाक, रक्तार्श, वातार्श और रक्तविकार-जन्य रोगोंमें कालीमिर्चके साथपीस छानकर पिलानेका लिखा है। स्मृतिवर्द्धक, सारक, चक्षुष्य गुण दर्शाये हैं। एव शुक्रमेह और मधुमेहमें हितावह माना है।

सौराष्ट्र और गुजरातमें मधुमेहपीडित इस जातिका सेवन भी करते रहते हैं।

तीसरी जातिका उपयोग ज्वर, अतिसार, प्रवाहिका, कफवृद्धि, ज्वरातिसार आदि रोगोंपर भारतके अनेक प्रान्त, सिलोन, माडागास्कर (आफ्रीका) मे होता है।

डाक्टर देसाईने इसे शखाहुली माना है और उन्माद, निद्रानाश, श्वास, कास, प्रवाहिका, रक्तस्राव और ज्वर आदि पर उपयोग करनेका लिखा है।

सिलोनमें आमाशयपौष्टिक और ज्वरहररूपमें और माडागास्करमें मूलका उपयोग अतिसार शमनार्थ करते हैं। सताल लोग इसके मूलको बालकोंके विषमज्वरपर देते हैं। पानोका उपयोग चिरकारी कास और श्वासरोगमें कफ-स्राव करानेके लिए धूम्रपान रूपसे करते हैं। एव ग्राही गुण होनेसे भीतरके अर्शपर भी इसे उपयोगी माना है।

इसकी तीसरी जातिका मस्तिष्कपौष्टिक गुण यूनानी वालोंने भी स्वीकार किया है। ऐसा इण्डियन मेडिसिनल प्लेण्ट्समें लिखा है।

इसकी तीसरी जातिका उपयोग सौराष्ट्र गुजरातमें दूसरी जातिके समान करते हैं।

१ उन्माद—शखाहुलीका स्वरस ४ से ८ तोलेतक, थोडा शहद और ४-४ रत्ती कुठका चूर्ण मिलाकर रोज सुबह पिलाते रहनेसे उन्माद दूर होता है।

२ अपस्मार—शखाहुलीका स्वरस २-२ तोले, शहद मिलाकर दिनमें २ बार पिलाते रहनेसे अपस्मार दूर हो जाता है।

३ ऊर्ध्व रक्तपित्त—तीसरी जातिकी शखाहुलीका चूर्ण शक्कर मिलाकर खिलाते और ऊपर दूध पिलाते रहनेसे तथा भोजनमें दूध भात लेते रहनेसे थोडे ही दिनोंमें लाभ पहुँच जाता है।

(८४) शाईकांटा

हि० शाईकांटा, गिला, हीडोरांटा। बं० कुचिकांटा, गाईकांटा। माउन्ताल सेगाजानुरा। नेपाल आगारि। मह० चिकारी। मारवाड़-अरना। पं० अन्ना, अरल्, किकरी। सिं० हजेर। गा० आना। मला० कट्टुमिनिन्का। ता० इगई, इन्डु। ते० कोंडीमुडुमु, गोगिन्द। ओ० गोन्तरी, गम्ना। रु० गस्ने, इरिमिगे।

ले० Mimosa Himalayan

प्राचीननाम Mimosa Rubicaulis

परिचय—सदाहरीतलिम, रक्तकाण्डयुक्त। बड़ा, फैलनेवाला, पतनशील-पानवाला गुल्म ऊंचाई ६ से १० फुट। काड अनेक, रक्तपिंगल। काण्डकठोर, भीतर लाल वर्णयुक्त। शाखाएं लम्बी और छोटी प्रशाखायुक्त, न्यूनाधिक रूप दार, टोरीदार, मुड़े हुए कांटेदार। कांटे १ सूत लम्बे। पान द्विपक्षाकार। पर्णाग्र ४ से ९ इन्च लम्बा, कांटेदार। उपपान छोटे, आराकार (Subulate), पत्र ८ से १२ जोड़ी, १ से २॥ इन्च लम्बा। पर्णदल १० से २० जोड़ी प्रत्येक पक्षमें। पर्णदल । से ॥ इन्च लम्बे, निम्न तल पर, पुष्पकोंकी डंडी लगभग आध इन्च आडाईमें, १ से २ इन्चके लम्बे पुष्पदण्डपर। पुष्पगुलाबी या सफेद, पञ्चसंख्याक (Tetramerous)। पुष्प पहले बंगनी जैसा, फिर सफेद। पुष्प-बाह्यकोष घण्टाकार। पुष्पाभ्यन्तरकोष १/१० इन्च लम्बा, बाहरके समान। पुंकेसर ८। फली ३ से ५ इन्च लम्बी, लगभग ½ इन्च चौड़ी, चिपटी, किञ्चित मुड़ीहुई, चिकनी, ६ से १० सांधयुक्त। पुष्पकाल अक्टूबर तक। फलकाल जनवरीसे अप्रेल तक।

उत्पत्ति स्थान—भारतके अनेक प्रान्त, अफगानिस्तान।

औषधोपयोगी अङ्ग—छाल और पान।

गुणधर्म—शाईकांटा के गुणधर्म लगभग लज्जालुसे मिलते जुलते हैं। वमनको रोकनेके लिये इसके छालका चूर्ण देते हैं। आगसे जलनेपर इसके पानोंकी कालीराखका मलहम लगाते हैं। अथवा पानोंको कुचलकर बांधनेपर तुरन्त जलन शमन हो जाती है। अर्शरोगपर पानोंका फाण्ट पिलाया जाता है।

(८५) शकाकुल मिश्री

हि० शकाकुल, शकाकुलमिश्री, दूधाली। फा० गजरदस्ती। अ० हुमिरकन-लिब। पं० कण्ड, मिट्ठुआ, तुरालम, पहाड़ीगाजर, पोली।

ले० Eryngium Coeruleum

परिचय—बहुवर्षायुक्षुप, नोकदार कांटेवाला, मूल लगभग गाजरसदृश, सफेद पीला। ऊंचाई २ से ३ फीट। नीचे अविभाजित, ऊपरवाले नीलाभ।

मूलोद्भव पान ५ इंच लम्बे । १॥। इंच चौड़े, लम्बेवृन्त-युक्त, हृदयाकार-लम्ब-गोल, अविभाजित, कंगुरीदार, कांटेरहित। पत्रवृन्त २ से ६ इंच लम्बा। ऊपरके पान वृन्तरहित, हथेली सदृश विभाजित, कुछ कांटेदार खण्डयुक्त । पुष्प सामान्य गुच्छोंमें, प्रत्येक पुष्पपत्रयुक्त । पंखडियां सफेद ऊपर-ऊपर । पुष्प-पत्र ५-६ ताराकृति । फल लम्बगोल, ३ मिलीमीटर ८⅛ इंच लम्बा ।

उत्पत्तिस्थान—काश्मीर, अफगानिस्तान, पर्सिया और तुर्कस्थान।

गुणधर्म—शकाकुलमिश्री स्वादमें किञ्चित् मधुर लेसदार होता है । यूनानी मतानुसार यह बल्य, वातनाड़ी उत्तेजक, वीर्यवर्द्धक, वीर्यको गाढा बनानेवाला, कामोत्तेजक, रक्तमेंलाली बढानेवाला (Haematinic) और स्तन्य जनन है । इसका विशेष उपयोग नपुंसकता, शुक्रक्षय, प्रदर और वातरोगपर होता है। एवं प्रसूताका दूध बढानेके लिए इसका चूर्ण दूधके साथ दिया जाता है। पासयामें इसका पाक और मुरब्बा बनाते हैं। जो पौष्टिक और कामोत्तेजक गुणकेलिए सेवन कराया जाता है । इसके अतिरिक्त इसका अर्क भी निकालते हैं।

बाजारमें जो शकाकुलमिश्रीके नामसे मिलती है, वह प्राय. अफगानिस्तानसे आती है।

मात्रा—३ से ५ माशे।

क्षुधाबलसे अधिक सेवन करनेपर क्षुधाको मन्द करती है और शिरदर्दकी प्राप्ति कराती है।

(८६) शाहतरा

सं० पर्पटक । हिं० पित्तपापड़ा, शाहतरा । वं. वनसुल्फा । म. गु. पित्तपापडा । फा. शाहतरा । अ Fine leaved Fumitory लें० Fumaria Parviflora.

पित्तपापड़ा में अनेक प्रकार हैं । भिन्न-भिन्न वर्गकी ७ जाति हैं। सबमें गुणधर्म लगभग समान हैं, तथापि इस शाहतरामें पित्त शामक गुण सबसे अधिक रहा है । प्रतिनिधि रूपमे अन्य जातियोंका उपयोग हो सकता है; किन्तु जो ओषधि जिस देशमें उत्पन्न हुई हो, वह उन देशवासियोंको विशेष अनुकूल रहती है । प्राचीन आचार्योंके समयमें मजिष्ठादि वर्गका पित्तपापडा अधिक प्रचलित होगा, ऐसा अनुमान है । इसमें तृषाशामक गुण अन्य जातियोंकी अपेक्षा अधिकतर है । सामान्यत पित्तपापडामें जितना कड़वापन अधिक हो, उतना ही विशेष गुणदायक माना जाता है।

परिचय—पार्विफ्लोरा=छोटेपुष्पवाला । दृढ, मासल, वर्षायु क्षुप । पान न्यूनाधिक नीला-हरा । मंजरी विशेषत वृन्द रहित, छोटी, सघन पुष्पोंकी, बैंजनी

ओर गुलाबी। (इनमें गुलाबी रङ्गवाली जाति अधिक गुणदायी) भारतमें यह होता है, किन्तु इरानके समान गुणवाला नहीं है। गुजरात काठियावाड़ में आधसे १ फूट लम्बा, कभी खड़ा। बीज गाढे भूरे रंगके, गोल, फूलसे भी अधिक कड़वे। फल चमकीला, चिकना, पहले हरा, सूखनेपर भूरा।
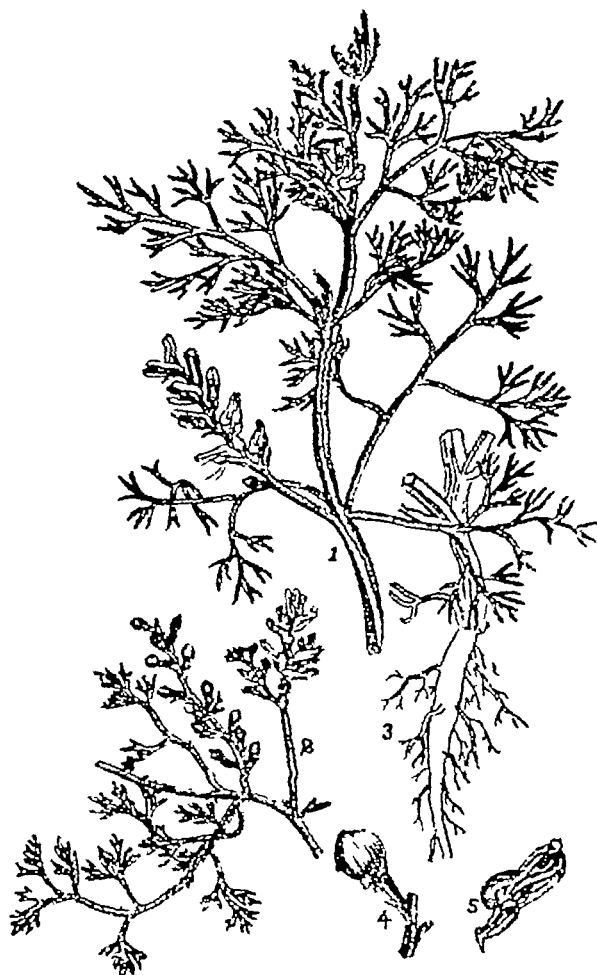
गुणधर्म—पित्तपापड़ाके समान, किन्तु कुछ अधिक। शाहतरा शीतल, कडवा, पित्त, श्लेष्म और ज्वरका नाशक है, तथा रक्त विकार, दाह, अरुचि, ग्लानि, मद और भ्रमको दूर करता है।

शाहतरा रसमें कडवा है, तथा नैसर्गिक नियमानुसार कडवे रसका विपाक

चरपरा होता है। एवं यह शीतवीर्य है। रस कड़वा होनेसे उसमें वायु और आकाश तत्वका प्राधान्य रहता है। अत. यह वातवर्द्धक, पित्तशामक और शीतल गुण दर्शाता है। विपाक चरपरा होनेसे वहभी वात वृद्धि तथा अम्ल और उष्ण पित्तका शमन कराता है। एव वीर्य शीतल होनेसे वह दाह, पिपासा और शारीरिक उष्माको शान्त बनाता है।

इसकी विशेष क्रिया रस और रक्त धातुपर होती है। इन दो धातुओंपर लाभ पहुँचनेसे परम्परागत अन्य धातुओंकी भी शुद्धि होजाती है। इन्द्रियोंकी दृष्टि से इसकी मुख्य क्रिया यकृत्पर होती है। एव उससे कम अश में अन्त्र, आमाशय वृक्क और त्वचापर होती है।

यकृत्की विकृति होनेसे पित्तप्रकोप होकर ज्वर, शिरदर्द, वमन, कामला, रक्तविकार, तृषावृद्धि, अपचन आदि व्याधियां उत्पन्न होती हैं। इन सब पर शाहतरा (पित्तपापड़ा) व्यवहृत होता है। पित्तोत्पत्ति अधिक होगई हो, तो उसे कम करता है। एवं यकृत्में शोथ आया हो तो उसे दूर करता है।

पित्तपापड़ेका असर रक्तके साथ त्वचापर भी होता है। अतः त्वचाजनित दाह, त्वचापर उत्पन्न विविध प्रकारके उपकुष्ट, व्रण आदिपर व्यवहृत होता है।

उपयोग—पित्तपापड़ेका उपयोग आयुर्वेदमें अति प्राचीन कालसे हो रहा है। चरक संहिताके भीतर तृष्णानिग्रह दशेमानिमें उल्लेख किया है। एवं ज्वर, रक्तपित्त, दाह, तृषा, मदात्यय, कुष्ठ, ग्रहणी, अतिसार, पाण्डु, कामला आदि रोगोंपर लिखे हुये प्रयोगोंमें पर्पटकी योजना की है। इस तरह सुश्रुत संहितामें भी पित्तप्रधान अतिसार आदि रोगोंपर पर्पटको व्यवहृत किया है। एवं दोनों संहिताओंमें पित्तपापड़ेके शाकको कफ-पित्तहर और कड़वा कहा है। भारतके अतिरिक्त शाहतराका उपयोग अरबस्थान और इरानमें भी दीर्घकालसे हो रहा है। इसका व्यवहार यूरोपमें चौदहवें शतकमें होरहा है।

डा० देसाईके मतानुसार यह स्वेदल, मूत्रल, स्रशन और कटु पौष्टिक है। इसका क्षार त्वचा, यकृत् और वृक्कोंकी क्रियाद्वारा बाहर निकलता है। इसकी क्रिया वासा वर्गके पित्तपापडाकी अपेक्षा अति प्रबल है। शाहतरा अन्त्रकी शिथिलतासे उत्पन्न अपचन और त्वचारोगमें गुणदायक है। सामान्य प्रतिश्यायपर शाहतराका अतिउपयोग होता है। इसके सेवनसे प्रस्वेद आता है, मूत्र बढता है, अंग टूटना कम होता है। और शौचशुद्धि होती है, पित्तज्वरपर यह अति ही प्रशस्त है; इससें यकृत्की पीडा कम होती है। गण्डमाला और गंडमालाके कीटाणुसे उत्पन्न त्वचारोग और अन्य त्वचारोगपर यह लाभदायक है।

१. पित्तज्वर पर—पित्तपापडा अत्युत्तम औषधि है। इस हेतुसे चक्रद-

त्तार्थने लिखा है कि:—

एकः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वर विनाशनः ।
किं पुनर्यदि युज्यते चन्दनोदीच्यनागरैः ॥

पित्तज्वरके नाशके लिये पित्तपापड़ा श्रेष्ठ औषध है। यदि उसके साथ रक्तचन्दन, नेत्रवाला और सोंठ मिलाया जाय, तो फिर कहना ही क्या! अर्थात् इन ४ औषधियोंका क्वाथ करके देनेपर पित्तज्वर सत्वर शमन हो जाता है।

२ नव प्रकारके ज्वरपर—शाहतराके क्वाथमें सोंठ मिलाकर पिलानेसे सब प्रकारके नये बुखार दूर हो जाते हैं। अथवा शाहतरा और गिलोयके स्वरसमें कालीमिर्च या पीपलामूलका चूर्ण मिलाकर पिलानेसे प्रस्वेद आकर ज्वर दूर होता है।

३ दूषित जलवायु जनितज्वरपर—पित्तपापड़ा, ब्राह्मी और हंसराजका क्वाथकर पिलानेसे धातुगत विष दूर होकर ज्वर शमन हो जाता है।

४ सूर्यके तापमें फिरनेसे उत्पन्न वमनपर—पित्तपापड़ा, द्राक्षा, नेत्रवाला, धनिया, गिलोय और चिरायताको समभाग मिलावें। फिर कूटकर चूर्ण करें। उसमेंसे १ तोलेको १६ गुने जलमें भिगो हिम बना मिश्री मिलाकर पिलानेसे उबाक, वमन और बेचैनी दूर होती है। मस्तिष्क शान्त होता है; और नेत्रदाह दूर होता है। यदि ज्वरमें मुखपाक दाह, मूत्रमें लाली आदि लक्षण प्रतीत हों, तो उसपर भी हिमका सेवन कराया जाता है। रक्तविकारसे उत्पन्न कुष्ठ, कण्डू, कण्ठमाल, व्रण, विद्रधि आदि शाहतराका चूर्ण उपयोगी है। इनमेंसे केवल बीजोंका सेवन कराया जाय, तो विशेष लाभ पहुँचता है। यह यकृत्‌के विविध विकार और रक्तपित्त (स्कर्वी) में अच्छा लाभ पहुँचता है। शाहतराके पानके रसका अंजन करनेसे नेत्रमें कुछ जलन होती है, किन्तु नेत्र स्वच्छ होते हैं।

५ अतिसार पर—पित्तपापड़ा और नागरमोथेका चूर्ण मट्ठे या शहदके साथ देवें।

६ रक्तपित्तपर—पित्तपापड़ेके हिममें चन्दन और शहद मिलाकर पिलावें।

७ मदात्ययपर—नागरमोथा और पित्तपापड़ेके चूर्णका सेवन करावें। दिनमें २ या ३ बार लम्बे समय तक निद्रा। न आवे तो रात्रिको खुरासानी अजवायन देते रहें।

८ छर्दिपर—पित्तपापड़ेका क्वाथ शहद मिलाकर पिलावें।

९ पित्तप्रकोपज ज्वरपर—पित्तपापड़ेके चूर्णको नारियलके तैलमें मिला शिरपर मोटा लेप करें।

१०. तृषा, अरुचि और ग्लानिपर—पित्तपापड़ा, चिरायता, गिलोय, धनिया, रक्तचन्दन, नेत्रवाला और पद्मकाष्ठका क्वाथ करके पिलावें।

११. अश्मरीपर—पित्तपापड़ेका रस मट्ठेमें मिलाकर पिलानेसे मूत्राशयमें रही हुई पथरी निकल जाती है; एवं मूत्रकृच्छ्र दूर होजाता है। वृक्कस्थानमें पत्थरी हो तो उसपर इससे लाभ नहीं पहुँचता।

(८७) शिलारस

सं० सिल्हक, तुरुष्क, कपितैलवृक्ष। हि० म० गु० शिलारस। अ० मीआ साइला। फा० अस्ले लवनी। आसा० जुतिलि। ब्रह्म० नण्टायोक। मला० रम-मल। ता० नेरि्युरिशिपल। ते० शिलारसमु। ले० Altingia Excelsa

परिचय—एक्सेल्सा=उन्नत ऊंचा। अति ऊंच्चा, सुगन्धित पानोंकी छाया वाला वृक्ष। ऊंचाई ६० से ८० फुट। घेरा १० फूटतक। सवभाग बिल्कुल चिकना। छाल हल्केसे गहरी पिंगल या धूसर। पान लम्बगोलसे अण्डाकार लम्बगोल। पत्रवृन्त कोमल चिकना, ॥ इञ्च लम्बा, पान नोकदार दांतेदार, १॥ से २॥ इञ्च लम्बे, ॥ से १ इञ्च चौड़े, पार्श्वभागमें ७ से १० शिरायुक्त। पुष्प एक जातीय सघन शिरोंमें, छोटी मंजरीपर, लम्बे रेशमसदृश पुष्पपत्रके आधारवाले। स्त्रीपुष्प लम्बे पुष्प दण्डपर एकाकी। पत्रकोणीय प्रशाखाके अन्तमें अनेक पुष्प। गर्भाशय शिखरपर, मुक्त, २ कोषयुक्त। फलके शिरगोलाकार, खुरदरे, काष्ठमय, ॥ इञ्च व्यासक। फली धूसर, रुएंदार। बीज अनेक प्रत्येक कोष १ या २। अकुर देनेवाले बीज पक्षयुक्त।

लकड़ी कठोर, रक्ताभपिंगल। १ घन फुटका वजन ४८ पाउण्ड। ताजी होनेपर इसके तख्ते बनाते हैं। जो रेलके नीचे बिछाने और वेगन (गाड़ी) बनानेमें उपयोगमें आते हैं। नये पान लाल होते हैं। पुष्पकाल वर्षाऋतु। फलकाल फरवरीसे मई तक।

वक्तव्य—इस वृक्षके गोंदको शिलारस (Storax) कहते हैं। यथार्थमें शिलारस एशिया माइनरसे आता है, वह (Liquidamber Orientalis) का गोंद है। भारतीय शिलारसके गुणभी लगभग विदेशीके समान है। शिलारस चिपचिपा और मैला पीला होता है। इसमेंसे एक प्रकारकी लोहबान जैसी वास आती है।

उत्पत्ति स्थान—आसाम, भूतान, पेगु, मेरगुई, जावा, यूनान।

रासायनिक पृथक्करण—इसशिलारसमें सिनमिक अम्ल (Cinnamic-Acid) लगभग २०%, कुछ उड्डयनशील तैल, स्टाइरोल (Styrol तैली हाइड्रोकार्बन) और राल (Storesinol) मिलता है। ये सब उग्र कीटाणु

नाशक है।

शिलारसको मद्यार्कमें मिलानेपर विलीन होजाता है। जलमें द्रवी भूत नहीं होता।

गुणधर्म—शिलारस भावप्रकाशकारके मत अनुसार रसमें चरपरा, अनुरस मधुर, स्निग्ध, उष्णवीर्य, शुक्रजनक कान्तिप्रद वृष्य, कण्ठदोषहर तथा स्वेद कुष्ठ, ज्वर, दाह, और ग्रहबाधाका नाशक है। राज निघण्टुकारके मतानुसार रसमें कडवा, विपाक चरपरा कुष्ठजित तथा अश्मरी, मूत्राघात और भूत ज्वरका नाशक है।

यूनानी मत अनुसार शिलारस तीसरे दर्जेमें गरम और दूसरे दर्जेमें खुश्क है। यह कडुवा, पौष्टिक उदरपीडाहर और कफ निसारक है। जुकाम कण्ठक्षत, फुफ्फुसवेदना मस्तिष्कके रोग प्लीहावृद्धि, कटिशूल वृक्कवेदना, अनियमित मासिकधर्म और कर्णपीड़ापर उपयोगी है। एवं पामा और श्वेत कुष्ठपर लगाया जाता है।

नव्यमतानुसार शिलारस रसमें कड़वा, उष्णताप्रद, उष्ण, तैली, यकृद्बल्य और कामोत्तेजक है। श्वेतकुष्ठ कास, पित्तप्रकोप, मूत्राशयाश्मरी (Vesicular Calculi) और मूत्राशयके रोगको दूरकरता है। पामा, व्रण और अतिस्वेदपर व्यवहृत होता है।

एलोपेथिक मतानुसार शिलारस स्थानिक उत्तेजक, कीटाणुनाशक पूतिहर और कोथप्रशमन है। इसकाउपयोग विद्रधि पामा, कण्डू और जूएको दूर करने केलिए होता है।

मात्रा—५ से १५ रत्ती।

उपयोग—शिलारसका उल्लेख सुश्रुत संहिताके भीतर एलादि गणमें एवं श्वासरोगपर योजन की है। और चरकसंहिताके भीतर बला तैलमें मिलाया है।

डाक्टर बोसने मेटेरिया मेडिकामें लिखा है कि शिलारसका उपयोग क्वचित् ही उदरसेवनार्थ होता है। (लोहबान मिश्रित अर्कमें दिया जाता है) मरहम रूपमें ३ गुने वेसलीन आदि द्रव्यके साथ मिलाकर फोडेपर व्यवहृत होता है। एवं समान या दूने जैतून तैल (या तिल तैल) में मिलाकर बालोंपर लगाने से जूंए मर जाती है, शरीरपर मर्दन करनेसे खुजली दूर होती है और पामाहर पट्टी बांधनेपर इसके उत्पादक कीटाणु (Sarcoptes) नष्ट हो जाते हैं।

१. जीर्ण कफ प्रकोप—शिलारस और मुलहठी २ से ४ रत्ती मात्रामें मिला उसमें दूनी शक्कर डाल या शहद मिलाकर दिनमें २ वार खिलाते रहनेसे कफ निकल जाता है।

२ फुफ्फुसक्षत—राजयक्ष्माके हेतुसे फुफ्फुसमें क्षत होनेपर शिलारस

१-१ रत्ती मिश्री या शहदके साथ मिलाकर दिनमें ३ वार देते रहनेसे कफ सरलतासे निकलता रहता है, कीटाणु नष्ट होते हैं और क्षत भर जाता है।

३. पूयमेह—शिलारस और गधाविरोजा ४-४ रत्ती सेलखड़ी १-१ माशा तथा चन्दनका तैल ५-५ बूंद लें। पहले तैलको सेलखड़ीमें मिलावें। फिर शिलारस, गधाविरोजा मिलाकर प्रात साय देते रहनेसे नये सुजाकमें तीव्र वेदना, मूत्रनलिका प्रदाह और पूयप्रकोप, ये सव ३ दिनके भीतर दूर हो जाते हैं।

जीर्ण सुजाकमें जलन न हो तो चन्दनका तैल मिलानेकी जरूरत नहीं हैं।

४. पामा—शिलारसमें समान तिल तैल मिला, पट्टी डुबोकर वांध देनेसे खुजली नहीं आती और पामा दूर हो जाती है।

५ क्षतप्रधानविद्रधि—मांस या हड्डीमें दुष्ट फोड़ा होनेपर उसपर शिलारस लगाते रहनेसे शोधन होकर सरलतासे रोपण हो जाता है।

६. वृषणवृद्धि—वृषणपरसे वाल निकाल ऊपरमें शिलारस लगा देवें। फिर तमाखूका पान वांध देनेसे नई वृद्धि दूर हो जाती है। यदि रोगीसे तमाखू सहन न हो सके (वमन होनेकी भीति हो) या वालकको तो धतूराका पान वांधा जाता है।

सूचना—वृक्क प्रदाहके रोगीको शिलारस नहीं देना चाहिये। एवं फुफ्फुसमें क्षत हो, तो मात्रा कम देनी चाहिये। शुष्क कासमें इसका प्रयोग नही करना चाहिये।

(८८) संतरा

म० नारंग, नागरंग, ऐरावत। हि० सतरा, नारंगी। म० संत्रा। गु० सतरा, नारंगी। वं० नारेंगा। क० किनाले। ता० नारङ्गम्। ते० नारङ्गमु। तु० कितुलि। मला० नारगम्। कों० सोन्नरिंग। अं० Orange लेटिन Citrus Aurantium.

परिचय—सतरेमें खट्टे और मीठे दो प्रकार हैं। वनस्पतिशास्त्रकी मर्यादा अनुसार इसकी कितनीक उपजाति भी भारतमें होती है। इसके वृक्ष छोटे होते हैं। शाखाएं अनेक होती हैं। सामान्यत पान २॥ से ५ इञ्च लम्बे। फूल सफेद, स्त्रीपुसंयोगी, कूजेके सदृश। पखड़ियां ४ से ८ ऊपर ऊपर। पुंकेसर २० से ३०। फल लगभग गोल, पकनेपर पीले या पीले लाल। सी. पी. वरारमें फल वसन्त और ग्रीष्ममें आते हैं, वे मधुर होते हैं। शीतकालके फल खट्टे होते हैं। औषधरूपसे फूल, फलोंका रस और छालका उपयोग होता है।

गुणधर्म—नारंगके फल मधुराम्ल, हृदयपौष्टिक, लघु, वलवर्द्धक, अग्नि प्रदीपक, दाहशामक, किये हुए भोजनको पचानेवाला, सव प्रकारकी अरुचिको

नाशक, श्रमहर, वातनाशक, पौष्टिक, एव वायुप्रकोप, उदरकृमि और उदरशूलके नाशक है। भोजन करके लेनेपर कुछ भी विकार नहीं होता।

डाक्टर देसाईके मतानुसार सन्तरेका रस ज्वरहर, तृषाशामक, ग्राही, रक्त-पित्तप्रशामक और शोणितस्थापन (रक्तपौष्टिक) है। फलोंकी छाल दीपन, मृदुस्वभावयुक्त और कडवी पौष्टिक है। इससे क्षुधा बढती है और आमाशय सबल बनता है, फूल मृदु स्वभावयुक्त निद्राप्रद है।

नव्यशोध अनुसार सन्तरे और सन्तरेकी उपजाति मोसम्बी और माल्टामें लोहद्रव्य ८ प्रति दशसहस्र तथा तीन प्रकारके जीवनसत्व अ, ब, क (Vitamin A B C)× रहते हैं। इसके फलोंकी छालमें उड्डयनशील तैल रहा है। जिसे वर्तमानमें निकालकर उपयोगमें लेते हैं। यह तैल कीटाणुनाशक और पाचन है। विशेषत बेस्वादु औषधियोंका स्वाद बदलनेकेलिये मिला लेते हैं। इसके रसमें दूनी शक्कर मिलाकर शर्बत बना लेते हैं। यह शर्बत गर्मीके दिनोंमें व्याकुलताको दूर करने और मस्तिष्कको शान्त करनेकेलिये व्यवहृत होता है। यह शर्बत २-३ मासतक खराब नहीं होता।

उपयोग—डाक्टर देसाई लिखते हैं कि, सन्तरेका रस ज्वरमें अति हितकारक है। ज्वरमें रोज १०-१२ सन्तरे खिलानेपर भी हानि नहीं होती।

अतिसारमें इसका रस देनेसे दूसरी उपयुक्त औषधि सरलतासे लागू हो जाती है।

बालकोंकी औषधिमें सन्तरेकी छाल या छालके तैलका उपयोग करना चाहिये।

फलोंकी छाल शिथिलताप्रधान कुपचन, अग्निमान्द्य और अशक्तिपर दी जाती है। सन्तरेकी छाल १ औंस, ताजे नींबूकी छाल १ ड्राम, लौंग ½ ड्राम और उबलता हुआ जल १० औंस। इन सबको मिला १५ मिनटतक बंद रखे। फिर छान लेवें। यह फाण्ट १-२ औंस विरेचन द्रव्यके साथ या आमाशयपर क्रिया करनेवाले विशिष्ट द्रव्योंके अनुपानार्थ व्यवहृत होता है।

(८९) सतावर

स० शतमूली, शतावरी, नारायणी, अतिरसा, महाशतावरी, सहस्रवीर्या। हि० महाशतावर, शतावरी,। ब० शतमूली। म० थोर शतावरी, सहस्रमूली।

×जीवनसत्व क जब देहमें कम होजाता है तब रक्तपित्त (Scurvy) रोगकी प्राप्ति होती है। सोडाइत्यादि क्षार अन्नादिमें रहे हुये क सत्वका नाशकर देता है। इस हेतुसे जीवनसत्व क युक्त फल और अन्नमें सोडा या अन्यक्षार नहीं मिलाना चाहिये।

क्रिष्ट, नाहरकन्द। डेह सितावल। गु० शतावरी। राज० नाहर कॉंटा। सौ० गनवेल, हकुलकटो। ओ० छोटाक, मोहाजोलो, शतावरी। संताल-केदारनली ते० चलगद्, एलवाल्लु दुनिगे। ता० चडामुलम किलावरी चतावरी। मला० सतवाली, शतावरी। कना० आहेमवल्ली, ओषधि।

ले० Asparagus Racemosus

परिचय—एस्पेरेगस=अतिकॉंटेदार। रेसेमोसस=चूडाकार रचना वाली। ग्रीष्मारम्भमें निकलनेवाली छोटी, कॉंटेदार, कन्दयुक्त वेल। १-२॥ गज वढनेपर वाड़ या वृक्षपर चढजाती है। कॉंटेतीक्ष्ण। से ॥ इञ्च लम्बे, वक्राकृति। शाखाएं चारों ओर अत्यधिक फैलीहुई। वर्षारम्भ होनेपर पान आते हैं। पत्रशाखा ॥।से १ इञ्च लम्बी २-६ तक। नवम्बरमें सफेद सुगन्धित पुष्पआते हैं। तुर्रा १ से २ इञ्च लम्बा। फल शीतकालके अन्तमें लालरंगके छोटे आते हैं। कन्दमेंसे सैंकड़ों उपमूल निकलते हैं। ये उपमूल अंगुली जैसे मोटे, धूसर पीले, स्वादमें कुछ मधुर, फिर कडवे, वास कुछ कडवी। कन्द प्रतिवर्ष वढता-जाता है और अनेकवर्षो तक रहता है।

उत्पत्ति स्थान—भारतके समशीतोष्ण और उष्णप्रदेश और सिलोनमें। हिमालयमें ४००० फुट ऊँचाईतक। अफ्रिकाके उष्ण प्रदेश जावा और आस्ट्रेलियामें। इसकी उपजाति (Racemosus javanica) दक्षिणपेनिनसुला और जावामें होती है। अन्य उपजाति (A R var Prainii) विहारमें होती है। तीसरी उपजाति (A R Subarose) सिक्कममें होती है।

२—लघु शतावरी Asparagus Gonoclados.

परिचय—गोना क्लेडोस=चारों ओर फैलनेवाली। वहुत शाखावाली कुछ अंशमें चढनेवाली,कॉंटेदार, छोटी झाड़ी। पुष्पकाण्ड कोमल नलीसदृश शाखाएं हरी ३ कोनवाली। कॉंटे। से ॥ इञ्चलम्बे। पत्रशाखा २ से ६ तक ॥ से १ इञ्च लम्बी व्यास। इञ्च। पुष्पपत्र छोटे। पुष्प $\frac{1}{12}$ इञ्च व्यासके सफेद। तुर्रा १ से ३ इञ्च लम्बा। फल गोलाकार अतिसूक्ष्म, कन्दमेंसे शाखाएं निकलकर चारों ओर फैलती है।

उत्पत्ति स्थान—महाराष्ट्र, कोंकण, कानाडा, मद्रासका पश्चिमघाट।

३—क्षुद्रशतावरी—

परिचय—डूमोसस = झाडीदार छोटी झाड़ी। सौराष्ट्रमें समुद्रकिनारे होनेसे इसे दरीआई गनवेल और एकल कंटो कहते हैं। झाड़ी जमीन पर फैली हुई १ से २ फूट लम्बी या २ से ३ फूट ऊची। शाखाएं चारोओर फैलीहुई २ से ४ फूट तक निस्तेज रंगकी महासतावर सदृश छोटेपान पत्र। शाखाएं २ से ४ या ६ से १० तक समीप समीप। से ॥ इञ्च लम्बी, सकडी, नोकदार। पुष्प हलके

सफेद। फल लाल ⅓ इञ्च व्यासके। मूल अंगुष्ठ जैसे मोटे चारों ओर सैंकड़ों लगेहुए शाखाएं कठोर खुरदरी कोनवाली। कांटे महाशतावरके समान। गुण धर्मभी महाशतावरके समान किन्तु न्यून।

उत्पत्ति—सिंध, कच्छ सौराष्ट्र।

गुणधर्म—सुश्रुतसंहिताके मतानुसार शतावरी रसमें मधुर, उपरस कड़वा, वृष्य और वातपित्तशामक है। बड़ी शतावरी शीतवीर्य, रसायन, हृद्य, मेधाकर, अग्निप्रदीपक, बलवर्द्धक तथा ग्रहणी और अर्शकी नाशक है। शतावरीके अंकुर कफघ्न, पित्तशामक और रसमें कड़वे हैं। चरकसंहिताकारने शतावरीके शाकको वातपित्तहर कहा है। भावप्रकाशने गुरु, स्निग्ध, चक्षुष्य गुल्मनाशक, अतिसारहर, शुक्रवर्द्धक, स्तन्यजनन और शोथहर गुण अधिक दर्शाये हैं। धन्वन्तरि, निघण्टुकारने क्षयजित और मेहघ्न गुण अधिक दर्शाये हैं एवं शतावरीके अंकुरके हृद्य, त्रिदोषहर, पित्तशामक, वातहर, रक्तार्शमें हितावह, क्षयहर, संग्रहणीनाशक और लघु गुण विशेष दर्शाये हैं।

यूनानी मतानुसार शतावरी किञ्चित् मधुर, कामोत्तेजक, सारक, कफनिःसारक, स्तन्यजनन, पौष्टिक तथा वृक्कविकार, यकृद्रोग, मूत्रजलन, सुजाकजन्य मूत्रनलिकाप्रदाह और सुजाक रोगमें उपयोगी है।

नव्य मतानुसार शतावरी शीतल, स्नेहन, मूत्रजनन, कामोत्तेजक, बल्य, आक्षेपहर, रसायन, शुक्रजनन, अतिसारहर और प्रवाहिका नाशक है। विशेषतः पशुचिकित्सामें स्नेहनरूपसे व्यवहृत होती है।

डाक्टर खोरीने पुष्टिकर, बल्य, स्नेहन और स्तन्यजनन कहा है। एवं शतावरी उपयोगी है। मूत्रावरोध-मूत्रकृच्छ्रमें अन्य मूत्र विरेचन औषधिके साथ मिलाकर शतावरी दी जाती है। पौष्टिक होनेसे शुक्रक्षय और श्वसनसंस्थानके विकारोंमें प्रयुक्त होती है।

रासायनिकसंगठन—शतावरीमें विशेष परिमाणमें शर्कराद्रव्य और गोंद रहा है।

उपयोग—शतावरी आयुर्वेदकी प्रसिद्ध औषधि है। चरकसंहिताके भीतर बल्य और वय स्थापन दशेम नियोंमें अतिरसा (शतावरी) का उल्लेख किया है। एवं आसवद्रव्यसमूह, शाकवर्ग और मधुरस्कन्धमें भी शतावरीको स्थान दिया है। इसी तरह सुश्रुतसंहिताके भीतर शाकवर्ग, वात संशमन वर्ग, पित्तसंशमन वर्ग तथा विदारीगन्धादि, वरुणादि और कण्टकमूल, इन गणोंमें शतावरीका उल्लेख किया है।

आयुर्वेदके मतानुसार वात, पित्त कफ ३ दोष मुख्य है। इनमें पित्त और

कफको पगु कहा है। वात ही मुख्य है। वातके आधारपर ही देहका पूरा पूरा आधार है। वात धातु विद्युन्मय प्राणरूप है। इसका स्थान नव्य चिकित्सकोंकी भाषामें वातसंस्थान (Nervous System) है। इस वातसंस्थानका केन्द्र मस्तिष्कमें है। और वातनाडिया आदि समस्त देहमें फैलेहुए हैं। जिस तरह वायुमण्डलमें विद्युत् सर्वत्र फैला है, उस तरह वातधातु इस सस्थानमें सर्वत्र विचरण करता रहता है। इस वात सस्थान और वातधातुको शतावरी पुष्ट बनाती है। इस हेतुसे मेधा, बुद्धि, मानसशक्ति और देहके अङ्ग-उपांग सब सबल बनते हैं। इस बातका अनुभव करके धन्वन्तरि और राजनिघण्टुकारने शतावरीको उत्तम रसायनरूप कहा है एव श्री वाग्भट्टाचार्यजीने भी लिखा है कि जो मनुष्य शतावरी कल्क और शतावरी स्वरससे सिद्ध किया हुआ गोघृत शक्करकेसाथ सेवन करते रहते हैं। उसके देहको व्याधिरूप डाकू नहीं लूट सकेंगे।

शतावरीका मुख्यगुण मधुर इसके अनुरूप प्राप्त होता है। मधुर, स्निग्ध और रु गुणयुक्त औषधि शामक होती है। मधुर रस, तिक्त, उपरस और शीतवीर्य होनेसे पित्तशामक गुण दर्शाती है एव गुरु, स्निग्ध, और शीतवीर्यके कारण कफ धातुको पुष्ट बनाती है। इस तरह शतावरी तीनो दोषोंपर प्रभाव पहुँचाती है।

मधुर रस प्रधान होनेसे त्रिदोष, रसादि सप्तधातु और स्तन्य आदि उपधातु, सबको शतावरी बलप्रदान करती है। सामान्यत जो द्रव्य रस धातुको बल प्रदान करे, वे परपरागत सब धातुओंको पुष्ट करता है, किन्तु शतावरी तो मांस, शुक्र और स्तन्यको विशेषरूपसे बलप्रदान करती है। इसी हेतुसे चरकसहिताकारने शतावरीकी गणना बल्य और वय.स्थापन महाकषायोंमें की है।

शतावरी सेवनसे वातधातु और वातनाड़िया सबल होनेपर समस्तवातरोग अर्दित, मन्यास्तम्भ, जिह्वास्तम्भ, स्वरभेद, हनुग्रह, बाहुपीडा, कुब्जवात, कटिवात, कम्पवात, गृध्रसी, ऊरुस्तम्भ, संधिवात, आमवात, अपस्मार, हिस्टीरिया और वातरक्त आदिमें लाभ पहुँचता है।

शतावरीमें शीतल, मूत्रजनन गुणभी उत्तम कोटिका है। इस हेतुसे रक्तमेंसे विष बाहर फेंका जाता है और मूत्रावरोध, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, मूत्रदाह, रक्तमेहादि प्रमेह दूर होते हैं। एवं आमाशय, यकृत्, अन्त्र, फुफ्फुस और गर्भाशयपर परम्परागत लाभ पहुँचनेके कारण अम्लपित्त, वृद्धकी निर्बलता, पित्ताशयशूल, रक्तपित्त, रक्तातिसार, रतौंधी (नक्तान्ध्य), पित्तप्रदर, मासिक-

धर्ममें विकृति, वन्ध्यत्व आदिको दूर करनेमें अच्छी सहायता पहुँचाता है। इनके अतिरिक्त शतावरी प्रधानतैल (महाविष्णुतैल और नारायणतैल) का वातरोगपर मर्दनार्थ प्रयोग होता है। सक्षेपमें शतावरी वात, वातफल और वातपित्तप्रधान रोगोंको शमन करनेमें श्रेष्ठ औषधि मानी गई है। इस हेतुसे प्राचीनग्रन्थोंमें शतावर्यादि क्वाथ, शतावरी कल्क, शतमूलीक्वाथ, शतावरीयोग, शतावर्यादि चूर्ण, शतावर्यादिलेह, शतावरीमोदक, शतावरीघृत, शतावरीतैल, फलघृत और शतावर्यादिलेप आदि १०० से अधिक प्रयोगोंमें शतावरीकी मुख्य औषधिरूपसे योजना हुई है।

१ रसायनार्थ—(अ) शतावरी कल्क १ भाग, गोघृत ४ भाग और शतावरीका स्वरस १६ भाग यथा विधि रूपसे सिद्धकर, शक्कर (या शक्कर-शहद) मिलाकर सेवन करते रहनेपर शरीर नीरोगी और सबल बना रहता है। पाण्डु, हृदयकी निर्बलता दृष्टिमान्द्य शारीरिक कृशता और शुक्रकी निर्बलता आदि दूर होते हैं।

(आ) शतावरी, मुण्डी, गिलोय, शंखपुष्पी और कालीमुसली इन ५ औषधियोंको समभाग मिला चूर्णकर १-१ तोला रोज सुबह घृत-शहद या घृत शक्करके साथ सेवन करते रहनेपर अकाल मृत्यु दूर होजाती है तथा कान्ति और बुद्धिकी वृद्धि होती है।

२ पुष्टि और कामोत्तेजनार्थ—(अ) शतावरीका स्वरस और दूध १०-१० सेर मिल, उसमें १ सेर गोघृत डाल विधिवत् सिद्ध करें। फिर शहद शक्कर और पिप्पली मिलाकर सेवन करते रहें तो शरीर सबल बनता है, वीर्य सुदृढ होता है और कामोत्तेजना उत्पन्न होती है।

(आ) शतावरी, गोखुर, कौंचके बीज, गंगेरनकी छाल, असगन्ध और तालमखाना इन ६ औषधियोंको समभाग मिलाकर कपडछान चूर्ण करें। फिर दूध शक्करके साथ रोज रात्रिको सेवन करते रहनेपर शुक्र गाढा होता है और कामोत्तेजनाकी वृद्धि होती है।

३ वातज्वर—शतावरी और गिलोयका स्वरस निकाल, निवायाकर गुड मिलाकर प्रातः सायं लेते रहनेपर ३ दिनमें वातज्वर शमन होजाता है।

४ रक्तातिसार—शतावरीके कल्कको बकरीके दूधके साथ सेवन करनेपर स्तनोंमें दूध बढजाता है और दूध मधुर और पौष्टिक भी होजाता है।

५ वातजकास—शतावरीके मन्दोष्ण क्वाथमें पीपलका चूर्ण मिलाकर प्रातः सायं पिलाते रहनेसे वातजकास और शूल नष्ट होता है।

६ राजयक्ष्मा—(अ) शतावरीका रस १६ सेर दूध ४ सेर शतावरीकल्क २० तोले और गोघृत १ सेर मिलकर विधिपूर्वक घृतपाक करें। फिर उसमेंसे

प्रात सायं १-१ तोला या अधिक सेवन करते रहनेसे फुफ्फुसक्षत भरने लगते हैं। साथसाथ यक्ष्मानाशक औषधिका सेवन करना चाहिये।

(आ) शतावरी, विदारीकन्द, असगंध, हरड़, पुनर्नवा, खरैंटीकी जड़, गगेरण, सहदेवीकी जड़ और गोखरू बडे, इन ९ औषधियोंको समभागों मिलाकर चूर्ण करें। उसमें घी शहद मिलाकर चाटने योग्य लेह बना लेवें। इसमेंसे १ से २ तोले लेह दिनमें २ बार बकरी या गायके दूधके साथ सेवन करते रहनेपर हृदयकी धड़कन, हृद्रोग, शुक्रक्षय और शोषरोग दूर होते हैं।

७. मदात्यय—शतावरी स्वरस, पुनर्नवा क्वाथ, गोदुग्ध और गोघृत ४-४ सेर और मुलहठी कल्क ४० तोले मिला यथाविधि पाककर घी सिद्ध करें। इस घृतका भोजनके साथ पचन हो उतना सेवन करते रहनेसे शराब जनित बुद्धि ह्रास स्मृतिनाश, यकृतकीवृद्धि, श्यामवर्ण और शक्तिह्रास आदि सब लक्षण दूर हो-जाते हैं। शराबको छुड़ा देना चाहिये, पथ्यका पालन करना चाहिये और ब्रह्मचर्यका आग्रहपूर्वक सेवन करना चाहिये।

८ रक्तपित्त—(अ) शतावरीका कल्क २॥ तोले, जल ४० तोले और दूध ४० तोले मिला दुग्धावशेष क्वाथकर प्रात. सायं पीते रहनेसे सब प्रकारके पित्त प्रकोप, दाह, शूल, और रक्तपित्त दूर हो जाते हैं।

(आ) शतावरी, मुलहठी, खरैंटी, कुश और बड़े गोखरू समभाग मिला २॥-२॥ तोलेका क्वाथ करें। फिर शीतलकर गुड़ या शहद और शक्कर मिलाकर प्रात सायं सेवन करते रहने पर रक्तपित्त, दाह, शूल और दाहसहज्वर दूर होते हैं।

९ अम्लपित्त—शतावरी कल्क ४० तोले, जल और गोदुग्ध ५-५ सेर, गोघृत १ सेर मिला यथा विधि घृत सिद्ध करें। फिर इसमेंसे १ से २ तोला घी (शक्कर मिलाकर) भोजनके साथ सेवन क ते रहनेपर अम्लपित्त, रक्तपित्त, वात पित्त प्रकोप, तृषा, मूर्च्छा, प्रतमक श्वास और घबराहट आदि दूर होते हैं।

१० जीर्ण शिर शूल—(अ) शतावरी और जीवन्तीका रस तथा गोदुग्ध तीनों ४-४ सेरके साथ गोघृत और तिलका तैल १-१ सेर तथा शतावरी और जीवन्तीका कल्क २० तोले मिला यथाविधि यमक सिद्ध करें। इसका नस्य कराते रहनेपर शिर शूल, नक्तान्ध्य, दृष्टिमान्द्य, बधिरता, स्मृतिह्रास, घ्राणशक्तिका ह्रास आदि विकार दूरहोते हैं। कफपीडित रोगी, प्रतिश्याय और अपस्मारके रोगीकेलिए भी यह नस्य हितावह है।

(आ) शतावरी, काले तिल, मुलहठी, नीलोफर, दूब और पुनर्नवाकी जड़, इनको समभाग मिला जलमें पीसकर शिरपर लेपकरनेसे सूर्यावर्त और जीर्ण शिर शूल दूर होते हैं।

११ स्वरभेद—शतावरीका चूर्ण गोमूत्रके साथ सेवन करनेपर या शतावरी के चूर्णकेसाथ कुलिजन मिलाकर सेवन करनेपर कफ प्रकोपसे उत्पन्न स्वर भेद दूर होजाता है।

१२ अन्तरार्श—अर्शके मस्से जो बाहरसे नहीं देखा जाता वह शतावरीका चूर्ण २-४ मासतक दूधके साथ सेवन करनेपर दूर होजाते हैं।

१३ पित्ताशय शूल—जीर्ण रोगमें रोज सुवह शतावरीका रस शहद मिलाकर पीते रहनेसे २–४ मास पित्ताशयस्थ विकृति दूर होजाती है फिर दाह और पित्तप्रकोपसह शूल शमन होजाता है। हृदयशूल, वस्तिशूल, और गर्भाशयशूलमें भी शतावरी स्वरसके सेवनसे लाभ पहुच जाता है।

१४ अपस्मार–शतावरीका स्वरस ४-४ तोले दिनमें २ बार सेवन करें और दूध भातपर रहें तो २१ दिनमें अपस्मार दूर होजाता है।

१५ प्रमेह—शतावरीका रस २-२ तोले प्रात साय दूधके साथ सेवन करते रहनेसे वातज, पित्तज और कफज सब प्रकारके प्रमेह दूर होजाते हैं।

सूचना—प्रमेहके रोगी प्रात' साय सुविधा और शरीर बल अनुसार खुली-वायुमें घूमते रहे, तो विशेष लाभ पहुँचता है।

१६ रक्तमेह—शतावरी और गोखरूका दुग्धावशेषक्वाथ प्रात साय सेवन कराने और पथ्यपालन करनेपर मूत्रमार्गसे रक्तजाना, यह विकार पीडासह दूर होजाता है।

१७ मूत्रकृच्छ्र—(अ) शतावरीके क्वाथमें शहद-मिश्री मिलाकर सुबह पिलाते रहनेसे मूत्रावरोध मूत्रदाह और मूत्रकृच्छ्र दूर होजाते हैं।

(आ) शतावरीके स्वरस २ से ४ तोले और उतना ही दूध मिलाकर पिला देनेसे मूत्रावरोध दूर होकर तुरन्त पेशाब साफ आजाता है।

१८ मूत्राघात—शतावरी मूल, गोखरूमूल और भूमि आमला, तीनोंका स्वरस मिलाकर ४-४ तोले २-२ घण्टेपर २-३ बार लेनेपर भयकर मूत्राघात (जिसमें मूत्रोत्पत्ति बिल्कुल बन्द होगई हो) दूर होजाता है।

१९ अश्मरी—मूत्रके साथ अश्मरी कण या रेती आनेपर शतावरी स्वरस को दूधमें मिलाकर या शतावरी मूलका चूर्ण जलसे या शतावरीका क्वाथ प्रात साय लेते रहनेपर १ सप्ताहमें अश्मरी निकल जाती है। और नयी उत्पत्ति बन्द हो जाती है। पुराना रोग हो तो २–४ मासतक शतावरीका सेवन करते रहना चाहिये।

२० मूर्च्छा—शतावरी, खरैंटीकी जड़ और मुनक्काको दूध जलमें पकाकर पीनेसे भ्रम (मूर्च्छा), विकार दूर होजाते हैं।

२१. वातरक्त—शतावरी का स्वरस ८ सेर, शतावरी कल्क २० तोले, गोदुग्ध और गोघृत २-२ सेर मिला यथा विधि मंदाग्निपर घी सिद्ध करें। इसमेंसे प्रातः सायं १ से २ तोले तक १-१ माशा गिलोयसत्व मिलाकर सेवन करानेसे सब लक्षणोंसह वातरक्त और कुष्ठ शमन होजाते हैं।

२२. रक्तविकृति—शतावरी स्वरसमें दूनी शक्कर मिलाकर शर्वत बनावें। उसमें केसर, जायफल, जावित्री और छोटी इलायची मिलावें। मात्रा २से ४ तोले दिनमें २ बार दूधके साथ मिलाकर ४२ दिनतक सेवन करनेपर सब प्रकारके विष जल जाते हैं, कुछ विण्मूत्र द्वारा बाहर निकल जाते हैं, और रक्तप्रसादन होजाता है।

२३ शीतलाविषदमनार्थ—शीतला निकलनेपर शतावरीका क्वाथ पिलाते रहनेपर विष अधिक नहीं फैल सकता।

२४ वात पित्तज विसर्प—शतावरी और विदारीमूलको धोये हुए घीमें घिसकर लेप करते रहनेसे विष नष्ट होकर विसर्प दूर हो जाता है।

२५ जीर्ण वृक्कप्रदाह—(Chronic Nephritis) इस रोगमें पेशाब के साथ पूय, लसीका (Albumin) रक्त और कभी कभी श्लैष्मिक कलाके टुकडे निकलते रहते हैं। पेशाब गदला और दुर्गन्धयुक्त होता है। इस रोगमें मुँहपर कुछ शोथ भी आजाता है। इस रोगपर शतावरी, गिलोय, गोखरू और पुनर्नवाका क्वाथ करके प्रात सायं ३-४ मासतक देते रहनेसे लाभ पहुँच जाता है।

२६ नक्तान्ध्य—घीमें शतावरीके कोमल पानोंका शाक बनाकर सेवन करते रहनेपर रतौंधी दूर हो जाती है।

२७ स्तन्यवृद्धिके लिए—शतावरीको गोदुग्धमें पीस दूधके साथ सेवन करनेपर स्तनोंमें दूध बढ जाता है और दूध मधुर और पौष्टिक भी होजाता है।

२८. हिस्टीरिया—शतावरी घृत भोजनके साथ सेवन कराने और प्रात सायं शतावरीका क्वाथ पिलाते रहनेसे हिस्टीरिया और सब प्रकारके वात-प्रकोप दूर होजाते हैं। साथ साथ शतावरी तैल (नारायण तैल)की मालिश भी कराते रहें, तो सत्वर लाभ पहुँचता है।

वक्तव्य—प्राचीन कालमें वातरोगोंपर नारायण तैलकी वस्ति देते थे यह विधि अधिक हितावह है।

२९ वन्ध्यत्व—शतावरी घृत (या फल घृत) का सेवन भोजनके साथ करते रहनेसे गर्भाशय और बीजाशयविकृति दूर होती है और गर्भ धारण होजाता है।

३० व्रणरोपणार्थ—शतावरीके पानोंका कल्क कर दूने घीमें तलें। फिर अच्छी तरह पीसकर उसकी पट्टी लगाते रहनेसे पुराना व्रण भी भर जाता है।

३१ पित्तप्रदर—(१) पतले गरम गरम जल गिरता हो, तो शतावरीका रस या शतावरी चूर्णको १२ घण्टे भिगोकर किया हुआ क्वाथ प्रातः साय पिलाते रहनेपर प्रदर दूर होजाता है और शरीर सबल होजाता है।

(२) शतावरीका चूर्ण १ तोला २० तोले दूधमें उबालें। फिर मिश्री मिला कर पिलाते रहनेसे १४ दिनमें सब प्रकारके प्रदर दूर होजाते है।

(६०) सत्यानाशी।

स. क्षीरिणी, काचनक्षीरी, हेमदुग्धा, पीतदुग्धा, सुवर्णक्षीरिका। हि० सत्यानाशी, कटेरी, मगरजवा, पिसोला, पीलाधतूरा, उजरकाटा, भडभाड। म० काटे धोत्रा, विलायती धोत्रा, पिवला धोत्रा। को० फिरगी धोत्रा। गु० दारुडी। बं० शेयालकाटा, सियाकांटा। ता० ब्रह्मदण्ड, बिरमदण्डु। क० अरसिन उन्मत। ओ० काटा कुशम।

अं० Mexican Poppy, Prickly Poppy

लै० Argemone Mexicana.

परिचय—छोटा क्षुप। दूध पीला। पान काटेदार, कटी हुई किनारी वाले। पुष्प सुन्दर पीले। बीज काले रङ्गके, छोटे गोल, सूक्ष्म गढेयुक्त, एक पार्श्वमें कुछ नुकीली छोटी धारासह। बीजोंमेंसे तैल निकलता है। वह औषध रूपमें और जलानेकेलिये काममें लिया जाता है। जलानेपर धुआ बहुत होता है।

सत्यानाशीका पौधा मूल अमेरिकाके उष्ण कटिबन्ध प्रदेशका है। ऐसी वनस्पति शास्त्रियोंकी मान्यता है। वर्तमानमें भारतके उष्ण कटिबन्ध प्रदेशमें नैसर्गिक हो गया है। यह भारतके सब प्रान्त और ग्रामोंमें प्रतीत होता है। जहा यह होता है, वहा चारों ओर फैल जाता है। यदि किसी खेतमें प्रवेश हो गया तो उसे उजाड़ देता है। इस हेतुसे इसे सत्यानाशी और उजर काटा सज्ञा दी है।

जो यहा सस्कृत नाम दिये हैं, वे सत्यानाशीकेलिये प्राचीन आचार्योंने कहे हैं या नहीं ? यह सदेहास्पद है, किन्तु ये नाम इसे लागू हो सकते हैं। अत यहा लिखे हैं—

कितनेक विद्वान, उसारेरेवन्द जिसमेंसे निकलता है उसीको सुवर्णक्षीरी मानते हैं। उसका लेटिन नाम गार्सिनिया मोरेला (Garcinia Morella) है। सुश्रुत टीकाकार डल्हणाचार्यने सुवर्णक्षीरीके निर्यास (सूखे दूध) को कङ्कुष्ट कहा है। इस कङ्कुष्ठकी उत्पत्ति सत्यानाशीसे नहीं होती। सुवर्णक्षीरीमें

२ जाति हैं। क्षीरिणी और सर्वक्षीरी। ऐसे दो भेद सत्यानाशीमें नहीं है। कंकुष्टके वृक्षमें हैं।

इसके मूलको चोक कहते हैं। वह पतली पेन्सिलसे अंगुलि जैसा मोटा, भूरे रङ्गकी पतली त्वचा वाला। इसकी छाल नरम, रसपूर्ण और पीले रङ्गकी, पीले दूध वाली। दूध धीरे धीरे गाढा, भूरा होकर काला और कठोर वन जाता है। मूलकी लकड़ी भूरे या फीके सफेद रङ्गकी। आडी काटनेपर भीतर सछिद्र और चक्राकार। वास उग्र। स्वाद कडवा।

बीजोंमेंसे तैल कोल्हूसे निकालनेपर मैला निकलता है। कुछ समयके वाद गाद नीचे बैठ जाती है; और तैल साफ वन जाता है। ताजे तैलमें गुण अधिक है। पुराना होनेपर गुण कम हो जाता है।

यदि थोड़ा तैल निकालना हो, तो जिस तरह एरण्ड बीज आदिको पीस उवालकर तैल निकाला जाता है। उसी तरह सत्यानाशीके वीजोंका तैल निकाला जाता है। सत्यानाशीके बीजोंको अच्छी तरह पीस उवलते हुये जल में डालकर २–३ उफाण आवे, तवतक उवालें। फिर शीतल होनेपर हाथोंसे निचोड़ लेवें। जल और तैल निकल आयेंगे। जल तल भागमें और तैल ऊपर रहेगा। फिर ऊपर आये हुये तैलको रूईके फोहेसे निकाल लेवें। यह तैल पीले रङ्गका होता है। यह विरेचनकेलिये उत्तम औषधि है। एक छोटा चम्मच तैल देनेसे निश्चय पूर्वक उदर शुद्धि हो जाती है।

मात्रा—मूल १ ड्राम (३॥ माशे)। बीज ३ माशे। वीजोका तेल ३० बूंद, शक्करके साथ। पीला दूध आधसे २ तोले।

गुणधर्म—सत्यानाशी रेचक, कड़वी, भेदक, उत्क्लेश करानेवाली (उवाक लानेवाली, वामक) तथा कृमि, कण्डू, विष, आनाह, कफ, पित्त, रक्तविकार और कुष्ठको दूर करती है। पीला दूध कडवा रेचक, कृमिघ्न, पित्तनाशक और कफघ्न है। मूत्रकृच्छ्र, वातरक्त, ज्वर, अश्मरी, सुजाक, शोथ, दाह और कुष्ठरोग को दूर करता है। अधिक मात्रामें विषैला और मादक है। वाह्योपचारमें उत्तम व्रणशोधक और व्रणरोपण है। नेत्ररोगमें भी हितकारक है। स्वरस मूत्रल, रक्त प्रसादन, कीटाणुनाशक, विरेचन और चर्मरोगहर है।

वीज कफघ्न रूपसे इपिकाक्युआनाके प्रतिनिधि हैं। विरेचन रूपसे जेलप, रेवाचीनी और एरण्ड तैलकी अपेक्षा विशेष गुणयुक्त है। इनके अतिरि स्वेदल, वामक, कफनाशक, अन्त्रको मुलायम वनानेवाला रसायन और फुफ्फुस के रोगनाशक है।

तैल मृदु रेचक है। श्वास. व्रणरोग, त्वचारोग, उपदंश, रक्तविकार, कु आदिपर हितकारक है।

मूल विरेचक और रसायन है। मूलकी पुल्टिस बांधनेसे वह गांठ और व्रणको फोड देती है। इस तरह पानपरसे कांटे निकाल फिर पीस पुल्टिस बना व्रण, वद या प्लेगकी गांठपर बांध देनेसे उसे फोड़ देता है। पान या पचांग की राखको तैलमें मिला कण्डू, दद्रु, व्रण और पशुओंके व्रणपर लगायी जाती है।

डॉ वामन देसाईके मत अनुसार बीजका तैल मृदु विरेचन है। यह एरण्ड तैलकी अपेक्षा अच्छा है। क्योंकि इसमें दुर्गन्ध या अति अरुचिकारक स्वाद नहीं है, मात्रा कम है उदरमें मरोडे नहीं आते एवं इसकी क्रिया मृदु और नियमित होती है। बीज रेचक और वेदना स्थापक (पीडानाशक) है। बीज नये होनेपर वमन कराता है। अतः एक वर्ष रखकर उपयोगमें लेना चाहिये।

उपयोग—सत्यानाशीकी क्रिया रक्त और पचनेन्द्रिय संस्थापर अधिक होती है। इस हेतुसे विविध रोगोंमें यह अच्छा लाभ पहुंचाती है।

१ मलावरोध—बीजोंका तैल शक्करके साथ देनेसे आफरा, उदरकृमि, उदरशूल, मलावरोध दूर होजाता है, अथवा बीज या मूलका चूर्ण देनेसे भी उदरशुद्धि होजाती है तथा उदर शूलका निवारण होता है। आमातिसार, उदर-पीड़ा और उदरशूल युक्त कब्ज होनेपर इसका तैल विशेष हितावह है। फिरंग रोगीको उदरशुद्धिके लिये बीज देते हैं।

२ विषमज्वर—सत्यानाशीके बीज ३ माशे नीबूके रसके साथ देवें, अथवा शहदके साथ देनेसे उदरशुद्धि होती है, तथा ठण्ड लगकर आनेवाला ज्वर दूर होजाता है। यदि पाली आनेके ६ घण्टे पहले यह दे दिया जाय, तो पाली का बुखार रुक जाता है या कमजोर होजाता है। जब तक नीबूके रसका अनुपान देसकें तब तक विशेष हितावह है। कारण बीजमें उबाक लानेका दोष है, वह नीबूके रससे दब जाता है।

३ कफप्रकोप—सत्यानाशीके बीज आधसे १ माशे शहदके साथ दिनमें ३ बार सेवन करनेसे श्वासावरोध कम होता है, कफ सरलतासे निकलता है, और खांसी दूर होती है।

४ श्वासावरोध—इसपर सत्यानाशी उत्तम औषध है। जब कफ सूख जानेसे बाहर निकलनेमें कष्ट होता है, तब श्वास भर जाता है। उसपर सत्यानाशीका चूर्ण ४-४ रत्ती दिनमें ३-४ बार शक्करके साथ लेवें ऊपर एक घूंट निवाया जल पीते रहनेसे कफ पतला होकर सरलतासे बाहर निकलने लगता है। फिर घबराहट दूर होती है।

५ श्वास—सत्यानाशी पचांगके रसकाघन, लोहबानका फूल और पुराना गुड समभाग मिलाकर २-२ रत्तीकी गोलियां बना लेवें। इसे दिनमें ३ बार

निवाये जलसे सेवन करानेसे कफ प्रकोपसह श्वास नष्ट होजाता है।

६. जलोदर—मूत्रल गुण दर्शानेकेलिये सत्यानाशीका दूध १ तोला जल और गोदुग्ध १-१ छटाक मिलाकर प्रातःकाल पिलादिया जाता है। जिससे मूत्रवृद्धि होकर रक्तस्थ जल बहुत बाहर निकल जाता है। एवं दस्त भी पतला आजाता है। फिर जल उदरमेंसे रक्तमें आकर्षित होकर उदरस्थित जल कम हो जाता है, और उदर हलका बन जाता है। यह प्रयोग कामलामें भी लाभदायक है।

७ सुजाक—सत्यानाशीका दूध ७ दिन तक कीडामारीका रस या मक्खन मिश्रीके साथ प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करानेसे सुजाक र होजाता है। भोजन में दूध भात लेवें।

८ फिरग—फिरग रोगमें सत्यानाशी उत्तम औषध है। सत्यानाशीको कूट ½-½ तोला रस निकाल ५ तोले गोदुग्ध या २ तोले हलवेके साथ सुबह दिनमें १ बार देनेसे ४–६ दिनमें फिरगरोग नष्ट होजाता है। अथवा मूल या पीला दूध कीड़ामारीके रसके साथ या तैल देनेसे फिरग रोग दूर होजाना है। यह ओषधि इस रोगमें नीमके समान लाभदायक है। दाग और व्रणपर दूध लगाया जाता है।

मूलको जलके साथ पीस ठण्डाईके समान छानकर प्रात काल ७दिन पिलाते रहें। घावपर दूधका लेप करें; और पथ्यपालन करें तो भी नया फिरंग रोग दूर होजाता है।

सत्यानाशी पचागको ८ गुने जलमें मिला अर्क खैंच लेवें, इसमेंसे १ से २ औंस अर्क प्रात सायं पिलाते रहनेसे नया फिरगरोग, उपदेश जनितजीर्ण उपद्रव, व्रण, नाड़ीव्रण, रक्तविकार, त्वचारोग आदि सब निवृत्त होजाते हैं।

९ गलत्कुष्ठ—प्रतिदिन १-१ तोला स्वरस प्रात काल ४० दिनतक दें तो रोग दूर होता है। प्रारम्भमें उबाक और वमन होकर रस कदाच निकल जायगा, किन्तु धीरे-धीरे टिक जायगा। इसके लिये कितनेक वैद्य रसपीनेके साथ तुरन्त हलवा खिलाते हैं या कालीमिर्च चबाकर घी पिलाते हैं। फिर २ घण्टे तक दूध या जल नहीं पिलाते।

१०. गौणकुष्ट—सत्यानाशी त्वचारोग या गौणकुष्टोपर अपूर्व औषध है। इसमें कीटाणुनाशक (कृमिघ्न) धर्म अति स्पष्ट है। सत्यानाशीका रस ६-६ माशे दिनमें एक या दो बार गोदुग्धके साथ ३ मासतक सेवन करावें। पथ्यका आग्रहपूर्वक पालन करें। एवं सत्यानाशीके तैलकी मालिश करते रहें, तो निश्चयपूर्वक कुष्ठ दूर होजाता है। कुछ दोष शेष रहे तो ओषधि अधिक

समयतक देव। यह रस ारम्भमें एक दो दिन वमन कराता है फिर वमन नहीं होगी। अथवा मात्रा शनै शनैः बढावें। दाहवाले व्रण और दाद आदि त्वचारोगमें इसका तैल लगानेपर शान्ति आजाती है।

११ व्रण—सामान्यतः इसका रस या तैल विविध क्षत, सामान्य व्रण, दुष्ट व्रण, रक्तप्रकोपज धब्बे, श्वेतकुष्ठके दाग, फिरंगके क्षत, मस्से आदिपर व्यवहृत होता है। फूटे हुये व्रणोंपर सत्यानाशीका दूध लगानेपर व्रण जल्दी भर जाता है। एव ब्लिस्टर लगानेपर उत्पन्न वेदना या दाहयुक्त बहुमूत्र (Strangury), जिसमें धीरे धीरे वेदनासह पेशाब होता है, उसे भी यह तैल दूर करता है।

१२ रक्तविकार—सत्यानाशीके पचाङ्गको जला राखकर विधि अनुसार क्षार बना लेवें। यह क्षार १ से २ माशे और सनाय २ माशेको ६ माशे शहदमें मिलाकर प्रात काल चाटलें। ऊपर शीतल जल पीवें। इस तरह ७ दिन लेनेसे रक्तविकार, कुष्ठ, त्वचादोष आदि दूर होजाते हैं। भोजन हलका करें। सैंधानमक थोडा लें, नमक, मिर्च, खटाई, तैल और गुडका त्याग करे।

१३ विषप्रकोप—सत्यानाशीका तैल, स्वरस या मूलका क्वाथ देनेसे वमन विरेचन होकर आमाशय और अन्त्रमें रहे हुए सब प्रकारके विष निकल जाते हैं। उपदश सुजाक आदिसे रक्तदूपित हुआ हो, तो उसपर भी यह उपकारक है।

१४ नेत्राभिष्यन्दपर—सत्यानाशीका क्षार ४ रत्तीको १ औंस गुलाबजलमें मिला लेवें। इसमेंसे नेत्रमें दो दो बूंद डालते रहनेसे वेदना और लाली दूर होती है।

पीला दूध १ बूंद थोड़े घीमें मिलाकर नेत्रमें डालनेसे फूला, अधिमास (पुतलीपर आया हुआ मास) और नक्तान्ध्य (रतौंधी) का नाश होता है। एव नेत्रकी लाली, चक्षुपाक, और दृष्टिमान्द्य, आदि भी दूर होते हैं। दूधसे नेत्रमें घाव या हानि नहीं होती।

१५ पामा—इसके दूधका लेप अति उपयोगी है। यह सूखी और गीली खुजली को थोडे ही दिनोंमें दूर करदेता है। दीर्घकालतक जो व्रण न भरता हो, उसपर भी इसका दूध लगाया जाता है। यह चिकित्सा उत्तम है।

१६ दन्तशूल-इसके बीजका धुआं नलिका द्वारा देने और लार टपकानेसे कीडे गिर जाते हैं। फिर शूल शमन होजाता है।

(६१) सनाय

सं० हेमपत्री, रेचनी, सुवर्णमुखी, कल्याणी। हिं० सनाय, सोनामुखी। व० सोनामुखी, सोनापाता। म० सोनामुखी। गु० मींढीआवल, सोनामुखी। मालवा-सोनापाता। फा० अ० सनामक्की। ता० निलावरै। ते० सुनामुखी। क० सुन्नामक्की। मला० सुन्नामुखी। अ० Alexandrian senna
ले० Cassia Acutifolia (आफ्रिकन सनाय)

परिचय—एक्युटीफोलिया=नोकवाले पानयुक्त क्षुप। सनायमें अनेक जाति हैं। यह विदेशसे आती है। भारतमें सनाय होती है, किन्तु वह सच्ची नहीं है। भारतीय सनाय यह खखसा क्षुपके पान हैं।

मात्रा—पानका चूर्ण १॥ से ३ माशे। यदि पान और फली आदि मिले हुयेको भिगो छानकर लेना हो, तो मात्रा ४ से ६ माशे तक।

गुणधर्म—सनाय अग्निमान्द्य, मलावरोध, यकृद्दाल्युदर, प्लीहोदर, अजीर्ण, विषमज्वर, बद्धगुदोदर, कामला और पाण्डुरोगको दूर करता है।

डाक्टर देसाईके मतानुसार सनाय विरेचन है, छोटी मात्रामें पचनक्रिया सुधारकर शौचशुद्धि करती है। बड़ी मात्रामें उदरमें मरोडा लाकर जलके समान पतले दस्त लाती है। इसकी मुख्य क्रिया लघु अन्त्रपर होती है। यह कुछ अंशमें यकृत्को भी उत्तेजित करती है। इसमेंसे विरेचन द्रव्य दूधमेंसे बाहर निकलता है। सोनामुखीसे उदरमें मरोडा होकर पतले दस्त होते हैं, फिर भी यह सौम्य विरेचन है।

हेमपत्रीकल्पः—

१. **स्वर्णपत्री फाण्ट**—सनायपत्ती ५ तोले और सोंठ ५ माशेके चूर्णको उबलते हुये ५० तोले जलमें डालकर २० मिनट ढक देवें। फिर छान लेवें। मात्रा ½ से १ औंस। उदरशोधनार्थ २ औंस।

२. **स्वर्णपत्री चूर्ण**—सनायके साफ पानोंको तवेपर सेक लेवें। फिर कूटकर कपड़छान चूर्ण करें। मात्रा ४ माशे घी और शक्करके साथ रात्रिको सोनेके समय निवाये जलसे देवें।

३. **स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण**—सनाय १५ तोले, मुलहठी, सौंफ और शुद्ध आंवलासार गन्धक ५-५ तोले, मिश्री ३० तोले लेवें। सब वस्तुओंको अलग अलग चूर्ण करें। फिर पहले सनाय और गन्धकको मिलाकर खरल करें। फिर मुलहठी और सौंफ मिलावें। सबके अन्तमें मिश्री मिलावें। मात्रा—३ से ६ माशे निवाये जलके साथ रात्रिको सोनेके समय देनेसे सुबह १ दस्त साफ आता है। इसका उपयोग रक्तविकार, अर्श, मलावरोध, पेचिस, पामा, खुजली आदिपर होता है।

४ पञ्चसकार चूर्ण—सनाय, सोंठ, सौंफ, सैंधानमक और शिवा (बड़ी हरड़) इन ५ औषधियोंको समभाग मिलाकर चूर्ण करें। मात्रा—३ से ६ माशे रात्रिको निवाये जलसे देवें। यह चूर्ण मलावरोध, आमवृद्धि, शिरदर्द, अपचन, उदरवात, आफरा और उदरशूलको दूरकर अग्निको प्रदीप्त करता है।

सूचना—यदि सनायकी मात्रा बढ जाती है, तो उदरमें मरोड़ा आता है और जल सदृश पतले दस्त होते हैं।

उपयोग—सनायका उपयोग ग्रामोंमें सर्वत्र निर्भयतापूर्वक होरहा है। आयुर्वेद और डाक्टरीमें भी इसके अनेक प्रयोग बने हैं।

डाक्टर देसाई लिखते हैं कि, कुपचन और कब्ज रोगमें मल संगृहीत होने पर सनाय देनेका अति रिवाज है। यह जुलाब बालकोंको भी दिया जाता है। सनाय सेवनसे उत्पन्न होनेवाले मरोडेको कम करानेके लिये सुगन्धित द्रव्य और बेस्वादुपनको कम करानेके लिये रोचक द्रव्य-कालीमुनक्का, मुलहठी, अमलतासका गूदा आदि सर्वदा इस जुलाबके साथ मिला सकते हैं।

पित्तज्वरमें सोनामुखी, अमलतास आदि जुलाब देना, यह शास्त्रशुद्ध है। विरेचन देनेसे पित्त गिरता है। पित्तके साथ ज्वरकारक विष भी शरीरसे बाहर निकल जाता है। दूषित पित्त दूर होनेके साथ नया और शुद्ध पित्त उत्पन्न होता है। फिर ज्वरघ्न औषधि अपनी क्रिया करने लगती है। दूषित पित्त, शारीरिक दाह और शिरदर्द आदि कम होजाते हैं।

१ विरेचनार्थ—स्वर्णपत्रीफाण्ट, स्वर्णपत्री चूर्ण, पञ्चसकार या स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण, इनमेंसे कोई भी एक दिया जाता है। मलावरोधके समय तीनोंमें से कोई भी एक देसकते हैं, किन्तु रक्तविकार या चर्म रोगपर देना हो तो स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण और आमवृद्धि हो, तो पञ्चसकार चूर्ण देना विशेष हित-कर माना जायगा। स्वर्णपत्री चूर्ण लेनेसे मात्र एक दस्त साफ आकर मानसिक प्रसन्नता होती है। यह अर्श रोग वालेकेलिये विशेष लाभदायक है।

२ मलमूत्र विरेचनार्थ—यदि मल और मूत्र, दोनों मार्गसे विरेचन कराना हो तो ६ माशे सनायके पानोंको रात्रिमें १० तोले जलमें भिगो देवें। सुबह मसलकर छान लेवें। उसमें पुराना गुड १ तोला मिलाकर पिला देनेसे २–३ दस्त और मूत्रशुद्धि होकर उदरकी उष्णता निकल जाती है। उदरकृमि और उदरशूल हो तो वे भी दूर होजाते हैं।

३ ज्वर पश्चात्की निर्बलता—स्वर्णपत्री चूर्ण १–१ माशा प्रात काल और रात्रिको घी और शहदके साथ देते रहनेसे उदरशुद्धि होती है। क्षुधा प्रदीप्त होती है, उदरवात दूर होता है, ज्वरविष जलजाता है, प्लीहावृद्धि हुई हो तो कम होजाती है और शक्ति बढती जाती है। यदि प्लीहावृद्धिसे अधिक

त्रास होता हो तो पिप्पलीका चूर्ण २-२ रत्ती मिलाते रहना चाहिये। इस तरह १५-२० दिन तक देते रहना चाहिये।

४ कफकास और अग्निमान्द्य—पचनक्रिया मन्द हो और वारवार खासी चलकर गाढा कफ निकलता रहता हो तो स्वर्णपत्री चूर्ण १-१ माशा और २-२ रत्ती पिप्पली चूर्णको शहदके साथ मिलाकर दिनमें २ वार देते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें स्वास्थ्य सुधर जाता है। श्वासप्रकोप हो, तो वह भी दूर होजाता है।

(६२) सफेद जूही

सं० यूथिका, वालपुष्पी, पुण्यगधा। हि० सफेद जूही, जूही व० जूही, म० पांठरी जूई। गु० जुई क० हुरिन वल्ली, मध्यान मल्लिगे। ते० अदविमौल्ला। ता० उदिजै। उचिमल्लिगै। मला० वोलिङ्गा। आ० वोनोमोलिका, जूई।

अ० Earl Jasmine.

ले० Jasminum, Auriculatum

परिचय—औरिक्युलेटा=कर्ण सदृश्य उपाङ्ग युक्त। चढ़ने वाली झाड़ी न्यूनाधिक रुएंदार, कभी-कभी लगभग चिकनी, पान ३ दल युक्त, पार्श्वके २ दल वहुत छोटे। मध्यपत्र दल ॥। से १। इञ्च लम्वा, लगभग ॥ इञ्च चौडा। लम्वा गोलाकार, नोकदार, पत्र वृन्त वहुत छोटा। पुष्प सफेद, अनेक पुष्प युक्त शिथिल, रुएदार मिश्र मंजरीमें। पुष्पान्तर कोष नलिका लगभग ॥ इञ्च लम्वी, गर्भ कोष एकाकी, गोलाकार पकनेपर काला।

उत्पत्ति स्थान—दक्षिण, कर्णाटक, पश्चिम घाट, सिलोन, गुजरात, सौराष्ट्र।

(९३) सफेद मुर्गा

सं शितिवार, कुक्कुट, शिखी। हिं० सफेदमुर्गा, सिरयारी। म० कुरडू, कोंवडा गु० लापडी, लाबडी। वं श्वेतमुर्गा, श्वेतमोरगफूल। पं० चिलचिल, सलगर। सरहद-सरवाली। सिं० शिरआ, सुरवाली। विहार-सिरवारी। क० गोरजि। ते० गुरुगु, पचेचेट्टु। वरार-शाहमेंढे। मार०कुकरडी। अ० Silver-spiked, Cock's Comb ले० Celosia Argentea

परिचय—वर्षायु क्षुप। ऊचाई १ से ५ फूट। तना खड़ा, सादा या चढनेवाला। शाखाए लम्वी, ऊंचे चढ़नेवाली नरम शाखाए कभी दीपवृक्ष (Chandelier) के समान सुशोभित। पान १ से ८ इञ्च लम्वे, । से १। इञ्च चौड़े विविध आकारके, नोकदार, अखण्ड, चिकने। पुष्प पहले गुलावी आभा-वाले। फिर तेजस्वी सफेद। तुर्रे १ से ६ इञ्च लम्वे, ॥। से १ इञ्च व्यासके।

कभीकभी मुर्गेकी चोटीके समान ऊपरमें शाखायुक्त। फली १ इञ्च लम्बी। वर्तुलाकार बीज ४ से ८ काले, चिकने, लगभग वृक्काकार। मूल सफेद, पेंसिलमें अंगुष्ट जितना मोटा। कुछ सुगन्धयुक्त। पुष्पकाल और फलकाल शीतऋतु। इसके पानोंका शाक भी होता है।

उत्पत्तिस्थान—भारतमें सर्वत्र, सिलोन, एशियाका उष्णकटिबन्ध। अमरिकामें यह बोया जाता है।

गुणधर्म—राजनिघन्टुकारके मतानुसार शितिवाररसमें कसैला उष्णवीर्य ग्राही, त्रिदोषघ्न मेधाप्रद, रुचिकारक, दाहहर, ज्वरघ्न और रसायन है। धनवन्तरी निघण्टुकारने अग्निप्रदीपक, वृष्य और गुरु, गुण अधिक दर्शाये हैं।

निघण्टु रत्नाकरने शीतवीर्य, रूक्ष, अविदाही, लघु, हृद्य तथा ज्वर, मेह, श्वास, दाह, मेद, कुष्ठ, भ्रम और अरुचिका नाशक कहा है।

भावप्रकाश और कैयदेव निघण्टुकारने शितिवारको चौपतिया माना है। उनके मतानुसार लेटिन नाम Marsilia Minuta है। कई चिकित्सकोंने इसे उटगन (Blepharies Edulis) माना है। दोनोंका वर्णन पहले होगया है।

यूनानी मतानुसार बीज कडवे, क्षतरोपण और कामोत्तेजक है। अतिसार, रक्तविकार और मुखपाकमें उपयोगी। पान शीतल, वृष्य, प्रदाहहर, यकृद्बल-वर्द्धक और सुजाकमें उपयोगी है। पानकी राख रक्तस्रावरोधक है।

नव्य चिकित्सकोंके मतानुसार इसके बीज शीतल, मूत्रल, स्नेहन और पौष्टिक हैं।

मात्रा—बीज १-१ माशा।

उपयोग—सफेदमुर्गा दीर्घकालसे घरेलू औषधरूपसे व्यवहृत होता है। प्राचीन संहिताओंमें इसका वर्णन नहीं मिलता।

इसके मूलको मूत्रलक्वाथमें मिलाते हैं। पान पीस पुल्टिस बना फोडेपर बांधनेमें आते हैं। रसविकार और विषैले जन्तुओंके विषपर इसके पानोंका लेप किया जाता है। इसके पञ्चाङ्गकी राख शहदके साथ देनेसे कफ दूर होता है। एवं कास और श्वासमें लाभ पहुँचता है।

मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी—बीजोंके चूर्णको थोडी मिश्री मिलाकर जल या दूधकी लस्सीके साथ देवें। इस तरह १-१ घण्टेपर २-३ वार देनेसे पेशाब साफ आजाता है। मूत्रावरोधको दूर करनेकेलिए उत्तम और निर्भय औषधि है।

भांग या गांजेका नशा—सफेद मुर्गेके मूलको जलमें घिसकर शक्ति अनुसार पिलावें।

अतिसार—बीजका चूर्ण ४-४ रत्ती दिनमें २-३ वार देनेसे मल बंध जाता है और दस्त रुक जाता है।

(६४) समुद्रफल ।

स० हिज्जल, नदीकान्त, निचुल, दीर्घपत्रक। व० हिज्जल। हि० गु० समुद्रफल। म० समुद्रफल, सत्फल, हीवरी। को० समुद्रफल, तिवर, जुगली। क० केंपुकणगिन। ते० कनपुचेट्टु। ले० Barringtonia Acutangula

परिचय—बेरिंग्टोनिया=डा० वेरिंग्टनके समानार्थ सञ्ज्ञा। एक्युटेंगल तीक्ष्णकोणयुक्त। इसकेवृक्ष भारतके अनेक प्रान्तोंमें होते हैं। ऊचाई ३०-४० फीट। पान ५ इञ्च लम्बे, २ इञ्च चौडे, अण्डाकार। कलगी प्राय १ फूट लम्बी। पुष्पदण्ड। इञ्च। पुष्प वाह्यकोषकी प्याली बहुत छोटी, किन्तु फनलके आकारकी। पुप लाल। फल १ से १॥ इच लम्बा और आवसे पौन इच चौडा, वीचमें धारीदार,खुरदरे। स्वाद प्रारम्भमें मधुर, फिर कडवा और वामक। फलोंकी छाल पतली। बीज बड़ा। बीज जायफलके सदृश। औषधरूपसे फलका उपयोग होता है।

मात्रा—१ से २ रत्ती।

गुणधर्म—समुद्रफल चरपरा, उष्ण, वातहर, विषनाशक। नव्यमतानुसार कफघ्न, वामक, सारक और वेदनाहर।

रसशास्त्र—फलोंमें सावुन समान पदार्थ (Saponin) अवस्थित है। फलोंके चूर्णको जलमें मसलनेपर झाग आते है, और वे बहुत समयतक टिकते हैं। झागका स्वाद पहले मीठा, फिर कडवा और अन्तमें चरपरा होता है।

उपयोग—समुद्रफल घरेलू ओषधि है। छोटे बच्चोंकी माताको यह अवश्य रखना चाहिये। वालकोंकी शरदी, कफप्रकोप, डब्बाआदिमें दिया जाता है।

डाक्टर देसाई लिखते हैं कि कफरोगमें जिसतरह मैनफल उत्तरहिंदमें व्यवहृत होता है, उस तरह दक्षिणमें समुद्रफल प्रयुक्त होता है। मैनफल वडेको और समुद्रफल छोटे वालकको दिया जाता है। दोनोंसे वमन और विरेचन होते हैं। वालकोंके कफरोगमें समुद्रफल उत्तम लागू पडता है, किन्तु वमन न होनेपर कभी कभी हानि पहुँचती है, यह इसमें दोष है। समुद्रफल देनेपर वालकको सोने न देना चाहिये और वमन तुरन्त न हो, तो नमक मिला थोडासा निवायाजल पिला देना चाहिये। जिससे सत्वर वमन होकर कफ गिर जाता है, और दस्त भी हो जाता है। वमन-विरेचन अधिक होनेपर चावलोंकी यवागू घी मिलाकर देनी चाहिये। वालकोंकी छातीमें कफ सगृहीत होनेपर(डब्बा होनेपर) पसलियोंको धक्का पहुँचता है और उदर फूलजाता है। ऐसे समयपर समुद्रफल घिसकर छातीपर और उदरपर मर्दन किया जाता है।

श्वासरोगमें समुद्रफल और सफेद गोकर्णीके मूल ६-६ माशेको दूधमें घिस

कर पिलाया जाता है। इससे वमन-विरेचन होकर श्वासावरोध दूर होता है।

१. शिशुओंको वमन कराना—छोटे छोटे बच्चोंकी छातीमें कफ बढ़-जानेपर वमन कराना पड़ता है। किन्तु कफ मुँहमें आनेपर भी थूंक नहीं सकते। इस हेतुसे करेलेके पानोंके रस या हथिया (अगस्त) के पानोंके रसमें, समुद्रफल घिसकर पिला देनेसे जल्दी वान्ति होकर कफ निकल जाता है। आवश्यकतानुसार छातीपर भी लेप किया जाता है।

२. बालककी व्याकुलता—यदि बालक अति व्याकुल हो रहा हो तो अदरखके रसमें समुद्रफल घिसकर शहद मिलाकर चटा देनेसे सब कफ वमनमें या दस्तमें निकल जाता है, आफरा दूर होता है और बालक तुरन्त खेलने लग जाता है।

३. नेत्रस्राव—आंखोंमेंसे पानी गिरता हो तो समुद्रफलको जलमें घिसकर अंजन करना चाहिये।

४. कण्डू—चमड़ीपर खाज चलती हो या छोटी छोटी फुन्सियां हुई हो, तो समुद्रफलके पानोंका लेप किया जाता है।

(९५) सर्पगन्धा

सं० सर्पगन्धा नकुलेष्टा, चन्द्रसुरा, रक्तपत्रिका, धुंगवा। हि० सर्पगन्धा, छोटा चाँद, हड़कई चाँद नकुलीकन्द इसरोल। बनारस—धनमरवा। दरभंगा—धूलक। बं० चन्द्र छोटा चांद। म० माहेश्वरी, चन्दमरवा, हेड़की छोटा चांद। बम्बई-चन्दमरवा। गु० सर्पगन्धा। पश्चिमघाट—अड़कई। ओ० पातालगरुड़। ते० दुन्पराला पातालगयी। ता० चोवन्नमिलपोरी। मला० चुवन्नविलपुरी तालुन्नी। क० चन्द्रिके गरुड़पाताल, शिवनाभि। मुन्डा० नागर्वल। ले० Rauwolfia serpentina

परिचय—रौवोल्फिया=जर्मन डाक्टर रौवोल्फके स्मारकार्थ संज्ञा। सर्पेन्टिना=सर्पसदृश या सर्पविषविरोधी। छोटी, खड़ी झाड़ी पानोंके गुच्छसह। ऊँचाई बिहारमें १ से २ फीट, बम्बईमें २ से ३ फीट। छाल निस्तेज कभी छोटे छोटे दागयुक्त पान ३-४ के गुच्छोंमें अण्डाकार, या लम्बगोल ३ से ७ इंच लम्बे, १ से २॥ इंच चौड़े बीचमें चौड़े, ऊपर सकड़े नोकदार चिकने ऊपर तेजस्वी हरे, नीचे हल्के हरे। पत्रवृन्त लगभग ॥ इंच लम्बा (पान तोड़नेसे दूध जैसा रस निकलता है। रसग्रन्थियां पत्रकोणोंमें उपपत्रके स्थानपर। पुष्प सफेद, प्रायः बैंगनीसी आभावाले (गुलाबी) ३ इंच चौड़े विभाजित तुर्रे जैसी रचनामें अनियमित। पुष्पदण्डिका २ से ५ इंच लम्बी अनेक शाखायुक्त। पुष्पवृन्त छोटा लाल लाल। पुष्पपत्र पुष्पवृन्तके नीचे तीनकोणाकार नोकदार

लगभग ॥ इंचलम्बा । पुष्प बाह्यकोष चिकना,तेजस्वीलाल,आकुञ्चित सिरायुक्त ·१५ इंच (लगभग १। सूत) लम्बा, नोकदार। पुष्पाभ्यन्तरकोष लगभग ॥ इंच लम्बा, कोमल नलिकायुक्त । नलिका लगभग ॥। से १ इंच लम्बी, बीचमें कुछ फूली हुई । तस्तरी कप आकारकी । पुंकेसर ५ नलिकाके भीतर । परागकोष छोटे । बीजाशय खण्ड २ मुक्त या जुड़े हुये । डोडी १-१, कभी दो विभागयुक्त, पहलेहरी, पकनेपर बैंगनी, काली, । से ॥इंच व्यासकी (बडे मटर जितनी बड़ी)

उत्पत्तिस्थान—उपहिमालयप्रदेश, विहार, यू पी , आसाम,कोंकण, पंजाब, मद्रास, पश्चिमघाट, मिन्नोन आदि । मूलकी छाल हलकी, मैलेरङ्गकी,

कोमल, खडे चीरेवाली, मूनकी लकडी कुछ कीली, तोडनेपर गोलचक्रयुक्त, स्वादमें अतिकडवी। ताजे मूलमें प्रकृति निर्देशक उग्रवास रहती है। मूलको जलानेपर राख लाल आभायुक्त होती है। पुष्प बम्बईमें मार्चसे मईतक पञ्जाबमें मई-जूनमें, बिहारमें मईसे जुलाईतक। फल बिहारमें जुलाईसे सितम्बरतक। औषधरूपसे इसके मूलका उपयोग होता है।

गुणधर्म—मूल कडवा, उग्र, चरपरा, कृमिघ्न, त्रिदोषनाशक, व्रणरोपण, सर्पविषहर, गर्भाशय आकुंचक, रक्तदबाव शामक और निद्राप्रद है तथा उन्माद, मधुमेह और उदरशूलको नष्ट करता है। इस ओषधिको बिहारमें गरीब लोग 'पागलकी दवा' कहते हैं।

रासायनिक संगठन—इसका पृथक्करण सतोषप्रद नहीं हुआ। अभीतक इसमें ५ उपक्षारीय द्रव्य मिले हैं। १ अजमलाइन (Ajmaline) १५%, २ अजमलिनाइन (Ajmalinine) १%, ३ अजमलिसाइन (Ajmalicine) ०५%, ४ सर्पेण्टाइन (Serpentine) ०१%; ५ सर्पेण्टिनाइन (Serpentinine) ०८%। इनमें अजमलाइन वर्गके द्रव्यका रङ्ग श्वेत और सर्पेण्टाइन वर्गका पीला होता है। सब मिलकर आध प्रतिशत सत्त्व द्रव्य मिलता है। इन दोनों वर्गोंके प्रभाव द्रव्यके गुणधर्मका अभीतक पूरा निर्णय नहीं हुआ। इनके अतिरिक्त उदासीन राल, तैली द्रव्य फाइटोस्टेरोल (Phytosterol), वसाम्ल (Oleic Acid), अलकोहालमें न भिगा हुआ मिश्रण और रालमय अम्ल आदि मिले हैं।

सर्पगन्धादि गुटिका—सर्पगन्धा १० सेर, खुरासानी अजवायन २ सेर जटामासी और भाग १-१ सेर मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। उसे ८ गुने जलमें रात्रिको भिगो दें। फिर सुबह मदाग्निपर पकावें और कलछीसे हिलाते रहें। अष्टमांश जल शेष रहनेपर नीचे उतार मसलकर कपडेसे छान लेवें। फिर क्वाथको दूसरी वार छानकर मदाग्निपर पकावें। कुडछीको लगने लगे, ऐसा गाढा हो, तब उसे नीचे उतारकर धूपमें सुखावें। गोली बनने योग्य होजाय, तब उसमें पीपलामूलका चूर्ण २० तोले मिलाकर २-२ रत्तीकी गोलियां बना लेवें। इनमेंसे २ से ३ गोली रात्रिको सोनेके २ घण्टे पहले जल या दूधके साथ देते रहनेपर निद्रा आजाती है और रक्तदबावका ह्रास होजाता है। किसी अंगमें वेदना होनेसे या हिस्टीरिया, किनाइन विष, मदात्यय, उन्माद या मस्तिष्कमें अधिक उत्तेजना पहुँचनेसे निद्रा न आती हो, तब निद्रा लानेकेलिये इस वटीका प्रयोग किया जाता है।

मात्रा—मूलका चूर्ण १ से १॥ माशेतक दिनमें १ वार (रात्रिको सोनेके

१ घण्टा पहले) शरावमें निकाला हुआ अर्क १० से १५ बूंद दिनमें २ बार। (शरावके अर्कमें ऊपर पृथक् करणमें दर्शाये अनुसार ०५% सत्व आजाता है।)

सूचना—सर्पगन्धाकी शामक क्रिया वातवाहिनिया और वातनाड़ीकेन्द्रपर होती है, (हृदय और रक्तवाहिनियोंकी क्रियापर प्रत्यक्ष नहीं होती) इस हेतुसे रक्तदबावका ह्रास हो जाता है। क्वचित यह शामक क्रिया विशेषत निर्बल व्यक्तियोंमें इतनी जल्दी होती है कि, किसी-किसी रोगीको अति घबराहट होती है। इसलिये प्रारम्भमें मात्रा १ माशेसे अधिक नहीं देनी चाहिये।

उपयोग—इसका उपयोग प्राचीन कालमें होता था या नहीं, यह अविदित है। बिहारवासी गरीबोंके अनुभवपरसे यह ओषधि प्रसिद्धिमें आई है। वर्तमान में इसका उपयोग आयुर्वेदमें, निद्रानाश, उन्माद और रक्तदबाव वृद्धिपर अधिक होता है।

कलकत्ता स्कूल आफ ट्रॉपिकल मेडिशिन और कार्मिकेल मेडिकल कालेज में किये हुये अनुसधानके अनुसार डाक्टर घोषने लिखा है कि, 'अजमलाइन, सर्पेण्टाइन और सर्पेण्टिनाइन केन्द्रीय वातनाड़ी सस्थाकेलिये उत्तेजक है। इन तीनों उपक्षारोंमें सर्पेण्टाइन अधिक प्रबल और विषाक्त है। शामक और निद्राप्रद द्रव्य विशेषत अल्कोहालसे निकाले हुये सत्वमें मिलते है। सब उपक्षारों एवं अजमलाइन, सर्पेण्टाइन और सर्पेन्टिनाइनके अतिरिक्त अन्य सम्पूर्ण उपक्षारोंमें भी शामक और निद्राप्रद तत्व पाये जाते हैं। इसके विभिन्न उपक्षारो या रक्तदबावशामक प्रभाव उत्पन्न करनेवाले तत्वोंसे प्रभावित होनेवाले अङ्गोंका निश्चयसे वर्णन कर सकना इस समय असम्भव है। कुछ उपक्षार हृदय और रक्तवाहिनियोंकी सचालक नाड़ियोंके केन्द्र (Vaso Motor Centre) पर अवसादक प्रभाव प्रगट करते हुये देखे जाते हैं। सबसे पश्चात्के अनुभवोंने इस बातकी सम्भावना अधिक प्रगटकी है कि, इसका निद्राप्रद प्रभाव इसके उपक्षारोंके कारण न होकर राल (Resin) के समान इसके अन्दर पाये जानेवाले तत्वसे है।'

'अपने शामक प्रभावके कारण मानसिक रोगों व पागलपनमें इस ओषधि का अत्यधिक उपयोग होता है। मद्यसारमें बनाये हुये इसके सत्वका अस्वाभाविक रक्तदबाव वृद्धिमें रक्तदबावका ह्रास करनेकेलिये भी अच्छा उपयोग होता है।'

वक्तव्य—'यह अच्छा माना जायगा कि, इसका प्रामाणिक तरल सत्व या चूर्ण ही काममें लिया जाय। क्योंकि अप्रमाणित प्रयोग काममें लेनेपर अस्वाभाविक अत्यधिक हृत्स्पन्दन ह्रास (Intense Bradycardia) की उत्पत्ति हो जानेके अनेक उदाहरण मिले हैं। यह ओषधि शक्तिशाली और

प्रभावोत्पादक है। इसलिये इससे चिकित्सा किये जानेवाले रोगीका भली-भाँति निरीक्षण करके निश्चय करना चाहिये। यह देखा गया है कि, अपात्रमें प्रयोग करने और अप्रमाणिक प्रयोगके उपयोगमें लानेसे यह रक्तचापको न्यून कर देनेमें असफल प्रमाणित हो जाती है।'

१ निद्रानाश—अ० सर्पगन्धादि वटी सोनेके २ घण्टे पहले देवें या सर्पगन्धा के मूलके चूर्ण १॥ से २ माशेको दोपहरको जलमें भिगो देवें। उसे पीस २० तोले जलमें छानकर पिला देवें।

आ सर्पगन्धाचूर्ण और खुरासानी अजवायन ६-६ रत्ती और शक्कर १॥ माशे मिलाकर सोनेके २ घण्टे पहले शीतल जलके साथ देनेसे रात्रिको शान्त निद्रा आ जाती है।

२ रक्तदबावबृद्धि—उपदंश विष, अति शराब सेवनसे उत्पन्न मदात्यय, क्विनाइनका अधिक सेवन, गरम-गरम चाय आदिका अतिव्यसन, मानसिक परिश्रम, क्रोध, शारीरिक अति परिश्रम, मधुमेह आदि क्षयकारक रोग और मलावरोध आदि कारणोंसे रक्तदबाव बढ जाता है। फिर शिरमें भारीपन, चक्कर आना, निद्रानाश आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इसपर सर्पगन्धादि वटीका सेवन कराया जाता है।

वक्तव्य—मलावरोध हो तो उदरशोधनार्थ गुलकन्द, मुनक्का, हरड़का मुरब्बा या अन्य सारक ओषधि साथमें या पहले देवें। मधुमेह कारण हो, तो दिनमें २ बार शिलाजीत देते रहना चाहिये। उन्माद या मानसिक विकृति होनेपर सर्पगन्धादिवटीको जटामांसी २ माशेके फाण्टके साथ देते रहना चाहिये।

३ उन्माद—उन्मादमें अनेक प्रकार हैं। जिस उन्मादमें रोगीको निद्रा न आती हो, आक्षेप आनेपर चिल्लाना, दौडना, मारना आदि चेष्टाए होती हों, या मानसिक विकृतिके हेतुसे चित्तभ्रम हो गया हो, उसपर सर्पगन्धा और जटामासी ४-४ माशा तथा शक्कर १-१ माशा मिलाकर जलके साथ या सर्पगन्धा चूर्ण जटामासीके अर्कके साथ दिनमें ३ वार देते रहने और पथ्य भोजन कराते रहनेपर शान्त निद्रा आने लगती है और शनै शनै. रोगनिवृत्त हो जाता है।

४ सुखप्रसवार्थ—प्रसूता निर्बल होने या गर्भाशय निर्बल होनेपर सर्पगन्धा चूर्ण १-१ माशा समान शक्कर मिलाकर या शहदके साथ २-२ घण्टेपर २-३ वार देनेपर गर्भाशय आकुंचित होता है और प्रसववेग वलपूर्वक उत्पन्न होता है, वेदनाका भान कम होता है और क्लोरोफॉर्म, एमोनिया आदिके समान किसी भी प्रकारकी हानि नहीं होती।

५ गर्भस्रावज पीड़ा—गर्भस्राव हो जानेके बाद कुछ दोष भीतर रह जाने से पीड़ा होती हो, बारबार शूल उत्पन्न होता है और रक्तस्राव उत्पन्न हो रहा हो, तो सर्पगन्धा ४–६ रत्ती मात्रामें शहदके साथ २–२ घण्टेपर ३–४ बार देनेपर गर्भाशय आकुंचित होकर भीतर रहे हुए दोषको बाहर फेंक देता है तथा वेदना और रक्तस्रावको बन्द कर देता है।

६. रक्तप्रवाहिका—पेचिशमें बारबार दस्त होने, वेदना होने और रक्त जानेपर कुटजमूल ३ माशेके क्वाथके साथ या कुटजारिष्टके साथ सर्पगन्धा २–२ रत्ती २–२ घण्टेपर ३–४ बार देनेपर उसी दिन पेचिशका वेग कम हो जाता है, रक्तस्राव बन्द हो जाता है और वेदनाका भी ह्रास हो जाता है।

७ उदरशूल—अ कोंकण और गोवा प्रान्तवासी किसान लोग वात प्रकोपज उदरशूल और बारबार थोड़ा थोड़ा दस्त होनेपर सर्पगन्धा ३–३ माशे का क्वाथकर १–२ बार (३ घण्टे बाद) लेते हैं। इससे उदरशूल तत्काल शमन हो जाता है।

आ सर्पगन्धाके पान १ माशा और मुगली एरण्ड (या दतीमूल) की छाल २ माशा मिलाकर देनेसे उदरशूल दूर हो जाता है।

८ सर्पविष—कोंकणवासी फुरसा जातिके सर्प विषपर सर्पगन्धेका उपयोग करते हैं। यह सर्प ८–१० इञ्च लम्बा और बांसके पान सदृश होता है। यह विशेषत पत्थरोंके नीचे रहता है। इसके काटनेके पश्चात् २–४ दिनमें मुँहसे तथा शरीरमेंसे स्थान-स्थानपर रक्तस्राव होता है। इसपर सर्पगन्धा मूल २ तोले और कालीमिर्च ३ माशेको कुचलकर १ सेर जलमें उबालते हैं। आध सेर जल रहनेपर नीचे उतारकर छान लेते हैं। उसे शीतलकर थोड़ा थोड़ा जल पिलाते रहते हैं तथा मूलीको जलमें घिसकर दशस्थानपर मोटा लेप करते हैं। आध घण्टेपर उस लेपको हटाकर पुन नया लेप करते हैं। इस तरह आध सेर पिला देने तथा ४–६ बार लेप कर देनेपर सर्पविष शमन हो जाता है। तत्काल उपचार न होनेसे यदि रक्तस्राव या रक्तपित्तप्रकोप उत्पन्न हो गया हो, तो सर्पगन्धा मूलका चूर्ण १–१ माशा शहदके साथ दिनमें ३ बार ८–१० दिनतक देते रहनेपर विष निवृत्त होकर रक्तपित्त शमन हो जाता है।

९. मदात्यय—शराबका अति व्यसन हो जानेके पश्चात् शराब विषसे निद्रानाश, बुद्धिभ्रम, दाह, अग्निमान्द्य, वमन, तृषा, अतिसार, अतिस्वेद आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उसपर १–१ माशा सर्पगन्धाको सुबह गुलाबजलमें भिगो शामको पीस बिना छना पिला देवें। इसी तरह आवश्यकता रहे तो रात्रिको भिगो सुबह भी पिलाते रहें। भोजन लघु पौष्टिक देवें। फालसा, सन्तरा, अनार, अङ्गूर, सेव आदि अधिक हितावह हैं।

सूचना—अ सर्पगन्धा अनधिकारीको देने या मात्रा अधिक हो जानेपर घबराहट, हृदयमें भारीपन, हृदयशूल और रक्तदबावका ह्रास आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसा हो, तो तुरन्त डाक्टरीमें बट सागली (हजारा जिला-पंजाबकी संज्ञा-Cratae gus oxyacantha) का सत्त्व क्रेटेजिन (Crataegin) या अर्क देते हैं। यदि इसका चूर्ण देवें, तो भी लाभ पहुँच सकता है। श्री० गुणे शास्त्रीका मत है कि, वल्लीपाटलेका चूर्ण ३ से ६ माशेका फाण्ट देनेसे भी घबराहट आदि रोग दूर हो जाते हैं।

आ सगर्भाको तथा रक्तदबाव ह्रासवाले, मंद हृदय गतिवाले और शोकोन्माद (Melancholia) से पीडितोंको सर्पगन्धा नहीं देना चाहिये।

(९६) सरसों

सं० सर्षप, कुष्ठनाशन, रक्षोघ्न, । बं० सरिसागाछ । पं० सरों । म० काली मोहरी । गु० सरसव । कच्छी-सुरह । केटा-जम्बोई । क० सासिव । ते० आवालु ता० कडुग्पु, कडुगा । फा० सर्पफ । अ Swedish Turnip ले० Brassica Campestris

परिचय—मूल वर्षायु पतला । तना खडा, शाखायुक्त १ से ३ फीट (कभी ६ फीट तक) ऊंचा । पान तनाके प्राथमिक हो, वे बडे वृन्तयुक्त, फिर आनेवाले कम वृन्त युक्त, न्यूनाधिक विभाग वाले । पुष्प बडे तेजस्वी पीले । पुष्प वृन्त ।। इञ्च । फली १।। से ३ इञ्च लम्बी सीधी । बीज छोटे, चिकने, हल्के या गहरे रंगके । यह भारतके सब प्रान्तोंमें प्राय बोयी जाती है । बिहारमें १९३४ ई० में इसकी ३ उपजाति बोयी जाती थी ।

सरसों पीली, हलकी पीली (सफेद) काली पीली (काली) एव छोटे बडे बीजवाली कितनीक जातिया होती हैं । इसमेंसे ३१ से ३५% तैल निकलता है, उसे कडुवा तैल कहते हैं । इस तैलमें राईके तैलकी अपेक्षा गन्धक द्रव्य कम होनेसे यह राईके तैल जितना दाह नहीं करता । शीतल प्रदेशमें रहने वालोंके लिये यह अधिक अनुकूल रहता है ।

गुण धर्म—सरसोंके बीज रस और विपाकमें चरपरे, उष्णवीर्य, पित्तवर्द्धक अग्निप्रदीपक,राक्षसबाधानाशक, कफहर,वातशामक, कीटाणुनाशक और उदरकृमिघ्न हैं । सफेद सरसों अधिक गुणदायक है ।

सरसोंका शाक चरपरा, रुचिकर, मल-मूत्रवर्द्धक, अम्लविपाकी, विदाही, उष्णवीर्य और शुक्रनाशक है । नव्य मतके अनुसार यह लाभदायक है । इसमें जीवनसत्त्व (vitamin) अ और क विशेष परिमाणमें हैं ।

सरसोंका तैल दीपन, रस और विपाकमें चरपरा, लघु, लेखन, उष्णवीर्य,

रक्तपित्त प्रकोपक, कफहर, मेदहर, वातशामक, कृमिघ्न और कीटाणुनाशक है। सरसोंके तैलमें बनाये हुए अचार लम्बे समय तक अच्छे रहते हैं। यह तैल चर्मकी शुष्कता नाशक होनेसे मालिशमें अति उपयोगी है। इस तैलकी वास उग्र है। शीतल देशोंमें और पहाडोंपर रहने वाले लोगोंकेलिए अधिक अनुकूल और उष्ण प्रदेशमें रहनेवालोंको कम अनुकूल रहताहै, शीतकाल और वर्षाऋतु में इसका सेवन और मर्दन लाभदायक है। यह त्वचाको कोमल और मांसको पुष्ट बनाता है।

उपयोग—सरसोंका उपयोग आयुर्वेदमें प्राचीन कालसे हो रहा है। चरक संहितामें कण्डूघ्न, आस्थापनोपग और शिरोविरेचनोपग दशेमानियों में सरसोंका उल्लेख मिलता है। शाकवर्गमें सरसोंका शाक दर्शाया है। कुष्ठ रोगपर सरसोंका तैल हितकर माना है, दंतरोगमें सैंधानमकके कपड़ छान चूर्णकेसाथ सरसोंका तैल मिलाकर मंजन करनेका लिखा है। सुश्रुत संहितामें पिप्पल्यादि गण, शिरोविरेचन और ऊर्ध्वभागहर संशोधनमें सरसोंकी गणना की है। साथमें टीकाकार डल्हणाचार्य लिखते हैं कि, "श्वेतसर्षपा विशेषेण वमनार्हा" अर्थात् सरसों सफेद विशेषत वमन करानेवाली है। एवं सुश्रुताचार्यने श्लीपदपर सरसों के तैलको पीनेका और ऊरुस्तम्भ पर सरसो और करंजफलको गोमूत्रमें पीस-कर लेपकरानेका लिखा है। चरक संहिता, सुश्रुत संहिता और अष्टाङ्ग संहिता, इन तीनों प्राचीन ग्रन्थोके भीतर सरसोंका उपयोग अपस्मार, उन्माद, भूत-बाधा आदिपर नस्य, अभ्यंग रूपमें लिखा है। आचार्य वंगसेनने वातरक्तपरगौर सर्षपके लेपको हितावह दर्शाया है।

सरसों त्वचारोगपर उपकारक होनेसे इसे 'कुष्ठनाशन' उपनाम दिया है। एवं कीटाणुप्रकोपमें होने वाले आक्षेप आदिमें हितकर होनेसे 'रक्षोघ्न' उपनाम भी दिया है। वर्णरोपणार्थ विविध प्रकारोंके मल्हमोंमें सरसोंका तैल मिलाया है।

१ अपस्मार—सरसोंके तैलका उपयोग नस्य, अंजन, धुआ, पान और मर्दन रूपसे कराते रहनेमें कीटाणुओंके नाशमें अच्छी सहायता मिल जाती है।

२ श्लीपद—(हाथीपगा)—सरसो और छोटी कटेलीके पानोंको पीस निवाया कर लेपकरते रहनेसे श्लीपदमें होनेवाली वेदना दूर होती है तथा ज्वर भी शमन हो जाता है।

३ अपची—(कण्ठमालाकी गाठ पककर फूट जानेपर) सरसों, नीमके पत्ते और भिलावे समभाग मिलाकर जलावे। धुआ निकल जानेपर बर्तन ढक देवें जिससे काली राख हो जायगी। उसे छिडकते रहें या सरसोंके तैलमें मिलाकर लेप करते रहनेसे शनैः शनै रोगवल कम हो जाता है।

सूचना—धुआ निकलता हो तब तक दूर रहें। अन्यथा भिलावेका धुआं

लग जानेपर शरीर सूज जाता है।

४ कानमें कीड़े घुसजाने पर—सरसोंका निवाया (अधिक गरम न होना चाहिये) तैल कानमें भर देवें। ऊपर रूई लगा देवें। वायु बन्द कर देनेसे कीडा मर जाता है। यदि कानमें वायुका शूल चलता हो, तो वह भी शमन हो जाता है। शूल होनेपर कानके बाहर २०-२५ मिनट तक सेक करना चाहिये।

सूचना—यदि कानमें फुन्सीका पाक होनेसे शूल चलता हो, तो तैल नहीं डालना चाहिये। अन्यथा शूलमें वृद्धि होती है। फुन्सी फूट जानेपर तैल डालें। फुन्सीकी पचनावस्थामें धतूरेके पानका निवाया रस या अन्य वेदना शामक औषधि डाली जाती है और कानके चारों ओर सेक किया जाता है उस अवस्थामें कानको ठण्डी न लग जाय और ठण्डाजल भी न लगे, यह सम्हालना पड़ता है।

५ कुष्ठ—(विचर्चिका आदि) सरसोंको पीस कल्क बना थूहरके डण्डेमें खड्डा करके भरें। फिर कपड मिट्टीकर पुटपाक विधिसे पकावें। फिर उस कल्क को पीसकर लेप करते रहनेसे विचर्चिका, पामा, दद्रु आदि कुष्ठ दूर हो जाते हैं।

६ बालकोंकी कफकास—बच्चोंके गलेमें कफ बोलनेपर उनकी छातीपर सरसोंके निवाये तैलकी मालिश करें।

७ तारुण्यपिटिका—सरसों, वच, लोद और सैंधानमकको मिला जलमें पीसकर मुँहपरकी फुन्सियोंपर लेप करें।

मुखकी श्यामता—सरसोंके कल्कको दूधमें उबालें। गल जानेपर नीचे उतार लेवें। फिर उससे मुखपर मर्दन करनेसे मुख तेजस्वी होजाता है।

(९७) सलगम।

हि० सलगम, शलगम, शलजम व० शलगम, ओलकपी। अ० RaPe ले० Brassica rapa

परिचय—क्षुप वर्षायु युरोपवासी। ऊचाई १ से ३ फीट। पान सरसों या राइके पान सदृश। कद गाठरूप। मूलोद्भव पान न्यूनाधिक बालवाले। डण्ठल कोमल। फूल छोटे, पीले, लम्बी कलगीमें। बाह्यकोषके पत्र फैले हुये। पखड़िया छोटे नखयुक्त फली लम्बी, अनेक बीजयुक्त।

सलगममें छोटी और बड़ी, दो उपजाति हैं। एकको अंग्रेजीमें रैप (Rape) और दूसरीको टर्निप (Turnip) सज्ञा है, भारतमें दोनोंको सलगम कहते हैं। बड़ी जातिके कद हरे रगके और छोटी जातिके सफेद होते हैं। इनमें १ उपजाति लाल है, उसे फ्रेंच टरनिप कहते हैं। इन सबका उपयोग साग, अचार आदि में होता है। इस ओषधिमें जीवनसत्त्व अ० ब० क० रहे हैं।

इसके बीज सरसोंके बीजके समान लाल धूसर होते हैं। उनमेंसे तैल २०-२५ %निकलता है। तैल तीव्र होनेसे खानेमें प्रयुक्त नहीं होता। साबुन बनाने और त्वचारोगके मलहमोंमें मिलाया जाता है। पुष्प मजरीका भी साग बनाया जाता है।

गुणधर्म—मूलमें रस मधुर, विपाक मधुर, उष्णवीर्य, रुचिकर, दीपन हृद्य, वातहर, कफनाशक, बल्य और सारक है। पान, फूल और बीज रक्तपित्त कारक, विदाही और शुक्रनाशक है। तैल कीटाणुनाशक, चर्मरोगहर और व्रण रोपण है, चक्षु, शुक्र, गर्भाशय और मस्तिष्कके लिए हितकर न होनेसे उद सेवन नहीं करना चाहिये।

बीजका उपयोग यूनानी ग्रन्थोंमें हुआ है। उनके मतानुसार लेखन, उत्तेजक और मूत्रल है इसका उपयोग उबटनोंमें होता है। इसके मर्दनसे त्वचारोग दूर होते हैं और वर्ण सुधरता है। वाजीकर प्रयोगोंमें भी यह मिलाया जाता है।

(९८) सालममिश्री

भारतीय सालममिश्रीकी मुख्य २ जातियोंका उपयोग औषध कार्यमें अधिक होता है। एक पजा सालम और दूसरा मालमगटा।

१ पञ्जासालम—स मुञ्जातक, पीयूषोत्थ। हिं पञ्जासालम। गु पजावं सालम। म सालम मिश्री। अ सालब मिश्री। यूनानी—खसतीयाल सहलब ऊ सालेप। अं Marsh Orchid, Salep स्पेनिश Palma Christ ले० Crchis Latifolia.

परिचय—लेटिफोलिया=चौड़ेपानवाले। ओर्किस=वृषणाकारकदयुक्त समतलभूमिमें होनेवाला खड़ा पत्रमय क्षुद्र क्षुप। गांठ (कद) हथेलीकी अंगुलियां (पजा) के सदृश। तना १ से ३ फूट ऊचा सामान्यत पोकल, ऊपरपान वाला। पान अनेक २ से ६ इञ्च लम्बे, रेखाकार-लम्बगोल या यक्ष्माकार लम्बगोल। मजरी १ से ६ इञ्चकी, नलिकाकार, सघन पुष्पयुक्त। पुष्पपत्र हरे नोकदार। पुष्प मलीन बैंजनी।

उत्पत्तिस्थान—पश्चिम समशीतोष्ण हिमालय, पश्चिम तिब्बत ८००० से १२००० फूट ऊंचाईपर। अफगानी स्थानसे उत्तर अफ्रीकातक और एटलाण्टिक प्रदेश और उत्तर एशिया।

२ सालिवग ा—(लाहोरी सालिव)-सं जीवन, अमृत, प्राणभृत, सुधा मूली। व सालेममिश्री। म सालममिश्री। गु सालम,सालममिश्री। ने हट्टीपेल फा. सुगमिश्री। अ खुश्यु-युथ-थालव। सता वोंगतैनी। ले० Eulophia Campestris इस जातिमें चिपचिपापन और धातुपौष्टिक गुण बहुत कम है।

वक्तव्य–इसके अतिरिक्त इस आर्किस जाति समूहकी २ जाति विदेशसे यहा आती है। एक बादशाही (बसराई) सालम लै० Orchis Mascular, Orchis Maculate, अ Royal Salep, Early purple Orichis दूसरा लहसुनी (लहसुनिया सालिम–Orchis Laxiflora) इनमेंसे लहसुनीमें भीगनेपर लहसुन जैसी वास आती है। बसराई सालिबका रूमियामें अधिक प्रचार है। इस जातिके चिपटे टुकडे मिलते है। यह जाति भारतीयकी अपेक्षा अधिक गुणकारी है। इसका मूल्य भी अधिक है। विशेषत. यह श्रीमन्तोंके उपयोगमें ही आता रहता है। ये विदेशी जातिया अफगानिस्थान, इराक, तुर्कस्थान और इजिप्टमें उत्पन्न होती है। सालिबमिश्रीके मूलोंको जमीनसे निकाल गरम जलसे धो खादी या मोटे खुरदरे कपडेसे मसलकर त्वचाको निकाल देते हैं। जिससे वे सफेद पीले प्रतीत होते हैं। फिर उनको तावेके तवेपर थोडासेक लेते हैं।

इनके अतिरिक्त आर्किस जातिसमूहकी १२ से अधिक जातियोंके कन्द सालब मिश्रीके नामसे यूरोप और एशियाके बजारोंमें बिकते हैं।

रासायनिक पृथक्करण—उत्तम प्रकारके सालबमें गोंद प्रधान मासवर्द्धक द्रव्य (Bassorin) ४८% श्वेतसार २७% शकर १% और ताजे सालिबमेंसे कुछ उड्डयनशील तैल मिलता है। राख २% होती है उनमें. फास्फेट, क्लोराइड आफ पोटासियम, केलशियम और नत्रल प्रधान द्रव्य मिलते हैं।

भावप्रकाश कारके मतानुसार जीवक ऋषभक,बल्य,शीतवीर्य शुक्र-कफप्रद मधुरविपाकी, पित्तशामक, दाहहर, कृशतानाशक, वातशामक और क्षयहर है। जीवक ऋषभकका उल्लेख चरकसहिताके भीतर जीवनीय दशेमानिमे तथा सुश्रुत सहिताके भीतर विदारीगधादि गण और काकोली आदि गणमे किया है।

निघण्टरत्नाकरके मतानुसार सालिमकन्द उष्णवीर्य,वृष्य,रसविपाकमें मधुर धातुवर्द्धक उपरस कडवा, गुरु, रसायन और पौष्टिक है। एव क्षय, हृद्रोग, मेह पित्तविकार, रक्तविकार, आम दोष, कामला और,कुम्भ कामलेका नाश करता है।

डाक्टर देमाईके मतानुसार सालिब मिश्री मस्तिष्क और नाड़ियोंका उत्तेजक और पौष्टिक है तथा सग्राहक, स्तम्भन, जीवन और बृहण (शरीरको मोटा बनानेवाला) और वय स्थापन है। पचन नलिकाके प्रदाहयुक्त रोगोंमें सालिब हितकर है। इसके सेवनसे कफ और आमकी उत्पत्ति कम होती है, क्षतोंका रोपण होता है और निर्बलता दूर होती है। यह पचनमें हल्का और ग्राही है। अतिसार, प्रवाहिका, सगर्भाका अतिसार और अपचनमे उत्तम आहार है। होनेके पश्चात् तथा अति मानसिक श्रम और मैथुन आदिसे उत्पन्न थकावट दूर करनेमें सालिब मिश्री अति हितावह है।

मात्रा—१॥ से ३ माशे तक दूधके साथ दिनमें ३ वार या पाकरूपसे १तो तक सुवहका दूधके साथ।

उपयोग—सालिवमिश्रीका उपयोग भारतमें दीर्घकालसे हो रहा है। फि भी यह निश्चित नहीं कह सकते कि, यह मुञ्जातक है या जीवक, ऋषभक अष्टवर्गके जीवक ऋषभकके स्थानपर दो या तीन प्रकारके सालिवको लेनेप प्रयोग विशेष पौष्टिक वनता है, यह अनुभव सिद्ध है।

सालिवमें उत्तम वृंहण, वातनाडीवल्य, शुक्रवर्द्धक, शुक्रस्तम्भक, पाच और ग्राही गुण रहा है। पाचनगुणके हेतुसे पचन सस्थानकी विशेषत अन्त्रव निर्वलतासे उत्पन्न अपचन, अतिसार और अग्निमान्द्यमें रोगहर और शक्तिवर्द्ध गुणके हेतुसे व्यवहृत होता है। एव उत्तम वृंहण और वृष्यगुणके हेतुसे शीत कालमें सामान्य जन समाज इसका पाक वनाकर सेवन करते रहते हैं।

अधिक दिनोंतक समुद्रमे रहनेसे नाविक (मल्लाह) लोगोंको अनेक वा कफरक्तज रक्तपित्त (Sea Scurvy) रोग होजाता है। उनको सालिव चूर्णक दूध या मट्ठेके साथ सेवन करानेसे लाभ होजाता है।

कतिपय यूरोपवासी समुद्रकी सफरमें प्रतिदिन प्रात काल १ औस साल मिश्रीके चूर्णको आधे गेलन जलमें उवाल शक्कर मिलाकर पीते है। जिस उनको स्फूर्ति रहती है। क्षुधा नहीं सताती और शरीर बलकी वृद्धि भी होती है

यूरोपीय जनताकी मान्यता है कि सालव चूर्ण १ औससे २४ औस गे जितना पोषण मिलता है।

सालिवके उत्तम पौष्टिक गुणके हेतुसे इजिप्ट, तुर्किस्तान और अरवस्था वासी लोग भी सालिवका सेवन दिनोतक आहार रूपसे करते रहते हैं। उ लोगोंकी भी मान्यता है कि सामान्य मनुष्यों केलिए २॥ तोला चूर्ण दूध साथ सेवन करने पर २४ घण्टेके भोजनका पूरा पूरा काम चल जाता है।

१. पुष्टिके लिए (अ) सालिवपाक + सेवन करे या दूधमें सालिवका चू

+सालिव पाक—१ सेर सालिव चूर्णको १ मन दूधमें मिलाकर खो करें। फिर ३ सेर घीमें मावेको सेके। फिर १५ सेर शक्करकी चासनी करें चासनीमें पहले साफ कीहुई १ सेर काली मुनक्का डाले। पक जानेपर भुना हु मावा मिला लेवें और ऊपरसे ७ सेर घी मिला लेवे। एव वादाम, पिस्त चिरौंजी, खसखस, जायफल, जायपत्री, केसर, इलायची आदि इच्छानुस मिलाकर थालमे जमा देवें। इसके ऊपर सोना, चादीके वर्क लगाये जाते है एव थालमें भस्म (लोह, अभ्रक, सुवर्ण, वग) भी मिला सकते है। मात्रा से ५ तोले तक। यह पाक कृश, निर्वल, शुक्रदोषवाले, नपुसक और वात व्या से पीड़ित मनुष्योंकेलिये अति हितावह है।

मिलाकर उबालें। फिर शक्कर मिलाकर सेवन करते रहें।

(आ) सालिबका चूर्ण १ तोला और बादामका चूर्ण ३ तोलेको घीमें सेकें। फिर १० तोले दूध और इच्छानुसार शक्कर मिला लेवें। इस प्रकार खीर बना कर प्रातःकाल १८ दिन सेवन करानेसे निर्बलता दूर होती है, वीर्य गाढ़ा बन जाता है और शरीर तेजस्वी और मोटा बन जाता है। अधिक सन्तान होनेसे जिन माताओंको निर्बलता आई हो उनकेलिये यह खीर अति हितावह है।

२. प्रदर और शुक्रमेह—दोनों प्रकारके सालिब और दोनों प्रकारकी मूसली समभाग मिला कपडछान चूर्ण करें। इनमेंसे ३-३ माशे चूर्ण, छटाक भर दूध और आवश्यक शक्कर मिलाकर प्रातः सायं सेवन करते रहनेसे थोडे ही दिनोंमें स्त्रियोंके श्वेतप्रदर और पुरुषोंके पेशाबमें धातुका स्राव, दूर होते हैं और शरीर मोटा बन जाता है।

३. जीर्ण अतिसार—सालिबका चूर्ण ३-३ माशे मट्ठेके साथ दिनमें ३ बार देवें। भोजन दही-भात। इस प्रकार २१ दिन सेवन करनेपर आमप्रकोप पुराना अतिसार पुराना पेचिश और संग्रहणी रोग दूर होजाते हैं।

४. वात प्रकोप—थोडे परिश्रमसे श्वास बढ़नेवालोंको और कफ विकार वालोंको सालिब मिश्रीका चूर्ण और थोडा पीपलका चूर्ण बकरीके दूधके साथ प्रातः सायं सेवन करानेपर कफका ह्रास और श्वास प्रकोप भी दूर होजाता है।

(९९) सिताब

सं० सर्पदंष्ट्रा। म० सताप। गु० सिताब। इरान सुदाब। अ० फेजन। क० नागदाली सोप्पु। ता० अर्वद। ते० अन्दु। मला० अरुत। लका अरुद। अं० Garden rue ले० Ruta Graveolens var Angustifolia

परिचय—छोटा दुर्गन्धयुक्त क्षुप। कर्णाटककी पश्चिममें इसे अधिक बोते हैं। गुजरात, महाराष्ट्र, बरार आदिके बागोंमें भी बोते हैं। भारतमें इसे फूल नहीं आते। इसका पचांग विशेषतः इरानसे भारतमें आता है। पान भस्मी रगके तीन कोनवाले अण्डाकार पुनः पुनः विभाजित, तीक्ष्ण वासवाले, छोटे। पुष्प हरे पीले, तुर्रे जैसी कलगीमें। बाह्य दलपत्र ४ त्रिकोणाकार। आभ्यन्तर कोष (पखड़िया) ४। पुंकेसर १०। पचांग और तैलका उपयोग औषधिरूपमें होता है।

मात्रा—सूखी वनस्पतिका चूर्ण ५ से १० रत्ती दिनमें ३ बार। शनैः शनैः मात्रा ३० रत्तीतक बढ़ावें। स्वरस ३० से ६० बूंद। तैल १ से ४ बूंद।

गुणधर्म—सभ्य मतानुसार सिताब दीपन वातहर उत्तेजक कामघ्न, आक्षेपहर स्वेदजनन वातवाहिनियोंको उत्तेजक, मूत्रजनन और आर्तव जनन

है। त्वचापर लगाने या उदरमें सेवन करानेपर दाह होता है।

इसके तैलसे नाडीकी गति अधिक वढती है, किन्तु इसका दवाव कम हो जाता है। शुष्क सितावके फाण्टसे नाडीकी गति मन्द होती है। लगभग २ घण्टेमें ७०-८० स्पन्दन होने लगते हैं। वडी मात्रामें नाड़ी अशक्त होती है।
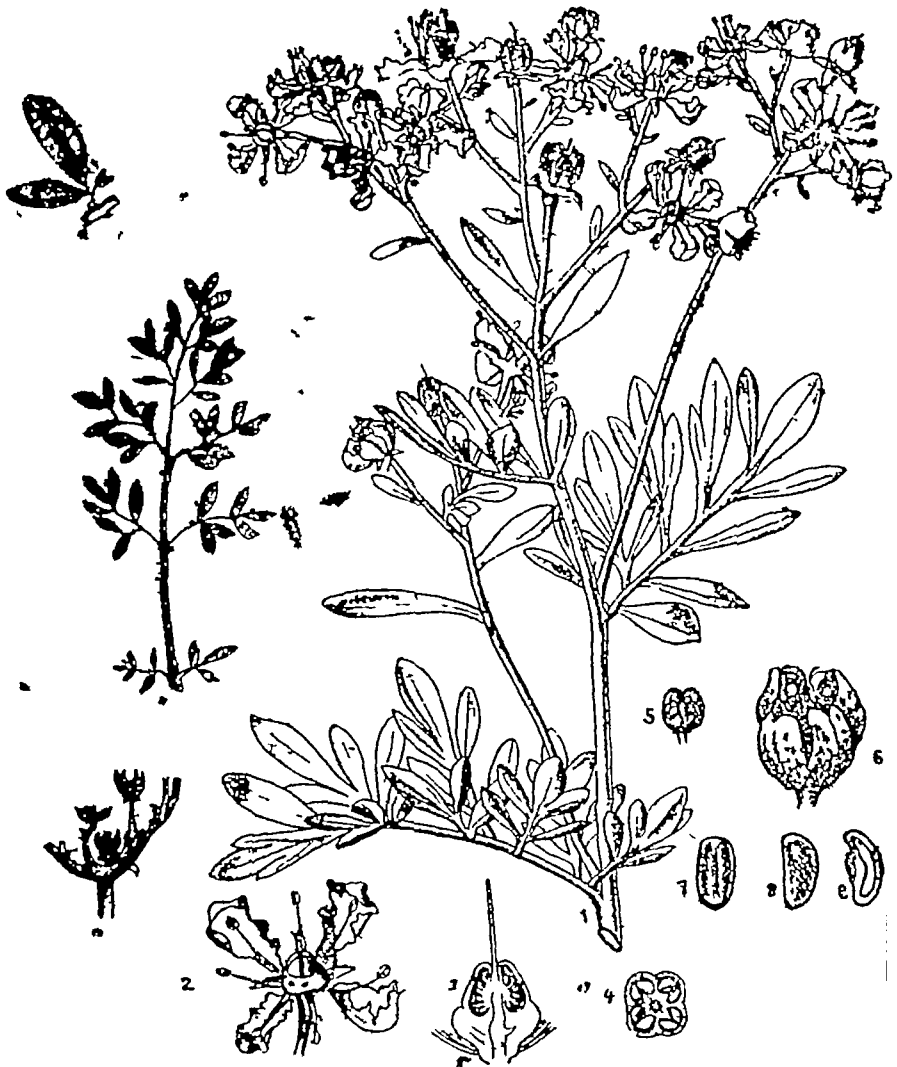
सितावकी उत्तेजक क्रिया त्वचा, वातसस्थान और गर्भाशयपर विशेष होती है। इससे अधिक प्रस्वेद आता है। विचारशक्ति वढती है, कमरमें अवस्थित इन्द्रियोंपर इसकी क्रिया प्रत्यक्ष होती है। सगर्भाको देनेसे वारवार पेशाव होता है, कमरमें पीड़ा होती है; गर्भाशय नीचे उतरता है तथा प्रतिदिन देते

(८) वालकोंका डब्बारोग—वालकोंके डब्बा और कफप्रकोपपर इसके पानोंका रस १० २० बूंद, माताके दूधके साथ मिलाकर पिलाया जाता है। इस प्रयोगसे ज्वर और खासी भी दूर हो जाती है।

(९) अंग जकड़जाना—वायुसे किसी भी भागमें वेदना होती हो, सांधे जकड़ गये हो या नया पक्षाघात हुआ हो तो शराबके साथ या सरसोंके तैलके साथ मिलाकर मालिश करनेपर वेदना और जकडाहट दूर होती है। पक्षाघात हुआ हो तो उस अंगमें वल आकर विकार दूर हो जाता है।

(१०) सक्रामक रोग—इन्फ्लूएन्जा, शीतला, रोमान्तिका आदि संक्रामक रोग, जो कीटाणुजन्य होते हैं और सम्हाल न रखनेपर सेवा करनेवालोंको भी हो जाते हैं। ऐसे रोगोंमें वीमार मनुष्यके कमरेमे रोज सितावके पानोका धुआ करनेमे कमरेमें और वातावरणमें फैले हुये कीटाणु नष्ट होजाते है। इसके अतिरिक्त घाव और व्रणोंको इसका धुआ देनेसे उस स्थानके कीटाणु नष्ट होजाते है।

सुदाव तैलका उपयोग—सितावसे जो उड्डनशील तैल मिलता है, उसे सुदाव तेल (Oil of Rue) सज्ञा दी है। यह वातहर और कृमिघ्न है। बडिशाकारके कृमि (Hook worms) को मारनेकेलिए प्रयुक्त होता है। उदरमें अफारा आनेपर २० बूद तैलको २–४ औंस मैदेकी पतली पेया + में मिलाकर वस्ति देवें। १५ मिनट वाद २० औंस साबुन जलकी वस्ति दी जाती है। कृमिघ्न रूपसे १ से ५ बूद तक दिया जाता है।

(१००) सिरस

स० शिरीष, कलिम, मृदुपुष्प, कपीतन। हिं० सिरस, सिरी। व० शिरीष। म० शिरीष, शिरस। गु० सरकडो, कानियो सरस, कालिया कासकिओ सि० महार क० वाग। ते० दिरीसनमु, गिरीशमु। ता० सिरिदम, अडुक्कवागै। मला० कान्तुवाक, वाक। ओ शिरसन, सिरिसो अ. Sultan's Tree, Parrot-tree, Woman's tongue ले० Albizzia Lebbeck

परिचय—आल्बिजिया=इटालियन वनस्पति शास्त्री (Avl-beatzy) के संमानार्थ सज्ञा। लेवेक=दक्षिण आफ्रिकाकी भाषाका सिरसका नाम। काटेरहित, पतनशील पानवाला ऊचा छायावृक्ष। ऊँचाई ५० से ६० फूट। छाल गहरी धूसर, अनियमित फटी हुई। नया अकुर रूएदार। पान फटे हुएके

+पेया मेदा ८ माशेको थोड़े शीतल जलमें मिलाकर लई बनावें। फिर उसे उबलते हुए २० औंस जलमें मिलाकर उथल पुथलकर एक जीव करें। सफेद रंग दूर होकर पारदर्शक बननेपर उपयोगमें लेवें।

सदृश द्विपक्षाकार (2-Pinnate)। पर्ण ३ से ८ जोडी, १ से २ इञ्च लम्बे, ।। से १ इञ्च चौडे, हलके हरे, नोकरहित, अति छोटे वृन्तयुक्त। पुष्प श्वेताभ, अति सुगन्धित, १।। इञ्च लम्बे। पुष्पदण्ड २ से ४ इञ्च लम्बा। पुष्पगुच्छ व्यास २ से ३ इञ्च। फली ६ से १२ इञ्च लम्बी १ से २ इञ्च चौडी, पतली, चपटी। फलीमें बीज ६ से १० तक। मूल अति दृढ, लम्बा और मोटा, अनेक शाखायुक्त रक्ताभ, काले गर्भयुक्त। मूलकी छालकी वास उग्र, कसैली। पानका स्वाद चरपरा कड़वा। बीजोंको तोडनेपर उग्र वासयुक्त, स्वाद कड़वा। पुष्प काल पंजाब और बिहारमें अप्रेल-जून। पर्ण वसन्तमें पतनशील, लकडी सस्ते फर्निचरमें उपयोगी, भीतर काली धूसर, कठिन, अति टिकाऊ, सुन्दर, १ घनफुटका वजन ४० से ६० पौंड। इस वृक्षपर लाख भी होती है फलकाल जनवरीमें। फलपतन मार्च-अप्रेलमें।

उत्पत्तिस्थान—भारतमें सर्वत्र, एशियाके उष्ण और समशीतोष्ण प्रदेश और आफ्रिका।

गुणधर्म—धन्वन्तरि निघण्टुकारके मतानुसार सिरस रसमें कडवा, उष्णवीर्य, विषहर, वर्ण्य, त्रिदोषघ्न, लघु, तथा कुष्ठ, कण्डू, चर्मरोग, श्वास और कासका नाशक है।

राजनिघण्टुकारने वातहर तथा भावप्रकाशकारने शोथहर, विसर्पनाशक व्रणहर, ये गुण अधिक लिखे हैं। राजनिघण्टु, भावप्रकाश, कैयदेव, तीनों निघण्टुकारोंने शीतवीर्य माना है। कैयदेव और भावप्रकाशकारने उपरस कषाय भी लिखा है। एवं चरकसंहिताकार और सुश्रुतसंहिताकारने शिरीषको कषाय गुण प्रधान माना है।

यूनानी मतानुसार मूल ग्राही और नेत्राभिष्यन्दमें उपयोगी। छाल कृमिघ्न, दन्तशूलहर और मसूढ़ोंको बलवान बनानेवाली है तथा कुष्ठ, बधिरता, फोडे, पामा, फिरंग, पक्षव और निर्बलतापर उपयोगी। पान नक्तान्ध्यमें हितावह। पुष्प वृष्य, स्नेहन, व्रणपाचन तथा इसकी सुगन्ध सूर्यावर्तमें लाभप्रद। बीज वृष्य, मस्तिष्कपौष्टिक, क्षयग्रन्थि और सुजाकमें उपयोगी। तैल श्वेत कुष्ठपर लगाया जाता है।

डाक्टर खोरीके मतानुसार बीज ग्राही, पौष्टिक, अतिसार और वीर्यकी निर्बलतामें उपयोगी। पान फोडे, त्वचाकी लाली और शोथपर पुल्टिसरूपसे उपयोगी। छाल नेत्ररोगमें अंजनरूपसे उपयोगी। इसका क्वाथ मुखपाकमें हितावह। उदर सेवन करनेपर पौष्टिक और रसायन।

यूनानी ग्रन्थकारने लिखा है कि नक्तान्ध्य (रतौंधी) में इसके पानोंके रसका अंजन किया जाता है और रस (या क्वाथ) पिलाया भी जाता है।

छालके क्वाथसे कुल्ले करानेपर मसूढे दृढ होते हैं। छालका चूर्ण १-१ माशा ३ से ४ तोले घीके साथ सेवन करानेपर बलवृद्धि होती है। फूलोंका चूर्ण स्वप्नदोषको रोकता है और वीर्यको गाढा वनाता है। बीजका चूर्ण ४ माशे दूनी शक्करके साथ मिला दूधके साथ सेवन करनेपर वीर्य गाढा होता है। एव शिरीषके बीजोंका लेप गलेकी गाठों (कण्ठमालकी गाठों) पर किया जाता है।

रासायनिक सगठन—छालसे कषायाम्ल ७%, राल १४% और साबुन जैसा द्रव्य मिलता है। बीजोंसे तैल निकलता है।

मात्रा—छालका चूर्ण १ से २ माशे। पुष्पोंका स्वरस ॥ से १। तोले। छाल क्वाथके लिए आधसे १ तोले। बीज २ से ४ माशे।

उपयोग—शिरीषका उपयोग अति प्राचीनकालसे हो रहा है। चरक-सहिताके भीतर विषघ्न और वेदनास्थापन दशेमानि, शिरोविरेचन द्रव्य, कषायस्कन्ध और सार आसव औषधसमूहमें उल्लेख है। विषाध्यायके भीतर शिरीषका स्थान स्थानपर प्रयोग हुआ है और सूत्र स्थानमें भी शिरीषको अग्रस्थान दिया है। सुश्रुतसहिताके भीतर सालसारादि गणमें शिरीष लिया है।

१ आगन्तुव्रण—आयुर्वेद निबन्धमालाकारने लिखा है कि सिरसका तना काला और खुरदरा होता है। फली पककर सूखनेपर सफेद हो जाती है। इस वृक्षके तनेमें एक गजका खड्डा करनेपर रूई सदृश नरम अन्तरछाल मिलती है, उसे पीस कपड़छान करके सुखालें। चोट लगकर रक्त निकलनेपर इस चूर्णको दबा देनेसे रक्तस्राव तुरन्त बन्द हो जाता है, एव घाव भर जाता है।

२ बालकोंका दांत आना—इसके बीजोंकी माला बनाकर बच्चोंके गलेमें पहनानेसे दांत आनेके समय वेदना नहीं होती।

३ गांठ—किसी भी प्रकारकी गांठ होनेपर या गांठ होनेकी सभावना हो और वेदना होती हो, तो इसके पानोंको कुचल गरमकर बांध दें। आध आध घण्टेपर पुन बदलकर बांधते रहें। इस तरह सुबह शाम २-२ घण्टे पानोंका सेक करनेपर गाठको भीतरसे पका, दोषको ऊपर खींचलाता है और गांठको फोड़ देता है। किसी भी गाठको उदरमें उतरने नहीं देता।

४ फिरगजक्षत—पानोंकी राख घृत या तेलमें मिलाकर लगाने पर फिरङ्ग जैसे जहरी क्षत भी शुद्ध होकर भर जाता है।

५ शुक्रमेह—पानोंमें जल मिलाकर निकाला हुआ स्वरस थोडी शक्कर मिलाकर पिलानेसे बगल, मुख और मूत्रमार्गसे जानेवाली धातु रुकजाती है।

१६ अर्श—सिरसके बीज, कलिहारीका मूल, सैंधानमक, जवाखार और सज्जीक्षारको मिला कपडछान चूर्णकर थूहरके दूधमें ३ दिन खरलकरके लम्बी वत्तियां बना लेवें। फिर गोमूत्रमें घिसकर लेप करते रहनेसे मस्से सूख कर गिर जाते हैं।

१७ आंख आना—सिरसके पानोंको पीस रस निचोडकर आखोंमें डालें और रात्रिको ऊपर पुल्टिस बाधकर सो जायँ, तो आंख साफ हो जाती है।

१८ नक्तान्ध्य—छालका क्वाथ पिलाते रहने और पानोंका रस आखोंमें अञ्जन करते रहनेपर रतौंधी दूर हो जाती है।

१९ शोथ—किसी जन्तुके काटने आदिसे आई हुई सूजन, व्रणशोथ, विषदोष, विस्फोटक, विसर्प आदिपर सिरसकी छालके चूर्णके साथ थोडा घी मिलाकर जलमें पीस लेप करने (या दशाग लेप लगाने) से सब प्रकारके शोथ, और दाह पीडासह दूर हो जाते है।

२०. प्रदर—शिरीषकी छालका चूर्ण घी मिलाकर प्रात' साय सेवन करावें या क्वाथ पिलाते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें दुर्गन्धयुक्त प्रदर दूर हो जाता है।

२१ श्वासरोग—सिरसके फूलोंके रसमें पीपलका चूर्ण और शहद मिला-कर दिनमें २ वार पिलाते रहें।

२२. सन्निपात ज्वरमें तन्द्रा—सिरसके बीज, पीपल, कालीमिर्च और सैंधानमक, इन सबको गाय या वकरीके मूत्रमें घिसकर अजन करें।

२३ आधाशीशी—Hemicrania—शिरीषमूल (छाल) या फलके स्वरसका नस्य करावें।

२४ उदरकृमि—शिरीष और अपामार्गका रस शहद मिलाकर दिनमें २ वार पिलाते रहनेसे थोडे ही दिनोंमें कृमि गिर जाते हैं और नयी उत्पत्ति बन्द हो जाती है।

वक्तव्य—सिरसकी इस जातिके अतिरिक्त निम्न जातिया भी सिरसके प्रतिनिधि रूपसे व्यवहृत होती हैं।

१ सफेद सुगन्धित सिरस	Albizzia	Odoratissima
२ सफेद सिरस	,,	Procera
३ काला सिरस	,,	Amara
४ लाल सिरस	,,	Julibrissin
५ पीला सफेद सिरस	,,	Stipulata

(१०१) सीताफल

स० सीताफल, गण्डगात्र, वहुवीजक, । हि० सीताफल, शरीफा । म० गु० क० सीताफल । व० आता, लुना । ता० अभा सीताफलम । मला० अत्ता०

भग ताड या नारियलके समान ऊंचे और शाखाहीन होते हैं। स्कन्ध एकाकी बिल्कुल सीधा। ऊँचाई ३०-६० फूट। मोटाई २ फूट तक। पान ४ से ६ फूट लम्बा। पर्णदल पानपर अनेक, १ से २ फूट लम्बे, ऊपर चिकने। बडे रगीन पुष्प पत्रसे बना हुआ, पुष्पकोष (Spathe) दोहरा, दबा हुआ, चिकना। स्थूल मंजरी (Spadix) बहुत शाखायुक्त नर पुष्प और मादा पुष्पवाली। नर पुष्प एक स्थानमें अनेक, वृन्त रहित, पुष्पपत्रहीन। उसका पुष्प बाह्यकोष १ पानका, छोटा, ३ कोन युक्त, ३ विभागवाला। पुष्पाभ्यन्तर दल ३। पुकेसर ६। मादा पुष्प एकाकी, २ या ३। ये सब स्थूल मजरी के अग्रभागमें। वृन्त और पुष्प पत्र रहित बाह्यदल और आभ्यन्तर दल ३-३। मिथ्या पुकेसर ६ और पराग वाहिनी मुख ३ युक्त। फल कच्चा होनेपर हरा, पकनेपर सतरे जैसा या लाल रंगका २-२॥ इञ्च लम्बा १॥-२ इञ्च मोटे, चिकने। पुष्पकाल वर्षाऋतु। फलकालशीत ऋतु।

उत्पत्ति स्थान—मुख्य स्थान अनिश्चित्। वर्त्तमानमें इष्ट इण्डिजके टापु, फिलीपाइन, जावा, बर्मा, लका आदि विदेशोंमें तथा मद्रास, मैसूर, बगाल, आसाम, बम्बई इलाकेके दक्षिण भाग आदिमें बोयी जाती है। एवं माडागास्कर और पूर्व अफ्रिकामें भी इसका विस्तार होरहा है।

विवेचन—जो सुपारी बाजारमें मिलती है वह फलकी गुठली है। ऊपरके रेशेमय कवच (फल) को निकाल दिया जाता है। एव गुठलीके ऊपर रही हुई कठोर झिल्लीको भी उपयोग करनेके पहले हटा देते है।

फल नारियल व खजूरके समान गुच्छोंमें लगते हैं। फल अण्डाकार होता है।

मैसूरमें फल १०-१२ वर्षका वृक्ष होनेपर और बगालमें ६-७ वर्षका होने पर मिलते हैं। मैसूरमें सुपारी अगस्तसे जनवरी तक उतारी जाती है। बगालमें अक्टूबरसे जनवरी तक। बम्बई और लंकामें उतारनेका मौसम अगस्त से मार्च तक रहता है। एक मौसममें ये फल २ या ३ बार उतारे जाते है।

१ वर्षमें २-३ गुच्छे लगते है। इनमें २००-२५० फल होते हैं। १०० फलोंका वजन १॥ से २॥ सेरतक होता है। सुपारी की अनेक जातियोंमें मैसूरी सुपारी श्रेष्ठ हैं। इन सुपारियोंको विशेषत उबाल करके उपयोगमें ली जाती है इस तरह तैयार करने पर टेनिन (कषायाम्ल) का अधिकाश कम हो जाता है।

सुपारीमें सामान्यत =कषायाम्ल २१ ६ से ३० २ तक रहता है। तैयार करनेपर ८ ६ से १५ १ शेष रह जाता है।

सुपारीको वृक्षपर अधिक पकने नहीं देते। अन्यथा वे कडी होजाती है। कच्ची भी नहीं तोड़ते। अन्यथा फल सिकुड़ जाता है। मैसूरकी उत्तम जातिको श्री वर्द्धनसज्ञा दी है। इसके नामके अनुरूप ३ विभाग है। विशेष, ए १ और ए२।

सुपारी नयी हो और उबाली न हो ऐसी सुपारी अधिक खानेपर मुंहमें छाले होजाते हैं जिह्वा फट जाती है और छातीमें घबराहट भी होजाती है। ४ मास व्यतीत होनेपर ऐसा कष्ट नहीं पहुँचाती।

सुपारी खानेका अभ्यास न होनेपर मात्रा अधिक लीजाती है। प्रारम्भ में हृदय कलाका प्रदाह होता है एव हृदयमें भारीपन व्याकुलता और चक्कर आना आदि लक्षण उपस्थित होते है। अधिक लापरवाही करते रहनेपर मुंह में कर्क स्फोट (केन्सर) होजाता है।

यूनानीमत अनुसार सुपारी दूसरे दर्जेमें शीतल और रूक्ष, एवं पाचन, ग्राही, मूत्रल, शोथहर, हृदयपौष्टिक, और ऋतुस्रावक गुण दर्शाती है। तथा नेत्राभिष्यन्द, चक्कर आना, सुजाकपर उपयोगी है, यह पूयको नष्ट करता है।

नव्य चिकित्सकोंके मतानुसार सुपारीका चूर्ण ५ से ८ रत्ती तक। ३-३ या ४-४ घण्टेपर देते रहनेपर अपचनजनित अतिसार दूर होजाता है। मूत्र-संस्थानकी विकृतिपर सुपारी हितकर है एव इससे कामोत्तेजक गुणकी भी प्राप्ति होती है।

सुपारीका सेवन करनेपर वातवाहिनिया सबल बनती है मासिकधर्म साफ आता है इसके अतिरिक्त सुपारीके कषायका उपयोग नेत्रबिन्दु रूपसे करनेपर ग्राही गुण दर्शाता है और वेदना भी दूर होती है। जो व्रण दूषित होगया हो, जिसमेंसे दुर्गन्ध निकलती हो और न भरता हो, उसपर सुपारीको गोमूत्रमें घिसकर लेप किया जाता है।

कटिवातकी वेदनामें सुपारीको तैलमें उबाल, उस तेलकी मालिशकी जाती है। सुपारीके मूलका क्वाथकर कुल्ले करानेपर होठोंके भीतर हुआ क्षत मिटजाता है।

उपयोग—सुपारीका उपयोग भारतवर्षमें अतिप्राचीन कालसे होरहा है। चरकसहिता और सुश्रुतसहितामें सुपारीका उपयोग उदर सेवन, बस्ति और लेप आदि रूपसे अनेक स्थानोंपर किया है।

१. उदावर्त—(गेसप्रकोप) (A) सुपारीका कल्क या तैल सिद्ध करके रोज रात्रिको सोते समय १-१ औंस तैलकी बस्ति १ सप्ताह तक देनेसे आंतोंमें रुकनेवाली वायु दूर होजाती है और आंत सबल बनजाती है।

(B) चिकनी सुपारीके चूर्णको मट्ठे या कांजीमें पीस, चटनी बनाकर १॥ से ३ माशे चटनी रोज सुबह मट्ठे या कांजीके साथ लेतेरहनेसे आमाशयमें वायु (डकार) का निरोध होताहो तो वह दूर होजाता है।

२ वमन—सुपारीके कवच या सुपारीकी अन्तर्धूम भस्म और नीमकी

लकडीकी कालीराख. दोनोंको जलमें मिला छानकर थोड़ा थोडा पिलानेसे अपचन जनित वमन रुकजाती है।

३ ऊर्ध्व रक्तपित—सुपारीका चूर्ण चन्दनके अर्क या आवलोंके हिमके साथ सेवन करानेपर नाक, आंख और (मसूढे) से थानेवाला रक्त बन्द होजाता है।

४ इक्षुमेह—सुपारी और खैरकी छालका क्वाथ कर शहद मिलाकर पिलाते रहनेसे मूत्रके साथ शक्कर जाती हो तो बन्द होजाती है।

५ मसूरिका—शीतला निकलनेपर सुपारीका चूर्ण जलके साथ ले लेनेपर विष सरलतासे बाहर निकल आता है।

६ विसर्प—रात्रिको सुपारीको उबाले हुए जलमें भिगोवें। सुबह रूईको उस जलमें भिगोकर दिनमें ४-६ बार लगाते रहनेसे विसर्प दूर होजाता है।

७ पामा—सुपारीकी अन्तर्धूम राखमें थोडा तिल तैल या थोडा घी मिला मल्हम बनाकर लेप करते रहनेसे खुजलीके पीले फाले दूर होजाते हैं।

८ सुपारीका मद (विष) चढना—गुड़ खाकर जलपीनेसे या शर्वत मिला जलपान करनेसे घबराहट दूर होजाती है।

९ मसूढेसे रक्तस्राव—सुपारीको जलाकर कालीराख (या अन्तर्धूम राख) बनाकर मंजन रूपसे उपयोग करनेपर मसूढेसे होनेवाला रक्तस्राव बन्द होजाता है, एवं दाँत दृढ बनजाते हैं।

१०. श्वेतप्रदर—गर्भाशयकी शिथिलताके हेतुसे श्वेतप्रदरका स्राव होता रहता हो, तो सुपारीके चूर्णकी पोटली बान्धकर योनिमार्गमें धारण कराची जाती है।

११ उदरकृमि—गोलकृमि और चपटे कृमियोंके मारनेके लिए देहके वजन प्रतिपौण्डपर १ से २ ग्रेनके हिसाबसे सुपारीके चूर्णका सेवन मक्खनके साथ कराया जाता है यह चूर्ण एक ही समयमें नहीं दे देना चाहिये थोडा थोडा ४-६ बार देना चाहिये।

सुपारीका रस ४ से ६ ड्राम दूधके साथ मिलाकर सेवन करानेका वेण्टली ने लिखा है। मलायामें स्त्रिया गर्भ धारण होनेके थोडे दिनोंके बाद सुपारीके नये ताजे अंकुरोंका उपयोग करती हैं।

चीनके कतिपय प्रान्तोंमें चारेके साथ सुपारीका चूर्ण मिलाकर घोड़ेका अतिसार बन्द करनेके लिए देते हैं, एव सुपारीके क्वाथका उपयोग घरेलू ओपधि रूपसे उदर विकारोंपर करते रहते हैं।

कम्बोडियामें खासीपर पानोंका चूर्ण (या कषाय) देते हैं, और कटिवात-पर इसका बार बार उपयोग करते हैं। फलोंके चूर्णके साथ किञ्चित अफीम

मिलाकर अतिसार बन्द करनेकेलिए देते रहते हैं। एवं मूलका उपयोग यकृत्के रोगोपर करते हैं।

(१०३) सुरंजान

सुरञ्जान—हि० म० गु० सुरजान। फा० सूरिजान्न, जाफरान, मगजारी। अ० असावअ हुर्मुस। अं० Colchicum, Yellow Saffron

ले० Colchicum Luteum

परिचय—लुटेयम–उसारे रेवन सदृश पीले केसर युक्त। कोलचिकम=ग्रीक कोलचिकम=चरागाहमें उत्पन्न केसरवाचक संज्ञाके आधारसे। भूमिस्थकठोर, स्फीत, मासल काण्ड (Corm) उन्नतोदर (Gibbously) अण्डाकार। उसकीछाल गहरी भूरी। पान थोड़े, रेखाकार, लम्बेगोल या भीतरकी ओर भछाकार, पुष्पोंके साथ प्रतीत होनेवाले, नोक रहित, छोटे, फलकालमें ६ से १२ इञ्च लम्बे और ।। इञ्च लगभग चौडे। पुष्प पीले, १ से १५ इञ्च व्यासके, विकसित होनेपर सुवर्ण सदृश रंगके। बाह्यान्तरयुक्तकोप नलिका ३ से ४ इञ्च लम्बी, ६ विभागयुक्त, नोकरहित, अनेकसिरायुक्त। पुकेसर ६, बाह्यान्तरयुक्तकोप से छोटे। तन्तु पीले पराग कोषकी अपेक्षा बहुत छोटा। गर्भाशय वृन्तहीन, ३ गर्भकोष युक्त। फली १ से १।। इञ्च लम्बी। बीज लगभग गोलाकार। पुष्पकाल मई।

उत्पत्तिस्थान—पश्चिम समशीतोष्ण हिमालय ४००० से १०००० फुट ऊंचाई तक काश्मीर अफगानिस्तान और तुर्किस्तान।

वक्तव्य—यूनानी ग्रन्थकार लिखते हैं कि सुरञ्जान की २ उपजाति है। एक मीठी और दूसरी कड़वी। मीठी जातिका सूरिजाने शीरी और कडवीको सूरिंजाने तलख कहते हैं। इनमें से मीठी जातिका उदर सेवन रूपसे और कड़वी जातिका बहुधा बाह्य लेप, मर्दनादिमें उपयोग होता है।

काश्मीरमें उत्पन्न सुरञ्जान और विदेशी कड़वे सुरञ्जानमें लगभग गुण समान है। विदेशी सुरञ्जान (Colchicum Autumnale) के मांसल भूमिस्थकांड एलोपैथिक शास्त्रमें उपयोग हुआ है।

इसका संग्रह गरमीकी ऋतुके प्रारम्भमें करते हैं उसे ६५% गरमी से सुखा लिया जाता है। यह काण्ड एक ओर पोला और दूसरी ओर गोल होता है। बाह्यत्वचा पतली, भूरी, और कोमल होती है। भीतरकी छाल रक्ताभ, पीत, भीतरमें सफेद, ठोस, स्वादमें अप्रिय कड़वी और श्वेताभदुर्गन्धयुक्त, रसमय होती है। सुखाये हुये टुकड़े पीताभ, श्वेतसारयुक्त, वृक्काकार, कड़वा और गन्धहीन होता है।

वृक्क—सुरजानका वृक्कपर प्रभाव अनिश्चित है। कतिपय व्यक्ति पूर्ण मूत्रावरोध (Anuria-मूत्राघात) से पीडित होते हैं, तब कतिपय रोगियोंको मूत्रोत्पत्तिमें वृद्धि होजाती है।

विषाक्त असर—मुख्य लक्षण घातक रूपमें आमाशय-अन्त्र प्रदाह कण्ठ, अन्ननलिका और आमाशयमें भयंकर जलन, तृषा वृद्धि और घातक वमन, विरेचन सह उदर पीडा होती है। पहले मल जलमय तरल (Serous) फिर कीचड सदृश गाढा और पश्चात् रक्तयुक्त होजाता है। अति निर्बलता, तीव्र गति युक्त निर्बल और डोरे सदृश नाडी स्वेदसे भीगी हुई शीतल, मंद और श्रम प्रद श्वसन, सस्थानका बल क्षय होकर मूर्छा आती है। और मृत्यु होजाती है।

सुरजान निष्कर्ष—(Tincture Colchicum) सुरजान कदका चूर्ण ३० नम्बरकी चलनीसे छाना हुआ १०० तोले और ७०० तोले मद्यार्क ७०% लेवें। पहले ५०० तोले मद्यार्कमें भिगो दें, फिर और मद्यार्क मिलाते रहे। १००० तोले अर्क निकल आवे, उतने तक नया मद्यार्क मिलाते रहें। मात्रा ५से १५ बूंद।

उपयोग—कर्नल चापराने लिखा है कि भारतीय सुरजानका गुण उदर-वेदना हर, सारक, वृष्य, रसायन और विरेचन है। इन गुणोंकेलिये वात-रक्त, आम वात और यकृत् प्लीहा व्याधिपर दियाजाता है। एवं इसका बाह्य उपयोग भी प्रदाह और वेदना कम करानेकेलिये किया जाता है।

डाक्टर घोषने लिखा है कि कडवे सुरजानके निष्कर्ष (Tr Colchicum) को १५ से ३० बूंद की १ मात्रा आशुकारी वातरक्तपर कुछ घण्टोंमें आश्चर्यप्रद परिणाम आता है। अत्यधिक बढी हुई वेदना और प्रदाह कुछ घण्टोमें अवश्य कम होजाते हैं। यह सफलता पूर्वक सासल दृढ रोगीके प्राथमिक आक्रमणको दूर करादेता है। यद्यपि इसे होनेवाले आक्रमण तक चालू रक्खा जाय, फिर भी पुनरावर्त्तनका यह प्रतिबन्ध नहीं कर सकता। अत यह निर्णित नहीं होसका कि इस ओषधिका इस रोगपर क्या प्रभाव पहुँचता है, फिरभी प्रयोग द्वारा यह विदित हुआ है कि सुरजान संहीत यूरीकाम्लपर कार्य नहीं करता। इसके अतिरिक्त वातरोगके लक्षण अपचन, शिरदर्द, यकृतमें रक्त वृद्धि, वातनाडी पीडा आदि जो प्रतीत होते हैं। उनपर सुरजान तत्काल अपना प्रभाव दर्शा देता है। इस हेतुसे चिरकारी जीर्ण वातरक्तके दुर्बल वृद्ध रोगीको यह लाभ नहीं पहुँचा सकता।

नव्य अनुसधान द्वारा विदित हुआ कि कर्कस्फोट (Cancer) रोग पीडितों को सुरजानका सेवन कराने पर कोषाणुओंकी क्षमतामें वृद्धि होती है। विशेष अनुसधान होरहा है।

सूचना—(अ) सुरजानका उदर सेवन निर्बलोको नहीं कराना चाहिये। अथवा अति कम मात्रामें सम्हाल पूर्वक कराना चाहिये। हृदय यन्त्रकी निर्बलता,

चिरकारी अतिसार, चिरकारी प्रवाहिका अथवा मूत्र रोगसे पीड़ितोंको सुरंजान नहीं देना चाहिये।

(आ) आशुकारी वातरक्त (Acute gout) पर दो रीतिसे इसका सेवन कराया जाता है। इसका अर्क पूर्ण मात्रा अर्थात् १५ बूंदमें देवें और प्रत्येक २-३ या ४ घण्टेपर छोटी छोटी मात्रा (५-५ बूंद) पुनः पुनः देवें। साथमें किसी भी प्रकारका अम्ल (acid) न मिलावें। क्षारके साथ मिलानेपर सरलता पूर्वक कार्य करता है। भूमिस्थ काण्डका अर्क देवें। बीजोंका नहीं। क्योंकि बीजोंका अर्क अधिक तेज है। यह हृदयको निर्बल बनाता है।

(इ) वर्तमानमें डाक्टरीमें कोलचिसीन सेलिसिलीकका उपयोग अधिक होरहा है।

(ई) सुरंजानका उदर सेवन करानेपर उदर शुद्धि नियमित होनी चाहिये। अन्यथा पचन संस्थानमें सुरंजान विषका संग्रह होजाता है।

(१०४) सुहिंजना

सं० शिग्रु, हरित शाक, शाकपत्र, श्वेतमरिच। हिं० सुहिंजना, सहिंजना, सैजना, सोंदना। पं० सोहांजना। बं० सजिना, सेमगा, सजना। ओ० सोजिना। म० शेवगा। गु० सरगवो। मार० सहिंजणो। मला० मुरिन्ना, शिग्रु। गोआ-मुसिंग। सिं—स्वंजरो। कों० मोरिंग। क० नुगे, गुग्गल, मोचक। ता० मुरुंगाई, ते० मुलगे, मोचकमु। अं० Drumstick, Chirot. ले० Moringa Oleifera (मीठा सहिंजना) M. Concanensis (कड़वा सहिंजना)

परिचय—कोंकनेन्सिज=कोंकणवासी। मोरिंगा=कोंकणमें मोरिंग कहते हैं उसपरसे मोरिंगा। ऑलिफेरा=तैलीबीज। वृक्ष मध्यम कदके, १५ से २० फीट ऊंचे। छाल शीशियोंके डाट जैसी, वास पीसी हुई राई जैसी। लकड़ी मुलायम। मूल तीक्ष्ण, नया भाग रुएंदार। पान सामान्यतः ३ विभागवाले, कभी १८ इञ्च लम्बे, शीतकालमें पतनशील। उपपत्र आधसे १ इंच लम्बे। फूल सफेद, मधुर सुगन्धवाले, लम्बी रुएंदार मंजरी में। फली १८ इंचतक लम्बी, ९ धारी वाली, हरी। बीज तीन कोण वाले, सफेद। इसे श्वेतमरिच संज्ञा दी है। कड़वे सुहिंजनेके बीज हलके पीले होते हैं। मीठा सुहिंजना बागोंमें बोया जाता है। कड़वा जंगलोंमें होता है। दोनोंमें भेद निम्नानुसार होता है।

	मीठा सुहिंजना	कड़वा सुहिंजना
पान	छोटे, स्वादमें मधुर ३ विभागवाले	बड़े, ९ विभागवाले।
फूल	बड़े, मधुरवास, सफेद, रक्ताभ,	कुछ छोटे, वासमन्द मधुर, पीले।
?	लम्बी, पतली, नरम, मुड़ी हुई, स्वाद में मधुर।	छोटी, मोटी, कठोर, क्वचित् ही मुड़ी हुई, स्वादमें कड़वी।

बीजोंका तैल (Ben oil) बहुत पतला, स्वच्छ और मूल्यवान है। घड़ी साफ करने और सुगन्धित तैल बनानेमें व्यवहृत होता है। बीजोंमेंसे तैल ३६ से ४० प्रतिशत निकलता है। यदि बीजोंके छिलके निकालकर तैल निकालें तो ६० प्रतिशत मिल सकेगा, ऐसा अनुमान है।

छालमेंसे वाष्प द्वारा उड़ानेपर तैल मिलता है, वह राईके तैलके स्थानपर काम आता है। इस वृक्षमेंसे गोंद अधिक परिमाणमें मिलता है। गोंदका रङ्ग पहले सफेद, फिर लाल और काला। गोंद जहरी है। गोंद जलमें नहीं गलता। अल्कोहलमें कुछ गलता है, कुछ इथरमें गलता है। शेष क्षारके साथ। गोंद कपड़े छापनेके रङ्गमें मिलाया जाता है। उक्त दो जातियोंमेंसे अधिकतर औषधिरूपसे उपयोग मीठी जातिका होता है।

मात्रा—मूलकी ताजी छालका कल्क ४ से ८ माशे। पानोंका स्वरस २ से ४ ड्राम (८ से १६ माशे)। बीज ३ से ६ माशे।

गुणधर्म—कड़वा सुहिंजना रसमें कड़वा, विपाकमें चरपरा, उष्ण वीर्य, कफघ्न, शोथहर और वातशामक। कृमि, आम, विष, मेद, विद्रधि, प्लीहा और गुल्मका नाश करता है। मीठा अति वीर्यवान, अग्निप्रदीपक, सारक, रस और विपाकमें मधुर, रसायन तथा शोफ, आध्मान, वातवेदना, पित्त और श्लेष्माका नाशक है। बीज चक्षुष्य, तीक्ष्ण, उष्ण, विषहर, अवृष्य, ओजवर्द्धक, कफवातहर और नस्यसे शिरदर्दका नाशक है।

फूल चरपरे तीक्ष्ण, उष्ण, कृमिघ्न, मूत्रल और चक्षुष्य है। स्नायुशोथ, कृमि, कफ, वायु, विद्रधि, प्लीहा और गुल्मका नाश करता है। फूलोंका शाक होता है। वह वात रोगीकेलिये हितकर है।

फली कसैली, अग्निदीपक, स्वादु और मधुर है। कफ, पित्त, शूल, कुष्ठ, ज्वर, क्षय, श्वास और गुल्मकी नाशक है। फलीका शाक होता है; और कढ़ीमें भी डाली जाती है। वह कृमिघ्न तथा यकृत् और प्लीहावृद्धि नाशक है। जीर्णज्वर पीड़ितोंके लिये भी पथ्य है।

मूल ज्वर, दाहक, उत्तेजक, मूत्रल, पित्तस्रावक और श्वासघ्न है, तथा पक्ष-वध अपस्मार, हिस्टीरिया आदि विविध वातरोग, ज्वरहर, यकृद्दाल्युदर, प्लीहोदर आदिको दूर करता है। मूलकी छालके चूर्णमें शिरोविरेचन और दाहकगुण हैं।

गोंद दाहकारक, उत्तेजक, मूत्रल, स्वेदक, पाचन, वातहर, फाला उत्पादक पित्त वर्द्धक, कीटाणुनाशक, अश्मरीघ्न, कफहर और शोथनाशक है।

डाक्टर देशाईके मतानुसार मूलकी ताजी छाल चरपरी, तीक्ष्ण, रुचिकर, दीपन पाचन, उत्तेजक, उदरवात शामक, वातहर, स्वेदल, मूत्रल, कफहर,

शोथहर और व्रणदोषनाशक है। यह उत्तम दीपन होनेसे अन्न पचन कराती है। अन्न पचकर उसमेंसे आगे गये हुए कीट भागसे अन्त्रको उत्तेजना मिलती है। जिससे शौच शुद्धि भी होती है। इसकी स्वेदजनन क्रिया वातवहानाड़ियों और रक्तवाहिनियोंद्वारा परम्परा तथा स्वेद ग्रन्थियोंपर सीधी भी होती है। इस हेतुसे देहमें जलन होती है।

जिस तरह अड़ूसासे कफ स्राव होता है, वैसा इससे कफस्राव नहीं होता, किन्तु वातवाहिनियां और हृदय उत्तेजित होनेसे रोगीकी खांसनेकी शक्ति बढ़जाती है।

सुहिंजना वातवाहिनियां और हृदयके लिये उत्तेजक है। एवं इसकी वृक्कों पर भी उत्तेजक क्रिया प्रत्यक्ष होती है। जिससे मूत्रके परिमाण और उसमें क्षारकी मात्राकी वृद्धि होती है।

ताजी छालको पीसकर बांधनेपर त्वचा लाल होती है। अन्दरवाले भाग में रक्तवाहिनियां विकसित होती हैं और वहांपर श्वेत रक्ताणु संगृहीत होते हैं। इस कारणसे व्रणशोथ शमन होता है। इसके अतिरिक्त प्रस्वेद आकर और मूत्रके साथ भी व्रणोत्पादक दोष निकल जाता है।

शोभांजन कल्प—

१. शोभाञ्जनादि अर्क—इसके मूलकी ताजी छाल पीसी हुई २० औंस, संतरेकी सूखी छाल २० औंस, जायफलको चूर्ण ५ ड्राम, मद्यार्क (९०%) १ गेलन और जल २ पिण्ट (४० औंस=१०० तोले) मिला मन्दाग्निपर १ गेलन अर्क निकाल लेवें। मात्रा २ से ४ ड्राम। यह अर्क उत्तेजक है।

२. शोभाञ्जन फाण्ट—(अ) मूलकी ताजी छाल पीसी हुई और राई पीसी हुई १-१ औंसको उबलते हुये १ पिण्ट जलमें मिला, दो घण्टे तक ढक कर फिर छान लेवें। उसमें उक्त अर्क १ औंस मिलावें। मात्रा—१ से २ औंस। यह फाण्ट उत्तम उत्तेजक है।

(आ) सुहिंजनेके मूलका चूर्ण १ औंसको उबलते हुए १ पिण्ट जलमें मिला ढककर २ घण्टे रहने देवें। फिर छानकर उपयोगमें लेवें। मात्रा—२-२ औंस दिनमें ३ बार। शोथरोगमें उत्तम लाभप्रद। गलक्षतमें कुल्ले करानेमें हितकर है। यदि इस फाण्टके साथ १०-१० ग्रेन सोरा मिलावें, तो वह मूत्रल गुणदर्शाकर अश्मरी,शोथ और वातरक्तमें भी लाभ पहुँचाता है।

(इ) सुहिंजनेके मूलकी पीसी हुई ताजी छाल ४ औंसको १० औंस शराबमें मिलाकर २ दिन भिगोकर छान लेवें। मात्रा २० से ६० बूंद।

शोभाञ्जनादि चूर्ण—सुहिंजनेका मूल, पीपल, कालीमिर्च, जीरा और

सैंधानमक, इन पांचोंको समभाग मिला कपड़छान चूर्ण करें। मात्रा-६-६ माशे दिनमें दो बार देनेसे अपचन, अपचनजन्य ज्वर, अफरा, उदरशूल, और अपचनजन्य अतिसार आदि दूर होते हैं।

उपयोग—सुहिंजनेका उपयोग आयुर्वेदमें अति प्राचीनकालसे होरहा है। चरक संहिताके भीतर कषायवर्ग, कृमिघ्न, दशेमानि तथा स्वेदोपग और शिरोविरेचनके भीतर सुहिंजनेका उल्लेख किया है। एवं अर्श, श्वास, अश्मरी, विसर्प आदि अनेक रोगों पर प्रयुक्त किया है। सुश्रुत संहितामें भी इसका उपयोग अनेक रोगोंपर हुआ है।

डा० देसाईने लिखा है कि, अग्निमान्द्य, अपचन, आध्मान, आनाह और उदरशूलपर छालका कल्क दिया जाता है। हृदयोदर, यकृद्दाल्युदर और प्लीहोदरमें सुहिंजनेका फाण्ट मूत्रल और विरेचन द्रव्योंके साथ व्यवहृत होता है। उदररोगमें पहले पुनर्नवा, चिरायता और सोंठके साथ सुहिंजनेका फाण्ट दिया जाता है यदि मूत्र परिमाण जल्दी न बढ़े तो यवक्षार, अपामार्ग क्षार, कदली-क्षार या सोरा मिलावें। उतनेसे भी मूत्र परिमाणकी वृद्धि न हो, तो रसकपूर, निसोत या इन्द्रायण जैसी तीव्र विरेचन ओषधि देवें। जिससे ओषधि लागू होजाती है।

सूचना-जलोदर रोगीको नमक और अधिक जल नहीं देना चाहिये। अन्त्र पर जल्दी लाभ पहुँचानेकेलिये सुहिंजनेका अर्क दिया जाता है। सुहिंजना मूत्र-पिण्ड विकृति जनित शोथपर नहीं देना चाहिये अन्यथा वृक्कप्रदाह बढ़ जायगा।

ज्वरमें सुहिंजना देना प्रशस्त है। कारण सब रीतिसे यह लाभ पहुँचाता है। स्वेद लाता है मूत्रलक्रिया करता है; तथा वात संस्थान और हृदयको उत्तेजना देता है। बेहोशी दूर करनेकेलिये कण्ठपर छालकी पुल्टिस लगाते हैं। कफ ज्वरमें छालका स्वरस दिया जाता है।

व्रणशोथको बैठानेकेलिये छालको घिसकर लेप किया जाता है। और उदर सेवन कराया जाता है। विद्रधिमें फाण्ट हींग और सैंधानमक मिलाकर दिया जाता है।

सूचना-लेपको अधिक समय तक नहीं रखना चाहिये। इससे अधिक जलन होता है, और फिर फाला होजाता है।

बेहोशी आनेपर बीजका चूर्ण सुंघानेसे तुरन्त चेतना आजाती है। बीज-का चूर्ण चरपरा, तीक्ष्ण, उत्तेजक और दाहजनक है। बीजके तैलकी मालिश आमवात और वातरक्तमें की जाती है।

वातसंस्थान के विकारपर छालका स्वरस दिया जाता है। मुखकी जड़ता, अर्दित, पक्षवध आदि रोगोंमें स्वरस अच्छा लाभ पहुँचाता है।

बाह्य उपचार रूपसे बीजोंके तैलका उपयोग होता है। यह तैल उत्तेजक होनेसे आमवात और वातरक्तके हेतुसे संधि स्थानोंमें तथा अन्य स्थानोंमें पीड़ा होनेपर मर्दनार्थ प्रयुक्त होता है।

छाल दाहक है। मसूढ़ेके शोथ और दन्तशूलपर सुहिंजनेकी छाल और जीराके चूर्णका मंजन रूपसे उपयोग किया जाता है। शिरदर्द होनेपर कनपटियों पर छालका लेप किया जाता है।

गलक्षत होनेपर मूलके क्वाथसे कुल्ले कराये जाते हैं।

मूलकी छाल गर्भपातक होनेसे गर्भस्राव कराने केलिये प्रयोजित होती है। यह गर्भाशय मुखको विस्तृत करनेके लिये समुद्र लवण उत्तम प्रतिनिधि रूप है। गांठ होनेपर पानोंकी पुल्टिस बांधनेसे रक्त फैल जाता है। इसका उपयोग सर्वदा फाला उत्पन्न करता है।

गोंद दन्तशूल पर दांतोंकी पोलमें रखा जाता है। दूध या तैलमें मिलाकर कानमें बूंद डालनेसे कर्णशूल शमन होता है। मस्तक पीड़ा होनेपर दूधमें पीसकर शिरपर लेप किया जाता है। प्रसवकालमें देनेसे सत्वर प्रसव होजाता है। गोंद घीमें भूनकर वातरोगीको खिलाया जाता है। गोंदको रूईमें लपेटकर योनिके भीतर रखनेसे योनिवात दूर होता है।

सूचना—कड़वा सुहिंजना वातरोगपर तथा बाह्योपचारमें मीठेकी अपेक्षा अधिक गुणदायक है।

१. शुष्कार्श:—शिग्रुके क्वाथमें रोगीको बैठानेसे वेदना शमन होजाती है।

२. ग्रन्थि विसर्प—सुहिंजनेकी छालको जलमें घिस, गरमकर लेप करने से विसर्प शमन होजाता है।

३. हिक्का और श्वास—सुहिंजनेके पत्तोंका रस पिलानेसे हिक्का और श्वासका दौरा दूर होजाता है।

४. अश्मरी और शर्करा—सुहिंजनेके मूलका फाण्ट अथवा सुहिंजना और वरनाका फाण्ट सोरा मिलाकर देनेसे पथरी टूट टूटकर निकल जाती है।

५. प्लीहोदर—सुहिजनेका क्वाथ सैंधानमक, कालीमिर्च और पीपल डालकर देनेसे प्लीहावृद्धिका ह्रास होकर रोग शमन होजाता है।

६. अपक्व विद्रधि—खाने, पीने, लेप आदिमें सुहिंजनाका उपयोग करते रहनेसे अपक्व विद्रधि दूर होजाती है। (अ. हृ.)। आचार्य चक्रदत्तने अन्तर्विद्रधि पर मूलके स्वरसमें शहद मिलाकर पिलानेका लिखा है। बाह्य विद्रधिपर सुहिं-जनेकी छालकी पुल्टिस बांधने और क्वाथ पिलानेसे रक्त बिखर जाता है; अथवा सत्वर पाक होकर विद्रधि फूट जाता है।

७. वातगुल्म—सुहिंजनेके पानोंका रस १ तोला मिश्री मिलाकर ३ दिन तक पिलावें।

८. नेत्र पीड़ा—वातज, पित्तज या कफज किसी भी दोषसे उत्पन्न नूतन नेत्र व्यथा उत्पन्न होनेपर सुहिंजनेके पानका स्वरस और शहद समभाग मिलाकर नेत्रमें बूंद डालनेसे वेदना तत्काल शमन होजाती है। एवं सुहिंजनेके पानोंका स्वरसको ताम्र पात्रमें रख निर्धूम अग्निपर घी डाल ऊपर दूसरा पात्र तुरन्त ढक देवें। जिससे रसको धुआं लग जायगा। इस रसका अञ्जन करनेसे शोथ, कण्डू, अश्रुस्राव और वेदना दूर होती है।

९. सन्निपात ज्वरमें बेहोशी—सुहिंजनेके मूलके स्वरसमें रास्ना और काली मिर्चका चूर्ण मिलाकर नस्य देनेसे तत्काल शुद्धि आजाती है।

१०. आध्मान और उदरशूल—सुहिंजनेके फाण्टमें हींग और सोंठ मिलाकर पिलाने से आफरा दूर होता है तथा शूल शान्त होजाता है; या हींग; सोंठ और सुहिंजनेके गोंदको मिलाकर २-२ रत्तीकी गोली बनाकर सेवन करावें।

११. कफज शूल—सुहिंजनेके मूलके स्वरसमें जवाखार और शहद मिलाकर देनेसे तुरन्त शूल निवृत होजाता है।

१२. शिरः शूल—सुहिंजनेके रसमें गुड़ मिलाकर नस्य देनेसे मस्तिष्ककी विविध वातज वेदनाओंका निवारण होजाता है। अथवा सुहिंजनेके बीज और कालीमिर्चके चूर्णका नस्य कराने से छींकें आकर शिरदर्द दूर होजाता है।

१३. कर्णशूल—सुहिंजनेके मूलका स्वरस, शहद, तैल और सैंधानमक मिलाकर कानमें डालनेसे शूल शमन होजाता है। इस तरह सुहिंजनेके गोंदको तैलमें मिलाकर थोड़े बूंद डालनेपर भी लाभ पहुँचता है। एवं पुष्पों का चूर्ण डालने पर भी लाभ मिल जाता है। शूलके हेतुसे अति व्याकुलता रहती हो, पूय स्राव अधिक होता रहता हो, ये सब पुष्पका चूर्ण डालनेसे दूर होजाते हैं।

१४. दन्तशूल—सुहिंजनेकी छाल और जीरेके चूर्णको मंजनके समान घिसनेसे शूल निवृत होजाता है।

वातज शूल—वात प्रकोप होकर देहके किसी भी भागमें शूल चलने लगे तब सुहिंजनेका फाण्ट पिलाने और छालके रसमें चारगुना तैल मिलाकर मालिश करनेसे शूल शमन होजाता है।

१६. उदर कृमि—सुहिंजनेका क्वाथ शहद डालकर दिनमें २ बार पिलाते रहनेसे छोटे छोटे कृमि निकल जाते हैं और नयी उत्पत्ति बन्द होजाती है।

१७. वातरक्त—सुहिंजना और वरनेके मूलकी छालको कांजीके साथ पीस कर लेप करनेसे वातरक्तज संधि शोथ दूर होजाता है।

१८. आम वातज शोथ—सुहिंजनेके बीजोंका तैल और तिल तैल मिलाकर मालिश करनेसे सन्धि स्थानोंके शोथ और पीड़ा शमन होजाते हैं। शक्कर और चिपचिपा भोजन तथा शीतल जलसे स्नान छोड़ें।

१९. उरोग्रह—सुहिंजनेके मूलका क्वाथ किञ्चित् निवायाकर हींग मिला कर पिलानेसे वातप्रकोपज छातीकी वेदना दूर होजाती है।

२०. अर्धाङ्ग वात—सुहिंजनेके मूल और एरण्ड मूलका क्वाथ पिलाने तथा सुहिंजनेके रस और तैलको मिला निवायाकर मालिश करानेसे वातवाहिनियोंकी विकृतिसे उत्पन्न पक्षाघात शमन होजाता है।

२१. दद्रु—सुहिजनेके मूलकी छालको जल या गोमूत्रमें घिसकर लेप करते रहनेसे दाद दूर होजाता है।

२२. प्रतिश्याय—सुहिंजनेके मूलकी छालको घी तैलमें मिला धूम्रपान कराने से प्रतिश्याय, कास और श्वास दूर होजाता है।

२३. स्नायु (नारू)—सुहिंजनेके मूल और पानको कांजीमें पीस सैंधानमक अथवा सुहिंजनेकी छाल, चित्रक मूल, कबूतरकी बीट और मुर्गेकी बीट मिलाकर पीस पुल्टिस बनाकर बांधनेसे व्रण फूटकर नारू तुरन्त बाहर आजाता है।

२४. सद्योव्रण—तुरन्त चाकू आदिसे घाव लगनेपर सुहिंजनेके पत्ते और तिलोंको पीस, थोड़ा घी मिला पुल्टिसकर बांध देनेसे घाव भर जाता है।

२५. मसूरिका—सुहिंजनेके पानोंके रसमें राल मिलाकर शीतलाके दानेपर लेप करनेसे, दाने बैठ जाते हैं और रोग बढ़ता हुआ रुक जाता है।

२६. दारुणक—शिर पर छोटी छोटी फुन्सियां होना, खुजली चलना आदि विकार होनेपर सुहिंजनेके पानोंका रस शिरपर मसलनेसे कीटाणु नष्ट होकर रोग शमन होजाता है।

२७. वातजशोथ—जिस शोथवाले भागमें दाह न होता हो, उस स्थान पर दोपघ्न लेप लगाया जाता है। अर्थात् सुहिंजनेकी छाल, सोंठ, सरसों, पुनर्नवाकी जड़ और देवदारूको कांजी या खट्टे मट्ठेमें मिला पीसकर मोटा मोटा लेपकर पट्टी बांधनेसे गांठ बिखर जाती है और वेदना दूर होती है।

२८. गल गण्ड—सुहिंजनेकी छाल और देवदारूको कांजीमें पीस कर लेप करनेसे नया गलगण्ड दूर होजाता है।

२९. श्वान दंश—सुहिंजनेके पान, लहशुन, हल्दी कालीमिर्च और नमकको जलके साथ पीस पुल्टिसकर लगानेसे तथा अर्क या फाण्ट दिनमें २ समय पिलाते रहनेसे सूजन उतर जाती है; घाव भर जाता है, तथा ज्वर दूर होजाता है।

(१०५) सूचीबूटी

सं० कनीनिका प्रसारिणी, शिवप्रिया, करमर्दफला, महामोही, कृष्णफला, प्राणहरा, वेदनाहारी। हिं० सूचीबूटी। पं० सूची, अंगुरशेफा। बम्बई—गिरबुटी। फा० रुवह तुरबक, मेरदुमस्याह। अं० Belladonna Deadly night shade leaves, Black Cherry. ले० Atropa Belladona.

परिचय—खड़ा, रुएंदार या लगभग चिकना, भद्दा, धुंधलाक्षुप। ऊँचाई २॥ से ३ फीट। पान वृन्तमय, लम्बगोल, ऊपरके सिरेपर सफड़े, ४ से ८ इञ्च लम्बे, अखंड। ताजे पान स्वादमें कुछ कड़वे और खट्टे। मसलनेपर दुर्गन्ध उत्पन्न होती है। वृन्त ॥ इञ्च लम्बा। पुष्प हल्के बैंगनी, पीले या हरे दागोंसह, लगभग ।॥' इञ्च व्यासके। पुष्पवाह्यकोष वड़ा, गहरे ५ खण्डयुक्त ॥' से।॥' इञ्च लम्बा। पुष्पाभ्यन्तरकोष ५ खण्डवाला, घण्टाकार। बीजाशय २ विभागका। फल लगभग करौंदेके सदृश गोलाकार, ।॥' इञ्च व्यासका, बैंगनीकाला, चारों ओर वढ़े हुये पुष्प वाह्यकोषसे घिराहुआ। बीज अनेक, दवे हुये। जड़ लगभग १ फुट लम्बी, मांसल और १-२ इञ्च व्यासकी। स्वाद कुछ चरपरा।

उत्पत्तिस्थान—काश्मीरसे शिमला तक हिमालयमें ११००० फीट ऊँचाईपर तथा इरान और यूरोपमें।

शुष्क पान और शुष्क मूलमेंसे अर्क, घन, सत्व आदि विविध प्रयोग तैयार किये जाते हैं। जव क्षुपपर पुष्प आजाते हैं, तब पानका संग्रह करते हैं। मूलको शरद् ऋतुमें निकालकर सुखाते हैं। जो क्षुप वागोंमें बोये जाते हैं, उनमें जंगल के वृक्षोंकी अपेक्षा गुण अधिक होता है।

रसशास्त्र—सूचीबूटीके पानोंमेंसे क्षाररूप हाइयोस्यामीन (Hyoscyamine) द्रव्य ०·३ प्रतिशत मिलता है। इसके अतिरिक्त एट्रोपीन (Atropine) और वेलाडोनीन (Belladonnine), ये २ द्रव्य सूक्ष्म परिमाणमें मिलते हैं। मूलमेंसे हाइयोस्यामीन ०·४ प्रतिशत निकलता है।

गुणधर्म—सूचीबूटी मस्तिष्क और वातनाड़ियोंकेलिये उत्तेजक, मादक, आक्षेप निवारक, वेदनाशामक और निद्राप्रद है। वाह्यप्रयोगसे वेदनाशामक और स्पर्शहर। नेत्रके चारों ओर लगने या नेत्रमें डालनेपर कनीनिका प्रसारक है। वाह्य स्थानिक प्रयोग करनेपर स्रावकी उत्पत्तिको रोकता है। स्तनोंपर लगानेपर स्तन्य (दूध) की उत्पत्तिका ह्रास होता है।

डाक्टर घोषके मत अनुसार सूची बूटी मस्तिष्क और सुषुम्णाके जीवनीय केन्द्र-स्थानपर उत्तेजना दर्शाता है; तथा संवेदना नाड़ियोंके सिरे, कोमल

मांसपेशियोंके भीतर प्रवेशित संचालक नाड़ियोंके सिरे, स्रावोत्पादक नाड़ियोंके सिरे, नेत्रगत तृतीया नाड़ी और प्राणदा नाड़ीके सिरेको अवसादित करता है।

सूची बूटीकी पूर्ण मात्रा देनेपर धमनीकी गति सबल होती है और रक्ताभिसरणके वेगमें वृद्धि होती है। हृत्स्पन्दन सवल और सत्वर होता है तथा सारा शरीर उष्ण होता है। मात्रा अधिक बढनेपर मुँह, तालु और कण्ठ शुष्क और संकुचित हो जाते हैं। फिर भोजन आदिके निगलने और बोलनेमें कष्ट होता है; तथा तृषा अधिक लगती है। नेत्रकी पुतली फैल जाती है तथा दृष्टि विकृत होती है; अर्थात् दूर दृष्टिमान्द्य (Myopia) और समीप दृष्टिमान्द्य (Presbyopia) होते हैं। चेहरा और नेत्र लाल लाल हो जाते हैं। एवं वातनाड़ियोंकी विकृति होकर शिरदर्द, चक्कर आना, आक्षेप और आनन्दप्रद प्रलाप आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। मनके भीतर अनेकविध स्फूर्त्तिजनक काल्पनिक भाव और रूप उत्पन्न होते हैं। फिर अन्तमें क्रमशः निद्रा आजाती है। निद्रा आनेके पहले निगलनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है। प्रस्वेद और मूत्रका अवरोध होता है;. तथा शोणितज्वर (Scarlatina) के सदृश देहपर रक्तवर्णके धब्बे (Eryption) उत्पन्न होते हैं। किसी किसीको -उदरमें वेदना, उबाक, वमन और अतिसार भी हो जाते हैं।

यदि विषक्रिया अत्यधिक प्रवल होती है, तो उपर्युक्त सब लक्षणोंमें वृद्धि हो जाती है। नेत्रकी कनीनिका पूर्णरूपसे फैल जाती है; और निश्चल हो जाती है। जिससे अत्यन्त दूरदृष्टि या पूर्ण दृष्टिका नाश हो जाता है। मुखमण्डल फूला हुआ और अतिलाल भासता है। नेत्र लाल लाल और उन्मादके समान चिह्न होते हैं। परिणाममें रोगी उन्मत्त हो जाता है। मनमें कल्पित रूप उपस्थित होते हैं; और मानसिक भ्रम होता है। रोगी जोर जोरसे चिल्लाता है; क्वचित् जोर जोरसे हँसता है; कभी रोने लगता है। एवं अत्यन्त ही उत्पाती और मर्यादा विहीन वन जाता है। फिर उत्तेजनाके पश्चात् अवसादकता आनेपर निद्रा आजाती है। इस अवस्थामें 'कभी कभी प्रलाप' होता है; स्वरभंग होजाता है; और किसी किसी मांशपेशीमें आक्षेप होजाता है। शनैः शनैः अवसादकताके लक्षण दौर्बल्यता, नाड़ीक्षीणता, खड़े रहनेमें असमर्थता, आगेकी ओर झुकजाना, हाथोंकी अंगुलियां चलाते रहना आदि उपस्थित होते हैं। इस अवस्थामें आक्षेप और पक्षवध उत्पन्न होनेपर जीवन दुःखमय वन जाता है। विषशमन होनेपर जब प्रबोध होता है, तब पहलेकी क्रियाका कुछ भी बोध नहीं रहता।

बाह्य प्रयोग— यदि सूची बूटीके क्षारको अल्कोहाल, क्लोरोफार्म;

भीतर हो जाता है। यदि इसका मर्दन श्लैष्मिक कला और खुरदरी छिली हुई त्वचापर किया जाय तो अधिक सत्वर शोषण हो जाता है। सूची बूटी और एट्रोपिया, दोनों संवेदनानाड़ियोंके परिधिप्रान्तके सिरेको बधिर बना देते हैं। जिससे वहां पीड़ा होती हो, तो चेतनाहर और वेदना-शामक क्रिया दर्शाता है। साथ साथ सारे शरीरके संचालक नाड़ियोंके सिरे और स्रावकारी नाड़ियों के सिरेपर न्यूनाधिक शामक असर पहुँच जाता है। रक्तवाहिनियोंमें पहले संकोच और फिर प्रसारण होता है।

अन्तर प्रयोग —एट्रोपिया रक्तके भीतर तुरन्त प्रवेश कर जाता है। फिर रक्ताणुओंपर असर न पहुँचाते हुए रक्ताभिसरणमें फैल जाता है। यह मुख्यतः परिस्वतन्त्र नाड़ी संस्थापर असर पहुँचाता है। फिर अन्य अवयव और तन्तुओंको परम्परारूपसे असर होता है। स्रावोत्पादक नाड़ियोंपर विशेष क्रिया होती है।

वातसंस्थान—सूचीकेन्द्रीय नाड़ीसंस्थान पर सार्वाङ्गिक उत्तेजना पहुँचाता है। किन्तु इसका विशेष असर मस्तिष्कपर होता है। फिर रोगी प्रलाप और बकवाद करने लगता है तथा हाथ पैर टूटना, आलस्य आना आदि लक्षण भी उपस्थित होते हैं। मात्रा अधिक हो, तो सुषुम्णा अवसादग्रस्त होती है। फिर आक्षेप आते हैं और कुछ समय कष्ट भोगकर रोगी पुनः स्वास्थ्य प्राप्त करलेता है।

मांसपेशियोंकी वातनाड़ियोंपर असर पहुँचनेपर उनकी शक्तिका लोप होता है। फिर पेशियोंमें आक्षेप आने लगते हैं। यदि मात्रा अधिक हो तो संचालक वातनाड़ियां सब अवसादित होती हैं और संवेदनादर्शक वातनाड़ियोंको स्थिरता मिल जाती है।

मस्तिष्क—औषधीय मात्रामें सूची बूटी किसी किसीको कुछ ऐंठन लाता है; किन्तु मात्रा अधिक होनेपर केन्द्रीय संचालक नाड़ीकेन्द्रको उत्तेजित करता है। परिणाममें सार्वाङ्गिक उत्तेजना उपस्थित होती है। फिर बकवाद, मानसिक भ्रम, चलनेमें और देखनेमें विचित्रता होती है। आंखोंकी श्लैष्मिककला और मुखमण्डल तेजस्वी बन जाते हैं। नाड़ी तेज होजाती है। बड़ी मात्रा हो तो प्रलाप और आक्षेप होकर फिर संन्यास (बेहोशी) होता है। प्रतिफलित क्रिया भी सबल बन जाती है।

सुषुम्णा और सुषुम्णाशीर्ष—सूचीकी मात्रा बढनेपर मुख्य मुख्य केन्द्रोंपर प्रबल असर होता है। १ श्वासवहन केन्द्र और २ संचालक नाड़ीकेन्द्र। प्राणदानाड़ीकेन्द्र। छोटी मात्रासे भी प्रभावित होजाता है। यह अपनी क्रिया कुछ बढा देता है और फिर घबराहट दूर होजाती है।

संवेदनानाड़ी—सूची बूटीका स्थानिक प्रयोगकरने या मुँहसे देनेपर संवेदना

नाड़ियोंके परिधि प्रान्तगत सिरे वधिर होते हैं और वहां पीड़ा होती हो तो, वह दूर होजाती है। सूचीकी क्रिया एट्रोपीन जैसी सवल नहीं है।

संचालकनाड़ी और ऐच्छिक पेशियां—संचालकनाड़ियां कुछ अंशमें सिरेपर उत्सादित होती हैं, किन्तु ऐच्छिकमांसपेशियां प्रभावित नहीं होती।

नेत्र—सूची और एट्रोपीनद्वारा तारामण्डल (Iris) के वातनाडीसूत्र उत्तेजित होनेसे और नेत्रचेष्टनी नाड़ियों (Cculo-Motor Nerves) के अन्त भाग (Peripheral Endding) का पक्षवध होनेसे कनीनिका (Pupil) प्रसारित होती है। इसके अतिरिक्त नेत्रके भीतरका संचाप (Intra Ocular Tension) वढ जाता है।

सूची वूटी वृक्क और अन्त्रकी क्रियाद्वारा मूत्र और मलके साथ देहसे वाहर निकलती है। इस हेतुसे एट्रोपीन द्वारा विषाक्त व्यक्तिके मूत्रकी बूंद किसी जन्तुके नेत्रमें डालनेपर उसकी पुतली फैलजाती है। एवं मूत्रकी रासायनिक परीक्षा करनेपर भी एट्रोपीन प्रतीत होता है।

रक्तसञ्चालन—सूची और एटोपीन वहुत शीघ्रतासे रक्तमें प्रवेशकर सव रक्तप्रणालियोंसे सम्वन्धवाले गति विधायक वातनाड़ियोंके मूल उत्तेजित करके और हृदय की क्रिया वढ़ाकर धमनियोंके भीतर संचापकी वृद्धि कराते हैं। विष मात्रामें सेवन करनेपर सव रक्तवाहिनियोंके गति विधायक वातनाड़ियोंका दीवारोंका पक्षाघात होता है। रक्तवाहिनियोंकी दीवारोंका पैशिक आवरण अवसन्न होता है तथा हृदयकी मांशपेशी साक्षात् सम्वन्धसे अवसादग्रस्त होजाती है। इस हेतुसे धामनिक संचापका ह्रास होजाता है। वेलाडोनासे कभी कभी प्रथमावस्थामें नाड़ी मृदुगामी होनेका भी देखा जाता है।

श्वासोच्छ्वास—सूची वूटी (एट्रोपीन) का मध्यम मात्रामें सेवन करनेपर वह सुषुम्णास्थित श्वासोच्छ्वासीय वातनाड़ियोंके केन्द्रके ऊपर प्रवल उत्तेजना पहुँचाता है; और प्राणदानाड़ियोंके अन्त भाग, जो फुफ्फुसोंसे सम्वन्ध वाला है, उसका पक्षवध करता है। इस तरह श्वासनलिकाकी मांसपेशियोंको शिथिल करता है। फिर अवाध्य रूपसे फुफ्फुसोंमें वायुका प्रवेश होता है; और श्वास नलिकामेंसे श्लैष्मिक स्रावका ह्रास होजाता है। संज्ञा वहनाड़ियोंके अन्तभाग का अवसादन हो जाता है। परिणाममें संवेदना और वाहर निकलने वाले कफ का ह्रास होजाता है। इस हेतुसे तमक श्वास और काली खांसीमें एट्रोपीनका अन्तःक्षेपणरूपसे उपयोग किया जाता है।

अधिक मात्रामें उपयोग करनेपर श्वासोच्छ्वास क्रिया संदवेगपूर्वक निर्वल और अनियमित वन जाती है। फिर श्वासावरोध (Asphyxia) होकर मृत्यु होजाती है।

सूची अल्प मात्रामें इड़ा पिङ्गला नाड़ियोंके दमनकारी (Splanchnic) सूत्रोंके सिरेको अवसादितकर अन्त्रकी दीवारकी मांसपेशियोंके आवरणके आक्षेपका ह्रास करती है। मध्यम मात्रा देनेपर आन्त्रिक वात- नाड़ी ग्रन्थियोंका पक्षाघात होकर पुरःसरण क्रियाका लोप होजाता है। किन्तु फिर भी अन्त्र की मांसपेशियोंके सूत्रकी उत्तेजनशीलता वर्तमान होती है। इस हेतुसे अन्त्रके किसी स्थानको उत्तेजित करके स्थानिक संकोच उत्पन्न करती है; किन्तु पुरःसरण क्रिया नहीं बढ़ती। अधिक मात्रामें अन्त्रकी संचालन क्रिया स्थगित होजाती है; अन्त्रकी अनैच्छिक मांसपेशियोंके सूत्र सब पक्षवधसे ग्रसित हो जाते हैं। इस कारणसे स्थानिक उग्रता प्राप्त होनेपर भी अन्त्र अति न्यूनांशमें संकुचित होता है; अथवा प्रारम्भमें संकुचित नहीं होता।

स्रावण क्रिया—स्राव कराने वाली सब ग्रन्थियोंके कोष समूहों (Secretory cells) में जो अन्तिम वातनाड़ी, सूत्र प्रसारित हुए हैं; उनका सामयिक पक्षवध हो जानेसे वृक्कोंके अतिरिक्त सब ग्रन्थियोंकी स्रावण क्रियाका ह्रास हो जाता है। एवं कभी कभी मूत्रका परिमाण बढ़ जाता है।

सूची जिह्वा और हन्वधरीया ग्रन्थियोंकी वातनाड़ियोंमेंसे पश्चिमा नाड़ी ग्रन्थियों (Posterior Ganglion) के अन्तभागको बधिर बनाता है। जिस तरह इड़ा पिंगलाकी नाड़ियोंपर उत्तेजना पहुँचती है; उस तरह इन ग्रन्थियोंपर साक्षात् रूपसे असर नहीं होता; फिर भी स्रावका रोध हो ही जाता है (वात- नाड़ियोंके शैथिल्यकर सूत्र समूह Vasodilatting) का पक्षवध नहीं होता। इड़ा पिंगलाकी नाड़ियां उत्तेजित होनेपर पुनः स्रावण क्रिया होने लगती है।

इड़ा पिंगलाकी नाड़ियोंके पक्षाघातसे मुख, नाक, कण्ठ और श्वासनलिका में रही हुई श्लैष्मिक ग्रन्थियोंके स्रावका अवरोध होजाता है। स्राव कराने वाली ग्रन्थियोंके प्राणदा नाड़ियोंके तन्तुओंका पक्षवध होजाता है। इस हेतुसे आमाशय, अग्न्याशय और अन्त्रका स्राव कम होजाता है। एवं स्वेद ग्रन्थियों की वातनाड़ियोंके अन्तका पक्षवध होता है। परिणाममें अत्यधिक बलपूर्वक स्वेदावरोध क्रिया प्रकाशित होती है।

स्तन्य निःसारक ग्रन्थियोंके स्रावपर पक्षवधके समान असर नहीं होता। कारण, इनके स्रावसे सम्बन्ध वाले सूत्र नहीं है। किन्तु सूची प्रधान लेप लगाने से स्तन्यवृद्धिका ह्रास होता है।

पचन संस्थान—आमाशयमें एट्रोपीन जानेपर आमाशयके अन्तमें रहे हुए द्वारपर आक्षेप आता है, तो उसे दूर करता है और आमाशयकी स्वाभाविक पुरःसरण क्रियाके भीतर हस्तक्षेप नहीं करता। (प्रबल शूल हो, तो उसे दूर करता है) इस तरह सामान्य औषधीय मात्रा होनेपर अन्त्रकी सामान्य पचन

क्रियाको भी प्रभावित नहीं करता। विरेचन औषधि जन्य वेदना और क्रियामें अनियमितता आ गई हो तो, उसे मिटाता है। पशुओंको बड़ी मात्रा देनेपर उनके अन्त्रकी परिचालन क्रिया बढ जाती है।

मूत्र संस्थान—वृक्कों पर सूची बूटीका प्रभाव अनिश्चित है। पित्ताशय नलिका, मूत्राशय, मूत्राशयनलिका, गर्भाशय, मूत्रप्रसेक नलिका और शुक्रसे सम्बन्ध वाली अनैच्छिक पेशियां, जिनमें संचालक वातनाड़ियां प्रवेशित हैं, ये सब बधिर बन जाती हैं। इस हेतुसे एट्रोपीन उन अवयवोंके आक्षेपको दूर करता है। पित्ताशयनलिका और गवीनी (वृक्कसे मूत्राशय जानेवाली नलिका) को सहायता देकर अश्मरी जन्य वेदनाका ह्रास कराता है।

मात्रा—पानका चूर्ण ॥· से ३ ग्रेन (१॥ रत्ती), मूलका चूर्ण ॥· से २ ग्रेन।

सूचना-बालक सूचीकी बड़ी मात्रा सहन कर सकता है; किन्तु वृद्ध मनुष्य मध्यम मात्रा भी सहन नहीं कर सकता। इस हेतुसे कनीनिका प्रसारणार्थ भी वृद्ध मनुष्यके नेत्रमें हो सके तब तक एट्रोपीनके बूँद नहीं डालना चाहिये।

डाक्टरी सूची प्रयोगः—

(१) सूची स्वरस—(Succus Belladonae) तरुण शाखासह पानों को कूटकर रस निचोड़ लेवें। फिर छान कर ३ भाग स्वरसमें १ भाग अल्कोहाल मिलाकर ७ दिन रख देनेपर टिकाऊ स्वरस तैयार हो जाता है। मात्रा—५ से १५ बूँद।

(२) सूचीघनसार-(Extractum Belladonnae Siccum) सूची के ताजे पान और कोमल शाखाओंको कूटकर रस निचोड़ लेवें। इस रसको १३० डिग्री फारनहीट (५४. ४ सेण्टीग्रेड) पर गरम करें। फिर रसको वस्त्रसे छान लेवें। ऊपरके गाढे द्रव्यको अलग रखें और रसको २०० डिग्री फा० ही० (९३. ३ सेण्टीग्रेड) पर तपाकर फिल्टर पेपरसे छान लेवे। उस रसको बाष्प यन्त्र द्वारा पकावें और उसके साथ पृथक् रखे हुये द्रव्यको अच्छी तरह मिला लेवें। पश्चात् १४० डिग्री फा० ही० (६० सेण्टीग्रेड) पर तपा नरम घनसार बना लेवे। इस घनके भीतर क्षार १ प्रतिशतके हिसाबसे रहता है। मात्रा—।· से १ ग्रेन।

(३) सूची तरलसार-(Ext. Belladonnae Liq.) यह मूलमेंसे बनाया जाता है। सूची मूलका चूर्ण (२० नं०· की चलनीसे छाना हुआ) १००० ग्राम और अल्कोहाल तथा बाष्पजल यथा प्रयोजन लेवें। ७ भाग अल्कोहालमें १ भाग बाष्पजल मिला, उसे सूची चूर्णके साथ संमिलितकर रस सत्वपातन यन्त्र द्वारा पुनःजरण प्रतिक्रिया (Repercolation) करके

तरल सत्व बना लेवें। जब तक प्रति ३ ग्रामसे १ मिली मीटर क्षारण सत्व प्राप्त न हो, तब तक वाष्पजल मिश्रित अल्कोहाल मिलाते रहना चाहिये। मात्रा ।. से १ बूँद तक। इसका उपयोग विशेषतः लेप, मलहम और मर्दन बनानेमें होता है।

४. सूची लेप—(Emplastrum Belladonnae) इसमें क्षार ०·२५% रहता है।

सूची तरल सार ५० तोले और रालका लेप (Resin Plaster) १३७॥ तोले लेवें। पहले तरल सारको बाष्पपर उबालें। फिर चतुर्थांश शेष रहने पर रालका लेप पिघलाकर मिला लेवें।

५. सूची मर्दन–(Linimentum Belladonnae) इसमें क्षार ०·३७५% रहता है।

सूची तरलसार ५० तोले, कपूर ५ तोले, बाष्प जल १० तोले और अल्कोहाल यथा प्रयोजन मिलावें पहले कपूरका द्रव ६ गुने अल्कोहालमें करें। फिर सबको मिला शेष अल्कोहाल डाल १०० तोले पूरा कर लेवें।

६. सूची वर्ति—(Suppositorium Belladonnae) प्रत्येक वर्तिमें १।६० ग्रेन क्षार रहता है। यह वर्ति कोकम अमचूरके तेल (Theobroma Oil) में मिलाकर १–१ ग्राम की वर्ति बना लेवें।

७. एट्रोपीना—(Atropina, Atropine, Atropia) यह उपक्षार सूची के तुरन्त सुखाये हुए मूलमें से तैयार करते हैं। यह वर्णहीन, स्वच्छ, मुलायम, सुईकी नोक सदृश दानेदार और गंधहीन होता है। यह अल्कोहाल, क्लोरोफार्म और इथरमें सरलता पूर्वक गल जाता है। एवं ५०० गुने जलमें भी द्रव-रूप हो जाता है। यह क्षारीय प्रतिक्रिया विशिष्ट होता है। नेत्रमें डालनेपर पुतलीको प्रसारित करता है। मात्रा १।२०० से १।१०० ग्रेन तक।

इसकी क्रिया सूचीके समान, किन्तु उससे अधिकतर प्रबल होती है। आभ्यन्तरिक प्रयोग अति सम्हाल पूर्वक होता है कनीनिका प्रसारण केलिये सूचीकी अपेक्षा यह विशुद्ध और विशेष उपयोगी माना गया है। कनीनिका प्रसारणार्थ विशेषतः एट्रोपियामेंसे लाइकर एट्रोपिन सल्फास बनाकर उपयोगमें लेते रहें।

एट्रोपीनके सेवनसे सुषुम्णा आक्षेपग्रस्त होती है, और प्रत्यावृत्त क्रिया बढ़ जाती है। श्वासकेन्द्र और हृदयकी क्रियाके दमनकारी (Inhibitory) वातनाड़ी मूल उत्तेजित होते हैं। रक्तवाहिनियोंका संचालक विधायक वातमण्डल उत्तेजित होता है। इस हेतुसे धमनियोंमें रक्त दबाव बढ़ जाता है। मांसपेशियोंकी संचालक वातनाड़ियां पक्षाघात ग्रस्त होजाती हैं। सबसे पहले दोनों शाखाओं

की मांसपेशियां अवसन्न होजाती हैं। प्राणदा नाड़ियोंकी दोनों शाखायें पक्षाघात ग्रस्त होजाती हैं। हृदय और दोनों फुफ्फुसोंमें गई हुई प्राणदा नाड़ियोंकी अन्त्य शाखा पक्षाघात ग्रस्त होती है। लाला ग्रन्थियां और स्वेद ग्रन्थियोंका पक्षाघात होजाता है। इड़ा पिंगालाके दमनकारी सूत्रों (Splanchnic) का अन्त्य भाग अवसन्न होजाता है।

अधिक मात्रामें सेवन करनेपर केन्द्रमुखी वातनाड़ियोंकी क्रिया किंचित् अवसन्न होती है। नेत्रके संचालक विधायक सब वातनाड़ियोंके सिरे अवसन्न होते हैं। एवं इडापिंगलाकी (समवेदक) वातनाडियां उत्तेजित होकर तारा-मण्डलके ऊपर क्रिया दर्शाती है। जिससे उसकी मांसपेशीमें निर्बलता आती है; एवं दृष्टि शक्तिमें विकृति होती है।

एट्रोपियाका शिरामें अन्तःक्षेपण किया जाता है। यह प्रयोग स्वल्प मात्रामें करनेपर मुख और कण्ठके भीतर शुष्कता आजाती है; मुँहलाल होजाता है; नेत्रकी पुतली फैल जाती है; और दृष्टि शक्तिकी विकृति होजाती है। एवं कभी कभी शरीरपर लाल-लाल पिटिकायें निकल आती हैं। अधिक मात्रादेनेपर वातकेन्द्र उत्तेजित होकर मस्तिष्कको उत्तेजित करता है। जिससे उन्मत्तता आती है। रोगी आनन्ददायक प्रलाप करता है; और उसके मनमें अनेक स्फूर्तिजनक कल्पना आती रहती है। फिर क्रमशः निद्रा आती है। हृदय और धमनीसमूह उत्तेजित होते हैं। यह उत्तेजना प्राणदा नाड़ियोंकी प्रशाखा या केन्द्रपर पक्षाघात क्रिया द्वारा नहीं होती; किन्तु हृदयसे सम्बन्धवाली प्राणदा-नाड़ियोंके अन्त भागपर क्रिया होकर यह उत्तेजना आती है। परिणाममें हृदयकी मांसपेशी पक्षाघातग्रस्त होजाती है। फिर हृदयके प्रसारणकालमें रक्त पूर्ण हृदय बन्द होजाता है।

धमनीका दबाव पहले बढ़ जाता है। फिर ह्रास होता है। आमाशयरस, लाला, श्वास प्रनलिकाओंका श्लैष्मिक रस और प्रस्वेद बन्द होजाता है। ये सब घटना ग्रन्थिसमूहोंकी वातनाड़ियोंके अग्रभागका पक्षाघात होनेसे होती है। प्रायः स्तन्योत्पत्तिपर असर नहीं होता।

प्रारम्भमें पेशाब बलपूर्वक बाहर निकलता है; किन्तु थोड़ेही समयमें मूत्रा-शयका स्वल्प पक्षाघात होजाता है। आमाशय, अन्त्र, गर्भाशय, प्लीहा, बृहद् श्वासनलिका और इतर यन्त्र समूह, जिनमें परतन्त्र मांसपेशियां हैं; उन सबकी क्रियाका ह्रास होजाता है।

शारीरिक उत्तापकी वृद्धि होती है। तारामण्डल (Iris) विस्फारित होता है। मूत्रके साथ एट्रोपिया बाहर आता है; किन्तु अधिकांश देहमें शोषित होजाता है।

एट्रोपियाका अधिक मात्रामें उपयोग करनेपर श्वासोच्छ्वास केन्द्र और रक्तप्रणाली संचालक केन्द्र उत्तेजित होता है; किन्तु विषाक्त मात्रामें इनका पक्षवध होजाता है।

शारीरिक उत्ताप—अधिक मात्रामें सूचीका सेवन करानेपर वह उत्ताप उत्पादक केन्द्र (Heat Generating Centre) पर उत्तेजना पहुँचाता है। जिससे शारीरिक उत्ताप बढ जाता है। यदि युवा मनुष्यके समान आनुपातिक मात्रामें बालकोंको दिया जाय, तो प्रभाव नहीं डालता। एवं वृद्ध मनुष्यपर भी आसानीसे योग्य परिणाम नहीं आता। बहुधा बालकोंको १–२ डिग्री उष्णता बढ जाती है। विष मात्रामें सेवन होनेपर उत्ताप सत्वर गिर जाता है।

नाड़ी—सूची बूटी और एट्रोपीन लघु मात्रा (१/१५० ग्रेन) में भी प्राणदा नाड़ीके केन्द्रको उत्तेजित करते हैं। परिणाममें नाड़ी मंद होजाती है। यदि एट्रोपीनकी बड़ी मात्रा (१/७५ ग्रेन) दीजाय, अथवा पुनः दूसरी बार लघु मात्रा दी जाय, तो प्राणदा नाड़ी केन्द्र अवसादित होता है। जिससे नाड़ी स्पन्दन तेज होजाता है। नाड़ीकी शीघ्रता होनेपर सूची बूटी हृदयके वेग या आवाजको नहीं घटा सकती।

संक्षेपमें गुणधर्म—सूची और एट्रोपीनका प्रभाव।

१. मस्तिष्क उत्तेजना होनेपर प्रलाप।
२. सुषुम्णास्थ जीवनीय केन्द्रपर उत्तेजना पहुँचनेपर श्वसनवृद्धि, प्राणदा नाड़ीकी तेजी (नाड़ी मंद), और संचालक नाड़ियोंमें उत्तेजना।
३. अवसादन क्रिया होनेपर संवेदक नाड़ियोंके सिरेपर असर होता है।
४. गुहागत कोमल पेशियोंमें गये हुये संचालक नाड़ियोंके सिरे अवसादित होनेपर (श्वासनलिका, आमाशय, अन्त्र, पित्ताशयनलिका आदिके) अस्वाभाविक आकुंचन होता है।
५. परिस्वतन्त्र नाड़ियोंके सिरे अवसादित होनेपर नेत्रकी तृतीया नाड़ी और प्राणदा नाड़ियोंके सिरे अवसाद ग्रस्त होते हैं; किन्तु हृदय मुक्त रहता है।

सूची और अफीमकी क्रियामें प्रभेदः—

अफीम	सूचीबूटी
१. दोनों नेत्रोंकी कनीनिका संकुचित।	कनीनिका प्रसारित।
२. प्रलाप और आक्षेपका अभाव।	प्रलाप और मांसपेशियोंका आक्षेप
३. स्तम्भनक्रिया उपस्थित।	मूत्रवृद्धि और क्वचित् विरेचन।
४. खुजलीकी उत्पत्ति।	देहपर लाल रंगके ददोरे।
५. सुषुम्णापर असर नहीं।	सुषुम्णापर विलक्षण प्रभाव।

६. बाह्यप्रयोगकी अपेक्षा उदरसेवनसे विशेष लाभ।
७. बालकपर थोड़ी मात्रामें प्रयोगकरने में भी संशय।

उदर सेवनकी अपेक्षा बाह्य प्रयोग से वेदनाका विशेष निवारण।
बालकपर अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में प्रयोग हो सकता है।

उपयोग—सूचीबूटी बारामूला (काश्मीर) से पंजाब, यू. पी. बंगाल, बम्बई
आदि प्रान्तोंमें जाती है। यह अति घातक विष होनेसे प्राचीन आचार्योंने तथा
यूनानी वालोंने इसका उपयोग नहीं किया। डाक्टरीमें इसका अत्यधिक उपयोग
होरहा है। यह जैसा विष है, वैसा ही अमृत भी है। जब मस्तिष्क औ
वातनाड़ियोंको उत्तेजना देनी हो, आक्षेपोंका निवारण करना हो या वेदनाव
दमन करना हो, तब यह आशीर्वादके समान कार्य करती है। लाखों रोगियोंपर
प्रयोग होजानेसे इसके गुणधर्म और लाभ हानि निर्णित होगये हैं। रोगशामक
मुख्य ओषधि रूपसे इसका प्रयोग बहुत कम रोगोंपर होता है। विशेषतः वेदना·
प्रद लक्षणोंका शमन और उपद्रवोंका दमन करनेकेलिये अनेक रोगोंकी विविध
अवस्थामें यह प्रयोजित होती है।

सूचीबूटी मस्तिष्क उत्तेजक है। इस हेतुसे अनेक बार मस्तिष्कके अवसन्ना-
वस्थामें प्रयोजित होती है। यह सुषुम्णास्थित श्वासोच्छ्वास केन्द्रपर उत्तम उत्तेजक
रूपसे सहायक होती है। एवं वातवाहिनियोंके चेतनाधिक्य (Neurosis) मृगी
जीर्ण, मदात्यय, नृत्यवात (Chorea) और शिरःशूल आदिपर यह प्रशंसित है।
यद्यपि इन रोगोंको यह दूर नहीं करती; तथापि आक्षेप और वेदनाका सत्वर
ह्रास करा देती है।

मस्तिष्क और वातवहामण्डलमें उग्रता पहुँचनेसे उत्पन्न नृत्यवात (Choria)
में सूची वातसंस्थाकी उग्रताके दमनार्थ प्रयोजित होती है। साथमें जसद या
रौप्य भस्म मिलायी जाती है। सूची या एट्रोपिया स्थानिक वेदनाहर होनेसे वात
शूल होनेपर व्यवहृत होता है। गृध्रसी जनित शूल, कटिशूल, मूत्राशयमें शूल
आदिपर इसका उदर सेवन कराया जाता है। परिणाममें संज्ञावाही वातनाड़ियों
के अग्र भागोंका पक्षवध होकर शूल जनित वेदना शान्त होजाती है।

पित्ताशयकी अश्मरी जनित शूलका दमन करनेकेलिये एट्रोपीनका इंजे·
क्शन रूपसे उपयोग होता है। एवं यह अन्त्रावरणकी व्याधिमें भी पीड़ाका
ह्रास करानेमें लाभदायक है।

विविध प्रकारके आशुकारी प्रदाह और सुषुम्नाकी विकृतिपर सूची बूटी
और एट्रोपीन अनुमोदित हुए हैं। ये सूक्ष्म सूक्ष्म कैशिकाओंका संकोच करते
हैं। वढे हुये दूधके स्रावका ह्रास कर देते हैं। स्तनप्रदाह और रक्ताधिक्य होने
[illegible] गर्भा स्त्रीको शूल चलने लगता है, उस पर भी इनका [illegible] किया

जाता है। एवं सगर्भा स्त्रियोंके मुखमें बारबार थूँक आते रहनेपर और मस्तिष्क विकारपर भी ये व्यवहृत होते हैं।

सूची और एट्रोपिया रक्तके श्वेताणुओंपर क्रिया करके पूयोत्पत्तिको बन्द करते हैं। इस हेतुसे इसका प्रयोग मलहम रूपसे होता है। एवं उदर सेवन भी कराया जाता है। ये कम मात्रामें मांस पेशियोंके आक्षेपका दमन करते हैं। एवं विरेचन ओषधिको सहायता पहुँचाते हैं। इसलिये इसका उपयोग कोष्ठबद्धता, अन्त्रावरोध, पित्ताशयमें अश्मरी, वृक्काश्मरी और तमक श्वासपर होता है।

सूची बूटीका स्थानिक प्रयोग और उदर सेवन करानेसे प्रस्वेद रोध होता है। इस हेतुसे अति प्रस्वेदके दमनार्थ इसका उपयोग किया जाता है। राजयक्ष्मा में रात्रिको अति प्रस्वेद आनेपर ये अति लाभदायक सिद्ध हुई है।

"वातवह संस्थानमें उत्तेजना आनेसे उत्पन्न अनेक रोगोंमें सूची बूटी लाभ पहुँचाती है। जैसे अधो अर्धाङ्ग पक्षवध रोगमें यह विशेष उपकारक है। कण्ठ-रोहिणी जनित पक्षवधमें भी लाभ पहुँचाती है। आशुकारी सुषुम्णा प्रदाह और रक्ताधिक्यके हेतुसे या सुषुम्णा विधानमें विकृति होनेपर अधो अर्धाङ्गवात होनेपर रक्ताधिक्य और प्रदाह आदिमें विविध लक्षण उपस्थित होते हैं। तीव्र या स्थिर आक्षेप, वारवार खुजली चलना, लिंगमें उत्तेजना या संज्ञावाही वात-नाड़ीमें उत्तेजना होती है। अथवा खुजली, दाह उत्ताप या शैत्यबोध, पट्टी, बांधने या दबानेके समान कष्टका भास होना आदि लक्षण होते हैं। अथवा धम-नियोंकी वातनाड़ियोंमें उग्रताके लक्षण अवश अवयवकी शीर्णता, शोथ, शय्याक्षत, मूत्रमें क्षार वृद्धि आदि प्रकाशित होते हैं। उन सबको सूची बूटी दूर करती है। सूचीसे सुषुम्णा और उसके आवरण दोनोंमेंसे रक्तका परिमाण कम होजाता है। इस हेतुसे लाभ पहुँच जाता है।"

"उन्माद रोगमें सूची वातसंस्थाकी उग्रताको दमन करती है; तथा वात-संस्थामें स्थिरता और निद्रा लादेती है। कपूरके साथ सूची बूटीका उपयोग करना चाहिये; एट्रोपीनका अन्तःक्षेपण भी किया जाता है।"

"ज्वर और विसर्प आदि व्याधियोंमें प्रलाप, अनिद्रा, वातसंस्थामें उग्रता और व्याकुलता उपस्थित होनेके साथ यदि नेत्रकी कनीनिका आकुंचित हो, तो अफीमका प्रयोग नहीं किया जाता; किन्तु उस समय सूची बूटीका ही प्रयोग किया जाता है। कपूर या कस्तूरीके साथ मिलाकर देनेसे अच्छा लाभ पहुँच जाता है।"

"निमोनिया—न्युमोनिया रोगमें आकस्मिक उपशम (Crisis) होनेपर सूचीका उपयोग करनेसे वातनाड़ियोंको उत्तेजित करके लाभ पहुँचाती है।"

“कण्ठरोहिणी—कण्ठरोहिणी रोगकी प्रथमावस्थामें जब कण्ठनलिका और उपजिह्विकाएं प्रदाहयुक्त होगई हों, किन्तु रसस्रावकी उत्पत्ति न हुई हो; तब तक सूची स्वरसका उपयोग करनेसे यथेष्ट फलकी प्राप्ति होजाती है।”

“ग्रन्थिविसर्प—(Erythema Simplex) इस व्याधिमें सूची स्वरस दिनमें ३ बार देते रहनेसे रोगका सत्वर दमन होता है।”

“हृदयरोग—हृदयके कतिपय रोगोंमें जब नाड़ी प्राणदानाड़ियोंकी उत्तेजना (कार्य विकृति) से अस्वाभाविक मंद होगई हो; तब बेलाडोना उपयोगी ओषधि है। कण्ठरोहिणी जन्य पक्षवधमें हृदयगति मंद होनेपर यह लाभदायक माना गया है। एवं वातनाड़ियोंकी विकृतिसे उत्पन्न हृदयावरोधपर यह अति हितकारक सिद्ध हुआ है।”

“हृदयके कपाटकी वेदनासे उत्पन्न हृत्कम्पमें हृदयपर सूची लेप या सूचीके मर्दनका प्रयोग किया जाता है। यदि रोग प्रबल आशुकारी है, तो सूचीकी अपेक्षा डिजिटेलिसका उपयोग विशेष लाभदायक माना जाता है। द्विपत्र कपाट की पीड़ामें कभी कभी सूची बूटीसे अच्छा लाभ पहुँच जाता है; किन्तु प्रयोग अधिक दिनोंतक करना चाहिये। अतः कितनेक चिकित्सक शीघ्र फलदायी डिजिटेलिसको व्यवहृत करते हैं।”

“अस्त्रचिकित्सा—करनेके पहले एट्रोपीनका उपयोग अन्तःक्षेपण रूपसे किया जाता है। जिससे चेतनाहर क्रिया होकर हृदयसे सम्बन्धवाली प्राणदानाड़ियोंकी क्रियाका दमन होता है और हृदयकी गतिमें प्रतिबन्ध नहीं होता। इसके अतिरिक्त यह लालास्राव और श्वासनलिकाके स्रावका भी ह्रास करा देता है।”

“हृदयावरोध—यदि किसी हेतुसे या किसी रोगमें हृदयकी क्रियाके लोपका उपक्रम होनेपर, यथा धक्का (Shock) लगने या दुर्बलताजनित अकस्मात् हृदयक्रिया लोप (Syncope) तथा विसूचिका रोगमें शक्तिपातावस्था आदिमें सूची बूटी उत्कृष्ट औषध है। १/१५० से १/४० ग्रेनतक एट्रोपिन सल्फासका अन्तःक्षेपण करनेपर तत्काल हृदयक्रिया सबल बनजाती है।”

“मदात्यय रोगमें–सूची बूटी वातसंस्थानमें उत्तेजना दर्शाकर तथा निद्राप्रद बनकर विलक्षण उपकार दर्शाती है। कनीनिका संकुचित होनेपर अफीमका निषेध होता है, तब इससे अच्छा लाभ पहुँच जाता है।”

“नेत्ररोग—विविध चक्षुरोगोंमें कनीनिकाका प्रसारण और वेदनाका निवारण करानेकेलिये सूचीबूटीका स्थानिक प्रयोग किया जाता है। उदा० मोतियाबिन्दु (Cataract) होनेपर प्रथमावस्थामें दृष्टिमणि (Crys'alline-

Lens) का मध्यम भाग मात्र यदि विकृत हुआ हो, तो सूची (एट्रोपिया) का प्रयोग करनेसे कनीनिका (Pupil) में चारों ओरसे प्रकाश प्रवेश करके दृष्टि-मणिकी विकृतिको दूर कर देता है। मोतियाबिन्दु परिपक्व होनेपर अस्त्रचिकित्सा करनेके पहले एट्रोपीनका स्थानिक प्रयोग करनेसे कनीनिका प्रसारित होकर तारामण्डल (Iris) कोअस्त्र मार्ग से दूर रख देता है। इस हेतुसे वह कट नहीं सकता। इसके अतिरिक्त कनीनिका प्रसारित होनेसे मोतियाबिन्दु सरलतापूर्वक निकल सकता है; तथा अस्त्र चिकित्सा करलेनेपर कटेहुये शुक्लमण्डल (Cornea) का तारामण्डलके साथ चिपक जानेका सन्देह नहीं रहता। एवं अस्त्र जनित वेदना और प्रदाह आदि भी निवारित होते हैं।"

तारामण्डल प्रदाह—(Iritis) रोगमें सूचीका प्रयोग करनेपर कनीनिका प्रसारित होती है। जिससे रक्तस्थ फाइब्रिन (Fibrin) द्रव्यद्वारा कनीनिकाका अवरोध होनेकी भीति नहीं रहती। एवं प्रदाहजनित पीड़ाकी निवृत्ति होती है।"

"नेत्रमें एट्रोपिन डालनेपर इसका प्रवेश अग्रिमा जलधानी (Anterior Chamber) में होनेपर तीसरी वातनाड़ी के शाखा समूहका पक्षवध होता है। यह शाखा समूह कनीनिका संकोचक (Sphicter Pupillae) पेशीका पोषण करता है। यह पेशी वातनाड़ी के पक्षवधके हेतुसे दुर्बल बन जाती है। एवं इड़ापिङ्गला नाड़ियोंके तन्तुपर प्रभाव पहुँचनेपर शैथिल्यकर मांसपेशी (Dilator Muscle) उत्तेजित होती है। यह क्रिया पूर्णांशमें स्थानिक होती है यदि इसमें वेदना होती हो, तो वह तत्काल दूर होजाती है।"

"वक्तव्य—संधानपेशी (Ciliary muscle), जो तारामण्डलकी बाहरकी परिधिमें अवस्थित है, उसका पक्षाघात होनेसे दूर देखकर निर्णय करने वाला स्थान नष्ट होता है। एवं नेत्रके भीतरका रक्तभार बढ़ जाता है। इसी हेतु से अधिमन्थ (नेत्र पटलमें)तरलाधिक्यसे दबाववृद्धिरूप विकार (Glaucoma) में एट्रोपियाका उपचार निषिद्ध किया है।"

"शुक्ल मंडलमें क्षत होनेपर सूची बूटीका स्थानिक प्रयोग करनेसे कनीनिका प्रसारित होती है। जिससे शुक्लमण्डल तारामण्डलके साथ चिपक नहीं जाता। एवं यदि शुक्लमण्डल का भेदन करे, तो भी उस छिद्र (क्षत) मेंसे तारा मण्डलके निकलनेकी भीति नहीं रहती।"

"वातप्रकोप-गलगण्ड वा इतर कारणसे उत्पन्न चक्षुप्रदाहपर सूचीबूटीका प्रयोग करनेसे सत्वर पीड़ा शमन होती है। एवं प्रकाशकी ओर देखनेके कष्ट और वेदनाका ह्रास होकर रोग निवृत्त होजाता है। इनके अतिरिक्त सूची द्वारा कनीनीका प्रसारित करनेपर नेत्रके भीतर विविध रोगोंका निर्णय सरलता पूर्वक होजाता है। नेत्र वीक्षण (Ophthalm oscope)यन्त्रद्वारा नेत्रके भीतर देखने

के लिये एट्रोपियाके प्रयोगकी पूरी पूरी आवश्यकता रहती है।

उपर्युक्त उद्देश्यकी सिद्धयर्थ सूचीका महलम नेत्र पुटपर और नेत्रके चारों ओर मर्दन करना चाहिये; या घन २ ग्रेनको १ औंस जलमें मिलाकरके २ बूंद नेत्रमें डालने चाहिये; अथवा एट्रोपियाके द्रवके बूंद डालने चाहिये।

"मूत्ररोग—मूत्रयन्त्र और जननयन्त्रके रोगोंपर सूची उपयोगी है। यथा—सुजाकजनित मूत्रप्रसेक नलिकामें वेदना (Chordee), शुक्रमेह (Spermat. orrhoea) मूत्र धारण की अक्षमता (Retention of urin), के कतिपय प्रकार, रात्रिमें बालकोंका शय्यामें मूत्रत्याग, मूत्राशय, गविनि (ureter) और मूत्रप्रसेक नलिकाका वेदनायुक्त आक्षेप, अश्मरी, पौरुषग्रन्थि प्रदाह (Prostatitis) और मूत्राशय प्रदाह (Cystitis) आदिपर हितावह है।"

"मूत्रप्रसेक नलिका, मूत्राशय अवरोधक मांसपेशी और मलद्वार अवरोधक मांसपेशीके आक्षेपको दूर करनेकेलिये सूची बूटीका स्थानिक प्रयोग अति उपकारक है। लिंग नालके भीतर प्रयोगार्थ बुजीद्वारा इसके मलहमका प्रवेश और मूलाधार पीठपर मर्दन कराना चाहिये।"

"सूतिका रोगमें सांथल की शिराका आशुकारी प्रदाह (Phlegmasia Dolens) होनेपर सूचीबूटीके मलहमका स्थानिक प्रयोग करनेपर लाभ होजाता है। एवं गर्भाशय मुखकी कठिनताके हेतुसे प्रसवमें कष्ट होनेपर इस महलमका स्थानिक प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त सूचीका आभ्यन्तरिक प्रयोग भी किया जाता है।'

"लाल विसूचिका बालकोंको अपचनजन्य विसूचिका होनेपर सूची बूटी लाभदायक ओषधि है। इस व्याधि में ४ उद्देश्यसे चिकित्सा कीजाती है।" १. आभ्यन्तरिक यन्त्रों में से रक्त पूर्णताका ह्रास कराना। २. समग्र शरीरमें कैशिकाओंकी क्रिया (Capillary Action) का संरक्षण। ३. अन्त्रकी मांसपेशियोंके श्लैष्मिक आवरणको सबल बनाना। ४ शारीरिक शक्तिकी वृद्धि ये सब उद्देश्य सूची बूटीके स्वरसके प्रयोगसे साधित होते हैं। इसरोगके सब विकार लक्षणोंसे विपरीत सूचीकी क्रिया होती है। रक्तसंचालन संस्थाकी अवसन्नताके हेतुसे सातिशय दुर्बलता और रसोत्सृजन आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इन सब विकृतियोंका संशोधन सूची बूटी करती है।"

" अन्त्रावरोध रोग में कभी कभी यह विलक्षण लाभ पहुँचाती है। इस रोगपर गुदामें पिचकारी रूपसे सूची स्वरसका प्रयोग किया जाता है।

"मुख पाक—पारद सेवनके हेतुसे अत्यन्त मुँह आनेपर सूची बूटीका सेवन करानेपर शीघ्र प्रतिकार होता है।"

"गांठका आशुकारी प्रदाह,शीतलतासे उत्पन्न कर्णमूलिक प्रदाह (Mumps)

और कण्ठ, स्तन आदि स्थानोंमें प्रदाह होनेपर सूचीका स्थानिक और आभ्यन्तरिक प्रयोग करनेपर उपकार होजाता है।"

"अवयवोंके ऊपर और त्वचाके पास रही हुई ग्रन्थिकी वृद्धि होनेसे पीड़ा होती हो; उसपर सूचीका लेप लगानेसे वेदना दूर होती है; और ग्रन्थिका ह्रास हो जाता है। यदि उस स्थानपर रोम हों, तो उनको दूर करदेना चाहिये। फिर लेप लगाना चाहिये। कदाच भूलसे बालोंको दूर न किया हो, तो पट्टी खोलने के समय अल्कोहालसे उसे भिगोकर फिर खोलना चाहिये। लेपको ८-१० दिन रखना चाहिये।"

"कर्कस्फोट—गर्भाशयपर कर्कस्फोट होनेपर वह निवृत्त तो नहीं हो सकता; किन्तु पीड़ाको दूर करनेकेलिये १ ग्रेन सूचीके घनकी सपोजिटरी (वर्ति) रूपसे प्रयोग करना चाहिये। कमरपर लेप लगानेसे भी लाभ पहुँचता है। यदि कर्कस्फोटका क्षत अति फैल गया हो, तो इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये।"

"गलगण्ड और अर्बुद—इन रोगोंमें वेदना और व्याकुलताको दूर करने के लिये सूची बूटी विशेष उपयोगी है। इसका आभ्यन्तरिक और बाह्यप्रयोग किया जाता है।"

"विविध प्रकारके स्फोटक, विद्रधि आदि रोगोंमें प्रदाहके दमन और वेदना के निवारणकेलिये सूचीबूटी प्रयोजित होती है। विद्रधि, अर्बुद, कर्कस्फोट, ग्रन्थि आदिके प्रदाहके प्रारम्भमें इसका प्रयोग करनेपर पूयोत्पत्तिका निवारण होता है। एवं पूय होनेपरभी प्रयोग करनेसे वेदना और प्रदाहकी निवृत्ति होती है। इन सब स्थानोंपर सूचीका उदर सेवन विशेष फलप्रद होता है।"

१. वातशूल—विविध वातप्रकोपज शूलरोग और इतर वेदनाजनक रोगोंमें वेदनाके निवारणार्थ यह अति उपकारक है। गृध्रसी, तीक्ष्ण, वातरक्त वातशूल तथा मांसपेशियोंके आमवातज आक्षेप आदि रोगोंसे उत्पन्न वेदनापर इसके मलहम या मर्दनका स्थानिक प्रयोग करनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है। इसके अतिरिक्त $\frac{1}{2}$ से १ ग्रेन मात्रामें एट्रोपीनका आभ्यन्तरिक प्रयोग किया जाता है। आमवातजनित पीड़ापर इसका मर्दन हितकारक है। परन्तु इतना लक्ष्यमें रखना चाहिये कि, इसके बाह्य प्रयोगद्वारा व्याधि प्रतिकार होता है, तो आभ्यन्तरिक प्रयोग न करें।

२. हृदयशूल—हृच्छूल रोगमें हृदयपर इसकी पट्टी लगानेसे लाभ होजाता है।

३. पार्श्वशूल—पर्शुकाके भीतर शूल (Intercostal Neuralgia) होनेपर विशेषत: कक्षा (Herpes Zoster) से शूल होनेपर इसका अन्त:क्षेपण देनेसे वेदनाका ह्रास हो जाता है। साथ साथ इसका आभ्यन्तरिक प्रयोग भी करना चाहिये।

अन्तरपर देते रहनेपर अश्मरीके निकल जानेमें सहायता मिल जाती है।

११. उदरशूल—यह शूल विशेषतः बालकको होनेपर सूचीसे तत्काल लाभ पहुँचता है। कब्जके साथ अपचन होनेपरसूचीका सेवन कराया जाता है। रोग प्रबल होनेपर १-२ ग्रेन मात्रामें सपोजिटरी (वर्ति) रूपसे प्रयोग करना चाहिये। बालकोंको मलावरोध, आफरा और उदरशूल होनेपर सूची अत्यन्त हितावह माना जाता है।

१२. अम्लपित्त—सूची स्वरस अम्लपित्त (Hyperchlorhydria) तथा आमाशयिक व्रण आन्त्रिक व्रण (Duodenal ulcer) जन्य अम्लपित्तकी उत्कृष्ट ओषधि मानी गई है। कारण, यह प्राणदा नाड़ियोंके अन्त भागपर अवसादक क्रिया करके अमाशयके भीतर आमाशयिक रसस्राव उत्पत्ति बन्द करती है। जिससे लवणाम्लकी उत्पात बहुत कम होजाती है। परिणाममें अन्न्याशयसे उत्पन्न आग्नेय रसका स्रावभी खमीर बननेमें निर्बल बन जाता है, तथा स्राव करनेवाली ग्रन्थियों सम्बन्धवाली प्राणदा नाड़ियोंके अन्त्रका पक्षाघात हो जानेसे आग्नेयस्राव कमभी होजाता है। इस कारणसे अम्लपित्त प्रधान व्याधियां निवृत्त होजाती हैं।

१३. स्तन्यशूल—स्तनोंमें शूलके सदृश वेदना होनेपर सूची अमोघ औषध है। यह दूधके अतिस्रावको रोकदेती है। स्तनोंपर पहले गुनगुने जलसे सेक करें। फिर सूचीघन या एट्रोपीनको ग्लिसरीनके साथ मिलाकर लगाना चाहिये या सूची मर्दनका प्रयोग दिनमें ४ बार करना चाहिये।

१४. युवतियोंका शिरदर्द—(अ) दुर्बलता और अतिशय परिश्रमके हेतुसे एक प्रकारका शिरदर्द होता है। जिससे भ्रूपर और नेत्रमें अतिशय पीड़ा होती है। नेत्र भीतरसे बाहर निकल जायेंगे, ऐसा भासता है। इस विकारपर सूचीस्वरस ३-३ घण्टेपर देनेसे दर्द शान्त होजाता है।

(आ). रक्तवृद्धिसह—(Congestive) शिरदर्द होनेपर प्रकाशकी ओर देखना असह्य होजाता है; मुँह लाल होजाता है; और कानमें गुंज होती है। इस दर्दपर भी सूची बूटी सफल ओषधि है।

१५. नेत्रप्रदाह—नेत्रकी श्लैष्मिककलाका प्रदाह (Conjuctivitis) होनेपर सूची (एट्रोपिया) के नेत्रबूंद डालने और उदरसेवन करानेपर प्रदाहकी निवृत्ति होजाती है।

१६. कर्णशूल—इस रोगपर एट्रोपिया अमोघ औषध है। ३ वर्षके बालक केलिये १ ग्रेन और १० वर्षके बालककेलिये ४ ग्रेन एट्रोपियामें १ औंस जल मिला गुनगुना करें। फिर बालकको करवट सुलाकर कानमें २-३ बूंदे डालें; और १०-१५ मिनटतक जलको रहने देनेसे शूलका निवारण होजाता है।

१७. अर्शरोग—अर्शके मस्सेमें वेदना होनेपर सूचीबूटीका मलहम दिनमें २ या अधिक वार लगाया जाता है। इस मलहमसे वेदना और सूजन दूर होती है।

१८. गुदाकी त्वचा फटना—इस पीड़ाके निवारणार्थ सूचीकामलहम उपयोगी है। वेलाडोना घन १ ड्राम, नागशर्करा १ ड्राम और वेसलीन (या सूअरकी चर्वी) ६ ड्राम मिलाकर मलहम बनालेवें।

१९. गुदसंकोचनी पेशीका आक्षेप—सन्निरुद्ध गुद होनेपर मल निकलनेका मार्ग आकुञ्चित होता है। फिर मल सरलतासे बाहर नहीं आ सकता। इस विकारमें सूचीका प्रयोग वर्तिरूपसे कियाजाता है।

२०. मुहांसे—तारुण्यपिटिका और चिकने स्राव निकालनेवाली ग्रन्थियोंका प्रदाह (Acnevulgaris) रोगमें प्रदाहके दमनार्थ सूचीघन को ३ गुने धोये घृतमें मिलाकर दिनमें दो वार ५-१० मिनटतक कुछ दिनोंतक स्थानिक मर्दन कराया जाता है।

२१. जीर्ण मलावरोध—बालक और युवा व्यक्तिको जीर्ण मलावरोधके कतिपय प्रकारोंमें सूचीका व्यवहार किया जाता है। एलुवा या अन्य विरेचन औषधिके साथ सूची घनसार मिला देनेसे उदरशुद्धि होती है और अन्त्रको कष्ट नहीं पहुँचता।

२२. निरुद्धप्रकाश—शिश्नाग्रत्वचा (Foreskin) आगेकी ओर मुड़ जाने (Phimosis) और खिंचाव होकर पीछेकी ओर मुड़जाने (Paraphimosis)पर इसके मलहमका स्थानिक प्रयोग करनेसे शीघ्र लाभ पहुँच जाता है।

२३. सुजाक—सुजाकके हेतुसे लिंगपर शोथ और कठिनता आनेपर कर्पूर मिलाहुआ वेलाडोनाके मलहमका स्थानिक प्रयोग करनेसे वेदना निवृत्त होकर लिंगमें शिथिलता आ जाती है। रात्रिको सोनेके समय मूलाधारपीठ (Perineum) पर मर्दन करना चाहिये।

२४. मूत्राशयप्रदाह—इस रोगमें सूची बूटीके स्वरसको अन्य प्रवाही ओषधि (चंदनासव या चन्दनके अर्क) के साथ देनेपर सत्वर लाभ पहुँच जाता है।

मूत्राशय मूत्र धारण करनेमें अक्षम होनेपर उसके प्रतिकारकेलिये सूची बूटीके समान दूसरी ओषधि नहीं है। किसी किसीको रात्रिमें निद्रावस्थामें मूत्र त्याग होजाता है। उसपर भी सूची बूटीका स्वरस अति हितावह है। बालकों को सूची स्वरस ५ बूंद शर्बत संत्रा ३० बूंद और जल ५ ड्राम मिलाकर देवें। इस तरह दिनमें ३ वार देते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें मूत्रधारण शक्ति सबल हो जाती है।

२५. उदकमेह (Diabetes insipidus)—इस रोगमें बार बार पेशाब होता रहता है, । 'तृषा अधिक लगती है परन्तु मधुमेहके समान शक्कर नहीं जाती, इस पर सूचीबूटी उत्तम औषध है। सूची या एट्रोपियाका सेवन करनेपर पेशाबके परिमाणका ह्रास होता है; किन्तु प्यासका निवारण नहीं होता।

२६. शुक्रस्राव—अनैच्छिक वीर्य पतनपर सूचीबूटी उपकारक है, कितनेकोंको स्वप्नमें शुक्रस्राव हो जाता है। उन सबको जसदभस्म (झिंक सल्फास) आध ग्रेन और सूचीघन चौथाई ग्रेन मिलाकर देनेसे रोगका निवारण होजाता है।

२७. लालामेह—पेशाबमें शुभ्रप्रथिन-लसीका (एल्ब्युमिन) दीर्घकाल पर्यन्त जानेपर वृक्कोंके भीतर रही हुई कैशिकागुच्छ और सूक्ष्म मूत्रवाहिनियां प्रायः नष्ट हो जाती हैं, तब सूची बूटी देनेसे मूत्रवृद्धि और एल्ब्युमिनके परिमाणका ह्रास होता है।

२८. बाल आक्षेप—दाँत निकलनेपर प्रतिफलित उग्रताजनित मांसपेशियोंका आक्षेप (धनुर्वातके चिह्न प्रतीत) होनेपर सूची महौषधि मानी जाती है। २–३ दिन देनेपर उपद्रवशमन होजाते हैं और दांत विनाकष्ट निकल आता है।

२९. कष्टार्तव—(Dysmenorrhea) में सूची बूटीके फाण्टकी पिचकारी देनेसे वेदनाका निवारण होता है। साथ साथ $\frac{1}{4}$ ग्रेन मात्रामें एट्रोपीनका २–३ बार आभ्यन्तरिक प्रयोग और कमरपर सूचीबूटीका प्लास्तर भी लगाना चाहिये।

३० श्वेतप्रदर—गर्भाशयके मुखपर क्षतजन्य श्वेतप्रदर और गर्भाशयमें वातनाड़ीशूल होनेपर सूचीका सेवन करानेपर उसका निवारण हो जाता है। गर्भाशय मुखके क्षतपर टेनिनके साथ सूची अर्क मिलाकर फुरेरीसे लगाया भी जाता है। यदि रोग अति उत्कट है, तो भी इस प्रयोगसे शमन होजाता है। गर्भाशय मुखकी श्लैष्मिक ग्रन्थियोंमें से अधिक स्राव होनेपर जो श्वेतप्रदर होता है, उसपर यह प्रयोग लाभ नहीं पहुँचा सकता; किन्तु उसपरसूची अर्क और सोहागाको जलमें मिश्रितकर पिचकारी रूपसे प्रयोग करनेपर लाभ पहुँच जाताहै।

३१. अतिस्वेद—प्रस्वेदके निवारणार्थ यह विशेष उपयोगी है। कितनेक व्यक्तियोंके हाथ-पैरोंके तल सर्वदा प्रस्वेदसे गीले रहते हैं। इस हेतुसे अति त्रास होता है। किसी किसीको कपालपर प्रस्वेद आता रहता है। किसीको पैरोंमें दुर्गन्धयुक्त प्रस्वेद आता है। इन सब अवस्थाओंमें सूचीका स्थानिक मर्दन करनेपर निश्चित लाभ हो जाता है।

यदि चाय, काफी आदि पेय या भोजन गरम गरम सेवन करनेके हेतुसे प्रस्वेद आता हो, तो मूल कारणका त्याग करा देना चाहिये। एवं आवश्यकता हो, तो सूचीबूटीका घनसार $\frac{1}{4}$ ग्रेन और १ ग्रेन झिंक ऑक्साइड मिला गोली

पिटिका को बनाकर सेवन कराना चाहिये। यह गोली शीतपित्त और तारुण्य भी दूर करती है।

राजयक्ष्मा रोग और प्रलापक ज्वरमें अति प्रस्वेद आनेपर सूचीका आभ्य न्तरिक प्रयोग या एट्रोपीनका अन्तः क्षेपण सर्वोत्कृष्ट उपचार माना जाता है।

३२. नासा रक्तस्राव—नासारन्ध्रमेंसे रक्तस्राव होनेपर रोगी बालक हो, या रक्ताधिक्यग्रस्त व्यक्तिको मस्तिष्कमें रक्तदबाव वृद्धिहोकर नाकसे पुनःपुनःरक्तस्राव होता हो, तो सूची और बच्छनागका उदरसेवन करानेपर रक्तस्रावका दमन हो जाता है।

३३. अफीम विष—इसपर एट्रोपिया और सूची प्रतिद्वन्द्वीरूपसे कार्य करती हैं; किन्तु मात्रा बहुत कम देनी चाहिये। जिससे श्वासकेन्द्रपर उत्तेजक क्रिया होती रहे; अवसादक क्रिया न हो सके। यदि अफीमसे प्रवल बेहोशी आ गई हो तो उस अवस्थामें एट्रोपिया कार्य नहीं कर सकता।

विष चिकित्सा—बेलाडोनाका प्रयोग मर्दन (लिनीमेण्ट) या लेप (प्लास्टर) रूपमें विस्तृत भागमें किया जाय, तो वह शोषित होकर विष प्रकोप दर्शाता है। फिर एट्रोपिन रूपान्तरित हुए बिना सत्वर मूत्रमेंसे पृथक् हो जाता है। कुछ अंश, स्तन्य और आंवलमेंसे निकल जाता है। १०से २०घण्टेमें सब लक्षण दूर हो जाते है। यदि विष प्रकोप प्रबल है और योग्य उपचार सत्वर न किया जाय तो रोगीकी मृत्यु होजाती है। इसकेद्वारा विपाक्त होनेपर पहले वमन और विरेचन करावें। फिर विषनाशार्थ योग्य परिमाणमें उद्भिज अम्ल औषध नीबूका रस, खट्टे अनारदानेका रस आदि प्रयोजित किये जाते हैं। माजूफल का क्वाथ और हरी चायका प्रयोग भी हितकारक है।

क्षार सेवन भी सूचीके मादक असरको दूर करता है। इस हेतुसे चूनेका जल, लाइकर सोडा, लाइकर पोटासीका प्रयोग किया जाता है।

शिरका मुण्डन करा उसपर बर्फ या शीतल जल की धारा डालने पर लाभ पहुँचता है। अल्प मात्रा में मोर्फिया देने से एट्रोपियाके लक्षण सब दूर होजाते हैं; और निद्रा आजाती है। मोर्फियाके विषप्रयोगके पश्चात् निद्रा आनेपर एट्रोपियाकी अधिक मात्रासे भी निद्रा भंग नहीं होती; और न मोर्फियाकी क्रियाका ह्रास होता। तथापि मोर्फियाकी औषध मात्रा बढजानेसे उत्पन्न विष प्रकोपमें एट्रोपियाद्वारा चिकित्सा करनेपर लाभ होगया है। इस दृष्टिसे दोनों परस्पर के विषनाशक है।

वक्तव्य—शक्तिका अधिक क्षय होनेपर उत्तेजक ओषधि नहीं देनी चाहिये।

(१०६) सेमल

सं. शाल्मली, रक्तपुष्पक, दीर्घद्रुम, स्थूलफल। गोंदकानाम मोचरस। हिं- सेमल, सिंवल, पं. सिंवल। सिमुलगाछ, सेमुल। म० कांटेसावर, लाल सांवर। गु० शीमलो। क. केंपुवुरग। ते० वुरुग। ता. इलक, पुलाशाल्मली। कों. सावरिरुकु। अं. Silk cotton tree. ले० Bombax Malabaricum

परिचय—वोम्वेक्स=जिसवृक्षजातिको फलीमें रुई है, वह। मलवारिकम् =मलवारवासी। यह वृक्ष भारतके सव उष्ण प्रदेशोंमें होता है। वृक्ष कांटेदार। देशभेदसे ऊंचाई न्यूनाधिक। कितनेक स्थानोंमें ६० फीट। काठियावाड़में १५से ३० फीट। प्रत्येक गुच्छमें पान ५-७। पान शीतकालमें पतन शील, ६से१२ इञ्च लम्बे। पुष्प लाल या सफेद, वसंतऋतुमें आते हैं। फलोंमें कोमल रुई रहती है। फल ६-७" इञ्च वड़ा अण्डाकार। मूल अति गहराईमें चला जाता है। लकड़ी और अन्तरछालके वीच लालरंगका गोंद सदृश चिपचिपा प्रवाही रहता है। वह जमकर गोंद होजाता है, उसे मोचरस कहते हैं। मूलको सेमल मूसली भी कहते हैं। लकड़ी नरम और हल्के वजनकी, दियासिलाई वनानेमें उपयोगी। औषधरूपसे फूल, मोचरस और एक वर्षके भीतरकी आयुवाले वृक्षका कंद (पुराने वृक्षके मूलके वहुत नीचे रहाहुआ कंद) उपयोगमें लिये जाते हैं।

मात्रा—मोचरस २० से ३० रत्ती। कंद ३ से ६ माशे।

गुणधर्म—सेमल शीतल, स्वाद और विपाकमें मधुर, स्निग्ध, शुक्रवर्द्धक और कफवर्द्धक। मोचरस कसैला, कफ वातशामक, और ग्राही, कंद मधुर, वृष्य, वल्य।

डाक्टर देसाईके मतानुसार सेमल प्रवल संग्राही किन्तु स्नेहन है। सेमल मुसली स्नेहन, संग्राही, पौष्टिक, बृंहण और वय:स्थापक है। इसकी कुछ उत्तेजक क्रिया जननेन्द्रिय पर होती है। कोमल फल उत्तेजक मूत्रल और कासहर है। इसकी क्रिया मूत्रेन्द्रिय पर पाठा (Cissampelos Hexandra) के समान शामक होती है।

उपयोग—शाल्मलीका उपयोग प्राचीन कालसे होरहा है। चरक संहिताके भीतर पुरीष विरजनीय, शोणितास्थापन और वेदनास्थापन इन ३ दशेमानियोंमें तथा वमनोपग द्रव्य संग्रहमें उल्लेख किया है और अनेक रोगोंके प्रयोगोंमें शाल्मलीको मिलाया है।

डाक्टर देशाईने लिखा है कि मोचरस जीर्ण अतिसार, संग्रहणी और प्रवाहिकापर अच्छा उपयोगी है। मासिक धर्ममें अतिरज:स्राव होनेपर भी यह उपयोगी होता है। सुजाक और प्रवाहिकामें निर्वलता दूरहोनेकेलिये सेमलके-कंदके चूर्णको दूधमें औटाकर दिया जाता है। यह उत्तम वल्य और कुछ वृष्य है।

छोटे वृन्तसह। फलकच्चा होनेपर हरा, पकनेपर हलका पीला और कुछ भाग लाल।

उत्पत्तिस्थान मूल यूरोप और एशियाके शीतल पहाड़ी प्रदेश। वर्तमानमें पृथ्वीके अनेक शीतल पहाडोंपर बोया जाता है। भारतमें काश्मीर, हिमालय, महाबलेश्वर, नीलगिरी, आदि पहाड़ोंपर बोया जाता है। उत्तर पश्चिम हिमालय में नैसर्गिक भी होगया है। पंजाबमें फूल एप्रिलसे जून; देहरादूनमें फल मार्चसे मई और फल डिसेम्बर जनवरीमें।

नैसर्गिक उत्पन्न फल बहुत खट्टे, कसैले और छोटे। वे कच्चे नहीं खाये जाते। उनका उपयोग मुरब्बेमें अच्छा होता है। जो अभी खाया जाता है, उसकी उत्पत्ति अति परिश्रमसे हुई है। जंगलकी अनेक अच्छी अच्छी जातियों को एक दूसरेके साथ कलमकर अनेक वर्षोंतक वोनेपर सेवफल स्वादु बनता है। पाइनीने लिखा है कि, जंगलकी २२ जातिका शोध किया है, उनमेंसे इस समय मिश्र हुई उपजाति लगभग २००० संसारमें बोयी जाती हैं।

गुणधर्म—रस और विपाक मधुर, शीतवीर्य, रुचिकर, कामोत्तेजक, बृंहण, गुरु, शुक्रवर्द्धक, कफकारक और वातपित्तहर है। चरक-सुश्रुतमें सेवको कषाय-मधुर और ग्राही कहा है।

सेवमें प्रथिन आदि-प्रति औंसमें परिमाण।

सेवप्रकार	प्रथिनग्राम	कर्वोदकग्राम,	खट मि०ग्रा०,	लोह मि०ग्रा०	नमक,	उष्मैकं
वृन्तपक्व	०·१	३·०	१	०·१	×	१२
सूखाकच्चा	०·६	१२·५	·८	०·६	१०	५२
पकायाहुआ०	·१	२·५	१	०·१	×	१०

सेवमें जीवनसत्व—प्रति औंस परिमाण।

प्रकार	अ० युनिट	ब १ यूनिट	ब २ मि०ग्रा०	निको० मि०ग्रा०	क० मि०ग्रा०
वृन्तपक	११ (C)	४	×	०·१	१
कच्चासूखा	२८ (C)	×	(०·०१)	(०·४)	×
पकायाहुआ	११(C)	३	×	०·१	×
उबाले हुये	९ (C)	३	×	०·१	×

सेवके भीतर मैलिक और टार्टरिक अम्ल अवस्थित हैं। इस हेतुसे यह अमाशयमें १॥ घण्टेमें पच जाता है और दूसरे खाये हुये अन्नको भी पचा देता है। सेवके भीतर नासपातीकी अपेक्षा स्फुर (फॉस्फरस) की मात्रा दूनी और लोहका परिमाण १॥ गुणा होनेसे रक्त और मस्तिष्ककी निर्बलतावालोंकेलिये यह अधिक हितावह है। निद्रानाशसे पीड़ितोंको रात्रिको खिलाने पर शान्त निद्रा आजाती है।

सेवमूल सत्व—ताजे मूलकी छालको जलके साथ २ घण्टे उबाल क्वाथ छानकर अलग रखें। फिर उसी छालको नये जलमें मिला २ घण्टे तक जलमें उबालकर छानले। इस दूसरे क्वाथको शीतल स्थानमें रखनेसे लगभग २० घण्टेके पश्चात् तलमें रवेदार सत्व (क्षार) बैठ जाता है। इसे एकट्ठाकर शीतल जलसे धोकर सुखालेनेसे शुद्ध सत्व बन जाता है। यह क्षार लगभग ३ प्रतिशत होता है।

पहले क्वाथमें शराब मिलाकर १२ घण्टेतक रहने देवें। फिर शराबको छान अर्कको सुखालेनेपर ५ प्रतिशत क्षार संगृहीत होता है। इन दोनों क्षारको एकत्र करलें। यह सत्व मैले सफेद रंगका और बहुत कड़वा होता है। इसमें रवे सुईकी नोकके समान या पतले होते हैं। यह शीतल जलमें मिश्रित नहीं होता। यह विषम ज्वरपर क्विनाईनके समान गुणदायक है। मात्रा–२ से ४ रत्ती। (डा० देसाई)

उपयोग—आयुर्वेदके शास्त्रीय प्रयोगोंमें सेवका उपयोग नहीं लिखा। अनेक रोगोंमें पथ्यरूपसे दर्शाया जाता है। अतिसार, अर्श, प्रवाहिका, मलावरोध, मोतीजरा, पित्तज्वर, जीर्णज्वर, प्लीहावृद्धि, अरुचि, अजीर्ण, शारीरिक निर्बलता उन्माद, शिरदर्द, स्मरणशक्तिका ह्रास, घबराहट, यकृद्वृद्धि, हृदयविकार, अश्मरी, मेदवृद्धि, रक्तविकार, शुष्क श्वास, शुष्क कास और वातविकारोंमें हितावह है।

जीर्ण रोग जब दीर्घकालसे त्रास देता रहता है; पाचनक्रिया बिगड़ जाती है, बार बार थोड़ाथोड़ा दस्त होता रहता है, मलावरोध और उदरमें भारीपन बना रहता है तथा अधिकसे अधिक निर्बलता आती जाती है और आलस्य बना रहता है, तब अनाज बन्द करा सेवकल्प कराया जाय, तो थोड़े ही दिनोंमें सब विकार दूर हो जाते हैं, पचनक्रिया सबल बन जाती है, स्फूर्ति आती है और मुख मण्डल तेजस्वी बन जाता है। थोड़े थोड़े दिनोंमें बुखार उलट उलटकर आता रहता हो, पथ्यका पालन होते हुए थोड़ी वायु, ठण्डी या गर्मी लग जाने या थोड़ा परिश्रम होनेपर बुखार आजाता हो, तो रक्तादि धातुओं के भीतर रहे लीन विषको जलानेके लिये अनाज बंद करा सेवकल्प कराया जाय, तो थोड़े ही समयमें बुखार रूपी भूतसे सदाकेलिये छुटकारा मिल जाता है और फिर शरीर धीरे धीरे बलवान बन जाता है।

जिन रोगियोंकी अग्नि अति मंद हों, पतले दस्त होते हों, दस्तमें कुछ कच्चा आहार भी जाता हो, उदरमें भारीपन बना रहता हों, उदरपर दबानेसे पीड़ा होती हो; उन रोगियोंकेलिये तक्र कल्प हितावह होता है; किन्तु ज्वर या शोथ भी रहता हो, तो तक्र कल्प नहीं करा सकते। ऐसी अवस्थामें केवल सेवपर रख दिया जाय, तो रोग शनैः शनैः दमन होजाता है; ज्वर दूर होता है। फिर तक्र

और सेवका सेवन हो सकता है।

रक्तविकार होनेसे बार बार फोड़े निकलते रहते हों, या त्वचा रोग जीर्ण होजानेसे त्वचा शुष्क होगई हो, कण्डू रात्रिको अधिक सताती हो, पामाके पीले पीले फोड़े अंगुलियोंपर और नितम्बपर त्रास देते हों, निद्रा शान्त न मिलती हो, तो अन्न बन्द करा सेव कल्पका सेवन कराना चाहिये।

जिन रोगियोंके पेशाबमें यूरिक एसिड (मूत्राम्ल) अधिक मात्रामें जाता हो और सांधों सांधोंमें दर्द होता हो, पचनक्रिया दूषित रहती हो, उनको सेव कल्पपर रखनेसे थोड़े ही दिनोंमें यकृद्क्रिया सुधरती है। फिर मूत्राम्लका परिमाण कम हो जाता है।

मेदवृद्धि होनेपर थोड़ा-सा परिश्रम सहन नहीं होता। क्षुधा तृषाका वेग भी सहन नहीं होता। प्यास लगनेपर तुरन्त जल पीनाही पड़ता है। अन्यथा घबराहट उत्पन्न हो जाता है। थोड़ा-सा चलनेपर श्वास भर जाता है। ऐसे रोगियोंको अपनी देह सबल बनानी हो, तो अन्न छोड़कर सेवका कल्प करना चाहिये।

आमातिसार जीर्ण बननेपर मलमें आम बहुत गिरता है। योग्य ओषधिसे थोड़े दिन स्वस्थ होनेका भास होता है, पुनः आमातिसारका आक्रमण होकर ५-७ दस्त होजाता है। प्रारम्भावस्थामें एरण्ड तैलसे लाभ होजाता है। किन्तु अन्त्र निर्बल बननेपर एरण्ड तैल भी सहन नहीं होता। ऐसी रुग्णा या रोगियोंको सेव कल्प करानेपर अच्छा लाभ पहुँच जाता है।

वक्तव्य—(अ) सेव कल्पके रोगीको दूध अनुकूल रहता हो, तो सुबह रात्रिको दूध देवें और दोपहरको सेव देते रहें। दूध और सेवके बीचमें ३ घण्टे का अन्तर रखना चाहिये। एवं दूध और सेव १ समयमें उतना लेना चाहिये कि ३ घण्टेके भीतर भीतर उसपर आमाशयकी पचनक्रिया पूरी होजाय।

(आ) जिन रोगियोंको दूध अनुकूल नहीं है, उनको गायके ताजे मधुर दहीका मट्ठा दे सकते हैं। यदि दस्तमें मलका रंग सफेद हो तो दहीकी मलाई निकालकर मट्ठा बनाना चाहिये। शोथ हो तो मट्ठेमें नमक नहीं मिलाना चाहिये।

(१) ज्वर—(अ) सेव वृक्षकी छाल ४ माशे और थोड़ी चायको २० तोले उबलते जलमें डालकर ढक देवें। १० मिनट बाद जलको छान लेवें। फिर उसमें नीबूका टुकड़ा निचोड़, १-२ तोले शक्कर मिलाकर पिलानेसे घबराहट, तृषा, थकावट और दाह दूर होते हैं; ज्वरका ह्रास होता है और मन प्रसन्न होता है। इस प्रयोगका उपयोग अमरिकामें बढने घटनेवाले बुखार, बने रहनेवाले बुखार और यकृद् विकारसे आनेवाले ज्वरमें सफलतासह करते रहते हैं।

(आ) विषम ज्वरमें सेवमूल सत्त्व तत्काल लाभ पहुँचाता है।

(२) नेत्रपीड़ा—अति परिश्रमसे, निर्बलतासे या आमवातिक वेदनासे

आँखोंमें भारीपन रहता हो, दृष्टि मन्द हो और मंद मंद पीड़ा रहती हो, तो रात्रिको सेवको गरम राखमें भून, कुचल, पुल्टिस बनाकर बांधते रहनेसे कुछ दिनोंमें लाभ होजाता है। कुछ लाली रहती हो, तो वह भी दूर होजाती है।

(३) मलावरोध—अनेक जीर्ण मलावरोधके कितनेक रोगी रोज सौम्य विरेचन लेते हैं। कुछ वर्षोंके पश्चात् विरेचन लेनेपर भी उदरशुद्धि नहीं होती। उन रोगियोंके लिये रात्रिको सेवका सेवन आशीर्वादके समान है एवं नये मलावरोधके रोगीको और ज्वरावस्था आदिमें सामान्य मलावरोध होनेपर भी सेव देनेसे उदरशुद्धि होजाती है। पचनक्रिया अति बिगड़ी हो, तो गरम राखमें सेवको सेककर देना चाहिये। अंग्रेजीमें कहावत है कि:—

To eat an apple going to bed.
Will make the doctor beat his breast.

(१०८) सोया

सं. शतपुष्पा, वनशोपा, शताह्वा, पीतपुष्पा, सूक्ष्मपत्रिका। हिं. सोया, सोआ बनसौंफ। बं. शुल्फा। म. बालन्तशेप, गु. सुवा। अ. शुवित। फा. शोल। काश्मीर–सोई। ता. सतकुप्पी। ते. सोम्पा। अं. Dill seed. ले० Peucedanum Graveolens.

परिचय—ग्रेवियोलेन्स=अप्रिय सुगंधवाला। बहुवर्षायु, भारतमें वर्षायु, सुन्दर, चिकना क्षुप। ऊंचाई २-३ फीट। तना रेखाओंवाला। पान २-३ विभाग वाले। उसका अन्तिम खण्ड रेखाकार। फूल मिश्रित छत्रमें पीले, १॥ इञ्च व्यासके, प्रायःफल आनेपर ३॥ इञ्चतक बढ़नेवाला। पुष्पवृन्त १-२ इञ्च लम्बा कोमल। पुष्पशलाका १ से ५ इञ्च लम्बी। पंखड़ियां ५ पीली। पुंकेसर ५। तस्तरी २ खण्डवाली। बीजाशय २ खण्डवाले निम्न भागमें। फूलोंके भीतर जो बीज लगते हैं, वे ही उपयोगमें आते हैं।

उत्पत्तिस्थान—भारतके उष्ण और उप-उष्ण प्रदेशोंमें सर्वत्र बोयाजाता है।

गुणधर्म—सोयारसमें कड़वा, अनुरस चरपरा–मधुर, विपाक चरपरा वीर्य किञ्चित् उष्ण, स्निग्ध, बलप्रद, वृष्य, हृद्य, रुचिवर्द्धक, पाचन तथा वातप्रकोप, कफप्रकोप, प्लीहावृद्धि, कृमि, नेत्ररोग, रक्तविकार, क्षत, क्षय, अर्श, योनिशूल, मलावरोध, कफकास, वमन और अग्निमान्द्यका नाशक है।

पानोंका शाक अग्निप्रदीपक, उष्णवीर्य, रुचिकर, स्तन्यवर्द्धक, वृष्य, पथ्य वातहर तथा गुल्म, उदरशूल, ज्वर, गर्भाशयशूल आदिका नाशक है।

डाक्टरी मतानुसार सोया सुगन्धित, उत्तेजक, पूतिहर, उदरवातहर, अग्निप्रदीपक और गर्भाशय उत्तेजक है तथा विरेचन ओषधि द्वारा होनेवाले उदरशूल

आध्मान और अन्त्रशूलको नष्ट करता है। यह विशेषत: वालकोंके अफारापर व्यवहृत होता है। थोड़ी मात्रामें उदर सेवन करनेपर आमाशय रसकी वृद्धि कराता है। यह निःश्वास द्वारा जब वाहर निकलता है, तब श्वसन संस्थाकी श्लैष्मिक कलामें उत्तेजना पहुँचाकर कफ निःसारक मृदु क्रिया दर्शाता है।

सोयेका तैल हलके पीले रंगका, बीजोंके समान सुगंधवाला, स्वादमें मधुर और सुगन्धित है। आपेक्षिक गुरुत्व ९०० से ९१५ है। अल्कोहाल और इथर में मिलजाता है। मात्रा १ से ३ बूंद।

रासायनिक पृथक्करण—सोयाके भीतर उड़नशील तैल रहा है। उसमें मुख्य द्रव्य टर्पेन (Terpene) और कार्वोन (Carbone) हैं। इनमें कार्बोन ४३% से ६३% है। टर्पेन कम है। इनके अतिरिक्त फेलनड्रिन (Phellandrine) है।

अर्क शतपुष्पा—सोया १ पौंड और जल २० पौंड (२ गेलन) में २४ घंटे भिगो देवें। फिर अर्क खेंच लेवें। मात्रा १ से २ औंस।

मात्रा—बीज २ से ६ माशे।

उपयोग—सोयाका उपयोग घरेलू औषधरूपसे और आयुर्वेद शास्त्रमें प्राचीनकालसे होरहा है। चरकसंहितामें आस्थापनोपग और अनुवासनोपग दशेमानियोंमें शतपुष्पाका उल्लेख है। अनेक देशोंमें प्रसूताकी पचनक्रिया और दूध वढ़ाने तथा विष और कीटाणुओंको नष्टकरनेकेलिये भोजन करलेनेपर मुखशुद्धि केलिये सोया खिलानेका रिवाज है। वालकोंके उदरशूल, वमन, हिक्का आदिमें इसका अर्क निर्भय रूपसे दिया जाता है। यह अर्क पचनक्रिया भी वढाता है। सोयामें कुछ गर्भाशयोत्तेजक गुणभी रहा है। किन्तु मासिकधर्म शुद्धिकेलिये इसका उपयोग क्वचित् ही होता है।

१. अतिसार—मेथीदाने और सोयाका चूर्ण मट्ठे या दहीके साथ मिलाकर खिलानेसे पचनक्रिया सुधरकर अतिसार दूर होजाता है। जब दस्तमें दुर्गन्ध आती हो, आम गिरताहो और उदरमें भारीपन रहताहो, तब यह प्रयोग हितावह है।

२. वातार्श—सूखे मस्सेमें वेदना होने और सूजन आनेपर पहले उसे थोड़े समय गरम जलसे सेकें। फिर वच और सोयाको तैलके साथ पीस निवाया कर पुल्टिस वनाकर वांध देनेपर शोथ और शूल दोनों नष्ट होकर वातार्श शमन होजाता है।

३. उदरकृमि—३-४ वर्षके वालकके उदरमें छोटे-छोटे कृमि होगये हों तो १ माशा सोयेका चूर्ण, २ रत्ती डीकामाली और चौथाई रत्ती हींगको थोड़े

मट्ठेमें मिलाकर सुबह पिला देवें। इस तरह ४-६ दिनतक पिलाते रहनेसे कृमि मर जाते हैं और नयी उत्पत्ति रुक जाती है।

उदरशूल—पचनक्रिया योग्य न होनेसे भोजनके २-३ घण्टेबाद उदरपीडा होती रहती हो तो भोजन करनेपर मुखशुद्धिकेलिये सोया चबाते रहें और रात्रि को सोनेके पहलेभी सोया लेलेवें। इस तरह थोड़े दिनतक करते रहनेपर अफारा और उदरके भारीपनसह उदरपीड़ा दूर होती है और शौच शुद्धि होती रहती है।

यदि उदरशूल, आमाशय व्रण या ग्रहणी क्षतके कारणसे होता हो और साथमें वमनभी होजाती हो, तो इस प्रयोगसे लाभ नहीं होता। ऐसी अवस्थामें तो सोडा या अपामार्गक्षार आदि औषधिका सेवन कराया जाता है।

५. वातशूल—सोया, देवदारु, ४-४ माशे हींग और सैंधानमक २-२ रत्ती लेवें। सबको आकके दूधमें मिला, पीस कर ३ दिनतक लेप करते रहनेसे घुटनेकी पीड़ा कटिवात और अस्थिशूल आदिकी वेदना दूर होजाती है।

६. स्तन्यविकृति—प्रसूताको रोज २-३ बार ६-६ मासे सोया खिलाते रहनेसे दूधमेंसे दोषकी निवृत्ति होती है और पाचक बनता है, वह शिशुको सरलतापूर्वक पचजाता है। एवं इससे दूधकी वृद्धिभी होती है।

७. प्रसूताका अग्निमांद्य—सुकुमार सूतिकाकी क्षुधा प्रायः मंद होजाती है। शरीरमें वायुकी उत्पत्ति होती है और शारीरिक उत्ताप कुछ बढता है, इन सबको सुधारनेकेलिये घरेलू औषधियोंमें सोया उत्तम और निर्भय औषधि है। सूतिका और शिशु दोनोंके लिये हितावह है। भोजनके बाद दोनों समय और आवश्यकता हो तो दोपहरको भी सोया ६-६ माशेका सेवन करावें।

८. मक्खिका विष—सोया और थोड़े सैंधा नमकको जलके साथ मिला चटनीकी तरह पीसकर लेप करनेसे मधुमक्खिकाका विष दूर होजाता है।

(१०९) सौंफ।

सं० शताह्वा, मिश्री, मिश्रेया। हि० सौंफ। बं० मौरी, पानमोरी, मधुरिका। गु० वरीआली। म० बड़ी शौंप, बड़ी शेप। ता० पेरुञ्जीरगम्, सोहीकिरे। ते० पेद्दजिलकरमु। फा० बादियान, राजयानज। अ० अनसुन, रजियानाज। अं० Fennel. लै० Foeniculum Capillaceum.

परिचय—बहुवर्षायु (भारतमें बहुधा वर्षायु) मूलवाला सुगन्धयुक्त क्षुप। ऊँचाई २ से ३ फीट। तना चिकना, खड़ा, शाखाओंवाला। पान ३-४ विभाग युक्त, ॥ से १॥ इञ्च लम्बे। विभाग रेखाकार बालसदृश। छत्रमें १५-२५ शाखाएं, १ से १॥। इञ्च लम्बी। फूल पीले। पंखड़ी ५। पुंकेसर ५, पंखड़ीसे लम्बे। इसके फलोंमें बीज होते हैं, ये ही औषध और मुख शुद्धि आदि केलिए व्यवहृत होता है।

उत्पत्ति स्थान—संसारके सब उप उष्ण और सम शीतोष्ण प्रदेशोंमें।

गुणधर्म—सौंफ रसमें मधुर, विपाकमें चरपरी, सारक, लघु, हृद्य, स्निग्ध, रुचिकर, वृष्य, अग्निप्रदीपक, गर्भप्रद और बल्य है तथा वातरोग, ज्वर, उदरशूल दाह, अर्श, क्षय, नेत्ररोग, कफरोग, रक्तपित्त, तृषा, व्रण, वमन, अतिसार और आम प्रकोपको दूर करती है।

सौंफका कार्य मुख्यतः श्लैष्मिक कला और पचन संस्थानपर होता है। यह महास्रोतमें दीपन-पाचन, शामक, अनुलोमन और ग्राही असर दर्शाता है। फुफ्फुस और वृक्क द्वारा बाहर निकलनेपर वहां लाभ पहुँचाता है, जिससे शुष्क कासका दमन होता है तथा विष मूत्र मार्गसे बाहर निकलनेपर उष्णता शान्त होती है। सौंफके पान सुगन्धित और मूत्रल हैं। मूलमें सारक गुण रहा है।

रासायनिक पृथक्करण—सौंफमें हलके पीले रंगका, सुगन्धित, उड़नशील तैल ३ से ४%रहा है। उसके भीतर गाभाविक द्रव्य एनेथोल (Anethol) ८०%और फेंकोन (Fenchone) मिलता है।

वक्तव्य—भारतीय सौंफके समान गुणवाली इरानकी वादियान है। उसे लेटिनमें पिम्पीनेला एनिसम (Pimpinella Anisum) संज्ञादी है। उसका उपयोग यूनानीमें होता है एवं इसके तैलका उपयोग यूरोपके अनेक राज्योंमें होता है। उसमेंसे तैल निकलता है उसे आइल ऑव एनिस (Oil of anise) कहते हैं। सौंफके तैल और वादियानके तैलको एक दूसरेके स्थानमें लिया जाता है।

मात्रा-२ से ६ माशे।

माधुर्री प्रयोग—

१. सौंफका अर्क—सौंफको ८ गुने जलमें २४ घण्टे भिगोकर नलिकायन्त्र द्वारा अर्क खेंच लेवें। मात्रा १ से २ औंस।

२. स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण—सौंफ, मुलहठी, आँवलासार गन्धक ५-५ तोले, सनाय १५ तोले और मिश्री २०तोले लें। सबको मिला कूट कपड़छान चूर्ण करें। मात्रा ३ से ६ माशे रात्रिको सोते समय गुनगुने जलके साथ देवें।

यह चूर्ण सुबह १ या २ दस्त साफ लाता है। अन्त्रमें उग्रता नहीं दर्शाता। मलावरोध, आमवृद्धि, शिरदर्द, अर्श, रक्तविकार, पामा, कण्डू आदि रोगोंमें उदर शुद्धि केलिये इसका सेवन कराया जाता है। अपचन और आमातिसारमें लेना हो, तब इस चूर्णके साथ हरड़ और सोंठका चूर्ण मिला लेनेपर विशेष लाभ पहुँचता है।

उपयोग—सौंफका उपयोग प्राचीन कालसे मुख शुद्धि और घरेलू औषध रूपसे होरहा है। ज्वरोंमें जब वान्ति होती है और उदरमें आम उत्पन्न होता है, तब सौंफके अर्कका उपयोग किया जाता है। अर्कके सेवनसे वमन और

तृषा दूर होती है। एवं आमका पचन होता है। उदरशूल और अफारासे पीड़ित रोगी सौंफ चबाते रहें, तो शान्ति मिलती है।

यूनानी मतानुसार इसके पान चक्षुष्य हैं। नेत्र ज्योतिको बढाता है। एवं सौंफमें कष्टार्तवपर लाभ पहुँचानेका गुण रहा है।

१. मलावरोध—कोमल प्रकृतिके मनुष्योंको स्वादिष्ट विरेचन चूर्णका सेवन रात्रिको करानेपर सुबह शौच शुद्धि हो जाती है।

२. अफारा—४-६ माशे सौंफको चूर्ण कर निवाये जलके साथ देनेपर थोड़े ही समयमें अफारा दूर हो जाता है। यदि उदरशूल भी होता हो, तो थोड़ा काला नमक मिलाकर सेवन कराना चाहिये।

३. ज्वर—सौंफका अर्क थोड़ा थोड़ा पिलाते रहनेपर वमन और तृषा, दोनोंका निवारण होता है। आमका पचन होता है और ज्वरका ह्रास होता है। अर्क न होनेपर ४ तोले सौंफको १६ गुने जलमें उबाल चतुर्थांश क्वाथकर ४ विभाग करें। फिर उसमेंसे २-२ घण्टेपर १, २, ३ या ४ वार पिलानेपर लाभ हो जाता है। यदि वान्ति खट्टी होती हो और दाह भी होता हो, तो ३-३ माशे शक्कर भी मिलाते रहना चाहिये।

४. आमातिसार—सौंफका क्वाथ या अर्क देनेसे आमका पचन होता है और उदरमेंसे दुर्गन्ध दूर होती है, दस्त बंधता है और अग्नि प्रदीप्त होती है। सौंफके साथ पोस्त दाने मिलाकर क्वाथ किया जाय, तो लाभ सत्वर होता है। दिनमें ३ वार क्वाथ पिलावें।

५. अग्नि मान्द्य—आमाशयका पाचक रस कम बननेपर उदरमें दीर्घकाल पर्यन्त अन्न पड़ा रहता है; सरलतासे पचन नहीं होता। पचन हो जानेके पहले वह अन्न दूषित होता जाता है। इस हेतुसे निर्बलता, कृशता, उदासीनता, उदरमें भारीपन, आदि बने रहते हैं। किसीको मलावरोध बना रहता है। और जो तेज मिर्च आदि लेते रहते हैं, उनको पतला दस्त थोड़ा थोड़ा होता रहता है। गरम या ठण्डी दवा सहन नहीं होती। ऐसी अवस्थामें सौंफ ४ माशे, जीरा २ माशे, धनिया, कालीमिर्च, सोंठ और दालचीनी १-१ माशा और छोटी इलायची के दाने ४ रत्तीको सुबह मोटा मोटा कूट १० तोले उबलते हुये जलमें डाल, २ मिनट तक उबालकर ढक देवें। २० मिनट बाद छानकर पिला देवें। चाहें तो उसमें थोड़ी शक्कर मिला देवें और पीनेके समय थोड़ा नीबूका रस निचोड़ लेवें। एवं भोजनके बाद भी थोड़ी थोड़ी सौंफ चबाते रहें, तो एकाध मासमें पचन क्रिया सुधर जाती है।

६. उदरकृमि—सूत सदृश छोटे कृमि (Hook Worm), जो विशेषतः मध्यान्त्रक (Jejunum) में श्लैष्मिक कलाको चिपक कर रहते हैं और रक्त

पीते रहते हैं। इस हेतुसे अफारा, पाण्डुता, निर्बलता, पैरोंपर शोथ, मलावरोध (कभी अतिसार) आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इसपर सौंफके तैलको श्रेष्ठ ओषधि मानी है। ५ से १० बूँद शिशुको और ६० बूँद तक बड़े मनुष्योंको ३-४ दिन शक्करके साथ देवें। फिर एरण्ड तैलका जुलाब देनेसे सब कृमि जीवित और मृत निकल जाते हैं।

७. घबराहट—गर्मीमें फिरने, मिर्च आदिका अधिक सेवन करने या विष प्रकोपमें दाह, बेचैनी, शिरदर्द और अधिक स्वेद आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उसपर सौंफ, पोस्तदाने, छोटी इलायची, बादाम और थोड़ी सफेद मिर्च मिला जलमें पीस ठण्डे पानीके साथ छानकर पिला देनेसे मूत्र शुद्धि होती है। मस्तिष्क शान्त होता है और घबराहट आदि दूर होते हैं।

(११०) स्थल कमल

सं० स्थलपद्मिनी, अम्बूरुहा, पद्मा, लक्ष्मीश्रेष्ठा। हि० स्थल कमल, रत्नपुरुष। संता० वीरसूरजसुखी, तंदीसोल। बं० नुनबोड़ा। गु० स्थलपद्म। म० स्थलकमलिनी. रतांबर। क० कलुदावरे। ते० पुरुषरत्न, सूर्यकान्ति। मला० ओरेलेटमरै। ता० ओरिलिटमरै।

ले० Ionidium Enneaspermum.

(Syn. I. Suffruticosum.)

परिचय—आयोनिडियम=बैंजनी आभायुक्त पुष्पयुक्त। एनियास्पार्मम ९ बीजयुक्त। सफ्रुटीकोसम=लगभग झाड़ी सदृश, बहुवर्षायु, शीतल स्थानमें होनेवाला छोटा, झाड़ी सदृश, क्षुप। ऊंचाई ६ से १२ इञ्च। शाखाएं अनेक, काष्ठमय। पान रेखाकार वा वल्लमाकार, १॥ से २ इञ्च लम्बे, १/३ इञ्च चौड़े, लगभग वृन्तरहित, अखण्ड, कतरे हुए किनारेयुक्त, पुष्पलाल, खड़े, कोमल, पखड़ीयुक्त, फली १/६ इञ्च व्यासकी, ३ खण्डयुक्त, लगभग गोलाकार, बीज अण्डाकार, नोकदार, पीताभ श्वेत, मूल पीलासफेद, ३-४ इञ्च लम्बा। ग्रीष्मऋतु।

उत्पत्ति स्थान—बुन्देलखण्ड, बंगाल, बिहार, मद्रास, गुजरात, खानदेश, कर्णाटक, सिलोन, एशियाका उष्णप्रदेश, अफ्रीका और आस्ट्रेलिया।

गुणधर्म—भावप्रकाशकारके मतानुसार रसमें चरपरा (उष्णता दर्शक) कड़वा, अनुरस कसैला, अनुष्ण (शीतवीर्य), कफघ्न, वातशामक तथा मूत्रकृच्छ्र अश्मरी, शूल, श्वास, कास और विषका नाशक है।

राजनिघण्टुकारने वान्तिहर, रक्तपित्तशामक तथा प्रमेह, भूतग्रह और अतिसार नाशक गुण भी दर्शाये हैं।

नव्य मतानुसार मूल स्वेदजनक, मूत्रल तथा बड़ी मात्रामें वमनविरेचन

कारक। कोमलकाण्ड पान और फूल, शीतल, स्नेहन और मूत्रल। ये मूत्रदाहको दूर करते हैं।

मात्रा—स्वरस १ ड्राम, पञ्चाङ्गका चूर्ण १० से ३० रत्ती।

उपयोग—स्थलकमलका उपयोग ग्रृद्धत्रयीमें नहीं मिलता। घरेलू औषध रूपसे व्यवहृत होता है। इसमें स्नेहन धर्म उत्तम हैं। स्थल कमल और मुलहठी का क्वाथ करके पिलानेसे सुजाककी जलन कम होजाती है। पान और कोमल काण्डका स्वरस या चूर्ण जकड़े हुए भागको मुलायम बनाते हैं। क्षयमें इसका क्वाथ और शर्बत या चाटण दिया जाता है। बालकोंके अतिसारपर संताल लोग मूलका उपयोग करते हैं।

(१११) स्वर्ण जूही

सं० हेमपुष्पिका, अम्बष्ठा, पीता, गणिका। हि० स्वर्णजूही। बं० स्वर्ण यूंइ। गु० पीलीजुई। म० पिंवली जूई। पं० जाइ, चम्बा, जुआरी। मला० पात, पोनमल्लिक। ता० पीदायुदी, पिडिगे। ते० हेमपुष्पिका। कना० हसरूमल्लिगे। अं० Golden Jasmine, Italian Jasmine.

ले० Jasminum Bignoniaceum.

पुराना नाम „ Humile.

परिचय-जस्मिनम=अरबी यसमिनके अनुरूप संज्ञा। बिग्नोनियेसियम=तुरुही सदृश पुष्प-वाले। ह्युमिल=अवनतपुष्प। श्वेतकाष्ठ और धूसर छालयुक्त खड़ा गुल्म,। कतिपय कोणयुक्त हरी शाखायुक्त। अक्ष प्रदेश दृढ़, एक वर्षके अंकुरके आधार स्थान पर प्याली सदृश। नया भाग रुएंदार। पान एकान्तर, १ से ३ इञ्च लम्बे, लगभग ७ दलयुग्म-युक्त। दल अण्डाकार दोनों ओर नोकदार, दोनों ओर फीका हरा। पुष्प एकाकी, या सघन मंजरीपर तेजस्वी, पीला, सुगन्ध-युक्त, अवनत। पुष्पाभ्यन्तरकोष नलिका लगभग ॥ इञ्च लम्बी। पका फलगोलाकार ⅓ इञ्चका।

उत्पत्तिस्थान—मद्रास इलाका, पश्चिम घाट, नीलगिरी, मालाबार, बंगाल, बिहार। राजस्थान और आबूमें भी बोये जाते हैं।

गुणधर्म—भावप्रकाशकारने स्वर्णजूहीके गुणधर्म भी श्वेत जूहीके समान दर्शाये हैं अर्थात् रसमेंकड़वी, विपाक चरपरा, शीतवीर्य, लघु, अनुरस मधुर, कसैला, हृद्य, पित्तहर, कफकर, वातप्रद, तथा व्रण, रक्तविकार, मुखरोग, दांतरोग, अक्षिरोग, शिरोरोग और विषप्रकोपकी नाशक है।

नव्यमत अनुसार सुवर्ण जुई कड़वी, उग्रताप्रद, अनुरस मधुर, सुगन्धयुक्त, शीतलताप्रद, विषहर तथा हृदयरोग, मधुमेह, पित्तप्रकोप, दाह, तृषा, रक्तविकार, चर्मरोग, मुखपाक, दंतशूल, चक्षुप्रदाह, कफप्रकोप और वातवृद्धि आदिमें उपयोगी है।

औषधोपयोगीअंश—छाल, मूल, दूध।

उपयोग—जूहीका उपयोग प्राचीन कालसे भारतमें होता है। चरकसंहिता और सुश्रुतसंहितामें भी मिलता है। सुश्रुतसंहिताकारने अतिसार, रक्तपित्त और प्रमेहपर जूहीका उपयोग किया है। मूलका उपयोग दादपर होता है। जीर्ण दूषित नाड़ीव्रण, भगंदर और व्रणपर दूध लगानेसे तुरन्त लाभ पहुँचता है।

(११२) हंसराज

सं० हंसराज, हंसपादी, कीटमता। हि० हंसराज, हंसपगो, लालरंगका लज्जालू, समलपत्री, काली झोंट। संताल दोधारी। बं० गोयालिया लता। म० हंसराज, मुबारखीनो पालो। अ० फा० पर्सियावसां। अं० Maiden Hair. ले० Adiantum Lunulatum

परिचय एडियेएटम=बाल सदृश सिरावाले पर्ण लुनुलेटम=अर्धचन्द्राकार पर्ण। वर्षायु पुष्प रहित क्षुप। ऊंचाई ४ इञ्चसे २ फुट तक। पान (Fronds) मूलपर रहे हुए छोटे कंद (गांठ) से निकले हुए पत्रदण्डपर। पत्रदण्डके दोनों ओर थोड़ी दूरीपर। पहले पीला फिर हरे, अन्तमें तेजस्वी हरे-काले। पत्रवृन्त पतला, लम्बा ।॥ से १ इञ्च चौड़ा, किनारा अर्द्धचन्द्राकार, अनेक सूक्ष्म शिरायुक्त। वीज (Spores) पानके पिछली ओर किनारेपर चिपके हुए, सूक्ष्म पिटिका सदृश (इसे बोनेपर क्षुप निकलता है) मूल और वृन्त लाल। इनमें मूल अधिक लाल। पान नीचेकी ओर बड़े, ऊपरकी ओर क्रमशः छोटेछोटे।

उत्पत्ति स्थान—उत्तर भारतके सब प्रदेशोमें, सौराष्ट्र, दक्षिण भारतके पश्चिम घाट, विहार और बंगालमें। विशेषतः उत्पत्तिकाल ग्रीष्म ऋतु (जुलाईसे जनवरी)

द्वितीय जाति—Adiantum Capillus Veneris.

परिचय—केपिलस=सूक्ष्म कैशिका सदृश शिरावाले पान। वेनेरिस= शिरायुक्त पान। काण्ड लगभग खड़ा, लगभग कोमल, ४से ५इञ्च ऊंचा, तेजस्वी, श्याम आभावाला। पत्र काण्डके दोनों ओर, उपपत्रयुक्त, सिरेपर छोटे

पूरे पानकी लम्बाई ४से ६ इञ्च, पान कोमल, काला, पान ऊपरके हिस्सेमें ९ विभागवाले। पानका अग्रभाग मोटा। पानका प्रत्येक विभाग ॥ से १इञ्च चौड़ा निम्न पत्र वृन्त ½ इञ्च लम्बा,पतला। बीज पत्रके अन्त भागमें। बीजसमूह भाग गोलाकार सदृश।

परिचय—केम्पेन्टिज=समतलभूमिमें होनेवाला। मांसल गांठ या कन्द-युक्त जमीनपर पसरनेवाला क्षुद्र क्षुप। गांठ अनियमित लम्बगोल, गाजरके सदृश, प्रायः दूसरे उपमूलयुक्त, मधुर स्वादवाले। लगभग १ इञ्च व्यासके, काण्ड ८ से १२ इञ्च ऊँचा। पुष्प अनेक, शिथिल अपरिमित पुष्प व्यूहमें, कभी कभी एक ओर लगा हुआ या गांठ कोमल पुष्पवृन्तपर। पुष्प व्यूह १ से ३ फूट लम्बा, दृढ। पुष्प बाह्यकोषके पत्र लगभग ॥ इञ्च लम्बे, बाहरसे हरे, भीतरसे भूरे। पुष्पान्तर कोषके पत्र (पखड़ी) हरी आभावाले या पीली आभावाले लाल या भूरे। पानका आगमन पुष्प आनेके बहुत दिनोंके बाद। पान २-३ १० से १६ इञ्च लम्बे, रेखाकार, नोकदार, नीचेसे क्रमशः पतले तहदार (Plicate) पानके साथ निकलनेवाले उपपान ६ से १२ इंच लम्बे थोड़े थोड़े अन्तरपर कोमल ढीले पुष्पपत्रोंसे आच्छादित। पुष्प अनेक, पान आनेके बहुत समय पहले आनेवाले, कठोर, पीताभ या हरे, गुलाबी या बैंजनी चिह्नयुक्त लगभग १ इञ्च व्यासके, तुर्रेमें लगभग १ ओर लगे हुए। फली ॥। इञ्च लम्बी, अण्डाकार। पुष्पकाल मार्चसे मई।

उत्पत्तिस्थान—हिमालयके निम्न रोहिलखण्ड प्रदेशमें, उत्तर औधप्रदेश, नेपाल, सिक्किम, चित्तागोंग, बंगाल, बिहार, उत्तर ब्रह्मदेश, बिलोचिस्थान और अफगानीस्थान।

वक्तव्य—पहली जातिकी अपेक्षा यह जाति कम गुणवाली मानी जाती है। फिरभी निर्बल, अग्निमांद्य पीड़ित और अतिसार संग्रहणीवालोंकेलिये यह विशेष हितावह है।

गुणधर्म—सालिब मिश्री अधिक गुणदायक और सालममिश्री कुछ कम गुणवाला माना गया है। श्री वैद्यराज यादवजी भाईने सालमको मुञ्जातक माना है। चरकसंहिताके मतानुसार मुञ्जातक रसमें मधुर, बल्य, शीतवीर्य,गुरु, स्निग्ध, तर्पण (तृप्तिकर), बृंहण (शरीरको मोटा बनानेवाला), वातपित्तशामक और कामोत्तेजक है। अन्य विद्वानोंने सालिबको जीवनीय गुणकी ओषधि जीवक-ऋषभक मानी है। सालिब स्वादमें मधुर, लेसदार और किञ्चित् चरपरा होता है। जो कंद बड़ा हो, जिसमें गंध वीर्यके समान हो, उसे उत्तम माना जाता है।

उत्पत्तिस्थान—मद्रास, पश्चिम भाग, पहाड़ोंपर ५००० फूट ऊपरमें,

सिलोन, उत्तर भारत, यूरोप, आफ्रिका, आस्ट्रेलिया।

तृतीय जाति—Adiantum Venustum:

परिचय—वेनस्टम=शुक्रके सदृश तेजस्वी, सुन्दर। पान ३-४ उपपत्रयुक्त, झिल्लीदार, चौड़े, क्रमशः पतले अग्रभागयुक्त, चिकने, नीचेकी ओर किञ्चित् नीलहरित, छोटेवृन्तयुक्त, सुन्दर दांतेदार। अंकुर देनेवाले २ खण्ड कभी ३ गट्ठे। प्रत्येक गट्ठेके तल भागमें सामान्यतः बीजसमूह। पान वक्राकार-हृदयाकार।

उत्पत्तिस्थान—हिमालयका उत्तरपूर्व भाग ३००० से १०००० फूट ऊँचाई-तक अफगानीस्थान।

गुणधर्म—भावप्रकाशके मतानुसार हंसपादी गुरु, शीतवीर्य और रक्तविकार, विषप्रकोप, विसर्प, दाह, अतिसार, लूताविष और भूत आदिके आक्षेप (ग्रहदोष) आदिको दूर करनेवाली है। कैयदवजीने शोथहर और व्रणरोपण गुण अधिक दर्शाये हैं।

निघण्टुरत्नाकर कारने हंसपादी रसमें चरपरी, उष्णवीर्य, रसायन तथा भूतबाधा, विष, अपस्मार और भ्रमकी नाशक कही है।

यूनानी मतानुसार हंसराजमें दोषोंको पतला करके निकालनेवाला, कफनिःसारक, मूत्रजनन, आर्तवजनन और अपरापातन गुण रहे हैं। छातीकी वेदना, श्वास, कास, और प्रतिश्यायमें उपयोगी है।

डाक्टर वामन देसाईके मतानुसार हंसराज कड़वा, कुछ ग्राही, कासहर और कफनिःसारक है। इसमें कुछ मूत्रजनन गुण भी रहा है। बालकोंकेलिये यह बहुत उपयोगी ओषधि है। इसके पञ्चाङ्गका शर्बत विशेषतः बालकोंके कफ कासमें दिया जाता है, मात्रा अधिक होनेपर हंसराज वामक गुण दर्शाता है (कफ वमन होकर निकल जाता है।)

उपयोग—हंसराजका उल्लेख चरकसंहिताके भीतर कण्ठ्य दशेमानी और मधुरस्कन्धमें तथा सुश्रुतसंहिताके भीतर विदारीगन्धादीगणमें मिलता है। घरेलू औषधरूपसे गुजरात और सौराष्ट्रमें दीर्घकालसे यह व्यवहृत होता है।

१. विसर्प—हंसराजके पानोंको या हंसराज और जलपीपलीके पानोंको पीसकर लेप करते रहनेसे २-३ दिनमें ज्वर और दाहसह बालकोंका विसर्प रोग दूर हो जाता है। कोई कोई लोग हंसराजके साथ गेरुको पीसकर लगाते हैं। एवं इसका जल निवाया करके पिलाते भी हैं।

२. बालकोंका कफप्रकोप—हंसराज पञ्चाङ्गको पीस, छान, निवायाकर, उसमें गुड़ या शक्कर मिलाकर पिला देनेसे एक वमन होकर कफ निकलजाता है। फिर व्याकुलता और खांसी दूर हो जाती है।

३. मूत्रावरोध—हंसराज पञ्चाङ्गको ठण्डाईके समान पीस छानकर

पिलाने और वरितस्थानपर हंसराजका निवाया लेप करनेसे पेशाब साफ आ जाता है।

(११३) हकुम।

सं. नागदन्ती। वं. पुत्री। अवध—अर्जुन्ना। पटना-चूक। संता. गोते। कोल-कुटी-कुटी कोयेर। कोडरमा—सैसोन्दा। ओ० मसुन्दी। म० वणसर। गु०
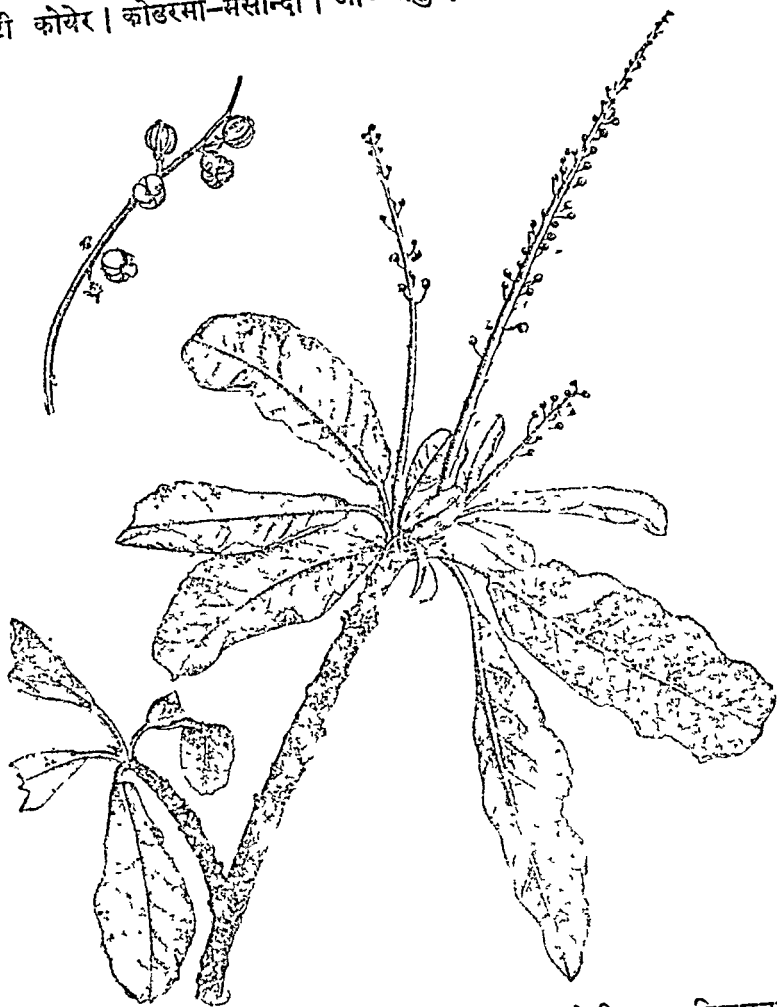
घनसर। मला० कोते, पुतोल। ते० भुतन, कुसुम, भूतलमेरी। ता० मिलगुनरी। ले० Croton oblongifolius.

परिचय—ऑब्लोंगीफोलियस=लम्बगोल पान युक्त। छोटा वृक्ष। उत्पत्ति

स्थान बंगाल, विहार, मध्य प्रदेश, दक्षिण प्रदेश आदि। छाल भस्मी रंगकी। पान वसन्त ऋतुमें गिरने वाले। पान गिरनेके पहले लाल हो जाते हैं। पुष्प हरी मंजरीमें। पुंकेसर १२। फल गोल, मांसल, डोडीरूप ⅓ इञ्च व्यासके। छालका स्वाद चरपरा, कर्पूरके समान और सुगन्धित। विहारमें पुष्प जनवरी और फल अप्रेलमें आते हैं।

यह दन्तीकी उपजाति है। औषध रूपसे मूलकी छाल, पान और बीजका उपयोग होता है।

मात्रा—मूलकी छाल १॥ से ३ माशे तक अजवायन, सोंठ, कालीमिर्च और किसी सुगन्धित द्रव्यके साथ। विष निवारणार्थ मूलकी छालका चूर्ण १ से २ तोले, २–२ घण्टेपर।

गुणधर्म—मूलकी छाल शोथहर, रक्तशोधक और ज्वरघ्न। बड़ी मात्रामें विरेचन और विषघ्न। मूलमें भी विरेचन गुण हैं। डा० केम्पवेल लिखते हैं कि, प्रवाहिकामें छाल रक्तशोधनार्थ दीजाती है।

उपयोग—डाक्टर देसाई लिखते हैं कि, यह उत्तम ओषधि है। किसी भी प्रकारका शोथ (प्रदाह) भीतरका हो चाहे बाहरका हो, इसके सेवनसे अच्छा होजाता है, किन्तु यह औषध रोगारम्भमें ही देनी चाहिये। फुफ्फुसशोथ (निमोनिया), फुफ्फुसावरणशोथ (Pleurisy), वृषण शोथ, संधिशोथ, यकृत-शोथ, फोड़े-फुन्सी, नाखूनोंका पाक आदि रोगोंमें यह अति हितकारक है। मूल की छालका सेवन कराया जाता है। एवं घिसकर लेप भी किया जाता है। शोथहर ओषधियोंमें यह अग्रसर है। इस वर्गमें हकुम, नागदमनी (Crinum Asiaticum), निर्गुण्डी, वच्छनाग, अफीम, सुरमा, पारद, गूगल, लताकरंज और शिलाजित आदि ओषधियां हैं। इनमेंसे यह निर्भय और उत्तम ओषधि है। नूतन और चमकीले शोथमें इसका उपयोग होता है; किन्तु जीर्ण शोथमें इसका उपयोग अच्छा नहीं होता। मात्रा अधिक हो जानेपर भी हानि नहीं होती केवल जुलाव लगता है। शोथमें जुलाब लगना, अहितकर नहीं है। यदि इस हकुमके साथ निर्गुण्डी और कांटे करञ्जके वीज मिलाकर दिया जाय, तो और अच्छा। हकुमका कुछ दोष कांटे करञ्ज मिलानेपर शमन होजाता है।

फुफ्फुस आदिके ज्वरमें भी इसका उपयोग होता है। ज्वरोत्पत्ति प्रदाह और पित्तविकृतिसे होनेपर प्रदाहहर और यकृदुत्तेजक ओषधि दी जाती है। इस ओषधिके प्रयोगसे रोगके मूलपर आघात पहुँचता है। ज्वरमें हकुमके साथ नौसादर देना अधिक हितकारक है। इस मिश्रणसे यकृत्की क्रिया सुधर कर पित्त शुद्धि होती है, दूषित पित्त शौचके साथ बाहर निकल जाता है; तथा यकृत् वृद्धि कम होजाती है।

सामान्य जहरवाले सर्प आदि जीवोंके विषपर मूलकी छालका चूर्ण १–२ तोले मात्रामें दो दो घण्टेपर दिया जाता है। यह उपचार कोंकणमें बहुत करते हैं।

उपयोग—सद्गत शंकरदाजी शास्त्रीने लिखा है कि,पशुओंको सर्पादि जहर चढा हो तब हकुमके पानोंमें पानी मिलाकर चटनीकी तरह पीसें, फिर लगभग आध सेर रस निचोड़ लेवें। उसमें हकुमका मूल १ तोला घिसकर पिला देवें। इस तरह ३ दिन पिलानेसे तथा रींठे और हकुमके मूलको जलमें घिसकर शोथ स्थानपर बारंबार लेप करते रहनेसे विष नष्ट होजाता है।

डाक्टर डीमकके मतानुसार इसकी छालका उपयोग दो प्रकारसे यकृद्वृद्धि में होता है। उदर सेवन और लेप रूपसे। मूढमार, अङ्ग मुड़ जाना, आमवातज शोथ और वेदनापर यह ओषधि अति लाभदायक है।

(११४) हडजोड़ी

सं० अस्थिसंहारी, वज्राङ्गी, वज्रवल्ली। हिं० हडजोड़ी, हडसंधारा, हर्जोर। बं० हाडभांगा, हाडजोड़ा,। म. कांडवेल। गु. हाडसांकल। कच्छीसांधावल। कना० मांगरवल्ली, मंगरोली। मला. पिरांटा। ता. इन्दिरावल्ली, किरिट्टी। ओरि- हडोजोड़ा। अं० Admant Creeper लै०Vitis Quadrangularis.

परिचय—क्वाड्रेङ्गुलेरिस=चारकोन युक्त। सर्वदा रहनेवाली वेल, थूहर की जातिकी। काण्डअंगुष्ठ समानमोटा, अनेक सांधावाला, हलका हरा, क्वचित् पार्श्वभागमें वैंजनी छायावाला। सांधेअच्छा, जमीनमें ६ से १० इञ्चकी दूरीपर। विशेषतः ४ धारीवाली। वेलमेंसे अप्रियवास आती है। स्वादखट्टा। जिह्वापर लगानेसे वह तुरन्त मोटी और खुरदरी बनती है। पान, सांधेकी गांठकी बाजूमें से निकलते हैं। पान मोटे, दांतेदार, चिकने, ।।।· से २ इञ्च लम्बे, ।। से १। इञ्च चौड़े, लसदार रस, खट्टेस्वाद, तीन विभाग और शिरपर नीली छायावाले। डण्ठल, ।· से ।।।. इञ्चलम्बा। पुष्पछोटे, वाह्यकोष और आभ्यन्तरकोषकी ४-४ पखड़ी। फल गोल, शिरपर चौड़ा, लालरंगका। शाखा तोड़नेपर बहुत रसस्राव होता है, कोमल पान और कोमल प्रशाखाका शाक होता है।

उत्पत्तिस्थान—भारतमें सर्वत्र उपयोगी अंग-पुरानी शाखा, पान और फल।

गुणधर्म—रसमें मधुर, विपाक, अम्ल, उष्णवीर्य, सर, कृमिनाशक, अस्थि संधानक, वातश्लेष्मनाशक, रूक्ष, लघु, कामोत्तेजक, पाचन और पित्तवर्द्धक है। अर्श,ऊरुस्तम्भ, अपस्मार, अग्निमांद्य, प्लीहावृद्धि,उदररोग, आध्मान,तिमिर, वात-रक्त, और अर्बुदको नाश करती है।

डाक्टर देसाईके मतअनुसार यह रक्तसंग्राहक और शोधन है।

मात्रा—काण्डको गरम राखमें सेक, स्वरस निकाल १-२ तोले देवें। चूर्ण १० से २० रत्ती।

उपयोग—हडजोड़ीका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थोंमें नहीं मिलता। चक्रदत्त और भावप्रकाशके समयसे इसे ग्रन्थमें स्थान मिला है।

१. चोट लगने या हड्डी मुड़ जाने पर—काण्डको कूट सेककर बांध देनेसे व्यथा दूरहोजाती है। खानेके लिए हडजोड़ीके रसमें घी पकाकर देते रहनेसे जल्दी लाभ पहुँचता है।

२ उदरवात—काण्ड छाल निकाली हुई २० तोले और उरदकी दाल १० तोले लें। दालको जलमें भिगो देवें। फिर दोनोंको मिलाकर बारीक पीसे। फिर तिलके तैलमें वड़े निकालकर खिलानेसे उदर वात दूर होजाता है। ये बड़े उरुस्तम्भमें भी हितावह है।

३. फिरंग—डाक्टर देसाई लिखते हैं कि, फिरंग रोगपर हडजोड़का रस वाकेरीकंद (Caesalpinia digynea) के साथ ७ दिनतक दियाजाता है। भोजनमें नमकका त्याग करें।

४. मासिकधर्म विकृति—स्त्रियोंको एक मासमें दो बार मासिक धर्मआता हो, और रज:स्राव अनेक दिनोंतक होताहो, तो इसका स्वरस २ तोले गोपी चन्दन, घी और शक्कर के साथ दिया जाता है।

५. नासारक्तस्राव—नाकमेंसे रक्त निकलनेपर इसके रसका नस्य कराया जाता है।

६. कर्णस्राव—कानमेंसे पीप निकलनेपर इसका रस कानमें डाला जाता है।

७. कटिवेदना—कमरकी वेदनामें इसकी पुरानी शाखाको कूटकर कमरपर बांधी जाती है।

८. विद्रधि—विद्रधिका जल्दी पाक होनेकेलिए पानको कूट तैलमें गरमकर बांधा जाता है।

९. अपचन—कुपचन रोगमें इसके कोमलशाखा और पानका शाकहितावह है।

एवं हडजोड़ीकी काली राख बना ३-३ माशे जलके साथ दिनमें २ बार देते रहनेसे पुराना अजीर्ण रोग दूर होजाता है। बार बार थोड़ा थोड़ा दस्त होता हो, तो वह भी बंध होजाता है।

(११५) हब्बुलगार

अ० हब्बुलगार (फल)। फा० डफनी। अं० Laurel bay, Sweet bay. ले० वृक्षसंज्ञा Laurus Nobilis.

परिचय—कर्पूरवर्ग (Lauraceae) का सर्वदा हरा २० से ६० फुट ऊंचा वृक्ष। लौरस=सर्वदा हरा रहनेवाला। नोबिलिस=नम्र, सरलतासे मुड़नेवाला।

पान चिमड़े (Lea thery) सुन्दर, तेजस्वी, सघन। वृक्षके सर्वाङ्ग सुगन्धित। फल मांसल, लगभग अण्डाकार गोल ½ से ⅔ इञ्च लम्बे।

उत्पत्ति स्थान—मूल भूमध्य प्रदेश और एशिया माइनर। यूरोप और उत्तर अमरिकाके वागोंमें बोया जाता है। भारतवर्षमें इसके फल और तैल (Bay Oil) स्पेन, इटली और मोरोक्कोसे आते हैं।

रासायनिक संगठन—पानोंमेंसे हरा-पीला उड्डयनशील तैल मिलता है। उसमें प्राणवायु (oxyqen) वड़ी मात्रामें रहती है। फलोंसे स्थायी तैल मिलता है। सुगन्ध लगभग नीलगिरी तैल सदृश होती है। इस तैलके भीतर उड्डयनशील तैल १% रहता है। वीजोंसे वसा, तैल और राल आदि द्रव्य मिलते हैं। वसाको Suet and Cinnamon tallow कहते हैं। इसमें सुगन्ध पानोंके तैलकी अपेक्षा वहुत कम होती है।

पानोंके तैलका पृथक्करण करनेपर ५०% सिनियोल और ४-६ जातिके अम्ल द्रव्य प्रतीत होते हैं।

गुण धर्म—यूनानी मतानुसार फल (हब्बुलगार) दूसरे या तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है। वृक्षकी छाल और पानोंकी अपेक्षा फलमें तैल अधिक रहता है। पानोंसे उड्डयनशील तैल मिलता है।

फल उष्ण पित्तवर्द्धक, वातहर (वातनाड़ी उत्तेजक), कीटाणुनाशक कफनिःसारक, मादक, कामोद्दीपक, मूत्रल, गर्भाशयोत्तेजक, रजःशोधक, गर्भपातक और विषहर है। यकृच्छूल, अपस्मार, कफप्रधान शिरदर्द, श्वास, कफकास, वहुमूत्र, (बूंद बूंद मूत्र गिरना, ग्रन्थिज्वर (प्लेग) और जन्तुदंशज विष आदि को दूर करता है। प्रवाहिकामें भी लाभदायक है।

मूल और छाल—दाहक, उष्ण और अति कड़वे। मूत्राशयगत अश्मरी, कामला आदि यकृद्विकार, प्लीहावृद्धि और उदर रोगोंमें हितावह है।

लकड़ी-मनोहर सुगन्धयुक्त, खिलौने, पेटी आदि वनानेमें उपयोगी।

पान–भूतकालमें ग्रीक और इटलीमें राज्यकी ओरसे विजयी योद्धाके पानों (Bay leaves) की माला पहनानेका रिवाज था। ताजा पान भोजनमें सुगन्ध लाने केलिये यूरोप और उत्तर अमेरिकामें प्रयोजित होते हैं। छाया शुष्क पानों का फांट (चाय) स्फूर्ति लानेकेलिए पिलाते हैं। यूरोपमें इसका उपयोग शराव वनानेमें भी करते हैं।

पानोंके फाण्टमें फलोंकी अपेक्षा उत्तेजक, स्फूर्तिप्रद गुण अधिक है। गर्भाशय शोधनमें यह फलोंकी अपेक्षा अधिक काम करता है।

सूचना–उष्ण ऋतुमें और उष्ण प्रकृतिके रोगीको पानोंसे निकाला हुआ तैल। अम्ल पित्तके रोगीको ३-४ दिन तक तैल देनेपर आमाशयमें उग्रता

आकर हृल्लास और वमन आदि उपद्रव उपस्थित होजाते हैं।

मात्रा—फलोंकी मात्रा २ से ४ माशे। पान ३ से ६ माशे का फाण्ट। पानों का तैल २ से ५ बून्द।

उपयोग—हब्बुलगार (फल), पान और रोगन हब्बुल (पानोंके तैल) का उपयोग आयुर्वेदके प्राचीन ग्रन्थोंमें नहीं मिलता। यूनानीवाले फलोंका अधिक उपयोग करते हैं। यथार्थमें फल, पान और तैल तीनों उपयोगी हैं।

१. **प्रतिश्याय**—तैलका नस्य कराने या पानोंका फाण्ट पिलानेसे स्वेद और मूत्रजनन गुणकी प्राप्ति होकर कीटाणु और शीत प्रकोपसे उत्पन्न शर्दी, मलावरोध, फुफ्फुस जकड़ना, आलस्य, मन्द ज्वर आदि दूर होजाते हैं।

२. **कफ प्रधान श्वास**—६-६ माशे फलोंको पीस शहद मिलाकर प्रातः सायं चाटते रहनेसे श्वसन संस्थान उत्तेजित होकर दूषित कफको बाहर फैंक देता है। पचन क्रिया बढ़ती है और श्वासप्रकोप दूर होजाता है।

३. **उदर पीड़ा**—अपथ्य सेवन या अधिक भोजनसे अपचन होकर उदरपीड़ा होती हो, तो ६ माशे फलोंके चूर्णको गुलकन्द या इसबगोलके लुआबमें मिला कर सेवन करनेपर थोड़ा थोड़ा दस्त होना और अफारासह उदर पीड़ा दूर होजाती है।

४. **अश्मरी**— मूत्राशयमें पथरी या रेतीसदृश कण होजानेपर पान या फलोंका फाण्ट (चाय) दूध मिलाकर सुबह पिलाते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें मूत्राशयगत पथरी टूटकर बाहर निकल जाती है और यकृतक्रिया सबल होजाने से भविष्यमें पुनः उत्पन्न होनेकी भीति भी दूर हो जाती है।

५. **कष्टार्तव**—रजोरोध होकर मासिक धर्ममें कष्ट होनेपर फल या पानोंका फाण्ट पिलाने और पानोंका फाण्ट टबमें भरकर रुग्णाको उसमें बैठानेसे थोड़े ही समयमें गर्भाशय उत्तेजित होता है फिर रजःशुद्धि होजाती है और शूल शमन हो जाता है।

जीर्ण कष्टार्तवमें जब असह्य वेदना होती है और रुग्णा वेदनाके कारण अति बेचैन हो जाती है, तब इस टब बाथसे तुरन्तु लाभ पहुँच जाता है।

६. **प्रसवकालमें कष्ट**—प्रसूता निर्बल या रोग पीड़ित होने या गर्भाशय शिथिल होनेपर गर्भ सरल स्थितिमें होनेपर भी प्रसव नहीं होता। गर्भाशयमें प्रसव शूल उत्पन्न होता है। फिर भी प्रसव नहीं होता। ऐसी अवस्थामें पान या फलों का फाण्ट पिलानेसे उत्तेजना आकर सुख पूर्वक तुरन्त प्रसव होजाता है।

प्रसव होनेपर यदि आंवल रुक गयी हो तो उसे बाहर निकालनेका कार्य भी इस फाण्ट द्वारा सरलतासे होजाता है

सूचना—प्रसव काल न आनेपर यदि भूल-प्रमादवश इसका फाण्ट दे

कीड़ेका घर बच्चेको आध आध रत्ती चार चार घण्टेपर; बड़ेको ५ से १० रत्ती।

अध कच्चे हरड़का चूर्ण २से ४ माशे।

वक्तव्य—छोटी हरड़में उदरशोधन गुण अपेक्षाकृत अधिक है। बड़ी हरड़का उपयोग दीपन, पाचन और ग्राही गुणकेलिये अधिक होता है।

गुणधर्म–हरड़ अनुलोमन, रसायन, दीपन, पाचन, उदर दोषहर और योगवाही है। कसैला, कड़वा, खट्टा, चरपरा और मधुर, ये ५ रस हरड़में रहते हैं। केवल लवणरस नहीं हैं। अम्लरसद्वारा वातको, मधुर और तिक्त (कड़वे) रसद्वारा पित्तको तथा कषाय रस द्वारा कफको जीतती है। अत: हरड़को त्रिदोषघ्नी कहते हैं।

हरड़ लेखन, लघु, मेध्या और नेत्रकेलिये हितावह है। श्वास, कास, अर्श, उदररोग, उदरकृमि, ग्रहणी, हिक्का, प्रमेह, कुष्ठ, व्रण, वमन, शोक, वातरक्त, कण्ठके रोग, हृदयरोग, कामला, प्लीहाविकार, यकृद्विकार, मलावरोध, विसर्प, आध्मान, मूत्राघात, अश्मरी और मूत्रकृच्छ्रको दूर करती है। वायुका अनुलोमन कराती है। यह हृद्य है। एवं इन्द्रियोंकेलिये भी हितकर है। सामान्यत: हरड़को सबरोगोंको हरनेवाली कहा है।

हरड़ चबाकर खानेपर अग्निको प्रदीप्त करती है। कूटकर लेलेनेसे उदर शोधनकरती है। जलमें पकाकर खानेपर ग्राही (मलको बांधनेवाली) और भूनकर खानेपर त्रिदोषनाशक होती है। भोजन करके तुरन्त हरड़ चबा लेनेपर भोजनके सब दोषोंको दूर करती है। भोजनके साथ खाई हुई हरड़ बुद्धि, बल और इन्द्रियोंकी शक्ति बढाती है।

अनुपान—कफप्रकोपमें लवण। पित्तप्रकोपमें शक्कर, वातप्रकोपमें घी, और सब रोगोंपर गुड़ मिलाकर हरड़का सेवन करना चाहिये।

रसायनविधिसे सेवन—हरड़का सेवन रसायन गुण अर्थात् युवावस्थाके बलके रक्षण या पुनः प्राप्तिकेलिये करना हो तो अलग अलग ऋतुमें अलग अलग अनुपानके साथ लेना चाहिये। वर्षाऋतुमें सैंधानमक, शरदमें शक्कर, हेमन्तमें सोंठ, शिशिरमें पिप्पली, वसन्तमें शहद और ग्रीष्म ऋतुमें पुराना गुड़ अनुपानरूपसे मिलाना चाहिये।

भोजन करनेपर, भोजनके पहले, भोजनके बीचमें, भोजन पचन होजानेपर अजीर्ण होनेपर इन सब अवस्थाओंमें हरड़ पथ्य ही मानी जाती है। मनुष्योंके लिये यह माताके समान हितकारिणी है। माता तो कभी कुपित हो जाती है; किन्तु उदरस्थ हरड़ कभी कुपित नहीं होती। इस तरह शास्त्रमें हरड़की अति स्तुति की है। संक्षेपमें पथ्या (हरड़) सब अवस्थाओंमें पथ्य (सेवन करने योग्य) ही है।

हरीतकीका सब अवस्थाओंमें पथ्यत्व—

भुक्ते पथ्याऽभुक्ते पथ्या भुक्ताभुक्ते पथ्या पथ्या।
जीर्णे पथ्याऽजीर्णे पथ्या जीर्णाजीर्णे पथ्या पथ्या॥
हरीतकी मनुष्याणां मातेव हितकारिणी।
कदाचित् कुप्यते माता नोदरस्था हरीतकी॥

सूचना—तृषारोग, मुखशोष, हनुस्तम्भ, गलग्रह, नया ज्वर, शारीरिक क्षीणावस्था और गर्भावस्थामें हरड़का उपयोग नहीं करना चाहिये। मार्गसे चलकर थकाहुआ, निर्बल, रूक्ष प्रकृतिवाला, अतिकृश शरीरवाला, उपवास किया हुआ, अधिक पित्तप्रकोपवाला और जिनको रक्तस्राव हुआ हो, उनको हरड़ नहीं देना चाहिये।

नव्य चिकित्सोंके मतानुसार गुणधर्म—

डाक्टर देसाईके मतानुसार हरड़ मृदु विरेचन, अर्शोघ्न, श्लेष्महर, शोथ-नाशक, रक्तस्रावरोधक, बल्य, पथ्य, गुल्महर, व्रणरोपण और वयःस्थापन है। यह शरीरकी सब क्रियाओंको सुधारती है, इस हेतुसे इसे रसायन संज्ञा दी है। इससे क्षुधालगती है; अन्नपचन होता है और शौचशुद्धि होती है। विरे-चनार्थ देनेपर प्रारम्भमें विरेचन होकर फिर स्वयमेव दस्त बन्द होजाते हैं। इससे मरोड़ा नहीं आता, न जम्भाई आती है। दालचीनी समान सुगन्धित द्रव्य मिलानेपर क्रिया सुधरती है। इसे अनेक दिनोंतक लेते रहनेपर भी त्रास नहीं होता। यह हृदय और रक्तवाहिनियोंकी शिथिलता दूर करती है। रक्ता-भिसरण क्रिया सुधरनेसे मस्तिष्कमें अधिक रक्त पहुँचता है। जिससे मुखप तेजी आती है; निद्रा अच्छी आती है; वीर्य गाढा होता है। स्त्री सेवनमें प्रीति-उत्पन्न होती है; देहका रंग सुधरता है और शरीरका वजन बढजाता है। हरड़की यह क्रिया अनेक मासतक सेवन करनेपर प्रतीत होती है।

छोटी हरड़, मृदु विरेचन, वातहर और बल्य हैं। यह बड़ी हरड़के समान रसायन नहीं है। इसकी क्रिया केवल पचनेन्द्रिय संस्थानपर होती है। नमक मिलानेपर इसकी क्रिया सुधरती है।

हरीतकीकल्प—

१. त्रिफला—बड़ी अच्छी हरड़, बहेड़ा और आंवला, इन तीनोंकी गुठली निकालकर साफ करें। फिर समभाग मिला, कूट चूर्णकर अच्छे डाटवाली बोतलमें भरलेवें।

मात्रा—४ से ६ माशे चूर्णरूपसे। फाण्ट, हिम या क्वाथ लेना हो तो ६ माशे से १ तोलातक।

गुणधर्म—इसका विशेष गुणधर्म सुश्रुतसंहितामें लिखा है कि:—

त्रिफला कफपित्तघ्नी मेहकुष्ठविनाशनी ।
चक्षुष्या दीपनी चैव विषमज्वरनाशिनी ॥

त्रिफला, कफपित्तहर, प्रमेह और कुष्ठकानाशक, चक्षुष्य, दीपन और विषमज्वरनाशक है । इन गुणोंकी प्राप्ति थोड़े ही दिनोंमें होती है । रसायन गुणकी प्राप्तिकेलिये दीर्घकालपर्यन्त सेवन करना चाहिये ।

यह उत्तम रक्तप्रसादन, दीपन, पाचन, आमाशय और अन्त्र आदि पचन इन्द्रियोंकेलिये बल्य, उदरकृमिघ्न, कीटाणुनाशक और विषहर है । मलावरोध, अपचन, अग्निमान्द्य, रक्तविकार, त्वचारोग (अति स्वेदस्राव, कण्डू, पामा, दाद, व्युची आदि), विसर्प, विस्फोटक, व्रण, नाड़ीव्रण, विद्रधि, शीतपित्त, अम्लपित्त, रक्तपित्त, उदरकृमि, अर्श, आमातिसार, श्वास, कास, हिक्का, मदात्यय, उदावर्त्त, दृष्टिमान्द्य, उदरशूल, आफरा, जीर्णज्वर, प्लीहावृद्धि, पाण्डु, शिरदर्द, वृषणवृद्धि, प्रदर, प्रमेह, दाह, वातरोग, मेदोवृद्धि, कफवृद्धि, इन सबको नष्ट करता है ।

त्रिफला अति दिव्य रसायन है । इसका प्रचार आयुर्वेदमें और घरेलू औषधरूपसे अति प्राचीनकालसे हो रहा है । चरकसंहिता और सुश्रुतसंहिता, दोनोंमें इसके गुणोंका वर्णन मिलता है । ग्रामवासी इसका उपयोग अधिक करते रहते हैं । इसके उपयोगमें अधिक निदानकी आवश्यकता नहीं है । किसी भी ऋतुमें इसका सेवन हो सकता है । वात, पित्त, कफ, तीनों दोषोंमेंसे जो प्रकुपित हुआ हो, उसे यह शमन करता है । बढ़े हुयेको घटाता है और घटे हुयेको बढ़ाता है । एवं रस, रक्त आदि सब धातुओंके भीतर अवस्थित अग्निको प्रदीप्त कर लीनविष, आम और मलको जलादेता है । फिर धातुओंको शुद्ध और सबल बनाता है । किसी भी प्रकृतिको यह हानि नहीं पहुँचाता । माताके दूधके सदृश बिल्कुल निर्दोष और हितावह ओषधि है । बाल, युवा, वृद्ध, प्रसूता, सबकेलिये व्यवहृत होता है । अज्ञानी नगरनिवासीजन इसे सामान्य ओषधि मानकर इसपर लक्ष्य नहीं देते और विविध रोगोंसे पीड़ित रहते हैं । उनके लिये रोगोंका चक्र चलता रहता है । घातक औषधिके विषसे एकरोगका दमन करते हैं, फिर कुछ दिनोंमें वही रोग या दूसरा रोग उपस्थित हो जाता है । फिर वे बारबार ओषधि ले लेकर जीवनीय शक्तिको निर्बल बना देते हैं और सदाकेलिये रोगोंसे पीड़ित बने रहते हैं । त्रिफलाने अनेक ग्रामीणोंको जीवन-दान दिया है । क्योंकि, उन्होंने श्रद्धासह पथ्यपालनपूर्वक दीर्घकालतक सेवन किया है । इसी तरह नगरनिवासी भी सेवन करें, तो लाभ उठा सकते हैं ।

रक्तविकार, कण्डू, पामा, व्रण, प्रमेह, सफेदकुष्ठ, व्युची, शीतपित्त आदि

रोग जीर्ण होनेपर सुदृढ हो जाते हैं। ये रोग, रोगशामक ओषधिसे नष्ट नहीं होते। कारण, उनका असर रक्तादि धातुओंमें लीन विषपर अधिक नहीं होता। ऐसे दृढ बने हुये रोगोंपर पथ्यपालनसह ४-६ मास या १ वर्षतक त्रिफलाका सेवन कराया जाय तो निःसन्देह लाभ होजाता है। दृष्टिमान्द्य, नेत्रदाह, अश्रुस्राव, लाली, अभिष्यन्द (आंख आना), नेत्रव्रण आदिरोगोंकी जीर्णावस्थामें शान्तिपूर्वक इसके फाण्ट या हिमसे आंख धोने और उदरसेवन करते रहनेपर निःसन्देह रोग दूर होजाते हैं। मोतियाबिन्दुका रोग नया हो तो उसमें त्रिफला घृतका सेवन और त्रिफलाफाण्टसे नेत्र धोते रहनेपर रोगवृद्धिका निरोध होता है और उत्पन्न विकार जल जाता है।

आम प्रकोप, अर्श, कफवृद्धि, अरुचि, अग्निमान्द्य, यकृत्की निर्बलता आदि रोग या लक्षण होनेपर त्रिफलाके साथ चित्रकमूल मिलाकर लेनेपर विशेष लाभ पहुँचता है।

वक्तव्य—अ. नूतनज्वर और क्षयरोगमें इसका सेवन नहीं कराना चाहिये।

आ. अनेक पित्तप्रधान प्रकृतिवाले, रक्तदबाववृद्धि पीड़ित और जिनको बारबार शुष्क कास हो जाती हो, उनसे त्रिफला अधिक मात्रामें सहन नहीं होता। उनको मात्रा कम देनी चाहिये। आवश्यकता हो तो अनुपान घी देवें। दृष्टिमान्द्यवालोंको घीके साथ देना विशेष हितावह माना गया है।

२. गोमूत्रक्षार चूर्ण—१० सेर गोमूत्रको एक बड़ी कड़ाहीमें डालकर औटावें। चौथाहिस्सा शेष रहनेपर सोंठ २० तोले, जवाहरड़ २० तोले, सैंधानमक २॥ तोले और लौंग १। तोलेका चूर्ण मिलाकर पाक करें। जब भस्म बनजाय तब उतार लेवें। मात्रा—१ से २ माशे दिनमें २ बार निवाये जल या नागरवेलके पानमें दें। यह चूर्ण कफप्रधान श्वास, कास, उदररोग और मलावरोधको दूर करता है। यह श्वासरोगीकेलिये हितावह है। कफ और आमको मलके साथ बाहर निकालता है।

३. पथ्यादिक्वाथ—हरड़, बहेड़ा, आंवला, चिरायता, हल्दी, नीमकी अन्तरछाल और गिलोय, इन ७ ओषधियोंको ६-६ माशे मिला क्वाथकर दो हिस्सा करें। आधा सुबह और आधा रात्रिको देवें। अनुपान पुराना गुड़।

यह शिरदर्द, भ्रम, नेत्रशूल, कर्णशूल, आधाशीशी, सूर्यावर्त्त, शंखक (कनपट्टीके पास वेदना), दंतगिरना, दंतशूल, रतौंधी, और नेत्रपीड़ा आदि रोगोंसे पीड़ितोंको यह क्वाथ पिलाते रहनेसे ज्वर, वेदना और मलावरोध दूर होता है तथा रक्तकी शुद्धि होकर मूलरोग शमन होजाता है; अथवा वृद्धि रुकजाती है।

४. पथ्यादिमोदक—बड़ी हरड़ ३० तोले, दंतीमूल ४ तोले, निशोथ १

तोला, चित्रकमूल ४ तोले और पीपल १ तोलाका चूर्णकर ३२ तोले गुड़ मिला लेवें। इसमेंसे ६-६ माशेका मोदक बनालेवें। १-१ मोदक निवाये जलके साथ सुबह सेवन करानेसे उदरशुद्धि होती है। यह शीतपित्त, पाण्डु और कण्डूरोगमें दिया जाता है।

५. हरीतकी रसायन—उत्तम रसदार हरड़ोंको रात्रिको गोमूत्रमें भिगोवें। दिनमें धूपमें सुखावें। गर्मीके दिनोंमें सूख जानेपर धूपमेंसे उठा लेवें। इस तरह २१ दिनतक भिगोकर सुखा लेवें। (बृ० नि० र०)। मात्रा १-१ हरड़ (या ४ से ६ माशे चूर्ण) रोज सुबह सेवन करें।

यह हरड़ पाण्डु, अग्निमान्द्य, आमवृद्धि, जीर्ण अजीर्णरोग, ग्रहणी, जीर्णज्वर, उदररोग, प्लीहावृद्धि, उदरकृमि, मलावरोध और शोथादि रोगोंको दूर करती है। ४-६ मास या एक वर्षतक सेवन करनेपर शरीरको निरोगी और सुदृढ बना देती है। जिनकी आंत दूषित होगई हो, उदरमें मल संगृहीत रहता हो, जिनको उत्तेजक या शामक ओषधि सहन न होती हो, जिनको जीवन भाररूप हो गया हो, उनकेलिये यह रसायन आशीर्वादके समान है।

६. हरीतक्यादि कषाय—हरड़, वच, सोंठ, निशोथ, सनाय, छोटी इलायची, बड़ी इलायची और लौंग, इन ८ ओषधियोंको समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। मात्रा १। से २॥ तोलेका क्वाथकर दो हिस्सेकर सुबह और रात्रिको पिलाते रहें। अतिसार और पेचिश जैसा असर हो, तो मात्रा कम करें और एक बार देवें।

बदगांठ, जो सांथलके मूलमें अति दुःखदायी होती है। जिससे ज्वर १०२-१०३ डिग्रीतक अनेकोंको बढ जाता है। रोगी शान्तिसे निद्रा नहीं ले सकता। उस रोगमें इस कषायका सेवन करानेसे वेदना, ज्वर और कास जल्दी निवृत्त होते हैं और सरलतासे गांठ पकजाती है। आवश्यकता अनुसार सेक, पुल्टिस लगाना, बालोंको दूरकर बड़का दूध लगाना अथवा इतर बाह्योपचार करते रहना चाहिये।

७. वैश्वानर चूर्ण— सैंधानमक और जवाखार २-२तोले, अजमोद ३तोले, सोंठ ५तोले और हरड़ १२तोले लेवें। सबको कूट कपड़छान चूर्ण करें। मात्रा ३ से ६माशे मट्ठा, काँजी, गोमूत्र या गुनेगुने जलके साथ दिनमें २ बार सुबह और रात्रिको देवें।

यह चूर्ण अग्निको प्रदीप्त करके आमवात, गुल्म, हृदयरोग, मूत्राशयके रोग, प्लीहावृद्धि, उदरशूल, आमवातज शूल और अर्श रोगको दूर करनेमें सहायता पहुँचाता है। यह वायुकी गतिका अनुलोम करता है।

८. बाल हरीतकी योग—छोटी हरड़ १२ तोले और नीलेथोथेका फूला १-

तोला मिलाकर ७दिनतक नीबूके रसमें खरलकर २-२ रत्तीकी गोलियां बनावें। १-१गोली दिनमें २ बार शीतल जल या नीबूके रसमिश्रित जलके साथ देवें।

इस योगकी योजना बसवराजीयम् ग्रन्थमें उपदंशपर की है; किन्तु श्री पं० सुखरामदासजी टी. ओझा इसका उपयोग कण्डू, पामा, व्रण, विद्रधि, विस्फोटक और रक्तविकार आदि रोगोंपर सफलतापूर्वक कुछ वर्षोंसे करते रहते हैं।

उपयोग—आयुर्वेदमें जितनी ओषधियां लिखी हैं, इन सबमें हरड़को श्रेष्ठतम माना है। हरीतकीकी स्तुति करते हैं कि, तू हर (महादेव) के भवनमें उत्पन्न हुई है। अन्य आचार्योंने हरीतकीकी उत्पत्ति अमृतमेंसे दर्शायी है। तात्पर्य यह है कि, हरड़ अमृतके समान उपकारक है।

हरीतकीका उपयोग विद्वान् वैद्य और ग्रामोंकी वृद्ध माताओंद्वारा प्राचीनकालसे अभीतक अत्यधिक परिमाणमें हो रहा है। चरक संहिताके भीतर अर्शोघ्न, कुष्ठघ्न. कासहर ज्वरहर, प्रजास्थापन, इन ६दशेमानियोंमें तथा सुश्रुत संहिताके भीतर मुस्तादि गण, हरीतक्यादि गण (त्रिफला), आमलक्यादि गण और विरेचन औषध संग्रहमें हरड़का उल्लेख किया है। एवं चरक, सुश्रुत आदि ग्रन्थोंमें विविध रोगोंपर लिखे सैंकड़ों प्रयोगोंमें हरड़का उपयोग किया है।

डाक्टर देसाईने लिखा है कि "अपचन रोगपर हरड़ उत्तम ओषधि है। अतिसार, प्रवाहिका और अन्त्रकी शिथिलतापर अच्छा लाभ पहुँचाती है। अर्श रोगपर सैंधानमकके साथ देवें, रक्तार्शपर इसका क्वाथ देवें। अर्शके मस्सेमें शोथ आकर वेदना होनेपर हरड़ घिसकर लेप किया जाता है"

"जीर्ण ज्वरमें प्लीहा बड़ी और कठोर होनेपर हरड़ बिड़लवणके साथ देनी चाहिये। प्लीहाका आकुंचन होनेमें बहुत समय लग जाता है, यह सत्य है; किन्तु उतने समयके भीतर रोगीकी प्रकृति अच्छी सुधर जाती है।"

"रक्तपित्त, खांसीमें कफके साथ रक्त जाना, शरीरमेंसे रक्तस्राव होना और कितनेकोंको रक्तस्राव होनेकी आदत होती है, इन सबकेलिये हरड़ गुणदायक है खांसीपर गुठलीका चाटण दिया जाता है। कितनेक व्यक्तिको बहुत प्रस्वेद आने, नाक बहने या जुकाम होनेपर दीर्घकाल पर्यन्त कफ गिरनेका स्वभाव होता है, ऐसी प्रकृतिवालोंको और किसी भी कारणसे रक्तस्राव होता हो उसपर हरड़से बहुत लाभ पहुँचता है।"

"प्रदर और प्रमेहपर इसका क्वाथ दिया जाता है। वीर्य पतला होकर उपस्थेन्द्रियमें शिथिलता आई हो, तो रसायनार्थ हरड़ दी जाती है।

मुखव्रणपर इसका लेप किया जाता है। कण्ठमें शोथ आनेपर तथा कण्ठ ग्रन्थियां बड़ी हो जानेपर हरड़को जलमें घिसकर लेप किया जाता है। कीड़ेका घर-प्रवाहिका और अतिसारपर दिया जाता है। इसका उपयोग बालकोंके रोगमें

विशेष होता है। काकड़ासिंगी की अपेक्षा इससे अतिसारका रोध सत्वर होता है। कफविकारपर इसका उपयोग नहीं होता।"

"चमड़ा रंगनेके लिये हरड़को माजुफलके स्थानपर ली जाती है।"

"रक्तस्राव बन्द करनेकेलिये इसका विशेष उपयोग है; किन्तु रक्तस्राव विकार होनेपर रसायनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जाता।"

"छोटी हरड़ अपचनजनित अतिसार, विसूचिका, जीर्ण अतिसार, जीर्ण प्रवाहिका, गुल्म, प्लीहावृद्धि और अर्श, इन रोगोंमें अति लाभदायक है। सदाकेलिये मलावरोध पीड़ितोंकेलिये जिस तरह विदेशी ओषधि केस्केरा सेग्रेडा (Cascara Sagreda) दी जाती है, उसी तरह छोटी हरड़ दी जाती है। यह उससे भी अधिक गुण दर्शाती है। मलावरोध दूर करनेकेलिये (पथ्य सेवीको) महिनोंतक इसका सेवन कराया जाय, तो भी हानि नहीं पहुँचती। कब्जसे उत्पन्न अर्श रोगमें भी यह लाभदायक है।"

१. रसायनगुणकी प्राप्ति—इसका विधिवत् नित्य सेवन करनेपर वृद्धावस्था नहीं आती। यह लाभ पथ्य भोजन करनेवाले, व्यायाम सेवी, स्त्री समागममें संयमी और मन वाणीसे भी दूसरोंका द्रोह न करनेवालोंको पूरी मात्रामें मिलता है।

अ. हरड़के चूर्णको घीमें मिला लोहेके बरतनमें रात्रिको लेप कर देवें। सुबह निकाल, शहद, घी मिलाकर सेवन करें। इससे बलवृद्धि होगी, रोगोत्पत्ति नहीं होगी। आयु भी बढ़ेगी।

आ. आचार्योंने ऋतु भेदसे कहे हुये सैंधवादि अनुपानके साथ सेवन करनेसे उदरस्थ विकृति दूरहोकर बलवीर्यकी वृद्धि होती है।

इ. त्रिफला (हरड़, बहेड़ा और आंवलाकी गुठली निकाल फिर समभाग मिलाकर बनाया हुआ चूर्ण) का सेवन समभाग घृत मिलाकर करने-पर कफप्रकोप, पित्तप्रकोप, प्रमेह, कुष्ठ और जीर्ण विषमज्वरका नाश होता है। नेत्रज्योति बढजाती है और शरीर सुदृढ होजाता है।

ई. हरड़, आंवला, चित्रकमूल और पीपल, इन चारोंको समभाग मिला कूटकर चूर्ण बना सेवन करते रहनेपर वह कफ और मेदप्रकोप, प्रमेह, कुष्ठादि चर्मरोग, अग्निमान्द्य, गुल्म और पीनसको दूरकर पचनश-क्तिको बढ़ाता है तथा शरीरको निरोगी और सुदृढ बनादेता है। यह कफप्रधान और मेदप्रधान प्रकृतिवालोंकेलिये विशेष हितकर है।

२. मलावरोध—हरड़का मोटा चूर्ण १॥ तोलेको २४ तोले जलमें मिला-कर मंदाग्निपर चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर छान ४ रत्ती सौंठ और १ माशा सैंधानमक मिलाकर सेवन करानेपर उत्तम ३-४ जुलाब होते हैं। यह अपचन-

जन्य मलावरोध, नया अतिसार, नया पेचिश, आमातिसार और अर्शरोगमें हितकर है। इस जुलाबसे उबाक नहीं आती, मुँहमें जल नहीं भरता, उदरमें दर्द नहीं होता। जुलाब होनेपर अन्त्रमें उग्रता उत्पन्न नहीं होती, जुलाब लग जानेपर स्वयमेव अन्त्रका आकुञ्चन होता है और पचनशक्ति सबल बन जाती है। इसी हेतुसे विरेचन द्रव्योंके उल्लेख प्रसंगमें सुश्रुतसंहिताकारने विरेचन-प्रधान फल द्रव्योंमें हरड़को सर्वोत्तम कहा है।

सूचना—तरुण ज्वर (नयाबुखार) में मलावरोध हो, तो हरड़का उपयोग नहीं करना चाहिये। क्योंकि, यह विरेचनके अन्तमें ग्राही गुण दर्शाती है।

जीर्ण मलावरोध और मलावरोधसे उत्पन्न विविध रोगोंको दूर करनेके लिये यदि पथ्यपालन और श्रद्धासह दीर्घकालतक हरीतकी रसायनका सेवन किया जाय, तो सब रोग दूर होकर शरीर निरोगी और सुदृढ बनजाता है।

३. आमातिसार—आमातिसार और नये पेचिशके प्रारम्भमें हरड़ ४ माशे, सोंठ १ माशा, घी और शक्कर ३-३ माशे मिलाकर सेवन करानेसे रुका हुआ मल गिरजाता है, अन्त्रमें उत्पन्न उग्रताका शमन होकर आमातिसार और पेचिश दूर होजाते हैं।

सूचना—यदि अन्त्रमें उष्णता अधिक हो और तृषा अधिक लगती हो, तो सौंफका फाण्ट पिलावें। यह फाण्ट आम निकालने और उग्रता शमनमें अति सहायक होता है।

४. अर्श—बवासीरके रोगीको प्रायः मलावरोध रहता है उनकेलिये हरड़ उत्तम ओषधि है। मट्ठा अथवा दूध और शक्करके साथ रात्रिको एरण्ड तैलमें भूनी हुई छोटी हरड़का चूर्ण देते रहनेसे सरलतासे उदरशुद्धि होती रहती है और मस्सेमें किसी भी प्रकारका कष्ट नहीं होता। वैश्वानर चूर्ण भी हितावह है।

५. उदरमें वातप्रकोप—हरड़में अनुलोमन और दीपन-पाचन गुण होनेसे वैश्वानर चूर्ण अथवा एरण्ड तैलमें भूनी हुई हरड़का सेवन पिप्पली और सैंधा-नमकके साथ ५-७ दिनतक करनेसे उदरशुद्धि होती है; अन्त्र बलवान बनता है और उदरमें रहनेवाली वात स्वाभाविक अनुलोमन होती रहती है।

६. खांसी—हरड़ और बहेड़ाका चूर्ण शहदके साथ लेते रहनेपर खांसीका कष्ट कम हो जाता है और पचनक्रियाको लाभ पहुँचता है।

७. जीर्ण श्वास—श्वासका रोग पुराना होनेपर कफप्रकोप होकर बारबार कफ गिरता रहता है, थोड़ा-सा चलनेपर दम भर जाता है और पचनक्रिया अति मन्द होजाती है। यह तमाखूके व्यसनियोंको अधिकतर होता है। उनकेलिये गोमूत्र क्षार चूर्णका सेवन अति लाभदायक है।

८. शीतपित्त—पथ्यादि मोदक ४-६ दिनतक रोज सुबह देने और खिचड़ी या दालभात खिलाते रहनेपर पित्ती निकलना बन्द होजाता है। यदि रोग जीर्ण हो, तो ओषधि सेवन अधिक दिनोंतक कराना चाहिये।

९. नेत्ररोग—दीर्घकालसे नेत्रमेंसे जल टपकते रहना, रोहा होनेसे पलकके नीचे गड़ना, नेत्रमें खाज चलना, नेत्रमें जलन रहना, नेत्रमें भारीपन बनारहना, नेत्रमें शूल चलना, बार बार आँख आ जाना, दृष्टिमान्द्य होजाना आदि रोगों पर त्रिफलाके हिमसे सुबह और शामको आंखोंको धोते रहना चाहिये।

आंख धोनेकेलिये कांचकी प्याली खास बनी हुई आती है, उसमें त्रिफलेका हिम भरकर उसमें आंख धोनेसे विशेष लाभ पहुँचता है। साथ साथ त्रिफला घी शक्करमें मिलाकर सेवन भी कराते रहना चाहिये। रोहेके अति पुराने रोगियोंको भी इस प्रयोगसे लाभ पहुँचा है।

१०. हिक्का—अपचन या आमाशयप्रदाह होकर हिक्का उत्पन्न हुई हो, उसमें अपचनके लक्षण भी साथमें रहते हैं उसपर छोटी हरड़का चूर्ण निवाये जलके साथ देनेसे तुरन्त लाभ पहुँचता है।

११. रक्तपित्त—दाँत, मुँह, नाक या गुदासे कभी कभी रक्तस्राव होता है। पचनक्रिया दूषित होगई है और शरीरमें निर्बलता आई हो, तो हरड़ और पिप्पलीको शहदके साथ देवें ऊपर अड़सेके पानोंका क्वाथ पिलाते रहें, तो रक्तपित्त दूर हो जाता है। भोजनमें दूध अधिक लेना चाहिये। मिर्च आदि मसाला कम कर देना चाहिये। भोजन जल्दी पचे वैसा, किन्तु पौष्टिक होना चाहिये।

१२. मदात्यय—शराबका व्यसन बहुत बढ जानेपर छातीमें दाह, निद्रानाश, अग्निमान्द्य, व्याकुलता, मलावरोध, बुद्धिमान्द्य आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उस रोगमें हरड़का क्वाथ दूध मिलाकर पिलाते रहना चाहिये। यदि ४-४ रत्ती खुरासानी अजवायन भी दिनमें २बार देते रहें, तो शान्त निद्रा मिलती है और लाभ भी अधिक पहुँचता है।

१३. कण्डू—अ. शरीरमें खुजली चलती रहती हो तो ८गुने तैलमें हरड़ भून लेवें। फिर उस तैलसे मालिश करते रहें।

आ. बाल हरीतकी योगका सेवन करानेपर शुष्क कण्डू, पामा, पुराना विद्रधि, बार बार फोड़ा-फुन्सी होना और विस्फोटकके फोड़े आदि थोड़े ही दिनोंमें दूर हो जाते हैं।

१४. अग्निमान्द्य—हरड़का चूर्ण, सोंठ, गुड़ और सैंधानमकके साथ अथवा हरड़, आंवला, पिप्पली और चित्रकमूलका चूर्ण, गुड़ और सैंधानमकके साथ दिनमें २बार सेवन कराते रहना चाहिये।

१५. अति स्वेद–पसीना अत्यधिक आता हो, तो हरड़के कपड़छान चूर्णसे मालिश करके स्नान करते रहें।

सूचना—भोजन, दूध, चाय आदि अति गरम-गरम लेते हों, तो उसे बन्द करें। हाथ लगानेपर भोजन सामान्य गरम मालूम हो, ऐसा लेवें। धूम्रपानका व्यसन हो, तो छोड़ देना चाहिये।

१६. अम्लपित्त—हरड़ और मुनक्का ६-६ माशे मिलाकर सुबह १०-२० तोले जलके साथ देनेसे आमाशयमें संगृहीत पित्त अन्त्र और रक्तमें जाकर बाहर निकल जाता है। अम्लपित्तशामक मुख्य चिकित्सा भी करते रहना चाहिये। भोजनमें अति गरम पदार्थ, दही, मट्ठा, अधिक मिर्च आदिका त्याग करना चाहिये।

१७. वृषण वृद्धि—छोटी हरड़को ७ दिनतक गोमूत्रमें भिगोवें, रोज गोमूत्र नया डालें। फिर छायामें सुखाकर एरण्ड तैलमें भून लेवें। फिर कूट सैंधानमक मिलाकर बोतलमें भर लेवें। मात्रा २ से ४ माशे रोजाना रात्रिको लेते रहनेसे २-४ मासमें वृषणवृद्धि दूर होजाती है। यदि वृषणपर शोथ हो तो हरड़को गोमूत्र या जलमें घिसकर लेप भी करते रहना चाहिये।

सूचना—हरड़को भिगोनेके लिये गोमूत्र उतना ही लें कि हरड़से आध इञ्च ऊपर रहे।

१८. वमन—हरड़का चूर्ण शहदके साथ चटानेसे वमन बन्द होजाती है।

१९. मेदोवृद्धि—शरीरमें मेद अधिक बढ जानेपर बहुत स्वेद आता है। थोड़ा चलनेपर श्वास भर जाता है। क्षुधा तृषाका वेग शमन नहीं होता और शरीर भारी मालूम पड़ता है। ऐसी अवस्थामें भोजन कर लेनेपर हरड़को नित्य चबाकर खाते रहनेसे मेदका ह्रास होता है और पचनक्रिया सबल बनती है।

२०. दुष्ट नाड़ी व्रण—बाह्य उपचार करनेके साथ हरड़, वायविडंग, सोंठ, निशोथ और सैंधानमकका चूर्ण गोमूत्रके साथ रोज सुबह सेवन कराते रहनेसे उदरशुद्धि होती है और रक्तप्रसादन होकर व्रणमें पूयकी उत्पत्ति रुकजाती है। हरड़का चूर्ण व्रणमें डालते रहने अथवा गोमूत्रमें घिसकर दिनमें ४-६ बार लेप करते रहनेपर पूयोत्पत्ति कम होजाती है। फिर व्रण शुद्ध होकर जल्दी भर जाता है।

२१. व्युची—व्युचीरोग दृढ हो जानेपर अति दुःखदायी होता है। वर्षोंतक दूर नहीं होता। प्रारम्भिक अवस्थामें हरड़को गोमूत्रमें या जलमें घिसकर लेप करते रहनेपर थोड़े ही दिनोंमें सूखकर चमड़ी स्वच्छ होजाती है। यदि रोग अति जीर्ण होगया है, तो भी हरड़को घिसकर लगाते रहनेपर २-३ मासमें व्युची दूर होजाता है। यदि अति खुजली चलकर चमड़ी छिल जाती हो

औ चमड़ी शुष्क रहती हो, तो ऐसी अवस्थामें बार बार एरण्ड तैल ही लगाया जाता है।

२२. बृध्न—सांथलोंके मूलमें बद होनेपर हरीतक्यादि कषायका सेवन प्रथमावस्थामें कराया जाय, तो रक्तप्रसादन होकर बद बैठ जाती है। पच्यमावस्थामें सेवन कराया जाय और पुल्टिस आदि बाह्योपचार कराया जाय, तो बद जल्दी फूटकर व्रण भर जाता है और ज्वर, वेदनादि कष्ट कम होजाता है।

२३. जीर्ण आमवात—आमवातका रोग एक समय हो जानेपर वर्षाऋतुमें या अधिक शक्कर खानेपर बार बार कष्ट पहुँचाता रहता है। किसी स्थानमें शूल चलना, अंगुलियां आदि भागोंमें सूजन आजाना, हृदयमें विकृति होना आदि उपद्रव होते रहते हैं। इस रोगको दूर करनेके लिये पथ्यपालनसह ६-८ मासतक वैश्वानर चूर्णका सेवन कराया जाय, तो रोग निवृत होजाता है।

(११७) हरमल

हिं० हरमल इसपन्द। पं. हुर्मुल। बं. इसबन्द। म० हुरमल। गु० हरमरो। इरानसिपंद। अ० हुर्मुल। अं० Syrian rue. ले० Peganum Hurmala

वर्णन—क्षुप १ से ३ फीट ऊँचा। उत्पत्तिस्थान-सिंध, कच्छ, पंजाब, काश्मीरसे देहली, आगरा, निजाम स्टेट, दक्षिणका पश्चिम प्रदेशादि। यह क्षुप अब भारत में नैसर्गिक हो गया है। भारतमें अब इसे फूल और बीज आते हैं। सामान्यतः देखाव बड़े गोखरूके क्षुप सदृश। शाखाएं चिकनी, सघन, दो, दो। शाखाके अन्तमें तुर्रे सदृश कलगी। पान बहु विभाजित, २-३ इञ्च बड़े, हरे। पुष्प ॥ से ॥। इञ्च व्यासके एकाकी, सफेद। पुष्प पत्र कोणमेंसे निकलते हैं। पखड़ियां लगभग लम्बगोल। पुंकेसर १२ से १५। यू० पी० और पंजाबमें फल-फूल एप्रिलमें आते हैं। फल लगभग गोल ३ खण्डवाला। प्रत्येक खण्डमें १ लाल बीज होता है। क्षुपमेंसे उग्र, अप्रिय वास आती है। स्वाद कडुवा। औषध रूपसे बीज उपयोगी है। इसके बीज इरानसे आते हैं। बीज सामान्यतः मेथी जितने बड़े, तीन कोनवाले, मैले रंगके होते हैं। ऐसे ही सूंघनेपर बीजोंमें वास नहीं आती; किन्तु मसलनेपर गांजाके समान वास आता है।

मात्रा–५से १५रत्ती, जल या शराबके साथ। मध्यम मात्रा ३० रत्ती। पूर्णमात्रा ६० रत्ती। इसका क्वाथ या फाण्ट दिया जाता है; अथवा आसवमें उबालकर देते हैं।

गुणधर्म–डाक्टर देशाईके मत अनुसार हरमल आक्षेपहर, नशा लानेवाली, निद्राप्रद, वेदनाशामक, आर्तवजनन और स्तन्यवर्द्धक है। बड़ी मात्रामें देनेसे जम्भाई आकर वान्ति होती है; तथापि यह वान्ति करानेकेलिये नहीं दी जाती

कारण, बड़ी मात्रामें वमन होनेके पहले नशा चढ जाता है। इससे गांजाके समान नशा आता है। इसकी गर्भाशयपर क्रिया अर्गट या सितावके समान होती है। यह स्त्रियों और पुरुषोंके लिये कुछ कामोत्तेजक है।
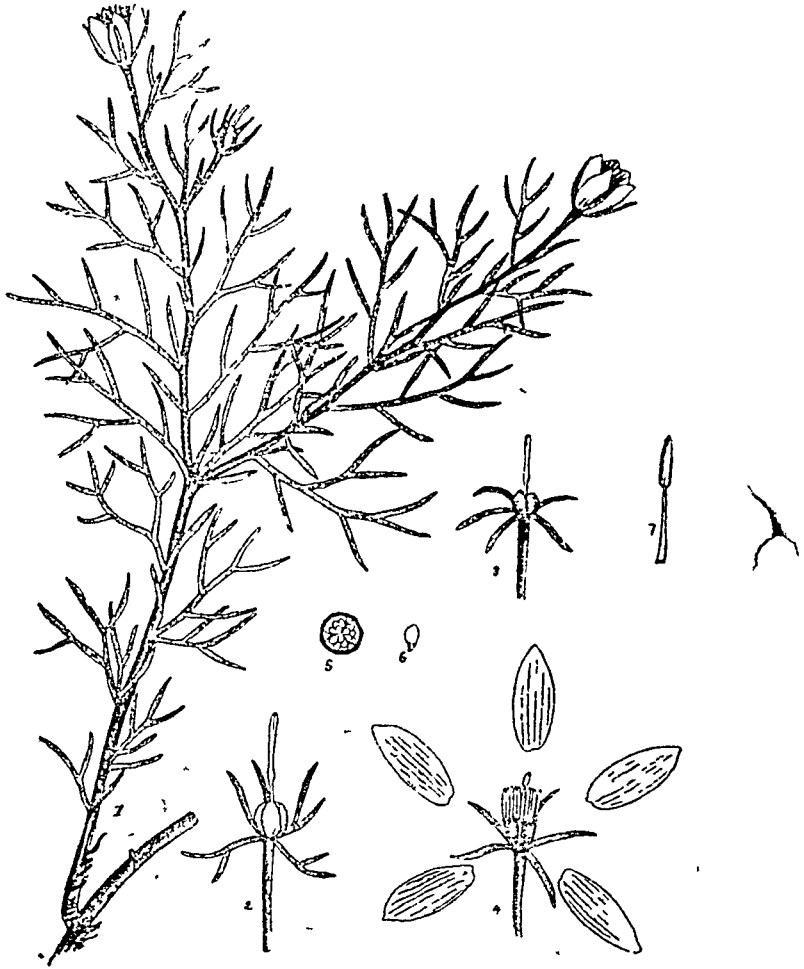
इसमें आक्षेपहर, उबाक लाना (कफस्रावी) और शिथिल बनाना, ये तीन गुणधर्म सम्मिलित होनेसे यह अति महत्त्वकी औषधि है। इसके पंचांगकी क्रिया भांगके समान है।

हरमलका उपयुक्त द्रव्य क्विनाइन समान विषाक्त है। इसकी क्रिया रक्ताणुओंके जीवनद्रव्य (Protoplasm) पर क्विनाइनके समान होती है।

इसके सेवनसे कीटाणु पंगु होते हैं। इससे शारीरिक उष्णता कम होती है। और वह वृक्क तथा अन्त्रद्वारा बाहर निकलती है। रक्त, यकृत् और वातसंस्थामें इसका बहुत अंश नष्ट हो जाता है; तो भी शारीरिक मांसपेशियां और हृदयकी मांसपेशियोंपर इसकी अवसादक क्रिया होती है। बड़ी मात्रामें देनेपर थूंक बढता है; अङ्ग शीतल होता है; और श्वासोच्छ्वासमें प्रतिबन्ध होता है।

उपयोग—डाक्टर देशाईके मतानुसार हरमल उत्तम ओषधि है। यह वात और कफप्रधान रोगोंमें दीजाती है। ९ माशे बीजोंका चूर्ण ४औंस उबलते हुये जलमें मिला आध घण्टे बन्द रख, फिर छान, ३विभागकर दिनमें ३बार दिया जाता है। इसमें सोनेके समय ६-६माशे शहद मिलाकर देवें। अनार्त्तव और पीड़ितार्त्तव और मूत्रावरोधमें हरमलके फाण्ट या क्वाथमें तिल तेल और शहद मिलाकर देते हैं। इन रोगोंमें यह अच्छा लागू पड़ता है। इसके सेवनसे दूध और रजःस्रावमें वृद्धि होती है।

आमवातमें सोडा सेलिसिलिसकी अपेक्षा इसके सेवनसे जल्दी वेदना कम होती है। ज्वर, गृध्रसी, अपतन्त्रक, अपस्मार, दृष्टिमान्द्य और धनुर्वातमें इसका उपयोग पोटास ब्रोमाइडकी अपेक्षा अच्छा होता है।

श्वास, सूखी खांसी और काली खांसीमें इससे बहुत लाभ होता है।

संक्रामक रोगी, घावसे पीड़ित और व्रणवाले रोगियोंके कमरेमें तथा प्रसूताके गृहमें हरमल जलाया जाता है। इसके धुएंसे वायुमें रही हुई दुर्गन्ध दूर होती है तथा कोथजन्य कीटाणु नष्ट होते हैं। व्रणोंको इसका धुआं भी दिया जाता है।

पित्ताश्मरी, मूत्राश्मरी और उदरशूलमें हरमल पूर्ण मात्रामें देते हैं। हिक्कामें इससे अच्छा लाभ हो जाता है।

शोथपर इसका लेप करने या पुल्टिस बांधनेसे वेदना कम होती है। जूं और चर्मजूओंको मारनेकेलिये इसका लेप किया जाता है।

१. प्रतिश्याय—जुकाम होनेपर हरमलका चूर्ण १ से १॥ माशेतक ४-४ घण्टेपर दिनमें ३बार देवें। इस तरह २-३ दिन देनेसे जुकाम दूर होजाता है।

वक्तव्य—इसके सेवनके साथ नीलगिरी तैलको कपड़ेपर छिड़ककर सुंघाते रहें, तो लाभ जल्दी होता है।

२. हिक्का—१-१माशे बीजोंके चूर्णको शहदमें मिलाकर १-१ घण्टेपर सेवन करानेपर ३-४ घण्टेमें हिक्का शान्त होजाती है।

३. कफकास—कभी कभी खांसीमें कफ चिपचिपा और गाढा होजानेपर सरलतासे नहीं छूटता और रोगीको अति त्रास होता है। ऐसी अवस्थामें हरमल अमृतके समान उपकारक है। हरमलका चूर्ण १-१ माशा दिनमें ३ बार शहदके साथ सेवन करनेपर कफ सरलतासे बाहर निकलने लगता है और व्याकुलता कम होजाती है।

४. तमक श्वास—कफ कासके समान श्वास रोगमें भी कफप्रकोप हो, तो हरमलका सेवन कराया जाता है। इसके सेवनसे श्वासके दौरेका वेग जल्दी कम होता है और आवश्यकतानुसार १-१ घण्टेपर शहदके साथ १-१ माशा ३-४ वार देते रहें।

५. आक्षेप—धनुर्वात या अन्य प्रकारका आक्षेप होनेपर हरमलका सेवन करानेसे तुरन्त लाभ पहुँच जाता है।

६. आमवात—आमवातमें सांधे सांधे जकड़ जाते हैं। उठने बैठनेमें भी कष्ट होता है। शरीर जकड़ जाता है। ऐसी अवस्थामें १-१ माशा हरमल शहदके साथ दिनमें ३-४ वार देते रहनेसे रोग जल्दी शान्त होजाता है।

७. गृध्रसी—चूतड़ोंमें रही हुई गृध्रसीनाड़ी जकड़ जानेपर कमरसे लेकर पैरतक जड़ता आजाती है। रोगी चल नहीं सकता। इतना ही नहीं बल्कि उठना, बैठना भी कष्टरूप होता है। ऐसी अवस्थामें दिनमें ४ वार हरमलका सेवन करानेपर थोड़े ही दिनोंमें गृध्रसी वात दूर होजाता है।

८. सूतिकारोग—स्त्रियोंके सूतिका रोगमें कितनेकोंको अति वातप्रकोप होता है। अंगुलियां टेढी होजाती है, कमर मुड़ जाती है, मांसपेशियोंमें आक्षेप आता है (अति खिंचाव होता है) वार वार डकारें आती रहती है; भोजन करनेकी इच्छा नहीं होती। कब्ज बना रहता है, ऐसी अवस्थामें हरमलका फाण्ट दिनमें ३ वार लगभग १ मासतक देते रहनेसे सूतिकारोग निवृत होजाता है।

९. अनार्त्तव और कष्टार्त्तव—मासिकधर्म बन्द हो जाना, मासिकधर्मके समयअति कष्ट होना, मासिकधर्म अति देरसे आना फिर उस हेतुस आंखोंमें निर्बलता, मस्तिष्कमें भारीपन, कमरमें दर्द रहना आदि लक्षण होनेपर हरमलका फाण्ट दिया जाता है। दिनमें ३ वार ३-४ मासतक द्राक्षारिष्टके साथ देते-रहें या मासिकधर्म आनेके एक सप्ताह पहलेसे प्रारम्भ करें और मासिकधर्मके ३ दिन तक देते रहें।

१०. मूत्रकृच्छ्—मूत्रमार्गमें शोथ आनेसे कभी कभी पेशाब करनेमें अति कष्ट होता है। उसपर हरमलका फाण्ट या हरमलका चूर्ण २-२ माशे २-२ घण्टेपर २ या ३ वार शहदके साथ देनेपर मार्ग साफ हो जाता है और वेदना दूर होजाती है।

११, निद्रानाश—हरमल २ माशे शामको शहदके साथ दे देनेपर रात्रिको शान्त निद्रा आजाती है।

(११८) हराचम्पा

सं. हरिच्चम्पक, मधुगन्धि, नीलचम्पक। हिं. हरा चम्पा। म. हिरवाचांपा, मदनमस्त। गु. लीलोचम्पो। क. कंदलीसम्पगे, मनोरंजनवल्ली। मला. मदन-

कामेश्वरी। ता. मनोरंजीदम् । ते. मनोरंजीदमु । ओ. कालोमुरो । ले. Artabotrys. Odoratissimus.

परिचय—ओडोरेटीसिमस=अतिमधुर सुगंधयुक्त। ओर्टबोट्रिज=फल-गुच्छ कुछ मुड़े हुए तन्तु (पुष्पदण्ड) पर लटके हुए। प्राय: बड़े लम्बे कोमल भूमिप्ररोह (Runners) युक्त चिकनी ऊपर चढनेवाली झाड़ी। पान तेजस्वी, लम्बगोल या बल्लमाकार, २ से ८ इञ्च लम्बे, १॥ से २ इञ्च चौड़े, छोटीनोक-युक्त। पत्रवृन्त ॥ इञ्चसे छोटा। पुष्प पहले हरे फिर पीले होनेवाले एकाकी या जुड़े हुए, १। से १॥ इञ्च लम्बे। पके हुए गर्भकोष (Carpels) अण्डाकार, चिकने, ।॥ से १॥ इञ्च लम्बे, ।॥ से १ इञ्च व्यासके, हरे या पीले। बीज लम्ब गोल। थोड़ें चिपके हुए, एक ओर गहरी नालीयुक्त। पुष्पकाल अप्रेलसे जुन।

उत्पत्ति स्थान—दक्षिण भारत, सिलोन, जावा, चीन,। भारतके अन्य प्रान्तोंके बागोंमें बोया जाता है।

गुणधर्म— आयुर्वेदिक मतानुसार हरा चम्पा रसमें कड़वा तेज, उग्र, कीटाणु आक्रमणसे रक्षण करने वाला तथा वमन पित्तप्रकोप, रक्तविकार, हृद्रोग, पामा, खुजली, अति स्वेदस्राव, मुखदुर्गन्ध, तृषा, स्वेतकुष्ठ, शिरदर्द, मूत्ररोग और विसर्प रोगपर उपयोगी है।

छालका उपयोग पीले चम्पेकी छालके प्रतिनिधि रूपसे रक्तविकार और ज्वरपर होता है। मलाय द्वीपवासी इसके पानोंका काथ विसूचिका रोगपर देते हैं। इसके पुष्पोंमेंसे उड्डयनशील तैल मिलता है उसका उपयोग विशेषत: सुवा-सिक तैलोंमें मिलानेके लिए करते हैं।

रासायनिक संगठन—इस वृक्षकी छालमेंसे क्षारीय द्रव्य आर्टेबोट्राइन (Artabotrine) मिलता है। जिसका उपयोग विसूचिकापर होता है।

(११६) हल्दी

सं० हरिद्रा, पीता, रजनी, निशा। हिं० हल्दी, हलदी, हर्दी। बं० हलुद। म० हलद। गु० हलदर। अ० औरुकेसफुर कुर्कुम, जर्सुद। फा० दारजर्दी, झर्द चोवाह। कं० अरसिना। मला० ता० मंजल। ते० पसुपु, पम्पी। अ० Turme ric. ले० Curcuma Longa.

परिचय—ऊँचा, सुगन्धयुक्त, वर्षायु क्षुप। कंद बड़ा, अण्डाकार, वृन्तरहित नलिकाकार गांठोसह, भीतर तेजस्वी पीले रंगका। पानोंका गुच्छ ४-५ फीट लम्बा। पत्रवृन्त पान जितना लम्बा। पान सुगन्धयुक्त, दोनों ओर चिकने तथा दोनों ओर सफेद दागवाले। पुष्प मंजरीमें थोड़े (कभी मात्र २), हलके पीले, ४ से ६ इञ्च लम्बे। मंजरी ४ से ६ इञ्च लम्बी, २ इञ्च चौड़ी। पुष्पपत्र हलका पुष्प जितना लम्बा।

उत्पत्ति स्थान—हल्दी बंगाल, विहार, मद्रास, कुछ डेहरादून आदिप्रदेशों में बोयीजाती है। विहारमें पान पहले आये हुए १६ इञ्च लम्बे ६ इञ्च चौड़े फिर आये हुए २० से २४ इञ्च लम्बे ५ इञ्च चौड़े । विहारमें फूल अगस्त—सितम्बरमें ।

गुणधर्म—हल्दी रसमें कड़वी, अनुरस चरपरा, विपाक चरपरा, उष्णवीर्य स्तन्यशोधन, रूक्ष, कफघ्न, ग्राही, पित्तशामक, वर्णप्रद तथा त्वचारोग, प्रमेह, रक्तविकार, शोष, पाण्डु, व्रण, विष, कुष्ठ, वातरक्त, उदरकृमि, पीनस, अरुचि, शोथ और अपची आदिकी नाशक है।

रासायनिक पृथक्करण—हल्दीके भीतर मुख्य क्षारीय द्रव्य कर्कुमेन (Curcumen), रंगद्रव्य कर्कुमिन (Curcumin), सुगन्धित तैल १%, कुछ गाढा हरिद्रातैल (Turmerol) और राल मिलते हैं। कर्कुमेनमें पूतिनाशक (Antiseptic) और पित्तस्रावी गुण अवस्थित हैं।

हरिद्रा प्रयोग—

१. हरिद्रादिलेप—हल्दी, लोद, पतंग, रसोईघरका धुआँ और मैनसिल, इन सबको समभाग मिला बारीक चूर्णकर शहदमें मिलाकर लेप करनेसे मेद-वृद्धिसे उत्पन्न अर्बुद (रसौली) मिट जाता है।

२. निशादिलेप—हल्दी, दारुहल्दी, खस, सिरसकीछाल, नागरमोथा, लोद, सफेद चन्दन और नागकेशर, इन ८ औषधियोंको समभाग मिला जलके साथ पीसकर लेप तैयार करें। यह लेप दिनमें २-३ वार लगाते रहनेसे विस्फोटक और शीतलाके व्रण, विसर्प, दाह, स्वेद, देहकी दुर्गन्ध, रोमांतिका और उप-कुष्ठ (त्वचारोग) दूर होते हैं।

३. द्विनिशादि लेप—हल्दी, दारुहल्दी, सफेद चन्दन, रक्त चन्दन, हरड़, दूबकी जड़, पुनर्नवामूल, पद्मकाष्ठ, लोद, सोनागेरु और रसौंत, इन ११ औष-धियोंको समभाग मिलाकर जलसे पीसकर लेप तैयार करें।

यह लेप चोट लगनेसे उत्पन्न शोथ और रक्तज शोथको दूर करता है। अन्त्र के भीतर सूजन आनेपर ऊपर दबानेसे वेदना बढती है। वमन, उदरशूल, उदर कठोर भासना, मलावरोध (जुलाब या वस्तिसे भी उदर शुद्धि न होना) आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। उसपर यह लेप लगानेसे एक ही दिनमें लाभ पहुँच जाता है।

४. निशाञ्जन—हल्दी, दारुहल्दी, नागरमोथा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, मुलहठी और शक्कर इन ८ औषधियोंको समभाग मिला कूट, कपड़छान चूर्ण बकरीके दूधमें १२ घण्टे खरलकर वर्ति बना लेवें। इस वर्तिको जलमें या

स्त्रीके दूधमें घिसकर अंजन करनेसे चोट लगनेसे उत्पन्न नेत्रशोथ, पीड़ा, लाली और नेत्रस्राव आदि दूर होते हैं।

५. हरिद्रादि वर्ति—हल्दी, नीमके पान, छोटी पीपल, कालीमिर्च, वायविडंग, नागरमोथा और सोंठ, इन ७ औषधियोंको समभाग मिला कूट-कपड़छान चूर्ण कर गोमूत्रमें १२ घण्टे खरलकर वर्ति वना लेवें। (यह वर्ति उसी दिन वन सके इसलिये घुटाई वहुत जल्दी प्रारम्भ करनी चाहिये।)

इस वर्तिको जल, वकरीके दूध या शहदमें घिसकर अञ्जन करें। दाह और वेदनाके शमनार्थ वकरीका दूध या मलका स्राव करानेके लिये शहद हितावह है। जल सर्व समय सामान्य अनुपान है। इस वर्तिके अञ्जनसे नेत्रदाह, नेत्रमें पतली कला उत्पन्न होना, मल आना, नेत्रव्यथा, नेत्रलाली, कण्डू और नेत्रस्राव आदि दूर होते हैं।

६. हरिद्रा अर्क—हल्दीका मोटा चूर्ण १ भाग और शराव (४०%) ६ भाग मिलाकर ७ दिन वोतलमें रख देवें। फिर फिल्टर पेपरसे छान लेवें। मात्रा १–२ ड्राम। रसायन और रक्तशोधनार्थ दिनमें ३ वार जलके साथ सेवन करावें। कफ, प्रमेह, मूत्रदाह, जुकाम, कफ कास और श्वेतप्रदर आदि रोगोंपर हितावह है।

७. हरिद्रावलेह—हल्दी, कालीमिर्च, मुनक्का, पीपल, रास्ना और शठी, इन ६ औषधियोंको समभाग मिलावें। फिर सवके वजनसे आधा गुड़ मिलावें। इसमेंसे १-१ तोलेको कड़वे तैलमें मिलाकर दिनमें ३ वार चटानेसे कफप्रकोपसह श्वासरोग दूर हो जाता है। एवं यह अवलेह हिक्का रोगमें भी हितावह है।

८. हरिद्रादि धूम—हल्दी, दारुहल्दी और मैनसिल, इन ३ औषधियोंको जलमें पीसकर छोटी छोटी वर्तियां वनाकर सुखा लेवें। फिर उनमेंसे एक वत्ती को जलाकर वीड़ीके समान धूम्रपान करानेपर संगृहीत कफ वाहर निकलकर छाती हल्की हो जाती है।

मात्रा—उदर सेवनार्थ चूर्ण २ से ६ माशे दिनमें ३ वार। पाक रूपसे ६ माशेसे १ तोला।

उपयोग—हल्दीका उपयोग अति प्राचीनकालसे भोजन, घरेलू उपचार और आयुर्वेदीय ओषधि रूपसे हो रहा है। चरक संहितामें लेखनीय, कुष्ठघ्न, कण्डूघ्न और विषघ्न दशेमानियोंमें उल्लेख मिलता है तथा अन्तः परिमार्जन और वहिः परिमार्जनके प्रयोग, तिक्त स्कंध और प्रमेह, कुष्ठ, उन्माद, कामला, कास, विषप्रकोप, स्तन्यविकार और पीनस आदि रोगोंपर हल्दीका उपयोग किया है। एवं सुश्रुत संहितामें हरिद्रादि गण, मुस्तादि गण, वातसंशमन वर्ग, श्लेष्म संशमन वर्ग तथा कुष्ठ, नेत्ररोग, रक्तपित्त, श्वासरोग, कास, अरोचक, अपस्मार

और प्रमेह आदि अनेक रोगोंके प्रयोगोंमें हल्दी ली है।

हल्दी नित्य उपयोगकी घरेलू वस्तु है। हल्दी सब प्रकृतिवालोंको, बालक, युवा, वृद्ध, सगर्भा, प्रसूता आदिको तथा सब वस्तुओंमें निर्भय रूपसे व्यवहृत होती है। इसके सेवनमें हानि होनेका भय नहीं है। यह निर्भय और उत्तम औषधि है। वात, पित्त, और कफ, तीनों दोषोंकी विकृतिपर हल्दीका उपयोग होता है। हल्दीका कार्य क्षेत्र पचनसंस्था, रस, रक्त आदि सब धातुएं और वात, पित्त, कफ, तीनों दोष हैं। इनमेंसे कफ धातुपर विशेष प्रभाव पड़ता है। हल्दीमें दोषको सुखानेका (लेखन) गुण होनेसे श्लैष्मिक कलामेंसे कफोत्पत्ति अधिक होती हो या विकृत कफ या आमविष देहके किसी भागमें संगृहीत हुआ हो, तब उसे यह दूर करती है और जला डालती है। इस हेतुसे जुकाम, कफ, कास और आंखोंमें मल आनेपर यह दी जाती है। उक्त लेखन गुणके साथ अग्नि प्रदीपन, पूतिहर और रक्तप्रसादन गुण होनेसे कफज और पित्तज प्रमेह, श्वेत-प्रदर, बस्तिप्रदाहपर यह विशेष उपयुक्त ओषधि सिद्ध हुई है। इस गुणके हेतुसे कितनेक आचार्योंने इसे मेहघ्नी उपनाम भी दिया है।

हल्दीमें वातशामक गुण होनेसे शीत लगकर उत्पन्न वातनाड़ी प्रदाह आदि पर उदरसेवन और स्थानिक मालिश करायी जाती है। इस गुणके हेतुसे अंगका अकड़ना, शिरदर्द, चक्करआना, संधिस्थानोंमें पीड़ा आदिपर यह लाभ पहुँचाती है। हल्दी पित्तविकृतिपर हितावह है। इस हेतुसे यकृद्विकार, कामला और पित्तप्रमेह आदिपर इसका उपयोग होता है। एवं पाण्डुरोगपर लोहके साथ मिलाकर देनेसे सत्वर गुण मिलता है।

हल्दीमें कीटाणुनाशक, पूतिहर, विषहर और रक्तप्रसादन गुण होनेसे रक्तविकार, उदरकृमि, कण्डू आदि विविध त्वचारोग, फोड़े, फुन्सी, सड़े हुए घाव पीनस, कर्णपाक और नेत्रपाक आदिपर लेप, पुल्टिस और धुआँरूपसे हल्दीका प्रयोग किया जाता है।

हल्दीके दीपन और ग्राही गुणका उपयोग अग्निमान्द्य, अरुचि, अतिसार और पेचिश आदिपर प्रतीत होता है।

हल्दीमें गर्भाशय उत्तेजक, स्तन्यशोधन और रक्तप्रसादन गुण होनेसे हल्दी प्रसूताको खिलायी जाती है। १-१ माशा हल्दी रात्रीको निवाये जलसे १५ दिन तक लेनेसे प्रजनन यन्त्र बलवान बन जाता है, गर्भाशयमें दोष रहगया हो, तो बाहर निकल जाता है, एवं मंदज्वर हो, तो वह भी दूर होजाता है।

हल्दीका स्थानिक उपयोग करनेपर वह स्थानिक उत्तेजना प्रदान करती है, जिससे वेदनाशमन होती है और रक्त जम गया हो तो बिखर जाता है। इस हेतुसे चोट, मोच आदिपर हल्दीका लेप किया जाता है। इसमें विषनाशक गुण

होनेसे छोटे कीड़ेके दंशपर भी हल्दीको घिस निवायाकरके लेपकर दिया जाता है।

१. जुकाम—नया रोग होनेपर दूधमें हल्दी मिला गरम करें फिर नीचे उतार निवाया रहनेपर थोड़ा गुड़ मिलाकर सुबह और रात्रिको पिलावें। इसके अतिरिक्त पतला जल जैसा स्राव होता हो, तो हल्दीका धुआँ भी दिया जाता है। इन दोनों उपचारोंसे श्लैष्मिक कलापर लेखन गुण पहुँचकर कफोत्पत्ति वन्द होजाती है।

यदि रोग पुराना है। सफेद या पीला गाढा श्लेष्म निकलता रहता है, तो दूधमें हल्दी और थोड़ा घी मिला, उबाल निवाया रहनेपर पिलाने और हल्दी का धुआँ देनेसे कफ गिरकर शिरकी जड़ता दूर होजाती है।

२. कफकास—हरिद्रा अर्कका सेवन करें या हल्दीको दीपकपर सेक चूर्णकर घी या शहदके साथ मिलाकर लेवें। जीर्ण कफ रोगमें जब कफ अत्यधिक गिरता हो और घबराहट अधिक हो, तब दूधमें हल्दी मिला, उबाल, निवाया रहनेपर १ बूंद भिलावेका तैल और थोड़ा गुड़ मिलाकर पीते रहें। (यह महाराष्ट्र का घरेलू उपचार है।)

३. श्वास—वृद्धावस्था, अति धूम्रपान आदि कारणोंसे छातीमें कफ संग्रह अधिक रहता हो, थोड़ा-सा परिश्रम करने या चलनेपर श्वास भर जाता हो और घबराहट रहती हो, तो कफस्राव करानेकेलिये हरिद्राद्यवलेहका सेवन करावें तथा तमाखूके व्यसनीको हरिद्रादि धूम्रका पान करानेसे भी तुरन्त लाभ पहुँच जाता है।

४. अर्श—अ. बवासीरके मस्से सूज गये हों, तो घीकुंवारके गर्भपर हल्दी बिखेरकर या दोनोंको मिला पीस, गुनगुनाकर पुल्टिस जैसा बना करके बांधा जाता है या लेप किया जाता है। अथवा हल्दीको घीमें घिसकर लेप करनेसे भी लाभ होजाता है।

आ. हल्दीके चूर्णमें थूहरका दूध मिलाकर उसमें सूतका डोरा भिगोवें। उस डोरेको अर्शके मस्सेपर ५-७ बार बांध देनेसे मस्सा गिर जाता है।

५. उदरकृमि—२ से ४ वर्षके बालकको हल्दी ४ रत्ती और गुड़ ४ रत्ती मिलाकर दिनमें २ बार खिलावें और ऊपर ३ माशे वायविडंगका क्वाथ पिलावें। इस तरह ३-४ दिन देनेपर मध्य अन्त्रमें रहने वाले सूक्ष्म उदर कृमिका नाश होजाता है।

६. कामला—६ माशे हल्दीको मट्ठेमें मिलाकर दिनमें २ बार सेवन करें। भोजनमें दही-भात या मठ्ठा-भात लेते रहनेसे ४-५ दिनमें कामला शमन होजाता है।

७. कफ प्रमेह—कफविकारसे उत्पन्न प्रमेह-सांद्रमेह जिसमें पेशाव गाढा होजाता है, पिष्टमेह, जिसमें आटा मिले हुये जलके सदृश मूत्र गँदला रहता है, शुक्रमेह, जिसमें मूत्रके साथ शुक्र जाता है आदि प्रमेहोंपर हल्दी और आँवलेका क्काथ दिया जाता है। उससे मल-मूत्रकी शुद्धि होकर रोग निवृत्त होजाता है।

हल्दी, दारुहल्दी, हरड़, बहेड़ा और आँवला, इन ५ औषधियोंको समभाग मिलाकर जौकूट कर १ तोला रात्रिको जलमें भिगो देवें। सुबह औषधि मसल-कर छान लेवें। उसमें ६ माशे शहद मिलाकर पिलावें। यदि उदरमें शूल और वायु संग्रह और पतले दस्त न हों, तो रात्रिको भी इसी तरह सेवन कराते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें कफज और पित्तज प्रमेह दूर होजाते हैं।

८. उदकमेह—इस प्रकारके प्रमेहमें मूत्रका परिमाण बहुत बढ़ जाता है। मूत्र कुछ गँदला भी रहता है। उसपर हल्दी और तिल १-१ माशा और गुड़ २ माशे मिलाकर सुबह शाम नितारे जलके साथ सेवन करते रहनेसे कुछ दिनोंमें लाभ होजाता है। यदि तृषा भी अधिक लगती हो, तो हल्दी और आँवले २-२ माशे और शक्कर ४-४ माशे मिलाकर दिनमें ३ समय लेते रहना चाहिये।

९. श्वेतप्रदर—हल्दी उत्तम गर्भाशय उत्तेजक और लेखन होनेसे सफेद गाढा श्लेष्मा जानेपर गूगलके साथ और पतला स्राव अत्यधिक समय होनेपर रसौंतके साथ सेवन करायी जाती है। मात्रा २से ३माशे दिनमें २वार सुबह और रात्रिको देवें।

१०. कर्णस्राव—कानमेंसे पूय बहता हो, तो हल्दी और फिटकरीका फूला मिलाकर कानमें डालनेपर स्राव दूर होता है और कान जल्दी अच्छा होजाता है।

११. नेत्राभिष्यन्द—आँख आनेपर १तोला हल्दीको १६तोले जलमें उबाल स्वच्छ दोहरे कपड़े या फिल्टर पेपरसे छानकर दिनमें २वार २-२बूंद आँखोंमें डालते रहने और उसमें भिगोये हुये चौलड़ा कपड़ेकी पट्टी नेत्रपर रखनेसे आँखोंको ठण्डक मिलती है; वेदना शान्त होती है, मल और पूय कम होता है और शुक्र (फूला) हुआ हो, तो वह भी दूर हो जाता है। नये अभिष्यन्द रोगपर हल्दी उत्तम औषधि है।

१२. कण्डू—खुजली आदि त्वचा रोगोंमें आँवला (२ से ४ तोले) और हल्दी (२ से ६ माशेके) क्वाथका जुलाब देनेसे स्थूल विषका अधिकांश नष्ट होजाता है। फिर कड़वे नीमका पान और हल्दी १-१ माशेको पीसकर जलके साथ दिनमें २ बार लेते रहें तथा हल्दी और नीम पत्रके चूर्णको मक्खनमें मिलाकर मालिश करते रहनेसे एक सप्ताहमें त्वचा मुलायम और तेजस्वी बनती है और कण्डू आदि अनेक त्वचा रोग नष्ट होते हैं।

१३. विषप्रकोप–मंद विषका सेवन होने या कीटाणुओंकी आबादी रक्तमें बढनेपर विष उत्पन्न हो जाता है। उस लीन विषको नष्ट करनेके लिये हल्दी २-२माशे सुबह और रात्रिको गोदुग्धके साथ सेवन करते रहनेसे २१ दिनमें विष नष्ट होकर रक्तशुद्ध होजाता है।

१४. शीतताके व्रण–निशादि लेप लगावें या हल्दी और कत्थेको पीस फूटे हुए व्रणोंपर भुरकाते रहनेसे वे जल्दी भर जाते हैं।

१५. अन्त्रशोथ–द्विनिशादि लेप दिनमें ३बार लगाते रहनेसे वमन, उदरशूल, मलावरोध आदि सब लक्षणोंसह अन्त्रशोथ दूर हो जाता है।

विरेचनके अतियोग, बार बार विरेचन, अपचन और उदरको बलपूर्वक मसलनेपर आंतोमें शोथ आजाता है। फिर मलावरोध, उदरपीड़ा, शूल, आफरा और बेचैनी उत्पन्न होते हैं। ऐसे समयपर विरेचन या बस्तिसे लाभ नहीं पहुंच सकता। यह लेपही हितावह होता है। रोगीको पूर्ण विश्रांति देनी चाहिये।

१६. रसार्बुद—रसौली देहके किसी भी भागमें हो जाती है। उसमें रस भरता जाता है और मेद बढती जाती है। वेदना नहीं होती और न वह पकती है। इसके ऊपर हल्दीकी राख(तवेपर हल्दीके टुकडोंको जलाकर की हुई राख) को जलमें मिला, लेप जैसा बना रसौली बीचमें ।।—।।। इञ्च गोलाईमें मोटा मोटा लेप करें। यह लेप दिनमें ३ बार करें और उसे कुछ समयतक गीला रखनेकेलिये बीचमें १-१ बूंद जल डालते रहें। इस तरह ४-६ दिनतक लेप करनेपर उस स्थानपर क्षत हो जायगा। फिर उसे दबाकर मेद या रस जो संगृहीत हुआ हो, उसे निकालकर हल्दीके क्वाथसे धो देवें। पश्चात् राखको तिल तैलमें मिलाकर दिनमें २ बार लेप करते रहनेसे व्रण शुद्ध होकर सरलतासे भर जाता है। यदि रोग नया हो, तो वृद्धिको रोक देनेकेलिये हरिद्रादि लेप लगाया जाता है।

१७. चोटजनित शोथ—लाठी, पत्थर आदि लगने या गिर जानेसे किसी भागमें रक्त जम गया हो और वेदना होती हो, उसपर द्विनिशादि लेप करनेसे रुधिर बिखर जाता है और वेदना दूर होती है। हड्डी अथवा मांसपर चोट आई हो, तो उसपर भी यह लेप लगाया जाता है। रक्त निकलकर आनेवाले शोथपर हल्दीको पानमें खानेके चूनेके साथ मिलाकर लेप किया जाता है। जिससे पकनेकी भीति दूर होती है और शोथ उतर जाता है।

१८. नेत्रपर चोट—आँखपर हाथ, लकड़ी आदिकी चोट लग जानेपर निशाद्यञ्जनको स्त्रीदुग्ध, बकरीके दूध या जलमें घिसकर अञ्जन करने और नेत्र पर लेप करनेसे अश्रुस्राव, लाली, वेदना, सूजन, दृष्टिमांद्य आदि लक्षण दूर हो जाते हैं।

१९. नेत्रमें श्लैष्मिक कलावृद्धि—हरिद्रादि वर्तिका अञ्जन दिनमें २ वार करते रहनेसे श्लैष्मिककला वढना, दाह, कण्डू, अश्रुस्राव आदि विकृति शमन होजाती है। रक्तमें विष हो या उदरमें मल संगृहीत रहता हो, तो उसे दूर करने का उपाय करना चाहिये।

२०.स्तनशोथ—विशेषतः प्रसूताको और कभी सन्तानवाली माताको स्तनपर सूजन आ जाती है। फिर भयंकर वेदना होने लगती है और पकने लगता है। उसकी प्रथमावस्थामें हल्दी और घीकुंवारके गर्भको खरलकर, गुन-गुनाकर मोटा मोटा लेप करने या पुल्टिस बांधते रहनेसे और दिनमें ४–६ वार वदलते रहनेसे रक्त जल्दी शुद्ध होकर विखर जाता है और पाक होने लगा हो तो जल्दी फूट जाता है।

(१२०) हारसिंगार

सं० हारश्रृङ्गार, पारिजात, शेफालिका, शुक्लाङ्गी। हिं० हारसिंगार। डेह० कुरीं। वं० शेफालिका,सितिक। गु० हारशणगार, पारिजातक। म० पारिजातक। निमाड —शिराली। संता० सपरोम। क० हरिश्रृंगी, पारिजातक। मला० पारिजातकम्, मन्नापु। ता० मंजात्तु। ते० पारिजातम्, कृष्णवेणी। उर्दू–गुले जाफरी। ओ० सिंगारे हारो। अं० Coral Jasmine, Night Jasmine ले० Nyctanthes Arbortristis.

परिचय–छोटा, पतनशील पर्णयुक्त वृक्ष ऊंचाई। २५-३०फूट। नयी शाखाएं चतुष्कोण। लकड़ी लालरंगकी। छाल खुरदरी धूसराभ–सफेद, श्वेताभ वालयुक्त। पान सामने सामने। २से ४इञ्च लम्बे, १से २॥इञ्च चौड़े, लम्ब गोलाकार नोकदार, खुरदरे, दोनों ओर रुएंदार, ऊपरीतल हरा, नीचे सफेद आभावाला। पत्रवृन्त ¼ इञ्च लम्बा। पुष्प ॥इञ्च व्यासके, मनोहर, सुगन्धित, वृन्तरहित, शामको खुलनेवाले, सुबह गिरनेवाले, ३से ५के गुच्छोंमें। पुष्पदण्ड ४कोनवाला, नारंगी रंगका, कोमल, छोटे ३विभागवाले तुर्रेमें। पखड़ियां ¼ इञ्च लम्बी, सफेद ५से८। फली ॥से १इञ्च व्यासकी। पुष्प अनेक प्रान्तोंमें वारह मास रहते हैं। वगांलमें वर्षाऋतु (अगस्त–सितम्बर) में फूल और फल दिसम्बरमें आते हैं। इस वृक्षकी सुगन्ध वायु द्वारा दूरतक फैलती है। पान अप्रेलमें गिरते है।

उत्पत्ति स्थान–हिमालयके वाह्य सीमामें चिनावसे नेपालतक। आसाम, ब्रह्मदेश,वंगाल, सी.पी, गोदावरीके दक्षिणमें। अब यह भारतके अनेक प्रान्तोंमें वोया जाता है।

गुणधर्म–राजनिघण्टुकारके मतानुसार शेफालि रसमें तेज–कड़वी–उष्णवीर्य, रूक्ष, वातहर तथा संधिस्थानोंकी पीड़ा, गुदवात आदिका नाशक है। छाल कासहर, रस ज्वरहर, पुष्प प्लीहावृद्धिहर और वहुमूत्रघ्न।

यूनानी मतानुसार पुष्प कड़वे और बेस्वादु हैं तथा आमाशयपौष्टिक, उदरवातहर, ग्राही, प्रदाह हर और केश्य है। कलिका पौष्टिक है। पान बने रहनेवाले जीर्ण ज्वरमें उपयोगी हैं। बीज अर्श और चर्मरोगनाशक है।

डाक्टर देसाईके मतानुसार हारसिंगार ज्वरघ्न, कफहर, यकृदुत्तेजक, सारक, शामक और चर्मरोग नाशक है। पान सेण्टोनीनके समान कृमिघ्न, कटुपौष्टिक, पित्तस्रावी और आनुलोमिक है।

मात्रा—छाल ३से ६रत्ती। पान ४रत्तीसे १माशातक।

उपयोग—हारसिंगारका उपयोग प्राचीन ग्रन्थोंमें नहीं मिलता। बंगालमें इसे घरेलू उपचार रूपसे काममें अधिक लेते हैं। पुष्पदण्डोंको पीस कपड़े रंगनेसे सुन्दर केशर सदृश पीला रंग आ जाता है।

१. विषमज्वर—दिनोंतक बने रहनेवाले नये विषमज्वरमें ६-७ताजे पान और अदरकको जलमें पीस, रस निकालकर दिनमें ३ बार पिलाते रहनेसे १सप्ताहमें ज्वर दूर हो जाता है। खांसी, आमवातजज्वर और सांधोंमें पीड़ा हो, उनको भी यह शमन करता है।

२. गृध्रसी—पानोंका फाण्ट दिनमें २-३बार १सप्ताहतक सेवन करानेपर पीड़ासह गृध्रसी वात दूर हो जाता है।

३. उदरकृमि—बालकोंके उदरमें गोलकृमि होनेपर पानोंका रस शक्कर मिलाकर देनेसे मरकर कृमि निकल जाता है।

४. श्वास—कफ प्रधान श्वासरोगीको नागरबेलके पानके साथ हारसिंगार की छाल २-२रत्ती या पान दिनमें ३बार देते रहनेसे कफह्रासहो जाता है। और व्याकुलता भी कम हो जाती है।

५. गंज—बीजोंको जलमें पीस शिरपर लेप करते रहनेसे कीटाणु नष्ट होते हैं। शुष्कता दूर होती है। फिर नये बाल आने लगते हैं।

(१२१) हिरनपदी

सं० हरिणपादी। हिं० हिरनपदी, वेरी, हरिणपदी। पं० हिरनपदी। सौ० वेलड़ी, खेतराऊ फुदरड़ी। कच्छी-नेरीवल, नेरी। गु० नारी, चांदवेल, हरण-पदी। म० हिरणवेल। अं० Deers foot Bindweed. ले०Convolvulus Arvensis.

परिचय—कोन्वोल्वुलस=लिपटनेवाली। अर्वेन्सिस=खेतोंमें नैसर्गिक उगनेवाला। भूमिगत काण्ड फैलनेवाला। काण्ड सामान्यतः १से १०फूटलम्बा, जमीनपर फैलनेवाला, उलझाहुआ या विशेषतः लिपटकर चढनेवाला। न्यूनाधिक कोनयुक्त, चिकना या रुएंदार। तोड़नेपर दूध निकलता है। मूल सूतलीसे

उत्पत्ति स्थान—संसारके सब प्रदेश।

रासायनिक संगठन—मूलमें विरेचन द्रव्य अवस्थित है। काण्डके सुराप्रधान अर्कके भीतर १॥ से ४% रालमयद्रव्य मिलता है। वह उग्रता दर्शन और प्रदाहक है। इसका विरेचन प्रभाव जेलप समान है। अम्ल द्रव्य १४% तक और शर्करा-प्रधान द्रव्य १९६-१९७. ३ तक मिलता है। सूखे भूमिगत काण्ड (Rhizome) से ४. ९% राल मिलता है। बीजोंमें स्थायी तैल ४.७% मिलता है।

गुणधर्म—मूल और पञ्चाङ्ग विरेचन। उष्णवीर्य, पान सारक, व्रणशोधक।

उपयोग—इसका विशेष उपयोग पशुओंके चारारूपसे होता है। सिंधमें इसका मूल जेलपके स्थानपर विरेचन रूपसे करते हैं। ग्रामीण लोग व्रणको पकानेके लिये इसके पानकी पुल्टिस बाँधते हैं और ताजे पानोंका शाक करके खाते हैं।

(१२२) हिंगोट

सं० इंगुदी, तापसद्रुम, अंगारवृक्ष, तिक्तक। हिं० हिंगोट, गोंदी, गौंदी, इंगुन, इंगुदी। म० हिंगणबेट। गु० इंगोरियो। बं० हिंगन, जीयासुता। रा० हिंगोरिया। कच्छी-अंगारिया। तां० नंचुदन, नानफुनदा। ते० गार, इंगुदी। ओ० इंगुदी-हाला। मला० नंचुट। कना० इंगलरे, इंगलुके। ले० Balanites Aegyptiaca

परिचय—वेलनाइटिस=मलायलम् वलन अर्थात् दुर्गन्धयुक्त। इजिप्टिका= इजिप्टवासी। जांगल कांटेदार, छोटी बड़ी अनेक शाखायुक्त, सर्वदा हरा, १० से ३० फूट ऊँचावृक्ष। बहुधा प्रशाखाके अन्तभागमें लम्बा, तीक्ष्ण कांटा। मुख्य वृन्तपर प्राय: सामने सामने दो पर्णदल (Leoflets) विविध आकारके। पुष्प हरे सफेद, छोटे सुगन्धित। फल अण्डाकार लम्बगोल, चिकने, तेजस्वी, अति कठोर। लम्बाई लगभग २-२॥ इंच। फल कच्चा होनेपर हरा और पकनेपर पीला। पुष्पकाल ग्रीष्म। फल पाक शरद्ऋतुमें।

उत्पत्तिस्थान—आफ्रिका, अरबस्थान और भारतके उष्ण और उपउष्ण सर्व प्रदेश।

रासायनिक पृथक्करण—डाक्टर वामन देसाईके मत अनुसार फलगर्भमें १.३% साबुन, १% अम्लद्रव्य, शक्कर और अधिक पिच्छिल द्रव्य (सेपोनीन) होते हैं। छालके भीतर साबुन जैसा झाग उत्पन्न करनेवाला पदार्थ है। इसके फलोंके मद्यार्कसे तैलका दुग्धीकरण होता है। हिंगोटकी छाल और फलके गूदेका गुण सेनेगाके समान माना गया है।

बीजोंको भून या उबालकर तैल निकाला जाता है। उस तैलको Betuoil कहते हैं। इसका स्वाद कुछ कड़वा मीठा होता है। इसका उपयोग साबुन बनाने और खानेमें भी होता है।

गुणधर्म—हिंगोट रसमें कड़ुवा, अनुरस चरपरा, विपाक चरपरा, उष्णवीर्य, मादक गन्धयुक्त (वास अधिक वार लेनेपर शिरमें भारीपना लानेवाला), झाग उत्पन्न करने वाला और रसायन है। एवं कृमि, वातरोग कफ प्रकोप, व्रणवि-कार, कुष्ठ, विष, श्वित्र, शूल, भूतबाधा और ग्रहबाधा आदिको दूर करता है।

पुष्प सुगन्धित, कड़वे, उष्ण असरयुक्त और वातकफनाशक है। फल रसमें तिक्त, अनुरस मधुर, स्निग्ध, उष्णवीर्य और कफवातहर है। बीजोंका तैल कुछ कड़वा, हलका, चर्मरोग और कीटाणुओंका नाशक तथा नेत्र, दृष्टि, शुक्र और बलको घटानेवाला है।

डाक्टर देसाईके मतानुसार हिंगोट स्रंशन, कृमिघ्न, कफहर और कुष्टनाशक है। जीर्ण कफ रोगमें फलके गूदेसे अच्छा लाभ पहुँचता है। इसे बादाम तैल और शक्करके जलके साथ खरलकर दुग्धीकरण करके देना हितावह है। इसके सेवनसे कफ पतला होकर शीघ्र निकलने लगता है; मल- मूत्रकी शुद्धि होती है। बीजोंका तैल घाव और अग्निदग्ध व्रणपर लगाया जाता है।

मात्रा—फलगर्भ कफघ्न रूपसे १से ५रत्ती, सारकरूपमें १०से ३० रत्ती।

उपयोग—हिंगोटका उपयोग प्राचीनकालसे आयुर्वेदमें होता रहता है। चरकसंहिता और सुश्रुतसंहिता, दोनोंमें इसका उल्लेख मिलता है।

कपड़ा धोनेके लिये हिंगोटके फलोंको साबुनके समान लगाया जाता है। किन्तु उसमें तेजाब रहनेसे कपड़े की आयु कम हो जाती है।

१.उदरशूल—फल गर्भ ५ से १० रत्ती सेवन करें या मूलको जलमें घिस-कर पीवें।

२. अपचन—हिंगोटकी छालका चूर्ण दहीमें देवें।

३. जीर्ण कफ कास—हिंगोट फल गर्भ २-२ रत्ती दिनमें २ या ३ वार शहद के साथ देवें या देसाईके मतानुसार दुग्धीकरण (इमल सन) बनाकर सेवन करावें।

४. श्वानविष—प्रातःकाल पहले गुड़ खिलावें। फिर हिंगोटकी छालका चूर्ण ३-४माशे मट्ठेमें मिलाकर पिला देवें। इस तरह १सप्ताहतक सेवन करानेसे विष वमन और विरेचन होकर बाहर निकल जाता है।

५. कर्णमूल-हिंगोट, हल्दी, इन्द्रायन, सैंधानमक, देवदारु और आकके दूधको मिलाकर बार बार लेप करते रहनेसे कर्णमूलका शमन हो जाता है।

६. तारुण्यपिटिका-हिंगोटके फलगर्भको जलमें घिसकर मुँहपर लेप करते रहनेसे सब फुन्सियां दूर हो जाती हैं।

७. स्तनशोथ-स्त्रियोंके स्तनपर सूजन आनेपर हिंगोटके मूलको जलमें

घिस निवायाकर लेप करें। फिर धतूरेके पानपर तैल लगा किंचित् गरमकर ऊपर बांधे। इसपर थोड़ा थोड़ा सेक करें। इस तरह ३ दिन करनेपर सूजन दूर हो जाती है।

८. अश्रुस्राव—आंख आने और जलस्राव होनेपर हिंगोटके फलको जलमें घिसकर प्रातः सायं अंजन करनेसे २-३ दिनमें आंख स्वच्छ और नीरोग हो जाती है।

९. नारू—हिंगोटके मूलकी छाल (या फलगर्भ) और ४-६ रत्ती हींग मिला जलमें पुल्टिस बनाकर बांध दें। चौथे दिन पट्टी खोलें। इस प्रयोगसे नारू गल जाता है।

१०. अग्निदग्धव्रण—अग्निसे जल जाने (झुलस जाने) पर हिंगोटका तैल लगा लेनेपर तुरन्त लाभ हो जाता है।

११. पशुओंका अफारा—हिंगोटके फल फूलका क्वाथ करके पशुको पिला देनेसे उदरशुद्धि हो जाती है।

(१२३) हींग

सं० हिंगु, रामठ, बाह्लीक वं० हिंगु। म० गु० हिंग। काठि० वघारणी। ता० पेरुन्कायम्। ते० इंगुवा। क० इंगु। मला० कायम्। अ० Asafoetida ले० Ferula Foetida

परिचय—हींग यह फेरूला फीटिडा और अन्य फेरूला जातिके वृक्षोंका गोंद है। इसके क्षुप अफगानिस्थान, इरान और काश्मीरादिमें होते हैं। हींगमें अनेक जाति हैं। इनमें गोंद या दूसरी वस्तु और पथरादि भी मिला लेते हैं। सामान्यतः हींगका संग्रह वसन्त ऋतुमें होता है। तने को काट, रस (प्रवाही गोंद) को इकट्ठा कर चमड़ेमें भरते रहते हैं, वही सूखकर हींग हो जाती है। अच्छी हींगमेंसे तीव्र वास आती है। जलानेपर कपूरके समान जलती है।

मात्रा—२से ८रत्ती तक। आयुर्वेदके मतानुसार खिलानेकेलिये उसकी उग्रताको दूरकरनेकेलिये घीमें भून लेते हैं। फिर उपयोगमें लेते हैं। भूननेपर मात्रा ६से १२रत्ती तक दे सकते हैं। जल्दी लाभ पहुंचानेकेलिये निवाये जलमें खरलकरके पिलादेना चाहिये।

गुणधर्म—हींगका रस चरपरा, विपाक चरपरा, वीर्य उष्ण, तीक्ष्ण, सारक, दीपन, और पित्तवर्धक है। यह वात, कफ उदरकृमि, शूल, गुल्म, उदररोग, आध्मान, मलावरोध, मूर्च्छा, अपस्मार, नष्टार्तव और कष्टार्तवको दूर करती है। राज निघण्टुकार ने हींगको आंखोंकेलिये हितकर कहा है।

डाक्टर देसाईके मतानुसार हींग दीपन, पाचन, आमाशय और अन्त्रको

उत्तेजक, वातहर, आनुलोमिक (सारक) कृमिघ्न, छेदनीय, श्लेष्महर, कफदुर्गन्ध-नाशक, वातसंस्थानकेलिये प्रबल उत्तेजक, गर्भाशय उत्तेजक, प्रबल आक्षेपहर और विषमज्वर नाशक है। इसमें रहा हुआ उड्डयनशील तैल श्वासनलिका, त्वचा और वृक्कोंमेंसे बाहर निकलता है तथा उन उन मार्गोंको उत्तेजित करता है। इसका कफ गिरानेका धर्म प्याजके समान है। इससे श्वासनलिकामें रहा हुआ कफ पतला होता है। कफकी दुर्गन्ध नष्ट होती है और उसमें रहे हुए कीटाणु-ओंका नाश होता है इससे श्वासोच्छ्वासके केन्द्र स्थानकी क्रिया कुछ शान्त होती है। जिससे चिरहेतु अन्तवाली खाँसी कम होती है।

(१) संज्ञावाही तन्तु अथवा संचालक तन्तु (वातनाड़ियाँ) जब प्रक्षुभित होते हैं; (२) किसी परिस्थितिमें वातसंस्थानके केन्द्रस्थान अशक्त होनेसे उनपर बाह्य कारणोंका परिणाम योग्यमात्राकी अपेक्षा अधिक होता है; (३) मस्तिष्कगत समाचारका पालन चाहिये उससे अधिकतर होता है। और इस हेतुसे आवश्यक (अनिच्छित) क्रिया हो जाती है अथवा दुःख दायक या त्रासदायक परिणाम आता है; इन सब विकृत परिस्थितियोंमें हींग वातसंस्थानोंको नियमित बनाती है। जिससे आती हुई क्रिया बन्द हो जाती है इसी हेतुसे हींगको वातसंस्थाके लिये बल्य और आक्षेपहर कहा है।

हींगसे आमाशय और अन्त्रकी मांसपेशियां उत्तेजित होती है। एवं शौच शुद्धि होती है।

रसशास्त्र—नव्य शोधानुसार हींगमें ६से १७प्रतिशत उड्डयनशील तैल मिलता है; जिसमें लहसुन समान वास आती है। इसके अतिरिक्त राल ६५ प्रतिशत और गोंद २५ प्रतिशत तक मिलता है।

हिंगुकल्प—

१. हिंग्वष्टक चूर्ण—सोंठ, कालीमिर्च, पिप्पली, अजवायन (या अजमोद), सैंधानमक, जीरा, कालाजीरा, और भुनीहींग, इन ८औषधियों को समभाग मिलाकर चूर्ण करें। मात्रा-१से ४माशे भोजनके समय घीके साथ पहले ग्रासमें। यह चूर्ण अजीर्णरोग अरुचि, मंदाग्नि, हैजा पसलीदर्द, वातसंग्रहणी, वातगुल्म, वातशूल, आफरा आदि दोषोंको दूर करके पचन क्रियाको सुधारता है। कफज और वातज विकारमें लाभदायक है। गुणधर्मका विशेष विवेचन रस-तन्त्रसारमें देखें।

सूचना—पित्तप्रधान प्रकृतिवालोंको और पित्तप्रकोपमें इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।

२. पित्ताक्षारपाचन चूर्ण—हिंग्वष्टकचूर्ण, छोटीहरड़का चूर्ण और सज्जीखार (सोडा) तीनोंको समभाग मिलाकर खरलकर बोतलमें भरें।

मात्रा—३ से ४ माशे २ बार निवाये जलके साथ। यह चूर्ण आमको पचाता है; अपान वायुको शुद्ध लाता है तथा मलावरोध दूरकरता है। आमाशयका पित्त अधिक तेज होनेपर और यकृत् पित्त निर्बल होने पर यह चूर्ण हिंग्वष्टककी अपेक्षा अधिक लाभदायक है। विशेष गुणधर्म रसतन्त्रसारमें देखें।

३. हिंग्वादिवटी—भूनीहींग, अम्लवेंत, सोंठ, कालीमिर्च, पिप्पली, अजवायन, सैंधानमक, विडनमक, और कालानमक, ये ९ओषधियाँ समभाग मिला, बिजौरे नीबूके रसमें ३दिन खरलकरके २-२रत्तीकी गोलियां बनालेवें। मात्रा-१से ४गोली दिनमें २-३बार मट्ठेके साथ देवें या१-१ गोली मुँहमें रखकर रस चूंसते रहें। उदरशूलको दूरकरनेमें यह वटी अति लाभदायक है। आफरा हो, तो उसे यह दूर करती है तथा पचन क्रिया बढाती है।

४. हिंगुकर्पूरवटी—हींग और कपूरके चूर्णको ८-८तोले मिलावें। मिलने पर गोलियां बांधनेलायक गीलापन आजाता है। उसमेंसे १-१रत्तीकी गोलियां बना लेवें। मात्रा- १से २गोली दिनमें ३बार जल, दूध, शहद या, अदरखके रस और शहदके साथ।

वक्तव्य—कितनेक चिकित्सक इसमें १तोला कस्तूरी मिला लेते हैं। कस्तूरी मिलानेपर गुण बढ जाता है। ज्वरमें वातप्रकोपज सन्निपातके लक्षण बुद्धिभ्रम, मंद मंद प्रलाप, वस्त्रफेंकना, हाथपैरोंमें कम्पहोना, बार बार उठना और हिस्टीरिया आदिपर यह वटी दीजाती है। आवश्यकतापर ३-३ घण्टेपर ३-४बार देवें। रोगी न निगलसके, तो अदरखके रस और शहदमें मिलाकर जीभपर घिस देवें।

५ अतिसारहरवटी—हींग, कालीमिर्च और कपूर तीनों ४-४तोले और अफीम १ तोला मिला अदरखके रसमें ६ घण्टे खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें।

मात्रा-१ से २ गोली दिनमें ३ बार। यह वटी अतिसारमें बार बार दुर्गन्ध रहित पतले दस्त होने और कॉलेराके दस्त जिसमें दुर्गन्ध न आती हो, मात्र जल गिरता हो, उन दोनोंपर तुरन्त लाभ पहुँचाती है।

६. हिस्टीरियावटी—हींग कच्ची और एलुवा समभाग मिला जलके साथ खरलकर २-२रत्ती की गोलियां बनावें। मात्रा १-१गोली दिनमें २ या ३बार जलके साथ देते रहमेसे हिस्टीरिया थोड़े ही दिनोंमें दूर हो जाता है। आफरा और मलावरोधपर भी यह हितकारक है। रात्रिको २ गोली देनेसे सुबह १ दस्त साफ आजाता है।

उपयोग—हींगका उपयोग आयुर्वेदमें प्राचीन कालसे होरहा है। आचार्योंने सैंकड़ों प्रयोगोंमें हींग मिलायी है। इसके अतिरिक्त भोजनके साथ भी इसका उपयोग प्रतिदिन होता रहता है। अपचन और वातप्रधान अनेक रोगोंपर गर्वोमें

भी इसका उपयोग निर्भयरूपसे होता रहता है। आयुर्वेदके समान डाक्टरीमें भी इसका प्रयोग अर्क, वटी, चूर्णादि रूपसे अनेक रोगोंपर हो रहा है।

डाक्टर खोरीने लिखा है, कि, हींग वातनाडियोंकी विकृतिसे और वातनाडियोंकी क्रिया विकृतिसे उत्पन्नरोग हिस्टीरिया, अपस्मार और उन्मादादि तथा अनुपार्श्विकप्रदेश (छाती और उदरके दोनों ओरके भाग) के रोग-तीव्रवेग वाली खांसी चिरकारी (मंद) जुखाम, श्वासनलिकाप्रदाह (खांसी) आदिपर देनेसे वात विकृतिमें और वातक्रियामें लाभ पहुँचकर रोगशमन हो जाता है। अपचन, उदरशूल और आमाशय (मेदा) की खराबियोंपर पाचन रूपसे दी जाती है। इसी तरह उदरकृमिको नाशकरनेकेलिये हींगका उपयोग किया जाता है। मलेरियाकी ऋतुमें और मलेरिया प्रधानदेशमें हींगका सेवन भोजनके साथ करते रहनेपर अन्त्रपर लाभ पहुँचा कर विषमज्वरसे रक्षण होता है। आक्षेप (धनुर्वात) बार बार आते रहनेपर निवाये जलमें हींग मिलाकर वस्ति दीजाती है। कब्जके पुराने रोगीकेलिये हींगका सेवन लाभदायक है। मधुरामें आफरा आनेपर बीजाबोल (हीराबोल) और नौसादरके साथ हींग दीजाती है। उदरकृमि और उदरशूल होनेपर एरण्डतैल और तार्पिनतैलमें हींग मिलाकर वस्तिदेना अति हितकर है। जिन स्त्रियोंको-वारंवार गर्भपात हो जाता हो, उनकेलिये उदर में हींगका सेवन कराना उत्तम उपाय है।

डाक्टर देसाई लिखते हैं कि, हींगको भूनकर या कच्ची देनेका रिवाज है। फुफ्फुसरोगमें कच्चीहींग और अन्त्रके रोगमें भूनीहुई हींग दीजाती है। जब धीरे धीरे क्रिया करानी हो, तब गोली करके देनी चाहिये।

फुफ्फुसके रोगमें हींग अति लाभ दायक है। मोटे व्यक्तिका जीर्ण श्वास-नलिका प्रदाह (खांसी) श्वास, काली खांसी तथा छोटेबालकोंके फुफ्फुस व्रण-शोथ, श्वासनलिका प्रदाह अथवा बालकोंके फुफ्फुसके रोग दूरहोनेपर सूखी खांसी आती है। उसपर हींग देनेका अति रिवाज है। हींगसे श्वासावरोध कम-होता है। फुफ्फुस रोगमें हींगको जलमें खरलकरके देनी चाहिये। इससे कफ पतला होता है, तथा अधिक उत्पत्ति हो, तो वह कम होती है।

आफरा, उदरशूल, मलावरोध, आमाशयकी शिथिलता, अन्त्रकी शिथिलता कुपचन और कृमि रोगमें हींग गुणकारी है। हींगके साथ अजवायन देते हैं, या हींग, एलुवा और साबुनकी गोली करके देते हैं। अन्त्ररोगमें हींगकी वस्ति देते हैं। गुदनलिकामें छोटे कृमि हों, तो उनको मारनेकेलिये हींगकी वस्ति दीजाती है।

वातरोग—गृध्रसी, अर्दित, मन्यास्तम्भ, पक्षवध, आक्षेपक, और अपतन्त्रक इनरोगोंमें हींगका उपयोग होता है।

शीतज्वरमें हींग अच्छी उपयोगी होती है। ज्वरमें सन्निपातके चिह्न दिखने-पर हिंगुकर्पूर वटिका दीजाती है। रोगी निगल न सके तो गोलीको अदरखके रसमें मर्दन करके जिह्वापर मालिश करानी चाहिये। इससे नाड़ी सुधरती है; तथा हाथपैरोंका कम्प, कपड़ा फेंकना, उठना, भागना, प्रलाप आदि लक्षण कम होजाते हैं। इस वटीके साथ कस्तूरी भी दे सकते हैं।

हृद्रोगमें हींगका अच्छा उपयोग होता है। छातीमें धड़कन, हृदयमें अकस्मात् पीड़ा, घबराहट, चक्कर आकर गिरजाना आदि लक्षण होनेपर और हृदयोदर-रोगमें हिङ्गुकर्पूर वटिका देते हैं।

हींगसे गर्भाशयका आकुंचन होकर मासिकधर्म साफ आता है, उदर वेदना कम होती है। वातप्रकोपको दूरकरनेकेलिये प्रसूताको हींग देते हैं।

हींगसे नारू मरता है। एवं रक्तविकारके धब्बेपर हींगको जलमें घिसकर लेप करते हैं।

१ अपचन और आफरा—दूषित अन्नकी डकार आती हो, थोड़ा थोड़ा दस्त होता हो और उदरमें वायु भरा हो, तो १ रत्ती हींगको घी लगाकर निगलवा देवें अथवा हिंग्वाष्टकचूर्ण या शिवाक्षार पाचन या हिंग्वादिवटिका सेवन करावें।

वक्तव्य—उदरमें तीव्रपीड़ा हो, तो उदरपर एरण्डतैल लगाकर गरमजलसे सेक भी करना चाहिये।

२ हैजा—दस्तमें दुर्गन्ध दूरहोकर जब पतले जल जैसे दस्त आने लगे, तब अतिसारहरी वटिका सेवन करावें १-१ गोली १-१ घण्टेपर ३ बार देनेसे हैजा बन्द होजाता है। यह गोलियाँ अतिसारकेलिये बनी है तथापि हैजेमें भी लाभ पहुंचा देती है।

३ सन्निपातमें वातप्रकोप—कभी बुखार बढजानेपर वातप्रकोपके लक्षण उत्पन्न होते हैं। भागना, दौड़ना, चित्तभ्रम होना वस्त्रफेंकना, मंद मंद बोलते रहना आदि होनेपर हिंगुकर्पूरवटी तुरन्त लाभ पहुंचाती है। यह प्रसूता स्त्रीको भी निर्भयता पूर्वक दे सकते हैं।

४ हिस्टीरिया—अनेक कमजोर हृदयवाली स्त्रियोंको मनपर आघात होनेसे हिस्टीरिया हो जाता है। मृगी (अपस्मार) में मुंहमें झाग आता है। इसमें नहीं आता। इसरोगमें छाती या कंठमें वायुका गोला रुकगया हो ऐसा भास होता है। इसपर हिस्टीरियानाशक वटी अथवा हिंगुकर्पूरवटीका सेवन कराना चाहिये।

५ बिच्छुकाज़हर—आकके दूधमें हींगको घिसकर लेपकरें।

६ दुष्टव्रण—घावमें कीड़े पड़जाने और अतिदुर्गन्ध उत्पन्न होनेपर उसे शुद्धकरनेके लिये नीमके ताजेपान २ तोले और १ माशा हींग मिला घीके साथ

पीसकर पुल्टिस बनावें। यह बाँधनेसे कीड़े सब मरजाते हैं, और दुष्ट सड़ाहुआ मांस दूर हो जाता है। और फिर घाव शुद्ध होजाता है। कभी कभी यह पुल्टिस ४-६ बार बांधनी पड़ती है।

७ स्नायु—नारू निकलनेपर उसे जल्दी निकालने और देहमें रहे हों उन सबको जलानेकेलिये हींगकाचूर्ण ४ माशेको २० तोले दहीमें मिलाकर सुबह पिलादेवें। दोपहरको दहीभात खिलावें; या केवल दहीपर रक्खें। इसतरह ३ दिन करनेसे नारू जल जाते हैं।

८ दंतशूल—दांतमें वेदना होनेपर पहले मुंहमें २ तोले तिल या सरसोंका तैल भर ५-७ मिनिट चलाकर थूकदेवें। फिर निवाये जलमें हींग मिलाकर कुल्ले करें।

९ हिक्का—हींग और उड़दका धुआं देनेसे वातप्रकोपसे उत्पन्न हिक्का शमन होजाती है।

१० मक्कलशूल—स्त्रियोंको प्रसवहोनेके पश्चात् भूलहोनेपर गर्भाशयमें शूल चलता है। उसे मक्कलशूल कहते हैं। उसपर हींग उत्तम लाभदायक है। हींग घीमें दीजाती है, या हिंग्वादिवटीका सेवन कराया जाता है।

११ मूत्रावरोध—वायु उत्पन्न होकर मूत्रावरोध होनेपर हींग २ रत्ती और छोटी इलायची १ माशेका चूर्ण १-१ घण्टेपर जलके साथ ३-४ बार देनेसे पेशाब साफ आजाता है।

१२ अफीमका जहर—यदि अफीम खानेको अधिक समय न हुआ हो, तो पहले राई या रीठेका जल पिलाकर वमन कराना चाहिये। समय अधिक हो गया हो, तो हींगको मट्ठेमें मिलाकरके पिलाया जाता है। हींग अफीमके विष-को निर्विष करनेमें हितकर है। यदि पोटास परमेंगनास तैयार हो, तो वही देना चाहिये। न होनेपर हींग देवें।

१३ परिणामशूल—भोजनके ३-४ घण्टे बाद उदरमें शूल चलता हो, तो ४रत्ती हींग, २ माशा सोडा और १ माशा जीरेका चूर्ण, घी शहदके साथ या निवाये जलके साथ सेवन कराना चहिये। उदरमें व्रण हो, तो घीकेसाथ दियाजाता है।

(१२४) हीरादोखीगोंद

सं० रक्तनिर्याम। हिं. हीरादोखीगोंद, खुनखराबा। म० गु० हीरादखण। क०खुनखारा। अ० दम्मुल अखैन। फा० खून सियावशाँ। अं० Gum kino ले० Calamuskino (गोंद)। Calamus.DraCo (वृक्ष)। (प्राचीन संज्ञा Palmijuncus Draco)

परिचय—केलेमस=सांधेरहित पोकल काण्डयुक्त वेल। ड्रेको=वृक्षके सदृश काण्डयुक्त बहुत ऊंचाईपर जानेपर शाखा विभाजित होनेवाली वेल।

पामीजंकस=हथैली और तीर सदृश रचना वाली। बहुवर्षायु, कांटेदार, ऊपर चढने-वाली वेल। पान रेखाकार, अखण्ड, नीले, हरे, भल्लाकार। पुष्प शाखाके अन्तमें हरे-सफेद छोटे-छोटे। फल गोलाकार, पतली छाल वाला। बीज लगभग गोलाकार चिकने, खड्डेवाले। गोंद लाल वर्णका, कण्डोंकी दरारोंमें उत्पन्न।

उत्पत्तिस्थान—एशिया खण्डके उष्ण और समशीतोष्ण प्रदेश, मलाया फिलिपाइन, न्यूगिनी, आस्ट्रेलिया, आफ्रिकाके उष्णप्रदेश।

हीरादोखी गोंदके ३ प्रकार हैं। यूनानी, भारतीय (बीजकनिर्यास Malb. ari Kino) नीलगिरी निर्यास (Eucaliptus Kino), इनमें यूनानी (जिसका वर्णन ऊपर किया है वह) सुगन्धित और तेजस्वी लाल, बीजक निर्यास कुछ कम सुगन्धि, लाल काला (Reddish-Black) और नीलगिरी गोंद गहरा लाल धूसर (Very dark reddish-brown) और गन्ध रहित होता है।

भारतीय गोंद—यह बीजक (विजयसार-Ptevocarpus Marsupium) का गोंद है। इसका वर्णन विजयसारमें किया है।

सूचना—हीरादोखीगोंदके साथ क्षार, तेजाब, काशीश, रौप्यक्षार, उप-धातु, रसकर्पूर आदि विरोधी ओषधियां नहीं मिलानी चाहिये।

गुणधर्म—प्रबल ग्राही, रक्तस्तम्भक और व्रणरोपण। ग्राही (आकुंचन) क्रिया स्थानिक बाह्य प्रयोगोंमें भी प्रतीत होती है।

रासायनिक संगठन—भारतीय गोंदमें ७५% काइनोटेनिक एसिड, ग्राही सत्व (Pyvocatachin) और गोंद। इनमें काइनोटेनिक एसिड रक्तरंगमय द्रव्य है।

रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह द्वितीय खण्डमें इस गोंदके २ प्रयोग रक्त-स्रावरोध और प्रवाहिका नाशार्थ दिया है। बीजकनिर्यासादि चूर्ण और भुवने-श्वरी वटी। इनके अतिरिक्त बोलबद्धरस और बोलपर्पटीमें भी बीजाबोलके स्थानपर हीरादोखी गोंद मिलानेपर रक्तस्तम्भन गुण अधिक दर्शाता है।

बीजक निर्यास निष्कर्ष—(Tinct. Kino) हीरादोखी गोंद १० भाग, ग्लिसरीन १५ भाग, वाष्पजल २५ भाग, मद्यार्क (९०%) १०० भागतक। पहले ग्लिसरीनको वाष्पजलमें मिलावें। फिर हीरादोखीमें थोड़ा जल मिलाकर गाढ़ जैसा करें। अच्छी तरह मिलजानेपर शेष जल मिला लेवें। फिर गोंदसे ५ गुना मद्यार्क मिलाकर १२ घण्टे रहने दें। पश्चात् अच्छीतरह चलाकर छान लेवें। फिर और मद्यार्क मिलाकर १०० भाग पूरा करें।

मात्रा— ३० से ६० बूंद, दिनमें ३ बार, रक्तस्रावरोधनार्थ।

उपयोग—हीरादोखीगोंद रक्तातिसार, रक्तप्रदर, अत्यार्तव, रक्तार्श, उरःक्षत, रक्तवमन, नासारक्तस्राव आदिमें व्यवहृत होता है। सद्योव्रण (घावलगने) पर

इसका चूर्ण दबादेनेसे या निष्कर्ष लगानेसे रक्तस्राव तुरन्त बन्द हो जाता है और घाव भी जुड़ जाता है।

(१२५) हीराबोल

सं. बोल, गंधरस। हि. हीराबोल, बीजाबोल, बोल। उ. खून खराबा। बं. गंधबोल, गंधरस। गु. हीराबोल। म. बालंतबोल। क. बोला फा. मुरमक्की। अ. मुरसाफ। अं. Myrrha। ले. Commiphora Myrrha.

परिचय—इसका वृक्ष गुग्गुलु वर्गका है, विशेषत:अफ्रिकामें होवे हैं। हीराबोल यह गूगलके समान भूरा या लाल-पीला तैली गोंद है।

गुणधर्म— हीराबोल रसमें मधुर, कटु-तिक्त, वीर्य शीतल, बुद्धिप्रद, दीपन, पाचन, गर्भाशय शोधन तथा दाह, स्वेद, त्रिदोष ज्वर, अपस्मार और कुष्ठका नाशक है।

नव्य मत अनुसार यह अन्य तैली गोंदके सदृश गुणयुक्त है। यह पूतिहर, क्षत और श्लैष्मिक कलाके लिये उत्तेजक है। यह रक्तमें मिलनेपर श्वेताणुओं (Leococytes) की संख्या बढा देता है। अनुमान है कि, यह अन्त्रस्थ पयस्विनी अर्थात् दुग्ध सदृश रसकी वहन करनेवाली वाहिनीकी दृढता होकर होता होगा। एवं यह गोंद कीटाणुओंको नष्ट करनेवाली श्वेताणुओंको उत्तेजित भी करता है। यह गोंद त्वचा, श्वसन मार्ग, प्रजननमार्ग और मूत्रसंस्थानके मार्गसे बाहर निकलता है। जिससे विषको स्वेद, मूत्र और कफके साथ बाहर निकाल देता है; उन स्थानोकी विनिमय क्रिया सुधारता है तथा उत्तेजक, कफघ्न, आर्तवजनन (रजःस्रावी) और गर्भाशय उत्तेजक गुण दर्शाता है।

रासायनिक संगठन—बीजाबोलमें (१) गोंद ५७से ६१%; (२) राल मय द्रव्य मर्हिन (Myrrhin) २५से ४०%; (३) मर्हाल (Myrrhol) उड्डयनशील तैल २.५से ८% और (४) कुछ कड़वा द्रव्य मिलता है।

बोलप्रयोगः—

१. अर्क बीजाबोल –(Tinct. Myrrhae) हीराबोलको ५गुने शराबमें मिलाकर छान लेवें। मात्रा ३०से ६०बूंद। यह अर्क मसूढेसे रक्तस्राव होनेपर लगाया जाता है। मुखपाकमें कुल्ले करानेमें उपयोगी है। जीर्णकास, मासिक धर्ममें कष्ट, प्रदर और पचन संस्थानमें वेदना आदिमें इसका उदर सेवन कराया जाता है।

२. बोल वटी—हीराबोल, एलुवा और विलायती कसीस, तीनोंको सम भाग मिला ६घण्टे घीकुंवारके रसमें खरलकर २-२रत्तीकी गोलियां बना लेवे। इनमेंसे १से २गोली दिनमें ३बार जलके साथ सेवन कराते रहनेपर मासिक धर्मकी शुद्धि होती है। और वेदनाकी निवृत्ति होती है।

उपयोग—मुसलिम युगसे इस बोलका उपयोग आयुर्वेदमें हो रहा है। प्राचीन भूतकालमें इस बोलके स्थानपर झिंगन (Odina wodier) का गोंद व्यवहृत होता होगा, ऐसा विद्वानोंका अनुमान है।

नव्य मतानुसार बीजाबोल मुखपाकमें कुल्ले करानेमें श्रेष्ठ ओषधि है। २ ड्राम अर्क बीजाबोल और १ ड्राम सोहागाका फूला २ औंस जलमें मिलाकर कुल्ले करानेसे कण्ठ, मुख और जिह्वाके क्षतमें लाभ पहुँचता है तथा मसुढे बलवान बनते हैं। मसुढेपर क्षत हों, तो उसपर इसका अर्क लगाया जाता है।

उदरवात और अपचनकी अन्य ओषधिके साथ हीराबोल मिला देनेपर जल्दी लाभ पहुँचता है। जीर्णकास (श्वासनलिका प्रदाह) और श्वासनलिका प्रसारण (Bronchiectesis) में दूषित कफ संगृहीत होनेपर हीराबोल लिया जाता है।

यह युवकोंके कफ कास और वृद्धोंके श्वास रोगपर मूल्यबान औषध है। कण्ठरोहिणी (Diphtheria) में इसके अर्कसे कुल्ले कराये जाते हैं या छोटे बच्चेके कण्ठमें अर्क फुरेरीसे लगा दिया जाता है। यह श्वेताणुवर्द्धक होनेसे स्त्रियोंके पाण्डु (हलीमक—Chlorosis) में अति हितावह है। बीजाबोल गर्भाशयको आकुंचित करता है, इसहेतुसे गर्भाशय शिथिल होनेपर इसका प्रयोग किया जाता है। यदि गर्भाशयके मूलमेंसे श्लेष्मस्राव (प्रदर) होता हो, तो हीरा बोलका सेवन कराया जाता है। मासिक धर्ममें विकृति होनेपर बीजाबोलका सेवन दीर्घ कालतक कराया जाता है। इसमें कीटाणुनाशक गुण होनेसे दंतशूल होनेपर दाँतों के गड्ढेमें भर दिया जाता है। एवं दंतमञ्जनमें मिलाकर दाँतोंको साफ किया जाता है।

१. कष्टार्तव—मासिकधर्म नियमित समयपर न आता हो, रजः स्राव कम और कष्ट सह होता हो, तो बोलबटी २-२ गोली दिनमें ३ वार जलके साथ देते रहें। मासिकधर्म आनेके १०–१५ दिन पहलेसे प्रारम्भ करनेपर मासिकधर्म विना कष्ट साफ आ जाता है। मासिकधर्म आनेपर प्रयोग बन्द करें। पुनः १५ दिन बाद प्रारम्भ करें और मसिकधर्म आनेपर बन्द करें। पुनः १५ दिन बाद प्रारम्भ करें और मासिकधर्म आनेपर बन्द करें। इसतरह ४–६ मासतक बोल वटीका सेवन करानेपर पूरा लाभ हो जाता है।

२. दंतशूल–दाँतोंके गड्ढेमें बीजाबोल भर देवें। या अर्क बीजाबोलको ४ गुने जलमें मिलाकर दिनमें २-३ वार कुल्ले करानेपर दंतशूल शमन हो जाता है तथा मसुढे बलवान बन जाते हैं।

३. मुखपाक दाहक पदार्थके सेवनसे जिह्वा, मुख या कण्ठके किसी भी भागमें क्षत होनेपर अर्क बीजाबोलको जलमें मिलाकर दिनमें ३ वार कुल्ले करावें।

इस तरह २-३ दिनतक कुल्ले करानेपर चत भर जाता है। यदि आमाशय पित्त तेज होनेसे मुखपाक बार बार होता रहता हो, तो इस कुल्लेके अतिरिक्त आँवले का हिम, नारियलका जल, पेठेका रस, सोडाका जल या विरेचन इनमेंसे अनुकूल प्रयोगका भी सेवन कराना चाहिये।

४. रक्तस्राव–छुरी आदि शस्त्र लग जानेसे रक्तस्राव होता हो, तो उसपर बीजाबोलका चूर्ण लगा देनेसे तुरन्त रक्तस्राव बन्द हो जाता है, केशिकाएं और फटी हुई त्वचा जुड़ जाती हैं, एवं पाक भी नहीं होता।

५. दुष्ट व्रण–जिन व्रणोंका दीर्घकालसे रोपण न होता हो, दुर्गन्धमय पूयस्राव होता रहता हो, उनको अर्क बीजा बोलसे धोते रहनेपर व्रण शोधन होकर जल्दी भर जाता है। नाड़ी व्रण और भगंदर आदिमें बीजाबोलको धोये घृतमें मिलाकर लगाया जाता है या तैलमें मिलाकर पिचकारीद्वारा प्रवेश कराया जाता है तथा त्रिफलाके साथ बीजाबोलका सेवन भी कराया जाता है।

६. कफ प्रकोप—श्वास और कफ कासमें छातीमें अति कफ संगृहीत हो जानेपर छातीमें भारीपन घबराहट, मंद मंद ज्वर, हाथ पैर टूटना, आलस्य, क्षुधानाश आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी अवस्थामें हीराबोल ४–४ रत्ती जलके साथ दिनमें ३ बार देते रहनेसे कफ सरलतासे निकलकर उक्त सब लक्षणोंका दमन हो जाता है।

७. रक्तमेह–हीराबोल १–१ माशा दिनमें २ बार ५–७ दिनतक जलके साथ सेवन करानेपर मूत्रमें रक्त जाना बन्द हो जाता है।

८. श्वेतप्रदर—गर्भाशयमेंसे गाढा श्लेष्म स्राव होता हो, तो हीराबोल ४-४ रत्ती १-१ तोला चावलोंके धोवनमें ३-६ माशे शहद मिलाकर दिनमें २बार देते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें लाभ हो जाता है।

(१२६) हुरा।

सं० धूपवृक्ष, तगर। हिं० हुरा। बं० गंगवा, गेंगवा, गेरिया। म० गेवा, फुंगाली, सुरिंद। ओ० गोवन। मला० गेंग, मुरुड. कुंगली। क० हरा, हरो। ता० अगदिल, अगि, आम्बालत्ति। ते० चिल्ला. टेल्ला। अं० Blinding tree। ले० Excoecaria Agallocha.

परिचय—अगलोचा = सुगन्धयुक्त लकड़ीवाला वृक्ष। सर्वदा हरा, चीरी, छोटा वृक्ष या बड़ी झाडी। पान बीचमें मांसल और चिमड़े, २ से ४ इंच लम्बे, १। से २ इंच चौड़े, अन्तरपर, लगभग लम्बगोल. नोकयुक्त, अखण्ड। वृन्त आधसे १। इंच लम्बा। गिरनेके पहले कितनेक पुराने पान गहरे लाल होजाते हैं। सूखनेपर हलका भूरा। फूल सूक्ष्म. सुगंधयुक्त, पीले हरे। नरफूल वृन्तरहित, १ से २ इंच लम्बी मंजरीमें। मादापुष्पवृन्तयुक्त, कलगीमें; मादाफूलकी

कलगी ॥ से १ इञ्च लम्बी अलग वृत्तपर। डोडीका कद अति विविध, गहराईमें ३ खण्डयुक्त, लगभग ॥ इञ्चतक बड़े। बीज चिकने, लगभग गोल।
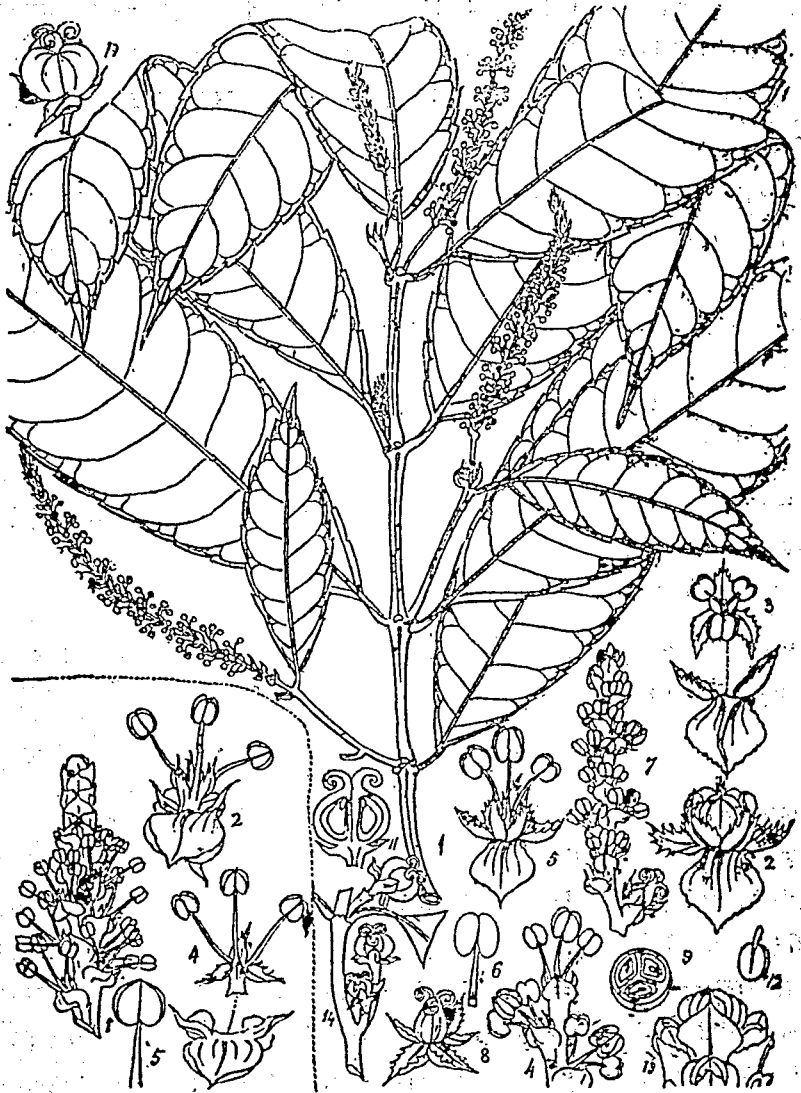
उत्पत्तिस्थान—बंगाल, बिहार, मद्रास, कर्णाटक। छाल ताजी होनेप उसमेंसे दूध जैसा रस बहुत निकलता है। दूध जम जानेपर काला बन जात है। उसमेंसे काले रंगका रबर बनता है। पुष्प और फल मई-जूनमें। लकड़ सफेद और नरम।

मुख्यमूल और जमीनके पासके तनेकी छालके भीतरसे राल सदृश पदार्थ मिलता है। वह नरम, हलका और लाल रंगका होता है। इसके टुकड़े

तेजबलके नामसे बिकते हैं। इसमें गंध या स्वाद नहीं होता। लकड़ीका उपयोग खिलौने, दियासलाई और ढोलक बनानेमें होता है। इस हुरेकी लकड़ीका धुआँ नेत्रोंको लगे, तो सूज जाते हैं। बाजारमें बिकनेवाला तगर हुरेके उपजातिका है। वह माडागास्कर और जंगबारसे भारतमें आता है। औषध रूपसे पान, छाल, राल और दूध उपयोगी है। मच्छीमार लोग इसके दूधसे मछलियोंको मारते हैं।

गुणधर्म—दूध तीव्र रेचन और विषहर है। त्वचाको लग जानेपर दाह उत्पन्न करता है। नेत्रमें चला जानेपर नेत्र बहुत सूज जाते हैं। कभी आँख फूट जाती है। दूध लग जानेपर दही या मक्खनका अञ्जन कर लेना चाहिये। एवं दहीवाली पट्टी बांधनी चाहिये। नाकको लग जाय, तो भयङ्कर जलन करता है और सूज भी जाता है।

राल कामोद्दीपक और धातुपौष्टिक है।

उपयोग—कुष्ठ, गलत्कुष्ठ, व्रण और त्वग् रोगपर दूधको तैलमें मिलाकर लेप किया जाता है। कुष्ठपर दूध लगानेसे पककर कीटाणु नष्ट होजाते हैं। फिर आराम होजाता है।

बिच्छूके विषपर दूधका लेप किया जाता है।

पानोंके क्वाथसे व्रणको धोनेपर कीटाणु नष्ट होजाते हैं। अपस्मारमें पानोंका क्वाथ दिया जाता है।

(१२७) हुलहुल।

सं० तिलपर्णी, अजगंधा, उग्रगंधा,। हिं० हुलहुल, हुरहुर, कानटी। बं० हुड़हुड़े कच्छी-विघरो। म० तिलवण। गु० तलवणी, हाडिया करहण। मा० कागलाका खेत। पं० बोघरा। सिं० किनरो। ले० (1) Cleome viscosa; (सफेद हुलहुल) (2) Gynandropsis Pentaphylla (पीली हुलहुल)

परिचय—विस्कोसा = कुछ चिपचिपा। पेण्टाफाइला=५ पर्ण युक्त। वनस्पति शास्त्रमें इसकी ४ जाति है। सफेद, पीली, बैठी और खड़ी यह वर्षा ऋतुमें होती है। पान पांचकोनवाले होते हैं। फली लम्बी और प्रायः चिकनी होती है। फूल सफेद, गुलाबी, बैंजनी। इस क्षुपमेंसे एक प्रकारकी दुर्गन्ध निकलती रहती है। पीली हुलहुलकी ऊंचाई २ से ५ फीट, चिपचिपे रुएंदार। इसके बीजोंका उपयोग राईके स्थानपर होता है। ये बीज राईकी अपेक्षा अधिक उग्र है। दूसरी जातियां कम ऊंची होती हैं। सफेद जातिमें अपेक्षा कृत दुर्गन्ध अधिक। सफेद और लाल हुलहुलके क्षुप भारतके अनेक देशोंमें होते हैं।

मात्रा—बीजका चूर्ण १ से २ माशे। बालकोंको १ से २ रत्ती।

गुणधर्म—बीज उत्तेजक, स्वादमें कड़वा, चरपरा, उष्णवीर्य, अग्निप्रदीपक, ग्राही, दाहजनक, स्वेदल, उदरवातशामक, गोलकृमियोंको गिरानेवाला और चर्मरोगनाशक है। बीजोंका तैल उष्ण, स्वेदल, दीपन, उदरवातहर, कृमिघ्न और चर्मरोगनाशक है। वास राईके समान तीक्ष्ण, गुल्म, उदरशूल, आफरा, प्लीहा-वृद्धि, और उदररोगपर प्रयोजित होता है। बालकोंके आक्षेपपर हितावह है। पानोंका शाक अर्श और वातरोगीके लिए हितकर। पानोंका रस शोथ शामक। मूल कृमिघ्न।

नव्य विचार अनुसार सफेद और पीली हुलहुलके बीजोंकी क्रिया राई समान है। पीलीके पान अधिक उग्र हैं पीलीके पानोंके लेपसे त्वचा तुरन्त लाल होजाती है। सामान्यतः यह दाहजनक, दीपनपाचन, उत्तेजक और कृमिघ्न है। मूत्र उत्तेजक और स्वेदल है।

रासायनिक संगठन—इसके क्षुपमें उड्डयनशील तैल रहता है, वह अधिक गरमी लगनेपर उड़ जाता है। बीजोंका तैल यन्त्रसे निकालनेपर हरा तैल निकलता है। इसका गुणधर्म राई-सरसोंके तैलके समान है। सफेद हुलहुलके बीजोंमेंसे २५% हरा गाढा तैल निकलता है। उसमें अम्ल सत्व ६·४ प्रतिसहस्र, वसा परिवर्त्तित, आयोडिन, उग्रत्रासवाला उड्डयनशीलतैल और मृदुराल मिलते हैं।

उपयोग—गोलकृमियोंको गिराने केलिये पीली हुलहुलके बीज उपयोगी है। अन्तरशोथ कमकराने केलिये इसके पानोंका लेप राईकी अपेक्षा अधिकतर कार्य करता है। बीजोंको नींबूके रस या सिर्केमें पीसकर लेपकरनेसे दद्रु कण्डू, पामा, व्यूची आदिरोग दूर होते हैं। हुलहुलके बीज और हींगको पीसकर लेप करदेनेसे जुएँ मरजाती हैं। त्वचामें उग्रता लाने और फाला उठाने केलिए इसमें राईके समान गुण रहा है।

पानोंका रस तैलमें मिलाकर बधिरतामें और कर्णपाकपर कानोंमें डाला जाता है। त्वचामें लाली लाने और फालाउठाने केलिये पानोंकी पुल्टिस बनाकर बांधी जाती है।

(१) शीतज्वर पर—(अ) दाहिने हाथकी कलाईके जोड़पर बाहरकी ओर हुलहुलके पानोंकी १ तोलेकी टिकिया बांधनेसे वहांपर ३-४ घण्टेमें एक फाला होजाता है। फिर ज्वर दूर होजाता है। फाला हुआहो, उसे सुई से फोड़कर उसपर घृत लगा देना चाहिये। फालेमेंसे जल निकाल डालें; किन्तु ऊपरकी त्वचाको न निकालें।

(आ) बीजोंका चूर्ण सुदर्शन अर्कके साथ सेवन करानेसे ज्वर जल्दी शमन होजाता है। या ताजे सफेद हुलहुल का स्वरस॥ से १ तोला देनेसे उत्तेजना आती है और ज्वरकाह्रास होजाता है।

(२) अर्शरोगपर—बीजका चूर्ण २-२माशे मिश्री मिलाकर प्रातः सायं सेवन करते रहें; तथा हुरहुरके पत्तोंके फाण्टसे आव दस्त लेते रहें।

(३) आक्षेपक दाहहर—हुलहुलके पानोंका फाण्ट दिनमें दो या तीन बार पिलानेसे बालकोंके अंगोका खिंचाव दूर होजाता है।

(४) उदर कृमिपर—बीजोंका चूर्ण दिनमें २ बार थोड़े गुड़के साथ सेवन करावें। फिर चौथे रोज सुबह एरण्ड तैलका जुलाब देनेसे आंतोंके गोलकृमि निकल जाते हैं। सूक्ष्म उदरकृमिहो, तो बीजोंका चूर्ण जलके साथ देनेसे ही मरजाते हैं। एवं उनकी नयी उत्पत्ति बन्द होजाती है।

(५) प्लीहावृद्धिपर—बीजोंकाचूर्ण, कांटेदार करंज (लता करंज) के पानोंके रसके साथ दें। दिनमें दो बार देते रहनेसे थोड़ेही दिनोंमें प्लीहा कम होजाती है।

(६) उदर शूलपर—बीजोंका तैल मिश्री या पतासेमें देनेसे शूल दूर होजाता है।

(७) कर्ण शूलपर—सफेद हुलहुलके पानोंका रस कानमें डालनेसे कर्णशूल दूर होजाता है। किन्तु इससे बहुत जलन होती है। अतः तैल या शहद मिलाकर डालना चाहिये।

(८) कर्ण पाकपर—पीली हुलहुलके पानोंके स्वरसको तैलमें मिला स्वरस जलाकर तैल सिद्ध करें। उस तैल को कानमें डालनेसे घाव भर जाता है। और पूयस्राव बन्द होजाता है।

(९) नेत्रपीड़ापर—हुलहुलके पानोंकी पुल्टिस बना कपड़ेमें लपेटकर नेत्रपर बांधदेनेसे वेदना दूर होती है और शोथ शमन होजाता है।

(१०) व्रण पर—हुलहुलके काथसे व्रणधोनेसे कीटाणु मरजाते हैं; और घाव का सत्वर शोधन होता है।

(११) दाद पर—हुलहुलका स्वरस मलनेसे कीटाणु नष्ट होकर दाद दूर हो जाता है। हुलहुलके पञ्चाङ्गके रसमें ताम्रभस्म और रौप्यभस्मको पुट दिये जाते हैं।

पुटों वाली ताम्रभस्म सुंदर नीले रंगकी होती है,वह विषम ज्वर,प्लीहा-वृद्धि, यकृद्वृद्धि, यकृद्दाल्युदर और अन्य उदर रोगोंपर अच्छा लाभ पहुँचाती है। हुलहुलके पुटोंवाली रौप्यभस्म नेत्रशूलपर विशेष हितकर है, ऐसा कितनेक चिकित्सकोंका अनुभव है।

(१२) गलगण्ड—सफेद हुलहुलके पान और लहसुनको पीस पुल्टिस करके बांधनेसे पच्यमान गलगण्ड फूट जाता है।

१२८ हेमकन्द।

सं. दुग्धकंद, धवलकंद, विसर्पवैरी। गु. दूधियो, हेमकन्द। म. विकट। काठि-धोलो कटकियो, हेमकंद। कच्छी, धोरोपिंजारो। ते. पट्टतिगे, भूचक्रमु।

ता० भूमिचक्रराई | ले० Maerua Arenaria

परिचय—एरीनरिया=रेतीमें उगनेवाला। यहजंगलमें होता है। इसका कंद १॥-२ सेरका होता है, इसको जंगली लोग काठियावाड़में वेचनेके लिये वाजारमें लाते हैं। स्वाद मुलहठीके समान कुछ मधुर और राई जैसा चरपरा है। इसे टुकड़े किये विना रख देवें, तो यह सड़ जाता है। इस हेतुसे आनेपर तुरन्त रूपयेके समान पतले टुकड़े करके सुखा देना चाहिये। फिर वायु न लगे, उस तरह वन्द वरतनमें रखें या अर्क निकाल लेवें। वम्वईमें यह गुजराती पंसारियोंके यहाँ मिलता है।

इसकी वेल कुछ कठिन होती है। वृक्ष आदि आश्रय स्थानपर ऊंचाई तक चढ जाती है। डंडी श्वेताभ और कुडकीली। पान लम्वगोल विविध आकारके। पुष्प हरी आभावाले सफेद। विशेषतः शीतकालमें आते हैं। फली कालीमिर्चकी मञ्जरीके समान। मूलमेंसे रताळू जैसे आकारके सफेद रंगके कितनेक उपमूल निकलते हैं। वे अंगुलीसे लेकर हाथकी कलाई जैसे मोटे होते हैं। जो मूल मिट्टीवाली गहरी भूमिमें हो वे पतले, विषम आकारकी छोटी मोटी गांठोंवाले और १ से ३ फीटलम्वे होते हैं। ऊपरकी छाल वहुत पतली भूरे रंगकी। मूलके वीचमें एक सछिद्र कुडकीली सफेद पतली खड़ी सलाका। वास पीसी हुई राईके समान उग्र। स्वाद पहले मधुर, फिर चरपरा।

पान अन्तरपर आधसे ३॥ इञ्च लम्वे और आधसे २॥ इञ्च चौड़े। फली २ से ५ इञ्च लम्वी। वीज तपखिरिया या भूरे रंगका, मध्य भागमें संकुचित।

फली चार डोरीसे गुंथी हुई मालाके समान।

गुण-धर्म—रूक्ष, पाचक, विघ्न, कीटाणुनाशक, रक्तशोधक, वेगशामक और कफघ्न है। यह बालकोंके लिये अति उपयोगी औषध है। काठियावाड़ गुजरातमें यह घरेलू औषधरूपसे प्रयोजित होता है यह विसर्पकी श्रेष्ठ ओषधि होनेसे, इसे विसर्प वैरी संज्ञादी है

उपयोग—यह बालरोगकी निर्भय ओषधि है। प्राचीन ग्रन्थोंमें इसका उपयोग हुआ है या नहीं यह नहीं जाना जाता। संस्कृत नाम जो दिये हैं, वे सब गुणधर्मके अनुसार नये दिये हैं। सौराष्ट्र और गुजरातमें दीर्घ कालसे घरेलू औषधरूपसे व्यवहृत होता है।

१ विसर्पपर—इसका उपयोग उदरसेवन और बाह्यलेप रूपसे होता है। गुजरातमें यह विसर्पकी प्रसिद्ध ओषधि मानी जाती है। बालकको दूधमें घिसकर पिलाते हैं; एवं लेप भी करते हैं

(२) बालकोंके प्रतिश्यायपर—प्रतिश्यायमें और छातीमें कफवृद्धि हो गई हो, तो इसके मूलको दूधमें घिसकर छातीपर लेप किया जाता है। साथमें ज्वर हो तो घिसकर पिलाया भी जाता है।

(३) बालकोंके अपचन—(अ) बालकोंको दूध पचन न होता हो, वमन और सफेद दस्त होते हों तो हेमकन्दकी फलीको दूधमें घिसकर पिलावें।

(आ) फलीको बीजसह जला राखकर उसे दूधमें मिलाकर पिलानेसे अपचन जल्दी दूर हो जाता है। मूल और फलीके अभावमें डांडी, पान या फूल भी व्यवहृत किये जाते हैं।

(४) क्षयरोगमें प्रस्वेदपर—राजयक्ष्मामें दूसरी और तीसरी अवस्थामें रात्रिको प्रस्वेद बहुत आता है। प्रस्वेद आनेपर निर्बलता बढ जाती है। ऐसे रोगियोंको हेमकन्दका चूर्ण १॥—२ माशे जलके साथ देनेसे प्रस्वेद कम हो जाता है।

(५) जीर्णज्वरपर—हेमकन्दका चूर्ण १॥-१॥ माशे दिनमें २ बार गिलोय सत्त्व और शहदके साथ देनेसे १ सप्ताहमें ज्वर दूर हो जाता है।

(६) व्रण और फालेपर—हेमकन्दको जलमें घिसकर लेप करें।

(७) श्वास कासपर—इसका चूर्ण शक्करके साथ देनेसे कफ शिथिल होकर सरलतासे निकल जाता है। कफप्रधान तमक श्वासमें इसका अर्क पिलावें या १॥—१॥ माशा चूर्ण १-१ घण्टेपर २-३ बार निवाये जलके साथ देवें।

❀ अवशिष्ट लेख ❀

(१२६) प्रसारणी

सं० प्रसारणी, राजबला, भद्रपर्णी, प्रतानिनी, सरणी। हिं० प्रसारणी, प्रसरनी, प्रसरन, गन्द प्रसारनी, गंधाली, खीप। बं० गन्धमादुलिया। आसा० पादुलेवा खासिया-मिई-इन टुंग, मिई-सोह-मसेम। बिहा० ते. गोलालरंग। सविरेल। मला० सलनीली। कना० हेसरणे। नेपा० पदेबिरि। अर० बजरुलकरस अं० Chinese Fever Plant, Kings Tonic ले० Paederia Foetida

परिचय—पैडिरिया=दुर्गन्धयुक्त। फिटिडा=अप्रियगन्धयुक्त। कोमल लिपटनेवाला, कुचलनेपर दुर्गन्ध देनेवाला गुल्म। पान अभिमुख, अखण्ड, पतला, अण्डाकार या भल्लाकार, नोकदार या किञ्चित् नोकदार (Cuspidate) चौड़े या सकड़े आधारस्थानयुक्त, ४-५ सिरा युग्मयुक्त, २ से ५॥ इञ्च लम्बे, १ से ३ इञ्च चौड़े। पत्रवृन्त ॥ से १॥ इञ्च लम्बा। उपपत्र अण्डाकार-भल्लाकार, दो भागवाले। संयुक्त मंजरी ६ इञ्च लम्बी। पुष्पदण्ड ३ इञ्च चौड़ा फैला हुआ। पुष्प धूसर बैंजनी प्रायः त्रिशाखायुक्त कोमल, वृश्चिकाकार मंजरीमें मुखपर रक्ताभ बैंजनी, छोटे वृन्तपर। पुष्पबाह्यकोष घण्टाकार, तीक्ष्ण दांतेदार। पुष्पान्तरकोष चौंगे सदृश, सामान्यतः रुएंदार। खण्ड छोटे। फल प्रायः लाल, दबाहुआ, गोलाकार, १। इञ्चलम्बा, निस्तेजपत्तयुक्त। पुष्पकाल अगस्तसे अक्टोबर। फलकाल दिसम्बर।

वक्तव्य—इसकी २ जातियां हैं। एक उदर सेवन योग्य (Edible) और दूसरी कड़वी है।

उत्पत्तिस्थान—मध्य और पूर्व हिमालयमें ५००० फूट तक, बंगाल, स्याम, मलय द्वीपसे बोर्नियोतक, बिहार, आसाम, नेपाल, मद्रास।

गुणधर्म—भावप्रकाशकारके मत अनुसार प्रसारणी रसमें कड़वी, उष्णवीर्य, गुरु, वृष्य, बलवर्द्धक, संधानकारक, सारक तथा वात, वातरक्त, और कफको दूर करती है।

धन्वन्तरि निघण्टुकारने त्रिदोषहर और तेज कान्तिवर्द्धक तथा राजनिघण्टुकारने अर्श, शोथ और मलावरोध नाशक कहा है।

इसकी छालसे रेषे मिलते हैं, उससे कपड़े बुन सकते हैं।

पञ्चाङ्ग आमवातके लिये विशेष प्रभावशाली है। इसका उदरसेवन और बाह्योपयोग, दोनों करना चाहिये।

पहाड़ी लोग फलोंको दांतोंकी वेदनाको दूर करनेके लिए उपयोगमें लेते हैं। एवं फलोंका रस स्त्रियां दांतोंको काला बनानेके लिये भी लगाती हैं।

वातरोग—पञ्चाङ्गका रस या क्वाथ, कल्क, दूध और तैल मिला मंदाग्नि पर तैल सिद्ध करके मालिश करनेसे जकड़े हुए अंग मुक्त होते हैं ।

आमवात—लहसुन घीमें खिला, ऊपर प्रसारणी पञ्चाङ्गका क्वाथ गुड़

मिलाकर पिलावें।

मूत्रकृच्छ्र—प्रसारणीका क्वाथ नारियलके जलमें बनाकर पिलावे या प्रसारणीका चूर्णका नारियलके जलसे सेवन करनेपर अश्मरी टूट जाती है, भीतर प्रदाह आया हो तो दूर हो जाता है। और मूत्र साफ आ जाता है।

वक्तव्य—(१) गुजरात और महाराष्ट्रके कितनेक आचार्योंने हिरनपदी (Cnvclvulus Arvensis) को प्रसारणी माना है। उसपरसे प्रमादवश डाक्टर कीर्तिकर और बसुनें इसप्रसारणीके वर्णनमें गुजराती नाम नारी और मराठी चांदवेल दे दिया गया है। फिर भी उनके अनुयायियोंमें यह भूल होती गई है।

हरणपदीका वर्णन ग्रन्थमें आगे यथास्थान किया जायगा।

(२) राजस्थानमें प्रसारणीके स्थानपर खीपका उपयोग करते हैं। वह खीप ५ फूटतक ऊंचे गुल्म रूपमें होती है। इसके पान थोड़े ही समयमें गिर जानेवाले, लगभग १॥ इञ्च लम्बे, चौड़े १/५ इञ्च, रेखाकार, भल्लाकार, पुष्पमुण्डी के सदृश गुच्छरूप। फली २-३ इञ्च लम्बी, रूईसदृश रेशेदार धनूरेकेसमान किन्तु छोटे बीजयुक्त। वास घासके समान आती है। दुर्गन्ध नहीं है।

इण्डियनमेडिसिनल प्लेण्ट्सकारने लिखा है कि यह गुल्म कड़वा पचनके अयोग्य (Indigestible) सारक, वृष्य और पौष्टिक है। वात और कफको दूर करता है। प्रदाह, अर्श, ज्वर, नेत्ररोग और रतौंधीपर हितावह है।

प्रसारणीमें जो उदर सेवन योग्य है, वह पौष्टिक, मूत्रल, रज:स्रावी और वृष्य है। नाकसे रक्तस्राव होनेपर दी जाती है। यकृत् और आमाशयके रोग और कटिवातपर लाभदायक है। मूलका क्वाथ अर्शरोग, छातीमें वेदना, यकृद् विकार और प्लीहाप्रदाहपर उपयोगी है। पान पौष्टिक, रक्तस्रावरोधक और घावसे वहनेवाले रक्तको वन्द करनेवाला है। एव कर्णरोगपर उपयोगी है।

कड़वी जाति रःज स्रावी विरेचक और रक्तस्रावरोधक है। बीज विषघ्न Alexipharmac) है। और अर्श तथा श्वेतकुष्ठमें व्यवहृत होता है। (यूनानी)

मूल बड़ी मात्रामें वामक। लघुमात्रामें वातहर, शोधक, मूत्रल और सारक तथा रक्तपित्त, प्रवाहिका, अतिसार और वमनको दूरकरनेके लिये व्यवहृत होताहै।

पान पौष्टिक हैं। इसका क्वाथ मूत्रावरोध, ज्वर, अतिसार और आम वातमें उपयोगी है। इसके क्वाथसे स्नान करनेपर थकावट दूर होती है। पानों का स्वरस बच्चोंको दस्त बन्द करानेके लिए दिया जाता है।

औषधोपयोगी अंश—पान, छाल, मूल, फल, बीज आदि।

रासायनिक पृथक्करण—इसमें २ कार्यकारी क्षारीयद्रव्य पिडरिनद्रव्य अल्फा और बीटा (Alpha paederine and Beta Paederine) तथा दुर्गन्धयुक्तउड्डयन-

शील तैल मिलता है। इन क्षारीय द्रव्योंका प्रभाव आमवात और वातरोग पर होता है।

उपयोग—प्रसारणीका उपयोग चरकसंहिता और सुश्रुतसंहितामें मिलता है। चरकसंहितामें वात व्याधिपर और सुश्रुतसंहितामें मूढ गर्भपातनार्थ उपयोग किया है।

शार्ङ्गधरसंहिताके गूढार्थ दीपिका टीकामें 'गंधमादाली पूर्वदेशे' इस तरह परिचय दिया है।

श्री वाग्भट्टाचार्य, वंगसेन, वृन्दाचार्य, शार्ङ्गधराचार्य, भावप्रकाशकार योगरत्नाकरकार और गदनिग्रहकार आदि भिन्न भिन्न आचार्योंने वातरोगपर भिन्न भिन्न ओषधियां मिलाकर प्रसारणी तैल सिद्ध किया है।

(१३०) बावली बूंटी

सं० शंखफूली, शंखी, हिं० बावलीबूंटी। ले० Lochnera Pusilla प्राचीन नाम Vinca Pusilla.

६ से २० इञ्च सीधा ऊंचा वर्षायुक्षुप। कई शाखाएं, जमीनपरसे निकली-हुई चौकोन। पान १। से ३ इञ्च लम्बे और १ इञ्च तक चौड़े, तीक्ष्ण वल्लमाकार, चिकने, खुरदरे किनारेयुक्त। पुष्पसफेद, छोटे, एकाकी या युग्म। फली १। से २ इञ्च लम्बी, अतिकोमल, सीधी, नोकदार, बीज लम्बे, शूलसदृश, दोनोंसिरेपर गोल। पकनेपर काले।

उत्पत्तिस्थान—पश्चिम हिमालय, गङ्गाजीकेऊर्ध्व प्रदेश, सिंध, गुजरात, कोंकण, दक्षिण, कर्णाटक और सिलोन, राजस्थानमेंभी किसीकिसी स्थानपर-क्षुप प्रतीत होते हैं।

कटिशूलपर इसके पञ्चाङ्गोंसे सिद्धकिया तैल मालिश कियाजाता है। (डा० एन्सली)।

गुणधर्म—यह औषध रक्तार्श रोगमें रामबाण है केवल ४-५ दिनमें ही रक्तार्शका रक्त गिरना बन्द होजाता है ४० दिनतक सेवन करनेसे रोग जड़मूलसे चला जाता है। शुष्क अर्श रोगमेंभी यह बूंटी लाभ पहुँचाती है।

(१३१) ब्रह्मदण्डी

सं० ब्रह्मदण्डी, अजदण्डी। हिं० गु० म० ब्रह्मदण्डी। बं० छागलदण्डी, वामनदण्डी। लेटिन—Tricholepsis Glaberrima

परिचय—बिल्कुलचिकना। वर्षायु क्षुप। तना खड़ा, कोमल और शाखाएं कोनयुक्त और धारीदार। ऊंचाई १ से ४ फुट। शाखाएं कभी कभी निकल आती हैं। पान वृन्त हीन, १ से ३ इञ्च लम्बे, सकड़े किनारेपर काँटेयुक्त, अखण्ड, पिछली और मध्य नसवाले। गुण्डी लम्बगोलाकार, चिकनी, शाखाओंके अन्तमें बैंजनी या गुलाबी कांटेदार, पुष्प पत्रयुक्त।

उत्पत्तिस्थान—राजस्थान, आबू, मध्यभारत, कोंकण, सौराष्ट्र, गुजरात, पश्चिमघाट, मैसूर।

गुणधर्म—ब्रह्मदण्डी कड़वी, उष्णवीर्य, वातहर और स्मृति वर्द्धक है। कफ, वात, उन्माद, प्रसूतारोग, प्रदाह, श्वेतकुष्ठ, चर्मरोग और कृमिका नाश करती है।

मात्रा—६ माशे से १ तोला तक।

उपयोग—ब्रह्मदण्डीका विशेष प्रयोग प्राचीन ग्रन्थोंमें नहीं मिलता। फिरभी वातप्रकोप, उन्माद, अपस्मार, नपुंसकता, कफश्वास, कफकास, श्वेतकुष्ठ आदिपर सफलता सह घरेलू प्रयोग होता रहता है। इसका क्वाथ करके एवं ठण्डाईके समान पीसकर सेवन कराते हैं।

ब्रह्मदण्डी को पारद बांधनेवाली मानी है।

दूसरीजाति—संस्कृत, हिन्दी, मराठी, गुजराती-ब्रह्मदण्डी।

लेटिन—Lamprachaenium Microcephalum.
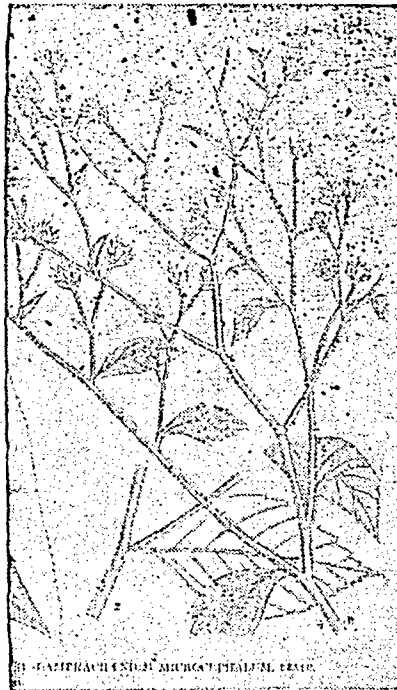
परिचय—सीधाखड़ा क्षुप। ऊंचाई १ से २ फुट तक। तना सादा, कभी शाखायुक्त, चिकना या रुएंदार या ग्रन्थियोंयुक्त, बहुधा बैंजनी आभायुक्त। पान २ से ३ इञ्च लम्बे और १ से १॥ इञ्च चौड़े। अण्डेसदृश, नोकदार तथा

बिखरेहुए आच्छादनयुक्त, तथा ऊपर छोटे कांटे सदृश वालवाले, नीचे सघन, ऊन जैसे रुएं से आच्छादित, दूर दूर चुभनेवाले आरी जैसे किनारेयुक्त तथा लम्बेपतले नोकदार। पत्रवृन्त ‖ से ‖| इञ्च लम्बा। गुण्डी छोटी वन्द। पहले कांटेदार-सी, १/५ इञ्च से कम घेरेकी, कोमल रुएंदार वृन्तयुक्त। बालोंका आच्छादन रक्ताभ कठोर। डोडी बहुत छोटी, लम्बगोल, कुछ दबीहुई, कोमल तेजस्वी।

उत्पत्तिस्थान—बरार, महाबलेश्वर, मद्रास मैसूर आदि प्रान्त।

गुणधर्म—यह ब्रह्मदण्डी सुगन्धित और कड़वे स्वादवाली है। इसका घरेलू उपयोग चर्मरोग, श्वेतकुष्ठ, वात, कफ और प्रदाह पर होता है।

उपयोग—ब्रह्मदण्डी हिम, फाण्ट और क्वाथ रूपसे प्रयोजित होती है।

(१३२) लक्ष्मणा

सं. लक्ष्मणा, पुत्रदा, नागपुत्री। हिं० लक्ष्मणा, बं० वंकालमी। गु० हनुमान वेल। म० आमरी वेल। सौराष्ट्र. राती गुम्बड वेल, राती फुदरडी। ता० मंजीगाई। ते० मेट्टा दूटी। ओ० बिलोनो, मुसाकनी। ले० Ipomoea Sepiaria.

परिचय—बहुवर्षायु वेल। विशेषतः वर्षा ऋतुमें उत्पन्न होती है। तना लपटा हुआ, कोमल, चिकना या न्यूनाधिक रुएंदार। पान १ से ३ इञ्च लम्बे, १ से २ इञ्च चौड़े, विभिन्न आकारके, अण्डाकार, तीक्ष्ण, मध्यम नसपर बैंजनी चिह्न युक्त, अखण्ड, सामान्यतः चिकना, बैठक पर हृदयाकार। पत्रवृन्त १ से २ इञ्च लम्बा, कोमल चिकना। पुष्प गुलाबी। पुष्प पत्र छोटे, वज्रमाकार। फलकी डोडी छोटी लम्बगोलसी, चिकनी, २ से ४ बीज युक्त, पिंगल, रेशमी वालों युक्त। पानमें से वकरे जैसी बास आती है।

उत्पत्ति स्थान—समस्त भारत, सिलोन, मलाया, फार्मोसा।

गुणधर्म—आचार्य कथित लक्ष्मणा यह होगी, ऐसा मानकर गुजरातके चिकित्सक समाज इसका प्रयोग करते हैं। दूसरे श्वेत बृहतीको उपयोगमें लेते हैं। बृहतीकी अपेक्षा इसमें गर्भाशय शोधक और मूत्रल गुण अधिकतर माने जाते हैं।

उपयोग—इसके मूलको दूधमें घिस कर या चूर्णकर दूधके साथ ऋतु स्नाता स्त्रीको सेवन करानेपर गर्भाशय शुद्ध होकर गर्भ धारण हो जाता है।

फल घृतमें इस लक्ष्मणाको मिलाना हितावह माना है। इसका रस तीक्ष्ण और दाहक है। यह सोमल विषको दूर करती है। ऐसा नव्य चिकित्सकोंका अनुभव है।

(१३३) सोम

हिं० सोम, ले० Ephedra Geradiana; Ephedra Vulgaris

इसकी कई जाति (मुख्यतः४ सूमूह) यूरोप, पर्शिया आदि देशोंमें होती है।

परिचय—यह वर्षायु सघन; दृढ, आच्छादनयुक्त छोटी झाडी है। ऊंचाई ६ इञ्चसे ४ फूट तक। तना लकड़ी प्रधान। शाखाएं हरी, सीधी, चिकनी; पर्व युक्त। पर्व आध से १। इञ्च लम्बे। पान बहुत छोटे, २ दांत वाले। नर मंजरी अण्डाकार, एकाकी या २-३ साथमें। पुष्प ४-८। मादः मंजरी सामान्यतः एकाकी। १-२ पुष्प युक्त। फल लम्बगोल, लाल, मधुर, सुन्दर, १/२५ इञ्चके।

उत्पत्ति स्थान—हिमालय, काश्मीर, ८००० से १४००० फूट ऊंचाईपर, मध्य एसिया और यूरोप।

गुणधर्म—श्वासवेग शामक। इसमेंसे सत्त्व Ephedrine निकलता है। उसका प्रयोग एलोपैथिक वाले अधिकतर करते रहते हैं।

उपयोग—फुफ्फुसस्थ श्वासवेग वढने पर सोम सत्त्वका प्रयोग सफल होता है। किन्तु आयुर्वेद मत अनुसार उतनी तीव्र दवा न देकर १ माशे सोमका चूर्णको १ औंस गुलाब जलमें भिगोकर मिला देना, अधिक हितावह है। इसके अतिरिक्त तालीश पत्र मिश्रित सोमका चूर्ण तैयार कराया है। वह भी अधिक लाभ पहुँचाता है।

तालीश सोमादि चूर्ण—तालीश पत्र, सोम, मुलहठी, अडूसेका फूल और पुष्कर मूल, इन ५ ओषधियोंको समभाग मिलाकर कपड़छान चूर्ण कर लें। मात्रा ५-५ रत्ती दिनमें ३-४ वार २-२ घण्टेपर शहदके साथ।

(१३४) सोमराजी (कड़वी जीरी)

सं० अरण्य जीरक, तिक्त जीरक, अग्नि बीज, वनजीरक, (मतान्तर अवल्गुज, वाकुची, सोमराज)। हिं० कड़वी जीरी, कालीजीरी, बनजीरी। बं० सोमराज। गु० कड़वीजीरी, कालीजीरी। म० कडुजीरे। क० कडुजीरिगे, कालाजीरिगे। ता० कट्टु चिरगम्। मला० काला जीरकम्, कट्टु जीरकम्। पं० बुकोबी, कालीजिरी। ओ० सोमराज फा० इत्रीलाल। अ० कमून वर्री। अं० Purple fleabane ले० Centratherum Anthelminticum.

प्राचीन संज्ञा—Vernonia Anthelmintica

परिचय—वर्नोनिया=घासमें उगने वाले अति सामान्य बीज। एन्थेलमिण्टिकम्=कीटाणुनाशक। वर्षायु; खड़ा, मांसल, शाखा युक्त, सूक्ष्म रुएंदार और पत्तीदार क्षुप। ऊंचाई २ से ५ फूट तक। पान २ से ३॥ इञ्च लम्बे और १ से १। इञ्च चौड़े, बल्लमाकार या अण्डाकार बल्लमाकार, नोकदार, अनियमित,

दांतेदार, दोनों ओर न्यूनाधिक रुएंदार, वृन्तमें गाव दुमाकारकी बैठक वाले। गुण्डी ॥ से ॥। इञ्च व्यासकी, उपकुक्कुट शिखामें हलके बैंजनी रंगके करीब ४० पुष्प, वृन्तके शिरके पास रेखाकार पुष्प पत्रयुक्त। पुष्पपत्रकी बाहर पंक्ति रक्ताभ, चिपटी-सी, पतनशील। बीजोंकी लम्बाई ३/१६ इञ्च, बेलनाकार, गहरे भूरे, १० धारी वाला। बीज पक जानेपर तुरन्त गिरने लगते हैं।
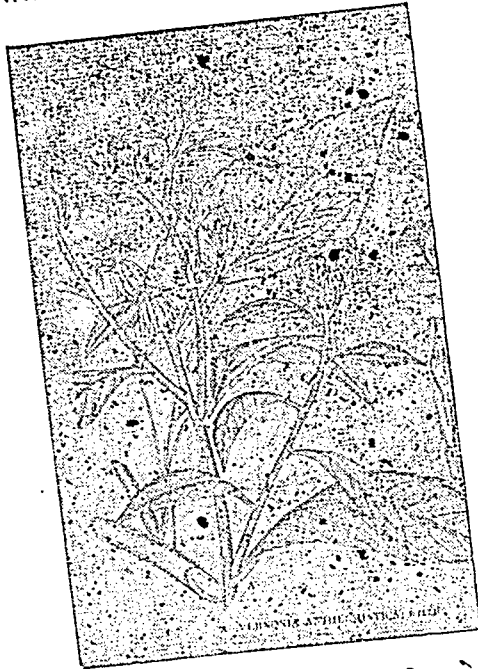
उत्पत्ति स्थान—भारतमें सर्वत्र, क्वचित् बोये भी जाते हैं। सिलोनमें भी होता है।

वक्तव्य—भाव प्रकाशकारने अवल्गुज, वाकुची, सोमराजी, सुपर्णिका, शशिलेखा, कृष्ण फल, सोमा, पूतिफली, सोमवल्ली, कालमेषी, कुष्ठघ्नी, ये ११ नाम लिखे हैं। इन नामोंके आधार पर तो पूरा निर्णय नहीं होता, किन्तु मधुरा, तिक्ता, कटुपाका, रसायनी आदि जो रस, विपाक, वीर्य, गुण आदि दर्शाये हैं, उनपरसे कड़वी जीरीको वाकुची माना हो, यह अधिक संभवित है।

सुश्रुत संहिताकारने "अवल्गुजः कटुः पाकेतिक्तः पित्तकफापहः" सू० अ० ४६-२६५। लिखा है, ये गुण इस कड़वी जीरीके माने जायेंगे।

इनके अतिरिक्त खालित्य रोगपर नीलि तैलके भीतर (चि० २६-२६६) में भी चरकसंहितामें सोमराजीको मिलाई है। चरक संहिताकारने सोमराजीके

पानोंके शाकका प्रयोग अर्श रोगपर किया है। एवं सूत्र २-२२ में "पिपासाघ्नी विषघ्नी च सोमराजी त्रिपाचिता ॥" इस वचनसे कड़वी जीरीका निर्देश हुआ हो, यह अधिक संभवित है।

आचार्य बंगसेनने श्वेतकुष्ठपर सोमराजीके क्वाथ पान करनेका दर्शाया है। इसी तरह वाग्भट्टाचार्यने सोमराजी शशांकलेखा, और बाकुची, तीनों नामसे उदर सेवनार्थ कुष्ठ रोगपर (चि० अ० १९में) लिखा है तथा श्वेत कुष्ठपर अवल्गुजको लगाने केलिये प्रयोग किया है।

आचार्य वंगसेनने कृमि दन्तपर भी प्रयोग किया है। इन सबका विचार किया जाय, तो कड़वी जीरीको सोमराजी माननी पड़ेगी। बंगालके आचार्यों ने तो कड़वी जीरीको सोमराजी और बाकुची (Psoraliea) को हाकुच संज्ञा दी है।

यहाँ पर जो उपयोग दर्शाया है, वह कड़वी जीरीके गुण अनुरूप ही दर्शाया है।

गुणधर्म—कड़वी जीरी कड़वी, अनुरस कसैला, विपाकमें चरपरी, शीतवीर्य, दीपन, कृमिघ्न, ज्वरघ्न, उदरशूल नाशक, उदरवातहर, कफघ्न, मूत्रल, स्तन्यजनन, उपकुष्ठहर (चर्मरोगनाशक), कण्डूघ्न और व्रणरोपण है।

इसकेबीज अतिकड़वे होते हैं। छोटा नागपुरमें इसका प्रयोग ज्वरपर क्विनाइनके स्थानपर होता है। इस तरह छोटे बालकोंके उदरकृमि, अपचन तथा पशुओंके अफारापर भी इसका प्रयोग विशेष प्रचलित है।

यूनानी ग्रन्थकारोंके मतअनुसार कड़वी जीरी (फल) तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है, यह तीक्ष्ण कडवे स्वादयुक्त, कीटाणुनाशक और विरेचन कर है। शोथ, जलोदर, श्वास, वृक्कविकार, हिक्का और यकृत्‌मेंसे रक्त बाहर फेंकवाना आदि कार्यकेलिये इसका उदरसेवन कराया जाता है तथा बाह्योपचार रूपसे शोथघ्न, प्रदाह हर, व्रणरोपण, नेत्रस्थ कण्डून गुणकेलिये और बालोंको दूर कराने केलिये (Depilatory) प्रयोजित होता है।

रासायनिकसंगठन—इसमेंसे शर्करा प्रधानमुख्य द्रव्य वर्नोनिन(Vernonin) १% मिलता है, जो डिजिटलिसके समान हृदय शामक और हृद्य गुण दर्शाता है, किन्तु यह उतना विषाक्त नहीं है। एवं एक स्थिर तैल १८% है, जो कृमिघ्न गुण दर्शाता है। इनके अतिरिक्त कुछ उड्डयनशील तैलभी मिलता है।

मात्रा—½ से २ माशेतक। छोटे बालकोंको १-२ रत्ती।

उपयोग—कडवी जीरीका घरेलु प्रयोग सब प्रान्तोंमें प्राचीनकालसे हो रहा है। एवं चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट, वंगसेन आदि आचार्योंने सोमराजीके नामसे इसका प्रयोग किया हो, यह संभवित है,। इसका सफल प्रयोग निम्न रोगोंपर

होता रहता है।

१. अपचन जनित अतिसार—कड़वीजीरीके कोमल पानोंका शाक, दही या नींबूका रस मिलाकर खिचड़ी अथवा भातके साथ सेवन करनेपर १-२ दिनमें ही प्रकृति स्वस्थ होजाती है।

२. उदरकृमि—बड़े मनुष्य और बालकोंको इसका चूर्ण गुड़ मिलाकर देनेसे छोटे छोटे सब कृमियोंका नाश होजाता है। एवं कृमिप्रकोपज अतिसार हो, तो वहभी दूर होजाता है। कईलोग साथमें वायविडंगका चूर्णभी मिला लेते हैं।

३. उदरपीड़ा—कड़वी जीरीका चूर्ण जलके साथ देनेपर थोड़ेही समयमें लाभ पहुँच जाता है। घोड़ेको उदरपीड़ा होनेपरभी कड़वीजीरी, इन्द्रायनके फल, हींग, कड़वे करंजके सेके हुए बीजको मिला गुड़के साथ देते हैं। इनके अतिरिक्त कृमि-कीटाणुविष जनित जलोदर हुआ हो, तो उसपरभी इस कड़वी-जीरीका प्रयोग हितावह विदित हुआ है।

४. अफारा—कड़वी जीरी ३ माशे और कालीमिर्च ३ माशेको १५ तोले जलमें क्वाथ कर पिलादेनेसे अफारा शान्त होजाता है।

५. बालकोंके कफकास—आयुके अनुरूप कड़वी जीरीका चूर्ण शहदके साथ देते रहनेसे कफ गिर जाता है और मंद मंद ज्वर रहता हो, तो वहभी दूर होजाता है।

६. बालकोंका जीर्ण कफ ज्वर—कड़वी जीरी और मिश्रीका क्वाथ करके दिनमें २-३ बार पिलाते रहनेसे कफ प्रधान ज्वर ४-६ दिनमें शान्त होजाता है।

७. प्रसूताके ज्वर आदि—कड़वी जीरी ६-६ माशेका क्वाथ कर शहद मिलाकर प्रातः सायं सेवन कराते रहनेसे १५-२० दिनमें ज्वर, संधिवात, अग्नि-मांद्य, अपचन, अतिसार, उदरपीड़ा, कास, कफप्रकोप, शोथ आदि दूर होते हैं।

८. दंतकृमि—गोबरीकी निर्धूम अग्निपर कड़वी जीरी डाल नलिका द्वारा दांत या डाढको धुंआ देनेसे कृमिमर जाते हैं और तुरन्त वेदना निवृत्त होजाती है।

९. कण्डू—सारे शरीरपर खुजली आनेपर कड़वी जीरीको गोमूत्रमें पीस-कर मालिस करनेसे उसी दिनसे लाभ पहुँचने लगता है।

१०. श्वेतकुष्ठ—(अ) कड़वीजीरी, हरड़, बहेड़ा और आंवला ये सब ५, ५ तोले और हरताल २॥ तोले मिलाकर चूर्णकर लेवें। उसमेंसे थोड़ा-थोड़ा गोमूत्रके साथ पीसकर लेप करते रहनेसे १-२ मासमें दाग साफ होजाता है।

(आ) कड़वी जीरी, वायविडंग और काले तिलोंको कूट चूर्णकर ३ से ४ माशे तक दिनमें २ बार सेवन कराते रहनेसे पचन संस्थानमें कृमि, कीटाणु और विष दूर होते हैं। अपचन नष्ट होता है। फिर श्वेत कुष्ठपर जल्दी लाभ पहुँचने लगता है।

११. रक्तस्राव—कड़वी जीरीके पान या फलोंकी चटनी बनाकर घावपर बांध देनेसे तुरन्त रक्तस्राव बन्द होजाता है।

१२. जीर्णशीतपित्त—कड़वी जीरीका चूर्ण गुड़के साथ मिलाकर जलके साथ प्रातः सायं सेवन करते रहनेसे एकाधमासमें आमाशय सबल हो जाता है। फिर शीतपित्त दूर हो जाता है।

१३. विषजशोथ—काली जीरी, कुचिला और आमाहल्दीको गोमूत्र या जलमें घिसकर लेप करनेसे शोथ शमन होजाता है।

१४. ततैया और मधुमक्षिकादंश—कड़वी जीरी पञ्चाङ्गको गरमकर काटे हुए भागपर बांध देनेसे जहर और सूजन दूर हो जाती है।

१५. शिरमें जूं होना—कड़वी जीरीको नीबूके रसमें पीसकर शिरपर मोटा लेप करदेनेपर जूं और लीख मरजाती है।

(१३५) मर्यादवेल।

सं. मर्याद वेल, रक्त पुष्पा, सागर मेखला, युग्मपत्रा। हिं० मर्याद वेल, दो पत्तीलत्ता। गु० म० मरजाद वेल। सौरा० आर वेल। कच्छ० रावरपत्री। बं० छागलखुरी। मला० अतम्पा, युतम्नाटम्पु। ता० आदापुकन्दी। ओ० कंसारी नाटा। ते० चेवुलापिल्ली निगि।

अं० Goat's Foot Creeper
ले० Ipomoea Pes-caprae
पुरानी संज्ञा–Ipomoea Biloba.

परिचय—यह लता विशेषतः समुद्र तट पर देशों में होतीहै। मूल लम्बा, मोटी भूरी छाल युक्त। तना कई, बहुत लम्बा, सछिद्र, ग्रन्थिमय, श्याम शाखा युक्त। शाखा निकलती है, वहां जमीनमें नया मूल लगता रहता है। इस तरह लता चारों ओर विस्तृत भागमें फैल जाती है।

पान बकरेके खुरके समान दो चीरे युक्त (द्विविभाजित) अन्तर पर, मोटे, चिकने, चमकीले, नरम, १ से २ इञ्च लम्बे, २से ३ इञ्च चौड़े। (सामान्यतः लम्बाई से अधिक चौड़े), स्पष्ट शिरा युक्त। पानका डण्ठल १ से ४ इञ्च लम्बा, चिकना। पुष्प बड़े, सामान्यतः एकाकी, (क्वचित् २–३) घण्टाकार, लाल बैंजनी। पुष्प वृन्त १ से ४ इञ्च लम्बा, फल गोल, नोकदार। पुष्प सुबह ८–९ बजे खुलते हैं।

उत्पत्ति स्थान—बंगाल, ओरिसा, मद्रास, बम्बई, सौराष्ट्र, कच्छ आदि में समुद्रके समीप।

औषधी उपयोग अंग—पान और मूल।

गुणधर्म—मर्याद वेल शीतल, ग्राही, सारक, गुरु, पाककाल में उष्ण,

वात कारक और गर्भधारक है। अतिसार, विषूचिका, उदरशूल, जलोदर, वमन और आमको दूर करती है। बाहर लगनेमें गांठोंको और शोथको दूर करती है। और आमवातके शूलको शान्त करती है।

उपयोग—इसका उपयोग घरेलु उपचार रूपसे समुद्र तटके देशोंमें प्राचीन कालसे होता रहता है।

रसविकार, रक्तविकार, नारु पर मूलको जलमें घिस कर लेप करते हैं। प्रमेह पिटिकापर पानोंकी पुल्टिस बांधते हैं।

सुजन और गांठ—पानोंकी पुल्टिस बांधते है। सुजन अधिक भागमें फैली है, तो पानोंके रस से चौथाई हिस्सा तैल सिद्ध करके लगाते रहनेसे लाभ हो जाता है। आमवातकी सुजन पर पुल्टिस बांधी जाती है। रस लगाया जाता है, एवं तैलकी मालिश करायी जाती है। सुजन वालोंको और सांधे जकड़े हों, तो पानोंको जलमें उबाल, उस पानीसे स्नान भी कराया जाता है। कफ प्रमेह पानोंको शक्करके साथ सुबह शाम सेवन करने पर कफ प्रमेह दूर हो जाता है।

कर्ण पाक—मर्याद वेलके पानोंसे सिद्ध किया हुआ तेलकी बूंद कानमें डालनेसे पूय दूर होकर कान ठीक हो जाता है।

(१३६) वनगोभी

सं. गोजिह्वा, गोजी, खरपर्णी। हिं. वनगोभी। गु. भोंपाथरी, गलजीभी, म. पाथरी। ले. Elephantopus Scaber

परिचय—यह बारहमास मिलनेवाला वर्षायु क्षुप है। आर्द्र जमीनमें यह होता है। इसकी कई जाति होती है। इसकी जड़ प्राय: २ से ४ इञ्च लम्बी होती है। इसके पान तोड़नेपर दूधभी निकलता है। इसके छाते जमीनपर फैलते और टहनियां कभी १-२ फीट ऊंचीभी जाती हैं, तनेपर लम्बगोल, लम्बे, कंगुरीदार और खुरदरे ३ अंगुल चौड़े पान निकलते हैं। एवं तुरेंके समान वैंजनी गुण्डी आतीहै। डोडी (फल) रुएंदार और खड़ी पंक्तियों वाला होता है। इसके फलमें गुण अधिक है। बीजोंसह उपयोगमें लेना चाहिये।

अत्र चित्र दिया है। इसे पहले मई माससन् ५५ (द्वितीय वर्षके ९ वें अंक) स्वास्थ्यमें गर्भा नामदिया गया है। इसका उपयोग गर्भधारणार्थ किया है।

पञ्चाङ्ग या डोडीयोंको कूट छान कर चोतजमें भरलेवें। ऋतु मती होनेके

पश्चात् शुद्ध होनेपर (चौथेदिनसे) शौचादिनिवृत्त होकर सुबह १२ दिनतक ६-६माशे चूर्ण शीतल जलसे सेवन करें इसतरह ३ मास तक लेनेपर रजका शोधन होता है । फिर गर्भधारण होजाता है ।

(१३७) समुद्रसोफ (विधारा)

सं. वृद्धदारु, दीर्घा, हस्तीवल्ली, अन्तः कोटरपुष्पी, छगलान्त्री, हिं. समुद्रशोष, समन्दरका पात, समुद्रसोख । गु. समुद्रशोष, वरधारा । वं. वीजताडक । ओ. वृद्धोतरेको, मोण्डा । ते. चन्द्रपोदा, समुद्रपाला । ता. समुद्रप्पलै । मला. समुद्रपाला समुद्रस्तोकम् । अं. Elephant Creeper ले. Argyreia Speciosa

परिचय—अति लम्बी वृक्षारोही वेल । लम्बाई २० से ६० फूट । तना कठोर, रेशम सदृश, श्वेतरोमयुक्त, गोलाकर । शाखाएं मोटी और पतली अनेक, स्वेतवर्ण की कठोर और रोमाच्छादित । पान ३ से १२ इञ्च लम्बे, लगभग उतनेही चौड़े (२॥ से १० इञ्च चौड़े) नोकदार, चिकना, अण्डाकार, ऊपर कृष्णाभ हरित, चांदी सदृश सफेद रुएंदार और वैठकपर हृदयाकार । पत्र वृन्त २ से ६ इंच लम्वा, श्वेतरोमयुक्त । पुष्पधारक सलाका पत्रकोणसे निकली हुई, ६ से १२ इञ्चकी, ऊपर पुष्प अर्धछत्राकार गुच्छ । पुष्प बड़े, गहरे गुलाबी, घण्टाकार, ५ पुंकेशर और वीचमें स्त्रीकेशरयुक्त । फल ॥। इञ्च व्यासके, गोलाकार । पुष्पकाल वर्षा और शीत ऋतु । फल पाक शीतकाल ।

वक्तव्य—इसके अतिरिक्त एक अन्य जातिका विधारा होता है । उसे काला विधारा (ले. Rourea Santaloides)कहते हैं । उसमें गुण बहुत कम है । कई ग्रन्थकारोंने इसे कृत्रिम विधारा कहा है ।

एक अपर जाति विधाराकी होती है । उसे सं. फंजी, पद्म, सुपुष्पिका; गु. फांगिया; म. फांद, फंजी और लेटिनमें Rivea Ornata संज्ञा दी है । इसमें भी बहुत कम गुण है । इसका उपयोग कोंकणमें अर्शके मस्सेपर बांधनेके लिए करते हैं । एवं वृद्ध दारुके स्थानपर अनेक प्रान्तोंमें इसका उदर सेवनभी कराते हैं ।

इसकी शाखाओंका उपयोग विधारा रूपसे होता है । मूल उत्पत्ति स्थान वंगाल । वर्तमानमें समग्र भारतमें । यह जावामें वोया जाता है ।

गुणधर्म—वृद्धदारू रसमें चरपरा कड़वा, उष्णवीर्य, वल्य, पिच्छिल, रसायन और कफ वात हर है तथा शोथ, कृमि, मेह, रक्तविकार, वातरोग, उदररोग कास, आमवात, जीर्णज्वर, ऊरुस्तम्भ, व्रण, विद्रधि आदि रोगोंको दूर करता है । पानोंका वाह्य उपयोग व्रण, विद्रधिपर होता है ।

यूनानी मतमें शाखा और मूल स्वादमें कड़वे, कामोत्तेजक, मूत्रल और

रसायन है। सुआक, सुजाकके उपद्रव, नाड़ीव्रण, मूत्रस्रावमें वेदना (Stran gury) आदि पर प्रयोजित होता है।

नव्य ग्रन्थकार खोरीने रसायन, पौष्टिक, आमवात और उपदंशमें हितावह कहा है। पानोंकी नीचेकी तह कुछ दाहक होनेसे कभी कभी छाला उत्पन्न कर देती है। ऊपरकी तहको फूटे हुए व्रण पर बांधनेसे पूयको निकाल कर रोपण गुण दर्शाती है।

उपयोग—समुद्रशोथ (विधारा) का उपयोग सुश्रुत संहिताकारने महाश्यामा और छगलान्त्री संज्ञासे किया है। इस तरह वृद्धदारुके २ प्रकार माने हैं। अष्टांगसंग्रहकारने इस वेलका परिचय निम्न सुंदर और स्पष्ट लक्षणों सह दिया है।

त्रिकोणकाण्डा सुबहुप्रताना फलेषु पीता कुसुमेषु रक्ता।
पत्रैः सदुग्धैः मृदुरोमवद्भिः ताम्बूलतुल्यै घनमूलकन्दैः॥

आगे वृन्द, वंगसेन, शार्ङ्गधर आदि आचार्योंने इसका अधिक उपयोग किया है। एवं घरेलु उपचार रूपसे यह भारतमें दीर्घ कालसे प्रचलित है।

१. शुक्रकी निर्बलता—विधारा और असगंधका चूर्ण समभाग मिला उतनी शक्करके साथ लेकर ऊपर दूध पीवें। सामान्यतः विधारा १॥ माशा, असगंध १॥ माशे और शक्कर ३ माशे।

२. रसायन—विधाराके चूर्णको आंवलेके रसकी २१ भावना देकर सुखा देवें। फिर ४-४ माशे चूर्ण घी और शहदके साथ सेवन करें। ऊपर दूध पीता रहे, तो सब धातुओंकी निर्बलता १ मासमें दूर हो जाती है, फिर देह सबल हो जाती है।

३. स्मृतिनाश—विधारेके चूर्णको शतावरीके रसकी ७ भावना देकर सुखा चूर्ण बनालेवें। फिर घीके साथ मिलाकर सेवन करें और ऊपर दूध पीते रहे, तो स्मृति दृढ़ बन जाती है।

४. जीर्णवात—विधारेका चूर्ण कांजी, शराब, मांसरस, उरदका यूष, तेल या निवाया जल, इनमेंसे प्रकृतिके अनुकूल अनुपानसे सेवन करते रहनेसे सब प्रकारके जीर्ण वातरोग दूर हो जाते हैं। आमवात और वातरक्तके रोगीके लिए भी यह हितावह है।

५. ऊरुस्तम्भ—विधारा और सोंठका चूर्ण समभाग मिलाकर निवाये जलसे सुबह शाम सेवन करते रहनेसे शनैः शनैः लाभ हो जाता है।

६. क्रोष्टुक शीर्ष—जंघा पर सुजन आकर फूल गया हो और अति वेदना

होती है, तो विधारेका चूर्ण थोड़ी सोंठ मिला, सुबह एरण्ड तैल से लेकर ऊपर दूध पीते रहें, तो लाभ पहुँचता है। पीड़ित स्थान पर पानोंको पीस पुल्टिस बनाकर बांधते रहें। आमवातके शोथपर भी इस तरह बांधें।

७. श्लीपद—वृद्ध दारुके मूलका सेवन गोमूत्र या कांजीके साथ करते रहने से शनैः शनैः नया श्लीपद दूर हो जाता है।

८. व्रण विद्रधि—पकानेके लिए सीधा पान बांधे तथा शोधन तथा रोपण के लिए उलटा पान बांधनेसे लाभ पहुँचता है। उलटे पानपर रुएं मखमलके सदृश होनेसे उसे पूय नहीं लगता और सरलतासे निकल जाता है।

९. गांठ—विधारा मूलके चूर्णको दूधमें मिला पुल्टिस करके बांधनेसे शीघ्र रक्त बिखर जाता है या पाक होकर फूट जाता है।

१०. पुत्रकामनार्थ—वृद्धदारुके मूलसे सिद्ध कियाहुआ घृत दूधके साथ जो पुरुष सेवन करता रहता है उनको पुत्र प्राप्ति होती है, कन्या नहीं होती।

११. शुष्क गर्भवृद्धिकेलिए—गिलोय और विधारेका चूर्ण सुबह शाम दूधके साथ सेवन करते रहनेसे १ मासमें गर्भ वृद्धि होने लगती है।

वक्तव्य—पृष्ठ २८१ में भी इसी औषधिका विवेचन है।

(१३८) निसोथ

सं० त्रिवृता, त्रिभण्डी, अरुणा, श्यामा, कालमेषी। हिं० निसोथ, निशोथ, पनिलर, पित्तोहरी। गु० नसोतर। म० नीसोतर। बं० त्रिवृत्, तेउड़ी, तेहुड़ी, दूधकलमी। ते० नल्लतेगड़ा। ता० आदिमवु सरलाम। मला० चिवका, सरला। फा० निशोत। अ० तुर्बुद। ओ० दूधोलोमो। क० अलु तिगड़े। अं० TurPeth root. लै० Operculina Turpethum.

प्राचीन नाम—Ipomoea Turpethum.

परिचय—बहुवर्षायु दीर्घ, दूध सदृश रस युक्त, वृक्षारोही, श्वेत लोममय, नरम लता। काण्ड मोटे, २–३ धारा विशिष्ट, चपटा, क्वचित् गोलाकार। पान हृदयाकार और बल्लमाकृति अण्डाकार आदि अनेक प्रकारके, २ से ५ इञ्च लम्बे, ॥. से ३ इञ्च चौड़े, प्रारम्भमें दोनों ओर रुएंदार। पत्र वृन्त ॥। से १। इञ्च लम्बा। पुष्प वृन्त ।. से १ इञ्च लम्बा, कठोर, रुएंदार। क्वचित् पुष्पदण्ड ४ इञ्च तक लम्बा। पुष्पका बहिर्वास ५ भागमें विभक्त। स्त्रीकेसरके भीतर अवस्थित ५ पुंकेसर। पुष्पदण्ड पर तुर्रा कुछ फूल युक्त। पुष्पसफेद। फलकी डोडी छोटी, गोलाकार सी, काले दाने के फलसे कुछ बड़ी, चिकनी या कुछ रुएंदार, ४ काले बीज युक्त फूल फल काल मार्चसे दिसम्बर तक।

उत्पत्तिस्थान—भारतमें सर्वत्र। क्वचित् बोया भी जाता है एवं सिलोन, मलाया द्वीप, फिलिपाईन, मध्य अफ्रीका, मध्य अमरिका, आस्ट्रेलिया आदि सब देशोमें होता है।

वक्तव्य—निसोथमें आचार्योंने ३ जाति कही है। रक्त, काली और सफेद। इनमें जो अरुण वर्ण होती है, वह अधिक गुण प्रद मानी गई है। इसके अभाव में श्वेत वर्ण वाली। मूलकी लकडी छोड़कर ऊपरकी छालका उपयोग करना विशेष कार्य कर होता है। काली निसोथ अधिक तेज है, वह कभी वमन कराती है और निर्बलता भी ला देती है।

डा० मुकरजी लिखते हैं कि बाजारमें निसोथ आइपोमिया बोनानोक्स (नया नाम–Calonyction Bona-nox or Moon flower) की छाल मिली हुई मिलती है। दोनोंकी छाल देखनेमें समान भासती है। इसलिए सरलतासे पता नहीं चलता। सामान्यतः बोना नोक्सके काण्ड गोलाकार होते हैं और निसोथके धारीदार होते हैं। इस लक्षणसे कुछ परिचय मिल सकता है। उक्त बोनानोक्सको दूधकलमी नाम दिया है।

काली निसोथके फूल कृष्णाभ बैंजनी होते हैं। पान और फल सफेद निसोथसे कुछ छोटे होते हैं।

गुणधर्म—काली निसोथ चरपरी, उष्णवीर्य और उत्तम विरेचन गुणयुक्त है। कृमि. श्लेष्म प्रधान उदररोग, ज्वर, शोफ, पाण्डु और प्लीहा वृद्धि आदिको दूर करती है। भावप्रकाशकारने काली निशोथको सफेदकी अपेक्षा कम गुणवाली किन्तु तीव्र रेचक, मूर्च्छा, दाह, मद और भ्रान्ति उत्पन्न कराने वाली तथा कण्ठका उत्कर्षण कारक दर्शायी है।

सफेद निसोथ कसैली, अनुरस मधुर, उष्णवीर्य, विपाकमें चरपरी, कफपित्त शामक, रूक्ष और वात प्रकोपक है। यह कालीसे कम गुण युक्त है। भावप्रकाशकारने वात नाशक माना है। एवं पित्तज्वर, कफ, पित्त, शोथ और उदर रोगकी नाशक कही है।

अरुणा निसोथ कसैली, मधुर अनुरसयुक्त, विपाकमें चरपरी, बहुरेचनी, कफपित्तहर, रुक्ष और वात कारक है।

चरकसंहितामें दृढबलाचार्यने त्रिवृन्मूलको श्रेष्ठ विरेचन कहा है। एवं कषाय, मधुर, रूक्ष, विपाकमें चरपरा कफपित्तशामक, रूक्ष और वातकर दर्शाया है।

यूनानी ग्रन्थकारोंने निशोथको दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष माना है। यह कफ, आपका विरेचन कराती है। इसकेउपयोगसे जलके समान पतले दस्त लगते हैं। इस हेतुसे इसे आमवात, वातरक्त, गृध्रसी, अर्दित, पक्षवध, कास

और श्वासमें संशोधनार्थ देते हैं। एवं मालीखोलिया (उन्माद प्रकार), उन्माद, और अपस्मारमें मस्तिष्कशोधनार्थ हरडके साथ प्रयोजित होता है। इसके प्रतिनिधिगारीकून और कालादाना (Ipomoea hederacea) है इसके रूक्षपनेको दूर करने केलिये बादामका तैल मिला लेना चाहिये।

नव्य ग्रन्थ कारोंने इसके मूलको कड़वा, अनुरस मधुर, तेज स्वादयुक्त, उष्ण, कृमिघ्न, विरेचनकारी, ज्वरघ्न और विषघ्न (Alexiteric)कहा है। एवं जलोदर, श्वेतकुष्ठ, खुजली, पामा, व्रण, मलावरोध, उदरपीड़ा, शोफ, पाण्डु, ज्वर, पित्तप्रकोप, अर्श, विसर्प, अर्बुद, कामला, क्षय, चक्षुप्रदाह, (आंख लाल लाल हो जाना) जन्तुदंश, यकृद्रोग, तथा हृदय और नेत्रकी पीड़ा आदिपर प्रयुक्त होता है। यह वात कारक है।

काली निशोथ प्रबल शक्तियुक्त विरेचनकर है। यह बेहोशी, दाह, विषप्रकोप में उपयोगी है। श्वेतजाति सौम्य विरेचन है। पित्तप्रधान ज्वर, प्रदाह, और उदर विकारपर उपयोगी है। लाल जाति मधुरसी तेज होती है, वह कफ प्रधान रोगोंपर लाभ प्रद है।

रासायनिक संगठन—इसके मूलमें विरेचनकारक गोंद (राल) (Turp ethin) १०%मिलता है। शेष कई सामान्य द्रव्य पाये गये हैं।

मात्रा—१ से ३ माशेतक चूर्ण और ३ से ६ माशेतक का क्वाथ।

उपयोग—निसोथका उपयोग आयुर्वेदमें अति प्राचीन कालसे हो रहा है। चरक संहिता और सुश्रुत संहितामें भी अनेक स्थानोंपर इसका प्रयोग हुआ है।

१. ज्वर—निसोथका चूर्ण शहद या मुनक्काके रसके साथ वा निवायेजलसे देनेसे उदर शोधन होकर ज्वर निवृत्त हो जाता है।

२. जीर्ण विषम ज्वर—निसोथका चूर्ण थोड़ी मात्रामें सोंठ और शहदके साथ सेवन करानेसे लीन विष जल जाता है और बुखार दूर होजाता है।

३. अर्श—निसोथ चूर्ण त्रिफलाके फाण्टके साथ सेवन कराते रहनेसे सब प्रकारके अर्श दूर हो जाते हैं।

४. रक्तपित- निसोथ के मूलका सेवन शकर और शहदके साथ करावें।

५. पित्तोदर-त्रिवृत् कल्कको दूधमें मिलाकर सेवन करानेसे विकृत पित्त निकल कर उदररोग शान्त होजाता है।

६. मलावरोध-सफेद निसोथ और शक्करको समभाग मिला कर ४ से ६ माशा निवाया जल या दूधके साथ सुबह देनेसे उदर शुद्धि हो जाती है।

फिर-पाण्डु, उदरवात; वातगुल्म, अग्निमांद्य, कामला, कृमिविकार, खुजली आदि भी दूर हो जाते है।

७. वातज शोफ-त्रिवृत्का सेवन १५ से ३० दिन तक रोज सुबह कराते रहना चाहिए।

८. जन्तुविष-निसोथका चूर्ण गोघृत और चौलाईके रसकेसाथ सेवन कराने से सब जहर जल जाता है।

९. नेत्रपाक-निसोथके ताजे मूलके रसके साथ समान शहद मिलाकर नेत्रमें २-२ बूंद डाल लेनेसे नेत्र स्वच्छ होजाते हैं।

१०. पित्तप्रकोप—ईखके टुकड़ेको खड़ा चीर कर, उसपर निसोथका चूर्ण लगा दें फिर पुट पाककृतिसे पकाकर रस निचोड़कर पिलाते रहनेसे पित्तप्रकोपज सब रोग दूर हो जाते हैं। भस्मक रोग, दाह, अम्लपित, विषप्रकोप सब नष्ट होते हैं।

११. अश्मरी—पित्ताशय या मूत्राशयमें पथरी होनेपर निसोथ और इन्द्रजौ का चूर्ण दूधके साथ देनेसे अश्मरी शूल निवृत्त हो जाता है। एवं शनैः शनैः अश्मरी टूटकर निकल जाती है।

व्रणविद्रधि-निसोथका चूर्ण त्रिफलाके क्वाथके साथ रोज सुबह कुछ दिनों तक सेवन करानेसे पुराने दुष्टव्रण, नाड़ीव्रण, अर्बुद, अन्तविद्रधि, पित्तजगुल्म आदि सब मिट जाते हैं।

सूचना—सामान्यतः निसोथके विरेचनसे उदरपीड़ा होती है। किन्तु सोंठ और सैंधानमक (या काला नमक) मिलाकर निवाये जलसे देनेसे पीड़ा नहीं होती। सरलतासे २-४ दस्त हो जाते हैं।

निसोथके मूलमें नस हैं, उसे दूर कर देनी चाहिए।

※ समाप्त ※

अवशिष्ट चित्र
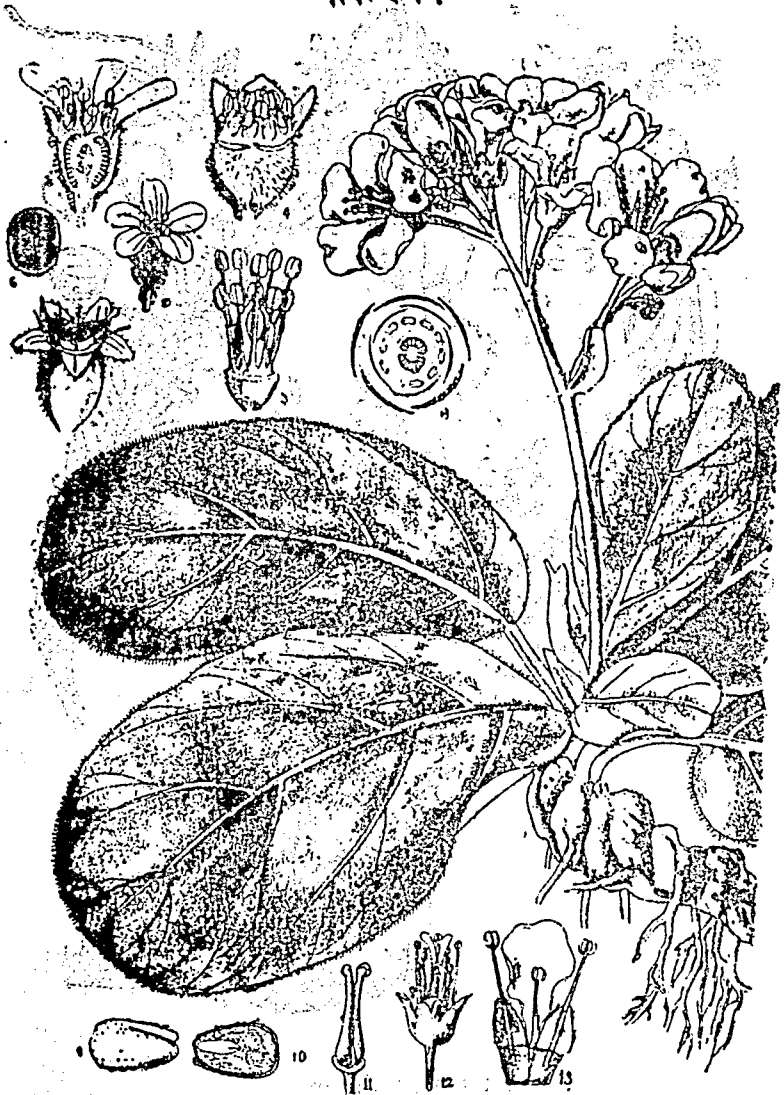
पाषाणभेद

Bergenia Ligulata

इसका विवेचन पृष्ट ८ में देखें।

पाषाणभेद

Coleus Amboinicus
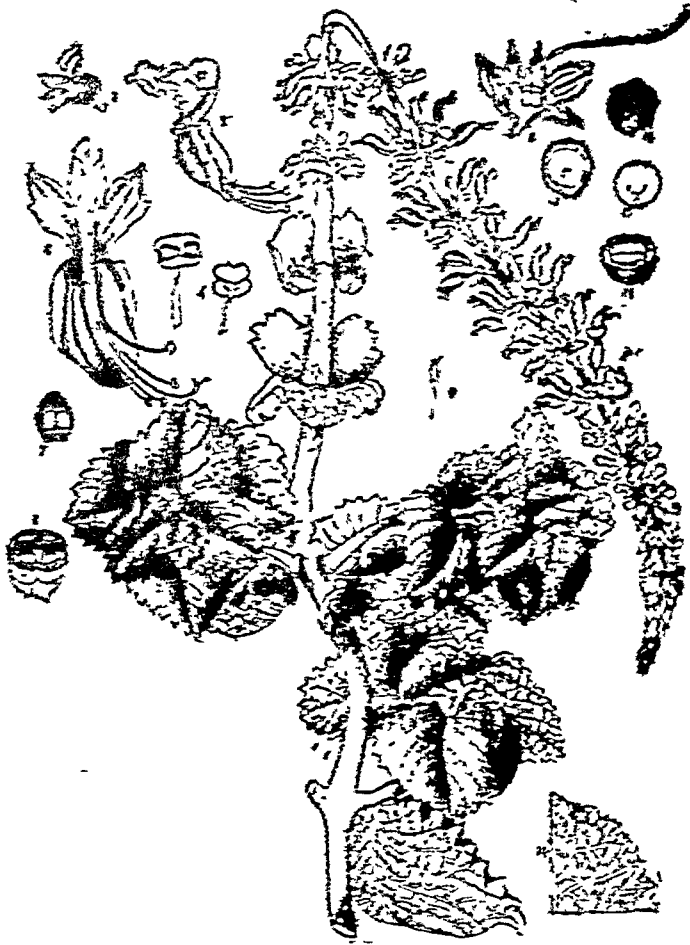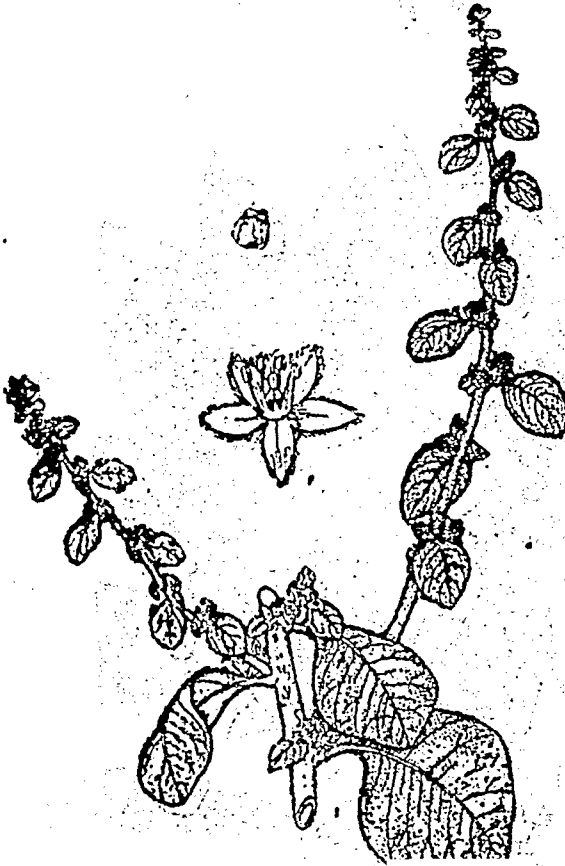
इसका विवेचन पृष्ठ ९ में देखें।

पाषाणभेद (मराठी)

Aerua Lanata.

इसका विवेचन पृष्ठ १०

और १६२ में देखें।

वेला (रायबेल)

Jasminum Sambac

इसका विवेचन पृष्ठ ११२

में देखें।

प्रियङ्गु

Aglaia Odoratissima

इसका विवेचन पृष्ठ ४१ में देखें।

बेलाकुंद
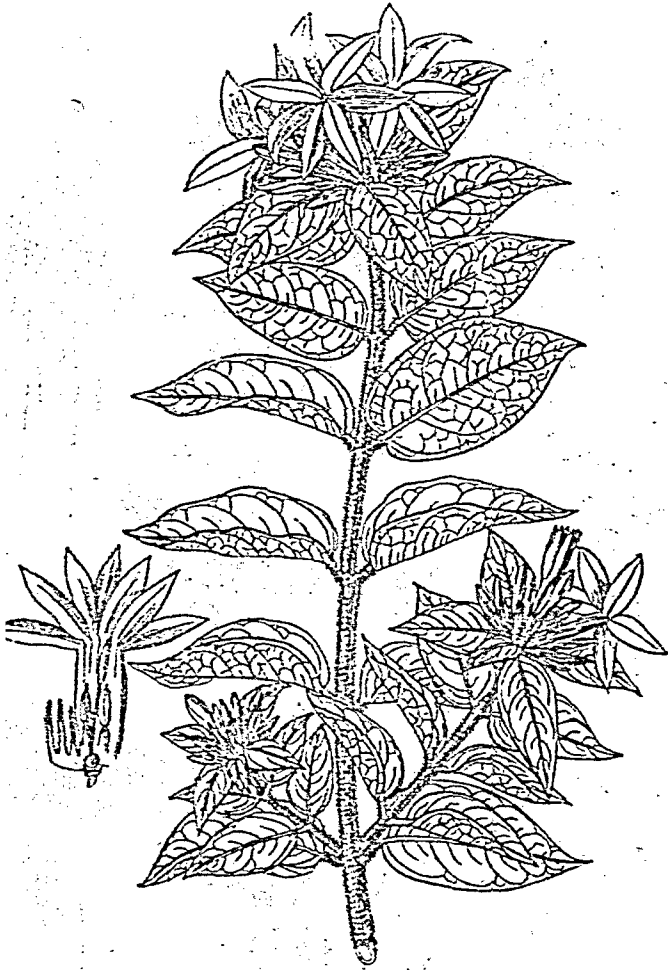
Jasminum Pubescens

इसका विवेचन पृष्ठ १११ में देखें।

सफेद भांगरा

इसका विवेचन पृष्ठ १३५ में देखें।

पीला भांगरा

WEDELIA CALENDULACEA, Less.

इसका विवेचन पृष्ठ १३६ में देखें।

मूर्वा (नं. २)

Clematis Gouri. na

इसका विवेचन पृष्ठ२१२ में देखें।

शुष्कावस्था का पहले छपा है। आर्द्रावस्था का यह है

मूसाकर्णी (महाराष्ट्रकी मूसाकानी)

Lactuca Runcinata

इसका विवेचन पृष्ठ २२३ में देखें।

ससाकर्णी (महाराष्ट्रका ससाकानी)

Lactuca Remotiflora

इसका विवेचन पृष्ठ २२४ में देखें

शंखाहुली (काली शंखाहुली)
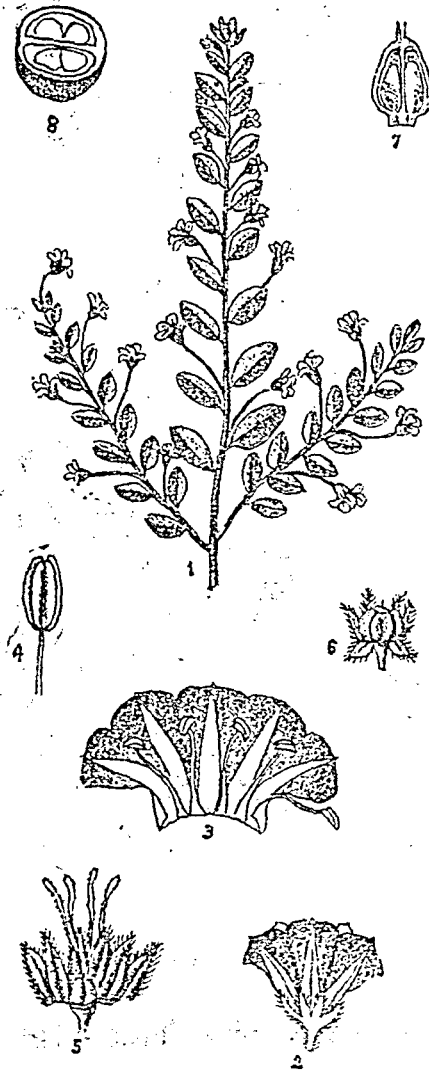
B--Evolvulus Alsinoides, Wall.

इसका विवेचन पृष्ठ २८५ में देखें

नाही कन्द
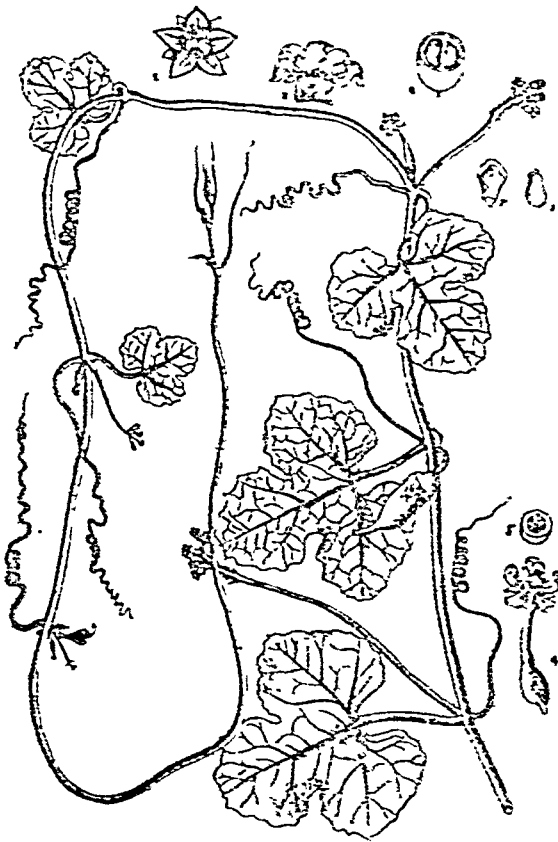
Corallocarpus Epigeous

इसका विवेचन पृष्ठ ३१० गाँवोंमें औषधरत्न द्वितीय-भागमें देखें।

गांवोंमें औषधरत्न तीनों भागों के औषधनामों की

सूची

(संस्कृत हिंदी मिश्र)

INDEX

(Scintific Names)

वनस्पति शास्त्र के पारिभाषिक नामों की सूची

हिंदी नाम	Names	Part	Page
कालमेघ	Andrographis Paniculata	II	116
रामफल	Annona Reticulata	III	246
सीताफल	Annona Squamosa	III	334
अगर	Aquilaria Agallocha	I	129
सुपारी	Areca Catechu	III	334
मालती	Arganosma Dichotoma	III	198
मालती	ArganosmaCaryophyllata	III	198
सत्यानाशी	Argemone Mexicana	III	304
विधारा	Argyreia Speciosa	III	281
समुद्र शोष	Argyreia Speciosa	III	445
जावित्री	Aril of Myristica	I	192
जरावंद तवील	Aristolochia Longa	II	230
जरावंद मुदहज	Aristolochia Rotunda	II	232
ईशर मूल	Aristolochia Bracteata	I	76
कीड़ामार	Aristolochia Indica	I	126
हरा चम्पा	ArtabotrysOdoratissimus	III	405
अफसंतीन	Artemesia Absinthium	II	17
दौना	Artemesia Sieversiana	II	299
नाग दौना	Artemesia Vulgaris	II	308
किरमाणी अजवायन	Artemisia Maritima	I	192
मूसली सफेद	Asparagus Adscendens	III	209
सतावर	Asparagus Racemosus	III	297
सूची बूटी	Atropa Belladona	III	349
नीम	Azadirachta Indica	II	314
हिंगोट	Balanites Aegyptiaca	III	415
समुद्रफल	Barringtonia Acutangula	III	313
महुआ	Bassia Latifolia	III	173
महुआ	Bassia Longifolia	III	173
कचनार	Bauhinia Purpurea	II	72
झिंझौरा	Bauhinia Racemosa	II	258
कचनार	Bauhinia Tomentosa	II	73
मूर्वा	Bauhinia Vahlii	III	217

हिंदी नाम	Names	Part	Page
कचनार	Bauhinia Variegata	II	70
दारु हल्दी	Berberis Aristata	I	205
पाषाणभेद	Bergenia Ligulata	III	8
लज्जालु छोटी	Biophytum Sensitivum	III	259
उटंगन	Blepharis Edulis	II	58
कुकरौंधा	Blumea Lacera	II	125
चीनी कपूर	Blumea Balsamiflora	I	98
पुनर्नवा	Boerhavia Verticillata	III	26
पुनर्नवा	Boerhavia Diffusa	III	26
सेमल	Bombax Malabaricum	III	369
ताड़	Borassus Flabellifer	II	286
राई	Brassica Nigra	III	237
सरसों	Brassica Campestris	III	320
सलगम	Brassica Rapa	III	322
पानगोभी	Brassica Oleracea	II	192
फूलगोभी	Brassica Oleracea Botrytis	II	192
कंदगोभी	BrassicaOleracea var rapa	II	192
कोधव	Cadaba Farinosa	I	136
पतंग	Caesalpinia Sappan	III	3
वांकेरी	Caesalpinia Digyna	III	277
कण्टकरंज	Caesalpinia Bonduc	I	138
कण्टकरंज	Caesalpinia Bonducella	I	138
वेंत	Calamus Draco	III	101
हीरादोखी गोंद	Calamus Kino	III	422
वेंत	Calamus Rotang	III	101
वेंत	Calamus Tenuis	III	101
बड़े फूलवाला आक	Calotropis Gigantea	I	47
छोटे फूलवाला आक	Calotropis Procera	I	47
सिलोन का नागकेसर	Calophyllum Inopyllum	I	226
चाय	Camellia Thea	II	207
भांग	Cannabis Indica	III	126
शंखाहुली	Canscora Decussata	III	284

हिंदी नाम	Names	Part	Page
कंथारी	Capparis Sepiaria	II	69
कबर	Capparis Spinosa	I	108
कबर	Capparis Spinosa	II	91
करील	Capparis Decidua	I	115
करेरुहा	Capparis Zeylanica	I	117
कटभी	Careya Arborea	I	90
एरण्ड ककड़ी	Carica Papáya	I	86
अजवायन	Carum Copticum	I	5
जीरा स्याह	Carum Carvi	II	251
पंवाड़	Cassia Tora	III	1
सनाय	Cassia Acutifolia	III	309
चाकसु	Cassia Absus	I	176
खखसा छोटा	Cassia Auriculate	II	161
अमलतास	Cassia Fistula	I	39
लाल खखसा	Cassia Marginata	I	161
बड़ा खखसा	Cassia Montana	I	161
खखसा	Cassia Obovata	I	161
कसौंदी	Cassia Occidentalis	I	142
काली कसौंदी	Cassia Purpurea	I	142
बांसकी कसौंदी	Cassia Sophera	I	142
सफेद मुर्गा	Celosia Argentea	III	311
मोरशिखा	Celosia Argentea var cristata	III	234
सोमराजी (कड़वी जीरी)	Centratherum Anthelmin-ticum	III	439
कन्दूरी	Cephalandra Indica	I	150
बथुवा	Chenopodium Album	III	71
कासनी	Chicorium Intybus	II	120
चना	Cicer Arietinum	II	204
जिइन्ती	Cimicifuga Foetida	II	243
दालचीनी	Cinnamomum	I	211
जापानी कपूर	Cinnamomum Camphora	I	98

हिन्दी नाम	Names	Part	Page
कडुम	Croton Oblongifolius	III	384
मूसली काली	Curculigo Orchioides	III	207
वनहल्दी	Curcuma Aromatica	III	276
फूट	Cucumis Momordica	III	44
कचरी	Cucumis Maculata	I	149
खरबूजा	Cucumis Melon	I	154
इन्द्रायण	Cucumis Prophetarum	I	70
खीरा ककड़ी	Cucumis Sativus	I	145
छोटी इन्द्रायन	Cucumis Trigonus	I	70
लेहुई ककड़ी	Cucumis Utilissimus	I	145
[illegible]	Cucurbita Maxima	I	149
सफेद कद्दू	Cucurbita Pepo	I	149
जीरा सफेद	Cuminum Cyminum	II	248
आमा हल्दी	Curcuma Amada	II	38
कचूर	Curcuma Zedoaria	II	74
हल्दी	Curcuma Longa	III	405
बिही	Cydonia Vulgaris	III	98
रूसा	Cymbopogon Schoenanthus	III	247
सफेद धतूरा	Datura Alba	I	220
त्रिपुरा धतूरा	Datura Fastuosa	I	220
[illegible] हरिधतूरा	Datura Metal	I	220
काला धतूरा	Datura Stramonium	I	220
काला धतूरा	Datura Tatula	I	220
गुलतुर्रा	Delonix Elata	I	178
त्रायमाण	Delphinium Saniculaefolium	I	196
त्रायमाण	Delphinium Zalil	I	196
निर्विषी	Delphinium Denudatum	II	312
जीवन्ती बंगलकी	Dendrobium Macraei	II	245
जीवन्ती बंगलकी	Desmotrichum Fimbriatum	II	245
तैलिया गर्जन	Dipterocarpus Alatus	II	174

हिंदी नाम	Names	Part	Page
गर्जन	Dipterocarpus Incanus	II	174
धूलिया गर्जन	Dipterocarpus Turbinatus	II	174
उशक	Dorema Ammoniacum	II	62
दरुनज अकरबी	Doronicum Royle	II	298
कपूर	Dryobalanops Aromatica	I	98
भांगरा	Eclipta Alba	III	135
वनगोभी	ElephantoPus Scaber	III	444
इलायची छोटी	Elettaria Cardamomum	II	45
चिरायता छोटा	Enicostemma Littorale	II	212
सोम	Ephedra Geradiana Ephedra Vulgaris	III	439
तारामीरा	Eruca Sativa.	I	198
शकाकुल मिश्री	Eryngium Cœruleum	III	288
नीलगिरी	Eucalyptus Citriodora	I	240
नीलगिरी	Eucalyptus Globulus	I	240
बड़ी जामुन	Eugenia Jambolana	I	189
छोटी जामुन	Eugenia Rubicunda	I	189
लौंग	Eugenia Aromatica	III	271
लौंग	Eugenia Caryophylata	III	271
अम्बर कंद	Eulophia Nuda	II	19
आयापान	Eupatorium Triplinerve	II	39
त्रिधारा थूहर	Euphorbia Antiquorum	I	215
दूधी	Euphorbia Hirta	I	215
छोटी थूहर	Euphorbia Nerifolia	I	200
कट थूहर	Euphorbia Nivulia	I	200
दूधी	Euphorbia Pilulifera	I	215
खुरासानी थूहर	Euphorbia Tirucalli	I	200
मखाना	Euryale Ferox	III	162
शंखाहुली	Evolvulus Alsinoides	III	285
रसौंत	Extract Berberis	I	205
हुरा	Excoecaria Agallocha	III	426
जवाशीर	Ferula Galbaniflua	II	232

हिंदी नाम	Names	Part	page
हींग	Ferula Foetida	III	417
कालागूलर	Ficus Asperrima	II	115
अंजीर	Ficus Carica	II	3
गूलर	Ficus Glomerata	II	184
कठ गूलर	Ficus Hispida	II	82
पहाड़ी पीपल	Ficus Arnottiana	III	6
पाखर	Ficus Tsiela	III	6
पिंवड़	Ficus Retusa	III	11
पीपल	Ficus Religiosa	III	14
वड़	Ficus Bengalensis	III	69
अञ्जीरी	Ficus Palmata	II	4
सौंफ	Foeniculum Capillaceum	III	376
शाहतरा	Fumaria Parviflora	III	289
कोकम	Garcinia Indica	II	154
डीकामाली	Gardenia Gummifera	II	265
डीकामाली	Gardenia Lucida	II	265
कलिहारी	Gloriosa Superba	II	108
कपास	Gossypium Herbaceum	I	147
गंगेरन	Grewia Tenak	II	172
गुड़मार	Gymnema Sylvestre	II	175
हुलहुल (पीला)	Gynandrosis-Pentaphylla	III	428
चौल मोगरा	Gynocardia Odorata	I	184
कपूर कचरी	Hedychium Spicatum	II	90
कुटकी (काली)	Helleborus Niger	II	130
नीलकण्ठी	Heliotropium Eichwaldi	II	331
ब्राह्मी	Herpestis Monnieria	III	113
अनन्त मूल	Hemidesmus Indicus	II	6
लता कस्तूरी	Hibiscus Abelmoscus	III	260
माधवी	Hiptage Benghalensis	III	192
माधवी	Hiptage Madablota	III	192

हिंदी नाम	Names	part	Page
कुड़ा (श्वेत)	Holarrhena Antidysenterica	II	144
करंजी	Holoptelea Integrifolia	II	102
जीवन्ती	Holostemma Annulare	II	245
जव	Hordeum Vulgaris	II	238
मण्डूकपर्णी	Hydrocotyle Asiatica	III	167
कड़वा कैथ	Hydnocarpus Wightiana	II	84
खुरासानी अजवायन	Hyoscyamus Niger	I	155
जूफा	Hyssopus Officinalis	II	253
बादियान खताई	Illicium Anisatum	III	89
कृष्ण सारिवा	Ichnocarpus Fruitiscence	II	8
भिल्ल नील	Indigofera Oblongifolia	III	260
भिल्ल नील	Indigofera Tinctoria	II	238
पुष्करमूल	Inula Racemosa	III	38
स्थल कमल	IonidiumEnneaspermum	III	379
मर्याद वेल	Ipomoea Pescaprae	III	443
मूसाकर्णी	Ipomoea Reniformis	III	221
लक्ष्मणा	Ipomoea Sepiaria	III	438
खुरासानी वच	Iris Florentina	II	171
पाषाणभेद	Iris Pseudo-achorus	III	10
स्वर्ण जूही	Jasminum Bignoniceum	III	380
बेलाकुन्द	Jasminum Pubescens	III	111
मालती	Jasminum Officinale	III	195
मालती	Jasminum Grandiflorum	III	196
वनमल्लिका	Jasminum Angustifolium	III	275
वासन्ती	Jasminum Arborescens	III	279
सफेद जूही	Jasminum Auriculatum	III	311
स्वर्ण जूई	Jasminum Bignoniaceum	III	380
कलम्बा	Jateorrhiza Palmata	II	104
मुगलाई एरण्ड	Jatropha Curcas	III	200

हिंदी नाम	Names	part	page
छरीला	Parmelia Perlata	II	221
छरीला	Parmelia Perforata	II	221
गोखरू बड़ा	Pedalium Murex	II	190
हरमल	Peganum Harmala	III	401
काक जंघा (बम्बई)	Peristrophe Bicalyculata	II	112
सोया	Peucedanum Graveolens	III	374
आंवला	Phyllanthus Embelica	I	46
भुई आंवला	Phyllanthus Niruri	III	160
भुई आंवला	Phyllanthus Simplex	III	160
कुटकी	Picrorrhiza Kurooa	II	129
डामर	Pinus Sylvestris	II	263
जलकुम्भी	Pistia Stratiotes	II	234
रेणुक बीज	Piper Aurantiacum	III	250
नागर वेल	Piper Betle	I	229
चव्य	Piper Chaba	I	180
कवावचीनी	Piper Cubeba	II	94
काली मिर्च	Piper Nigrum	I	121
ईसवगोल	Plantago Ovata	II	56
गुलतुर्रा	Poinciana Elata	II	178
बीजबन्द	Polygonum Aviculare	II	100
करंज	Pongamia Glabra	II	79
कुल्फा	Portulaca Oleracea	II	134
अरणी (छोटी)	Premna Integrifolia	II	25
जरदालू	Prunus Armeniaca	II	229
पद्माख	Prunus Cerasoides	III	4
आलू बालू	Prunus Cerasus	II	42
आलूचा	Prunus Communis	II	42
आलूबुखारा	Prunus Communis var Insititia	II	43
आडू	Prunus Persica	II	32
पद्माक	Prunus Puddum	III	4
अमरूद	Psidium Guyava	I	35

सूचना—आगे मात्र तीसरे भागकी चित्र सूची पृष्ठ ४८८ में तथा प्रयोग सूची पृ ४८९।९० में दी है।

चित्र सूची

इस प्रकार ४८ श्लोक छपाये गये हैं ।

प्रयोग सूची

रोगानुसार औषध सूची

१ अग्निमांद्य

नया—बच ४९। बच्छनाग ५५। भिलावा १४४। सौंफ ३७६। हरड़ ३९०
पुराना—पीलु २२। वासन्ती २७९। सन्तरा २९५। सनाय ३०९।
वात पित्त प्रकोप—महुआ १७३। राई २३७।

अपचन—वरना ७३। बिखमा ९४। भांग १२६। भिलावा १४४। हींग४२७। हिंगोट ४१५। हड़जोड़ी ३८६। माजूफल १८१। लताकस्तूरी २६०। लौंग २७१। सिवाय ३२६।

अरुचि—शाहतरा २८९।
आमाशय की शिथिलता—हींग ४१७।

२ अजीर्ण

आमाजीर्ण—पीलु २२। पुष्करमूल २८।
वातकफज—कूट ४४। बच ४९। बथुआ ७१। रुसा २४७।

३ अतिसार

सामान्यअतिसार—पीला चम्पा १८। प्रियंगु ४३। बिखमा ९४। बिजयसार ९५। बड़ ६९। बीजबंद १००। बेदसादा १०६। मुगलाईएरण्ड १९९। मुसलीकाली २०७। मोरशिखा २३२। रेवन्दचीनी २५२। शाहतरा २८९। सन्तरा २९५। सफेदमुर्गा ३११। सेमल ३६९। सोया ३७४। स्वर्णजूही ३८०।

आमातिसार—बच ४९। बांदा ८१। बादियान खताई ८९। भांग १२६। भांगरा १३५। भिलावा १४४। माजूफल १८१। मेथी २२४। सौंफ ३७६। रेवन्दचीनी २५२। हरड़ ३८०।
वातातिसार—सौंफ ३७६।
रक्तातिसार—माजूफल १८१। शतावरी २९६। हीराबोली गोंद ४२२।
अपचनजन्य—सोमराजी ४३९।
जीर्णअतिसार—माजूफल ४८१। सौंफ ३७६। सालम मिश्री ३२२।
अतिसारजन्य निर्बलता—सेमल ३६९।

४ अन्तर प्रदाह

आमाशय—राई २३७। शतावरी २९५।
अन्त्र—सूचीबूटी ३४९। हरड़ ३९०।
फुफ्फुसआवरण—सूचीबूटी ३४९। राई २३७।
हृदयोकला—सूचीबूटी ३४९।

५ अपची
(कण्ठ माल में देखें)

६ अपस्मार
बच ४९। भारंगी १३५। महुआ १७३। शतावरी २९६। शंखाहुली २८४। सरसों ३२०। सीताफल ३३३।

मूर्च्छावस्था—राई २३७।

७ अम्ल पित्त
बच ४९। भांगरा १३५। मुनक्का २०१। मूली २१८।

८ अफीम व्यसनी
सूची बूटी ३४९। हींग ४१७।

अफीमविषज मूर्च्छा—राई २३७।

९ अरुचि
(अग्निमांद्य में देखें)

१० अर्बुद
वड़ ६९।

रसार्बुद—हल्दी ४०५।

११ अश्मरी
सबपर—पतंग ३। पानरसोन ७। पाषाणभेद ८। पुनर्नवा २५। फूट ४४। शाहतरा २८९। शतावरी २९६। सफेद मुर्गा ३११। सुहिंजना ३४२। निशोथ ४४७।

मूत्राश्मरी—बकायन ४६। बरना ७६। मराठी १६२। राई २३७। सूचीबूटी ३४९। प्रसारणी ४३३।

मूत्राश्मरीशूल—राई २३७।

पिताश्मरी—राई २३७। सूचीबूटी ३४९।

अश्मरी शर्करा—सुहिंजना ३४२।

१२ अर्श
सबप्रकारके अर्श—पीलु २४। बकायन ४६। बच्छनाग ५५। राई २३७। हरड़ ३९०। हल्दी ४०५। हुलहुल ४२८। बथुआ ७१। बरना ७६। बांश १२०। भांग १२६। भिलावा १४४। शांईकांटा २८८। सिरस ३२९। सूचीबूटी ३४९।

वातार्श—सोया ३७४। पीलु २४।

रक्तार्श—मूली २१८। हीरादोखी गोंद ४२२। बावलीबूंटी ४३६।

१३ अस्थिभग्न

१४ आगन्तुक घाव

(व्रण में देखें)

१५ आध्मान

(उदरमें देखें)

१६ आमवात

१७ उदर रोग

१८ उदरशूल

(शूल में देखें)

१९ उदावर्त

सुपारी ३३४ । हडजोडी ३८६ । हरड़ ३९० ।

२० उन्माद

वातज—पतंग ३ । वच ४९ । शंखाहुली, २८४ ।

पितज—ब्राह्मी ११३ । शंखाहुली २८४ ।

शोकोन्माद—ब्राह्मी ११३ ।

रक्त दवाव वृद्धि जन्य—सर्पगन्धा ३१४ ।

२१ उपदंश

नया—पीलाचम्पा १८ । ब्राह्मी ११३ । भिलावा १४४ । सिरस ३२९ ।

पुराना—ब्राह्मी ११३ । सत्यानाशी ३०४ । हडजोड़ी ३८६ ।

२२ उरुक्षत

(क्षय में देखें)

२३ उरुस्तम्भ

बथुआ ७१ । बेंत १०३ । लहशुन २६२ । विधारा २८१ । समुद्र शोफ ४४५

२४ कण्ठमाल, अपची, गलगण्ड

कण्ठमाला—पीलाचम्पा १८ । भारंगी १४० । भिलावा १४४ । लज्जालू २५६ वांकेरी २७७ । सिरस ३२९ ।

अपची—सरसों ३२० ।

गलगण्ड—वरना ७६ । हुलहुल ४२८ ।

२५ कण्ठरोग

कण्ठमें सूजन—बहेड़ा ७९ । सूची बूटी ३४९ ।

कण्ठरोहणी—महुआ १७३ ।

गल ग्रन्थिका प्रदाह—माजू फल १८१ ।

जिह्वाजाड्य—मानकन्द १९३ ।

स्वर भंग—बहेडा ७९ । वेर १०७ । राई २३७ । सूची बूटी ३४९ ।

२६ कण्डू

(चर्म रोगमें देखें)

२७ कर्ण रोग

कर्ण शूल—पुनर्नवा २५ । बांदा ८१ । बेदसादा १०६ । वेल (रायबेल) ११२ लहशुन २६२ । सुहिजना ३४२ । सूची बूटी ३४९ । हुलहुल ४२८ ।

कर्ण स्राव—वच ४९। मालती १९५। हड़ जोडी ३८६। हल्दी ४०५। हुल-
ुल ४२८।

कर्ण कृमि—वच ४९।

कर्ण पाक—मानकन्द १९३। मूसा कर्णी २२१ राई २३७।

जन्तु प्रवेश—सिताव ३२६। मर्यादि वेल ४४३।

कर्ण मूल शोथ—राई २३७। हिंगोट ४१५।

बधिरता—हब्बुल गार ३८७।

२८ कामला

पुनर्नवा २५। वेद सादा १०६। भांगरा १३५। भूई आमला १६०। मराठी
६२। रेवन्द चीनी २५२। हल्दी ४०५।

२९ कास

कफ कास—पीपल १४। पुष्कर मूल ३८। वच्छ नाग ५५। भांगरा १३५।
ारंगी १४०। भिलावा १४४। रुसा २४७। रुद्रवन्ती २४८। रेणुक बीज २५१।
ौंग २७१। सूची बूटी ३४९। हरड़ ३९०।

जीर्ण कफ कास—हल्दी ४०५। हिंगोट ४१५।

शुष्क कास—बथुआ ७१। बहेड़ा ७९। बिही ९८। भांग १२६। मुनक्का-
:०१। सरसों ३२०।

पूयात्मक कफ कास—बहेड़ा ७९।

रक्त कास—लज्जालू २५६। हरमल ४०१।

काली खांसी—(बाल रोगमें देखें)

जीर्ण कास—भारंगी १४०। शतावरी २९६।

अधिक खांसी से निद्रा नाश—पीपल १४। हरमल ४०१।

३० कुष्ठ

क्षुद्र कुष्ठ—पंवाड १। पद्माक ४। पींवड ११। पीला चम्पा १८। बावची
८९। विजयसार ९५। भिलावा १४४। मण्डूक पर्णी १६७। मूर्वा २१०। सरसों
३२०। हुरा ४२६।

श्वेत कुष्ठ—भांगरा १३५। राई २३७। सिरस ३२९। ब्रह्म दण्डी। ४३७।
सोमराजी ४३९।

सिध्म कुष्ठ—मूली २१८

गलत्कुष्ठ—बावची ८९। सत्यानासी ३०४। हुरा ४२६।

गौण कुष्ठ—सत्यानाशी ३०४।

उपदंशज कुष्ठ—पीला चम्पा १८ | मण्डूक पर्णी १६७ |

व्युचर्ची—बावची ८९ | विजयसार ९५ | ब्रह्म दण्डी ४३७ | हुलहुल ४२८ |

दद्रु—बावची ८९ | सुहिंजना ३४२ | हुलहुल ४२८ |

सिरपर दाद दारुणक—सुहिंजना ३४२ |

पामा—बड़ ६९ | भांग १२६ | मुगलाई एरण्ड १९९ | शिला रस २९३ | सत्यानाशी ३०४ | सुपारी ३३४ |

शून्य कुष्ठ—सोमराजी ४३९ |

श्वेत कुष्ठ—भांगरा १३५ | ब्रह्म दण्डी ४३७ |

३० कृमि रोग

उदर कृमि—बच ४९ | माधवी १९२ | मूसा कर्णी २२१ | राई २३७ | रूसा २४७ | वन हल्दी २७६ | हल्दी ४०५ |

सूक्ष्म कृमि—माधवी १९२ | मूसा कर्णी २२१ | राम फल २४६ |

गोल कृमि—बच ४९ | राई २३७ |

३१ गलगण्ड

(कण्ठ मालमें देखें)

३२ गुल्म

सब प्रकार पर—प्रियंगु ४१ | बकायन ४६ | बच्छनाग ५५ |

वातज गुल्म—लहशुन २६२ | सुहिंजना ३४७ |

पित्तज गुल्म—रेणुक बीज २५१ |

३३ ग्रन्थि

(व्रणमें देखें)

३४ ग्रहणी

वात पित्तज ग्रहणी—विखमा ९४ |

आम संग्रहणी—भिलावा १४४ |

संग्रहणी—भांग—१२६ |

प्रवाहिका मय ग्रहणी—बादियान खताई ८६ | मोलसरी २३६ |

क्षुधा वृद्धि के लिये—वरना ७६ | भांग १२६ | हींग ४२७ |

३५ चर्म रोग

नया—पंवाड १ | पींवड ११ | पित्ति १२ | बावची ८९ | मण्डूकपर्णी १६७ | माधवी १९२ | मुगलाई एरण्ड १९९ | मूसाकर्णी २२१ | हराचम्पा ४०४ |

जीर्ण—मुगलाई एरण्ड १९९ | ब्रह्मदण्डी ४३७ |

३६ ज्वर

ज्वरमें शीतांग—लहशुन २६२।

जीर्ण ज्वर—पित्त १२। पीलू २२। बेंत १०१। भांगरा १६५। भिलावा १४४। मालती १९५। लोंग २७१। हेमकन्द ४३०।

जीर्ण ज्वरमें दाह—बांश १२०।

३७ तन्द्रा

(निर्बलतामें देखें।

३८ तृषा

पित्तप्रकोपज—मुनक्का २०१। रामफल २४६। शाहतरा २८५।

कण्ठशोष—मुनक्का २०१। सोंफ ३७६।

ज्वर जनिततृषा—पीपल १४। लोंग २७१।

मदात्ययजतृषा—शाहतरा २८९।

३९ दन्तरोग

दंतशूल—विजयसार ९५। राई २३७। लोंग २७१। सत्यानाशी ३०४। सुहिंजना ३४२। हींग ४१७। हीरा बोल ४२४।

दंतकृमि—सोम राजी ४३९।

दांतहिलना—माजूफल १८१। मोलसरी २३६।

मसूढेसे रक्त स्राव—सुपारी ३३४।

दंतक्षत—मोलसरी २३६।

४० दाह

त्वचामेदाह—पाखर ६। प्रियंगु ४१। विही ९८। बांश १२०। भांग-१२६। मखाना १६२। मुनक्का २०१। रामफल २४६। वन मल्लिका २७५।

उदरदाह—पुष्कर मूल ३८। प्रियंगु ४१।

मूत्रदाह—मराठी १६२। महुआ १७३। मोलसरी २३६।

हाथपैरोंमें दाह—वरना ७६।

४१ नासारोग

नासारक्तस्राव—बनफसा ७२। माजूफल १८१। हीरा बोल ४२४। सूची-बूटी ३४९। हडजोड़ी २८६। सोमराजी ४३९।

नासाक्षत—वरना ७६। लज्जालु २५६।

४२ निद्रानाश

मानस आघात—बादाम ८६। ब्राह्मी ११३। शंखाहुली २८४।

रोगादिसे—पीपल १४। पुनर्नवा २५। ब्राह्मी ११३। भांग १२६। हरमल ४०१।

४३ निर्बलता

४४ नेत्ररोग

४५ पाण्डु

जीर्ण ज्वरके पश्चात् पाण्डु—रेवन्द चीनी २५२।

स्त्रियों का पाण्डु—हल्दी ४०५।

उपदंशज पाण्डु—पुनर्नवा २५।

४६ प्रतिश्याय

नया—पाषाणभेद ८। बच ४९। बच्छनाग ५५। बनफसा ७२। बादियान-खताई ८९। लोंग २७१। सुहिंजना ३४२। हब्बुलगार ३८७। हरमल ४०१। हल्दी ४०५।

जीर्ण—राई २३७।

४७ प्रहमे

प्रमेह—पंवाड़ १। बकायन ४६। बादाम ८६। मुसलीसफेद २०९। मूर्वा २१०। शतावरी २९६। स्वर्णजुही ३८०।

कफजप्रमेह—हल्दी ४०५।

पितजप्रमेह—बकायन ४६। बादाम ८६।

इक्षुमेह—बिजयसार ९५। सुपारी ३३४।

वसामेह—भिलावा १४४।

रक्तमेह—मोलसरी २३६।

शुक्रमेह—सालसमिश्री ३२३। सिरस ३२९।

मधुमेह—विजयसार ९५। विधारा २८१। शांइकाटा २८८। हल्दी ४०५।

उदकमेह—सूचीबूंटी ३४९। हल्दी ४०५।

लालामेह—सूचीबूंटी ३४९।

क्षारमेह—सेमल ३६९।

शुक्रकी निर्बलता—शांइकाटा २८८। सेमल ३६९।

शुक्रका पतलापन—बड़ ६९। विधारा २८१।

नयापूयमेह—पीलाचम्पा १८। बिही ९८। बांस १२०। भांग १२६। भूईआंवला १६०। मुसलीकाली २०७। लताकस्तूरी २६०। शिलारस २९३। सत्यानाशी ३०४।

जीर्ण पूयमेह—बांस १२०। माजूफल १८१। सूचीबूटी ३४९। स्थल-कमल ३७९।

मूत्राशय प्रदाह—सूचीबूटी ३४९।

४८ प्रवाहिका

तीव्रावस्था—बथुआ ७१। बनफसा ७२। बादियान खताई ८९।

वेदसादा १०६ । भूईआंवला १६० । रेवन्दचीनी २५१ ।

जीर्णप्रवाहिका—बावची ८९ । बिही ९८ ।

रक्तप्रवाहिका—मोलसरी २३६ । सर्पगन्धा ३१४ ।

४९ प्लीहा

(उदरमें देखें)

५० बद

(व्रणमें देखें)

५१ बालरोग

अजीर्ण—हेमकन्द ४३० ।

ज्वर—पुष्करमूल ३८ । भांगरा १३५ । ब्राह्मी ११३ ।

कफज्वर—सोमराजी ४३९ ।

डब्बारोग—भिलावा १४४ । सिताब ३२६ ।

आक्षेप—पीपल १४ । ब्राह्मी ११३ । सूचीबूटी ३४९ ।

श्वासावरोध—वच ४९ । भांगरा १३५ ।

धनुर्वात—वच ४९ । सिताब ३२६ ।

मूर्च्छा—वच ४९ ।

व्याकुलता—समुद्रफल ३१३ ।

कफप्रकोप—हंसराज ३८१ ।

प्रतिश्याय—सिताब ३२६ । हेमकन्द ४३० ।

शुष्ककास—बांश १२० । मोरशिखा २३२ । सिताब ३२६ ।

कफयुक्तकास—मोलसरी २३६ । सोमराजी ४३९ ।

दांतआना—सिरस ३२९ ।

अतिसार—प्रियंगु ४३ । रेवन्द चीनी २५२ ।

तालुकण्टक—वच ४९ ।

विशूचिका—बच्छनाग ५५ ।

बालकों के टीका पर—बच्छ नाग ५५ ।

उदर कृमि—बायबी ८९ ।

मुख पाक—पीपल १४ ।

वृषण वृद्धि—लज्जालु छोटी २५९ ।

वमन कराना—समुद्र फल ३१३ ।

निर्बलता—मुनक्का २०१ ।

मलावरोध—एरंड ३९० ।

५२ व्युची

(कुष्टमें देखें)

५३ भगंदर

माजूफल १८१ । वांकेरी २७७ ।

५४ मदात्यय

वेर १०७ । वेला (राय वेला) ११२ । शाहतरा २८९ । शतावरी २९६ । सर्पगन्धा ३१४ ।

५५ मधुमेह

(प्रमेहमें देखें)

५६ मलावरोध

उदर शुद्धिके लिये—पंवाड १ । पुनर्नवा २५ । वच ४९ । ममीरा १६४ । ममीरी १६५ । मुनक्का २०१ । मेथी २२४ । सत्यानाशी ३०४ । सनाय ३०९ । हंसराज ३८१ ।

जीर्ण मलावरोध—मुनक्का २०१ । सूची बूटी ३४९ ।

५७ मसूरिका शीतला

शीतला ज्वर—चांदा ८१ । वेर १०७ । ब्राह्मी ११३ । सुपारी ३३४ । सुहिंजना ३४२ ।

रोमान्तिका—माजूफल १८१ ।

विप बाहर निकालने के लिए—शतावरी २९६ ।

दाह—ब्राह्मी ११३ । शाहतरा २८९ ।

शीतला के व्रण पर—लहशुन २६२ । वन हल्दी २७६ । हल्दी ४०५ ।

५८ मुखरोग

मुख शोष—मुनक्का २०१ ।

मुख पाक—बिजयसार ९५ । बिही ९८ । बेर १०७ । वेला (राय वेला) ११२ । भांगरा १३५ । मालती १९५ । हीरा बोल ४२४ ।

मसूढ़े से रक्त स्राव—मुगलाई एरण्ड १९९ । सुपारी ३३४ ।

मुखकी श्यामता—सरसों ३२० ।

जिह्वा जाड्य—मानकन्द १९३ ।

५९ मूत्ररोग

मूत्रावरोध—पुनर्नवा २५ । वच ४९ । बांश १२० । भांग १२६ । मुनक्का २०१ । लज्जालु २५६ । सनाथ ३०९ । हींग ४१७ ।

मूत्रकृच्छ्र—पंतग ३ । पुनर्नवा २५ । बीजबन्द १०० । बेर १०७ । मुनक्का २०१ । रेवन्द चीनी २५२ । शतावरी २९६ सुर्गा ३११ । हरमल ४०१ । प्रसारणी ४३३ ।

बहुमूत्र—पीला चम्पा १८ । बड़ ६९ । बांश १२० । मेथी २२४ ।

मूत्रशोधनार्थ—मूली २१८ ।

मूत्राघात—शतावरी २९६ ।

वृक्क प्रदाह—भांग १२६ ।

जीर्ण वृक्क प्रदाह—शतावरी २९६ ।

६० मूर्च्छा

महुआ १७३ । लहशुन २६२ । शतावरी २९६,

६१ यकृत विकार

(उदरमें देखे)

६२ रक्त पित्त

सब प्रकारके रक्त पित्त—पद्माक ४ । पाखर ६ । पीपल १४ । प्रियंगु ४१ । बथुआ ७१ । वनफसा ७२ । विजयसार ९५ । रुद्रवन्ती २४८ । शतावरी २९६ । सेमल ३६९ । स्वर्ण जुही ३८० । हरड ३९० । निशोथ ४४७ ।

उर्ध्वरक्त पित्त—शंखाहुली २८४ । शाहतरा २८९ । सुपारी ३३४ । हीरा दोखी गोंद ४२२ ।

अधो रक्तपित्त—वनफसा ७२ । शाहतरा २८९ । हीरा बोल ४२४ ।

रक्त स्राव—वनफसा ७२ । हीरा बोल ४२४ । सोमराजी ४३९ ।

६३ रक्त विकार

सामान्य रक्त की अशुद्धि—पतंग ३ । पहाडी पीपल ६ । पीवंड ११ । पीपल १४ । बकायन ४६ । बेला कुन्द ११० । मराठी १६२ । रुद्रवन्ती २४८ । वनहल्दी २७६ । शतावरी २९६ । सत्यानाशी ३०४ । सिरस ३२९ । हराचम्पा ४०४ ।

उपदंशज रक्त विकार—बकायन ४६ ।

खुजाकजनित रक्त विकार—सातूफल १८१ । शिला रस २९३ ।

६४ रोमान्तिका

मसूरिकामें देखें ।

६५ वमन

आमाशयकी उग्रता जन्य—पद्माक ४ । पीपल १४ । प्रियंगु ४१ । बका-

यन ४६ । वड़ ६९ । विखमा ९४ । महुआ १७४ । मालती १९५ । शांई कांटा २८८ । शाहतरा २८९ । सुपारी ३३४ । हरड़ ३९० ।

सूर्यके तापमें फिरनेसे वमन—शाहतरा २८९ ।

अपचन जन्य वमन—सुपारी ३३४ । हरड़ ३९० ।

पित्तयुक्त अम्ल वमन—महुआ १७४ । मालती १९५ । शाहतरा २८९ ।

रक्त वमन—हीरादोखी गोंद ४२२ ।

६६ वातरोग

सामान्य वातरोग—पीला चम्पा १८ । वच्छनाग ५५ । भांगरा १३५ । भिलावा १४४ । सालम मिश्री ३२३ । सितोव ३२६ ।

संधिवात—पीलु २२ ।

गृध्रसीवात—बकायन ४६ । हरमल ४०१ । हार शिंगार ४१२ । हींग ४१७ ।

पक्षाघात—बच ४९ । वच्छनाग ५५ । भांग १२६ । हींग ४१७ ।

अर्धांगवात—राई २३७ । सुहिंजना ३४२ ।

धनुर्वात—बच्छनाग ५५ । भांग १२६ । भिलावा १४४ ।

वाततनाड़ी शूल—बच्छनाग ५५ ।

वातज वेदना—राई २३७ । सुहिंजना ३४२ ।

कटिवात—राई २३७ ।

जीर्णवात—समुद्र शोष ४४५ ।

वातजन्य आक्षेप—हरमल ४०१ । हुलहुल ४२८ । हींग ४१७ ।

मन्यास्तम्भ—हींग ४१७ ।

अर्दित—हींग ४१७ ।

अपतन्त्रक—बकायन ४६ । शतावरी २९६ । सीताफल ३३३ ।

शून्यवात—हब्बुल गार ३८७ ।

मांश पेशियोंमें खिचाव—भांगरा १३५ ।

अपतानक—हींग ४१७ ।

६७ वातरक्त

नया—पीपल १४ । वच्छनाग ५५ । भांग १२६ । भिलावा १४४ । मण्डूकपर्णी १६७ । शतावरी २९६ । सुरंजान ३२९ । सुहिंजना ३४२ ।

जीर्ण—पीला चम्पा १८ । बावची ८९ ।

६८ विष

सामान्य विष प्रकोप—पीपल १४ । वच ४९ ।

पारद विष— बांश १२० । भांगरा १३५ ।

६९ विसर्प

७० विषूचिका (हैजा)

७१ वृषण वृद्धि

अन्त्रवृद्धि—लज्जालु २५६ ।

वृषणवृद्धि—वच ४९ । माजूफल १८१ । लज्जालु छोटी २५९ । शिलारस २९५ । हरड़ ३९० ।

शीतलतापर—राई २३७ । हींग ४२१ ।

विसूचिका तृषापर—लौंग २७१ ।

७२ व्रणविद्रधि

सामान्य व्रण—पंवाड १ । पतंग ३ । पद्माक ४ । पाखर ६ । पानरसोन ७ । पिंवड ११ । पीपल १४ । पीलाचम्पा १८ । बकायन ४६ । बेर १०७ । माधवी १९२ । राई २३७ । विधारा २८१ । सत्यानाशी ३०४ । हींग ४१७ । हुलहुल ४२८ । हुरा ४२६ ।

दुष्ट व्रण—बड़ ५५ । रेवन्दचीनी २५२ । लहशुन २६३ । वनमल्लिका २७५ । वांकेरी २७७ । सिरस ३२९, हीरावोल ४२४ ।

सद्योव्रण—सुहिंजना ३४२ ।

शय्या व्रण—वांकेरी २७७ ।

नाड़ी व्रण—वांकेरी २७७ ।

दुष्ट नाडी व्रण—हरड ३९० । हीरादोखी गोंद ४२२ ।

अपक्व विद्रधि—सुहिंजना ३४२ । निशोथ ४१७ ।

पक्व विद्रधि—वनफसा ७२ । वरना ७६ । हडजोड़ी ३८६ ।

दारुणक—सुहिंजना ३४२ ।

आगन्तुजघाव—माजूफल १८१ । सिरस ३२९ । हुलहुल ४२८ ।

आगन्तुज घावमें रक्तस्राव—भारंगी १४० ।

जखमसे रक्तस्राव—बड़ ६९ ।

व्रणकार्य—भारंगी १४० । भिलावा १४४ । राई २३७ । सिरस ३२९ ।

कक्षा (बगलकी गांठ)—भिलावा १४४ ।

तेजघाव—मालती १९५ ।

रक्तजमजानेपर—वनहल्दी २७६ ।

क्षतप्रधान विद्रधि—शिलारस २९३ ।

अन्तर विद्रधि—माजूफल १८१ ।

७३ शिरोरोग

आधाशीशी—पुनर्नवा २५ । वच ४९ । भिलावा १४४ । सिरस ३२९ ।

वच्छनाग ५५ । बादाम ८६ । वेदमुश्क १०३ । वेलाकुन्द ११० । भांग १२६ । मुनक्का २०१ ।

अर्धावभेदक—वच ४९ ।

पित्तप्रकोपज शिरःशूल—बादाम ८६ । भांगरा १३५ । महुआ १७३ । मुनक्का २०१ ।

वातप्रकोपज शूल—भारंगी १४० ।

मस्तिष्क में भारीपन—ब्राह्मी ११३ । मुनक्का २०१ ।

मस्तिष्क में उष्णता—मूसलीकर्णी २२१ । मोलसरी २३६ ।

मानसिक श्रमजनित—बादाम ८६ ।

७४ शीतपित्त

नया—ब्राह्मी ११३ । हरड ३९० ।

जीर्ण—सोमराजी ४३९ ।

७५ शूल

वातनाड़ी शूल—वच्छनाग ५५ । सूची बूटी ३४९ । सोया ३७४ ।

पिताशय शूल—शतावरी २९६ ।

उदर शूल—राई २३७ । रूसा २४७ ।

कटि शूल—लहशुन २६२ ।

परिणाम शूल—हींग ४१७ ।

पार्श्व शूल—सूची बूटी ३४९ ।

वृक्क शूल—राई २३७ । सूची बूटी ३४९ ।

७६ शोथ

सर्वांग शोथ—पीपल १४ । पुनर्नवा २५ । बांदा ८१ । बैंत १०१ । वेदमुश्क १०३ । भूई आंवला १६० । मान कन्द १९३ । मूली २१८ । मोलसरी २३६ । राई २३७ । सिरस ३२९ ।

हृदय विकृति जन्य—पुनर्नवा २५ । भूई आंवला १६० ।

वृक्क विकारज—पुनर्नवा २५ । मेथी २२४ ।

वातरोगज शोथ—सुहिंजना ३४२ ।

आमवातज शोथ—सुहिंजना ३४२ । सर्पाद बेल ४४३ ।

संधि शोथ—मानकन्द १९३ ।

आगन्तुज शोथ—हल्दी ४०५। मर्याद वेल ४४३।
ग्रन्थि शोथ—हल्दी ४०५ हिंगोट ४१५।

७७ श्लीपद

विजयसार ९५। भिलावा १४४। विधारा २८१। सरसों ३२०। समुद्रशोफ ४४५।

७८ श्वास

श्वास भरजाना—पीपल १४। पुष्कर मूल ३८। बकायन ४६। बच्छनाग ५५। सत्यानाशी ३०४। हरमल ४०१।
कफ युक्त श्वास—पंवाड १। पद्माक ४। पाषाण भेद ९। बहेड़ा ७९ भारंगी १४०। राई २३७। रुसा ३४७। सत्यानाशी ३०४। सुहिंजना ३४२।
तमक श्वास—सूची बूटी ३४९। हरमल ४०१।
तीव्र वेगमें—सोम ४३९।
श्वासावरोधमें—सत्यानाशी ३०४।
श्वासकादौरा—भारंगी १४०। लता कस्तूरी १६०। हब्बुलगार ३८७।
जीर्ण श्वास—हरड़ ३९०। हार शिंगार ४१२।

७९ संग्रहणी

(ग्रहणीमें देखें)

८० संधिवात

(वातरोगमें देखें)

८१ सर्प दंश

(विषमें देखें)

८२ सुजाक

(प्रमेहमें देखें)

८३ स्नायु (नारु)

लहशुन २६२। सुहिंजना ३४२। हिंगोट ४१५। हींग ४१७।

८४ स्वप्नदोष

(निर्बलतामें देखें)

८५ स्वर भंग

(कण्ठरोगमें देखें)

८६ स्मृतिनाश

(निर्बलतामें देखें)

८७ स्त्रीरोग

श्वेतप्रदर—बड़ ६९ । केर १०५ । कमलापा १४४ । माजूफल १८१ । सेमी २२४ । सुपारी ३३४ । हथीदंटी ३४९ । हरदी ४०५ । हीराबोल ४२४ ।

रक्तप्रदर—मूसली काली २०७ । शकाकुलमिश्री २८८ । शतावरी २९६ । सालममिश्री ३२३ । हीरादोखीगोंद ४२२ ।

अत्यार्तव—सुईआंवला १६० । हीरादोखीगोंद ४२२ ।

कष्टार्तव—वच ४९ । वच्छनाग ५५ । भांग १२६ । सिताब ३२६ । सूची-बूटी ३४९ । हब्बुलगार ३८७ । हरमल ४०१ । हीराबोल ४२४ ।

अनार्तव—सिताब ३२६ । हरमल ४०१ ।

मासिकधर्मावरोध—बकायन ४६ । येला गायबेला ११२ ।

रजोधर्ममें कष्ट—मूषाकर्णी २२१ । वासन्ती २७९ ।

आर्तवशूल—मालती १९५ ।

मासिकधर्मविकृति—मैनफल २२८ । हथजोड़ी ३८६ ।

रजशोधनार्थ—वनगोभी ४४४ ।

मासिकधर्मकेसाथ में प्रतिबन्ध—राई २३७ ।

योनीशूल गर्भाशय—भांगरा १३५ ।

गर्भस्रावएवंगर्भपात—भांगरा १३५ ।

गर्भधारणार्थ—बड़ ६९ । बांदा ८१ । मोरशिखा २३२ । लक्ष्मणा ४३८ । वनगोभी ४४४ ।

गर्भाशयशोधनार्थ—लक्ष्मणा ४३८ ।

गर्भाशयकी उष्णता—मखाना १६२ ।

गर्भस्रावजपीड़ा—सर्पगन्धा ३१४ ।

सगर्भाकेरोग—

सगर्भाकेप्रदर—मूसली काली २०७ । शकाकुलमिश्री २८८ ।

कृशता—बादाम ८६ । शतावरी २९६ ।

सगर्भाकेरक्तस्त्राव—प्रियंगु ४१ ।

सगर्भाकेउदरवात—वच ४९ ।

सगर्भाकी वमन—लौंग २७१ ।

प्रसूता के रोग

प्रसूताकाशिरदर्द—भारंगी १४० । सूचीबूटी ३४९ ।
प्रसूताकेज्वर—सोमराजी ४३९ ।
प्रसूताकाअग्निमांद्य—मुनक्का २०१ । सोया ३७४ ।
प्रसवकष्ट—पुनर्नवा २५ । वच ४९ । भांग १२६ । हब्बुलगार ३८७ ।
सुखप्रसवार्थ—वच ४९ । मैनफल २२८ । सर्पगन्धा ३१४ ।

सूति का रोग

सुतिकाकेज्वर—वच्छनाग ५५ ।
सुतिकाकीनिर्वलना—मेथी २२४ ।
मृतगर्भको वाहर निकालना—राई २३७ ।
आंवल रुकजाना—बांश १२० ।
मक्कलशूल—बांश १२० । हींग ४१७ ।
दूधवर्धनार्थ—रुद्रवन्ती २४८ । शकाकुलमिश्री २८८ । शतावरी २९६ ।
दूधविकृति—सोया ३७४ ।
स्तनशूल—सूचीबूटी ३१४ ।
स्तनोंकेघाव—माजूफल १८१ ।
योनिकण्डू—वरना ७६ ।
योनिदार्ढ्यार्थ—बेंत १०१ ।
योनिशूल—पुनर्नवा २५ ।
योनिभ्रंश—माजूफल १८१ । लज्जालु २५६ ।
रक्तगुल्म—भारंगी १४० ।
वन्ध्यत्व—शतावरी २९६ ।
मूढगर्भपातनार्थ—राई २३७ ।
गर्भाशय कर्कस्फोट—राई २३७ ।

८८ हिक्का हिचकी

पीपल १४ । भांग १२६ । भारंगी १३५ । महुआ १७३ । मूली २१८ । रेणुकबीज २५७ । सुहिंजना ३४२ । सूची बूटी ३४९ । हरड ३९० । हरमल ४०१ । हींग ४१७ ।

८९ हिस्टीरिया

(वातरोगमें देखें)

६० हृदयरोग

घबराहट—पीपल १४। बादाम ८६। पुष्करमूल ३८।
हृदयकी निर्बलता—राई २३७। सलगम ३२२।
हृदयावरण प्रदाह—बच्छनाग ५५।
हृदयशूल—सूचीबूटी ३४९।
हृदयोदर—पुनर्नवा २५।

६१ क्षय

राजयक्ष्मा तपेदिक T. B.

शोष (शरीर सूखजाना)—पीलु २२। भांगरा १३५। भिलावा १४४। मुनक्का २०१।

शुक्रक्षय—बकायन ४६। बादाम ८६। मुसली सफेद २०९। शतावरी २९६।

कफ निःसारणार्थ—पद्माक ४। पीपल १४। पाषाणभेद १०। भिलावा १४४। लौंग २७१।

उरःक्षत—पीपल १४। विजयसार ९५। बेर १०७।
कीटाणुनाशार्थ—बच ४९। राई २३७।
क्षयमें प्रस्वेद आनेपर—हेमकन्द ४३०।
फुफ्फुस क्षत—बांश १२०। शिलारस २९३।

६२ क्षुद्ररोग

बालों में जू होना—मैनफल २२८। सोमराजी ४३९।
इन्द्रलुप्त—भिलावा १४४।
क्रोष्टुशीर्ष—विधारा २८१। समुद्रशोफ ४४५।
नाभि टलना—बहेडा ७९। बेला रायबेल ११२।
बलीपलित—भांगरा १३४।
दारुणक—सुहिंजना ३४२।
अरुंषिका—माधवी १९२। विधारा २८१। हुलहुल ४२८।
तारुण्यपिटिका—सरसों ३२०। सूचीबूटी ३४९।
मुंहपर कालेदाग—सरसों ३२०।
गुदभ्रंश—माजूफल १८१।
गंज—राई २३७।
व्यंग मुंहपर दाग—बड़ ६९। बरना ७६।
हाथपैर फटना—बड़ ६९।

(१३९) गीमा (ग्रीष्म सुंदर)

सं. फणिजा, ग्रीष्म सुंदर। हिं० गीमा। बं० गीमा शाक। गु० ओखराड ? ता० कंचन तराई। ते० चयुतर शियाकु। ले० Mollugo Oppositifoia.

प्राचीन संज्ञा–Mollugo Spergula.
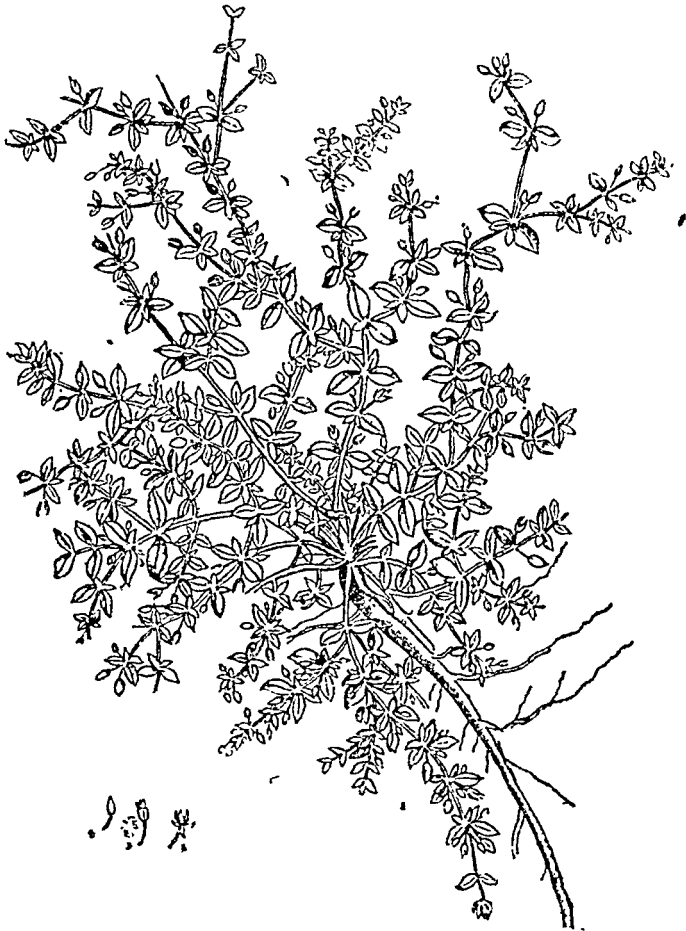
परिचय—जमीन पर चारों ओर फैलने वाला पत्रमय वर्षायु क्षुप। कभी ऊँचा उठता है। तना कई। शाखाएँ लम्बे पर्व युक्त। पान आधसे १ इञ्च लम्बे, पाव इञ्च से भी कमी चौडे, चारों ओर लगे हुए, असम परिमाणमें, प्राय: रेखाकार, बल्लमाकार या कभी चिम्मचाकार, पुष्प सफेद पत्र कोणसे निकले हुए २ या अधिक के गुच्छोंमें। पुष्प वृन्त। से ।। इञ्च लम्बा, डोरे सदृश। पुष्प बाह्य कोष बाहरसे चिकना। पखडियां ४ मिली मीटर (पाव इञ्च) लम्बी, लम्बगोल, कुछ नाक युक्त। डोडी लम्ब गोल, पखडियों से कुछ छोटी। वर्षा कालमें फूल फल होते हैं।

उत्पत्ति स्थान—बंगाल, गुजरात, [illegible], कनारा, सिलोन, बर्मा, अफ्रीकाका उष्ण प्रदेश और आस्ट्रेलिया।

उपयोगी अंग—पञ्चाङ्ग, [illegible] पान।

गुणधर्म—दीपन पाचन, सारक कड़वी, अन्त्र रोग निवारक, विषघ्न तथा कीटाणु हर है। प्रसूताको इसका शाक खिलानेसे प्रसूत को वातप्रकोप नहीं होता। चर्मरोग और खुजली पर इसके स्वरसका लेप लगाया जाता है।

उपयोग—इसका अधिक प्रचार बंगालमें है। सूतिका रोगकी औषधिके साथ इसका प्रयोग अनुपान रूपसे किया जाता है। विशेषतः यह तेल मिला कर दिया जाता है।

बावची बूटी
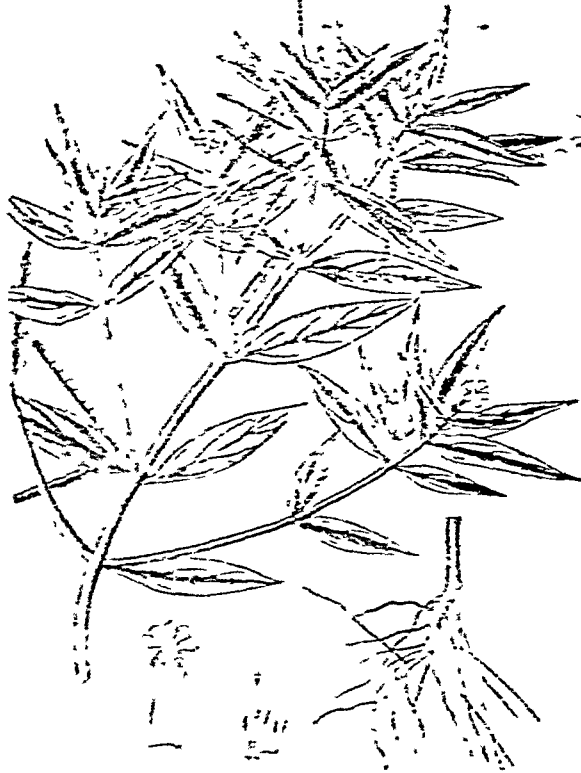
Lochnera Pusilla

इसका विवेचन पृष्ठ ४३६ में देखें।

कृष्ण-गोपाल आयुर्वेद भवन की

प्रस्तुत पुस्तकें

रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोगसंग्रह प्रथम-खण्ड अजिल्द ९॥) सजिल्द ११) रु. पोस्टेज पैकिंग १॥।=)

चिकित्सातत्त्व प्रदीप प्रथम-खण्ड अजिल्द ८) सजिल्द ९॥) रु० डाकखर्च आदि १॥।=) (प्रेसमें)

[illegible]ज्ञानिक विचारणा ३) (अप्राप्य) ।

[illegible]चिकित्सातत्त्व प्रदीप द्वि० खं० द्वितीय संस्करण अजिल्द रु० ८) सजिल्द [illegible]॥) डाकखर्च आदि १॥।=)

[illegible]ग्णपरिचर्या मूल्य ३॥) पोस्टेज आदि १=)

[illegible]संक्षिप्त औषधपरिचय मूल्य ।=) पोस्टेज ॥=)

[illegible]त्ररोगविज्ञान सजिल्द मूल्य १५) पोस्टेज २)

[illegible]सतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह द्वितीत खण्ड द्वितीय संस्करण मू. अजिल्द रु. [illegible]-) सजिल्द रु. ७॥) डाक खर्च आदि १॥=)

[illegible]ांवोंमेंऔषधरत्न प्रथम भाग मूल्य अजिल्द २) सजिल्द ३॥) पो० पै० ॥।=)

[illegible]सिद्धपरीक्षापद्धति प्रथम-खण्ड मूल्य ८) पोस्टेज पैकिंग १॥।=)

[illegible]ज्वर विज्ञान अजिल्द ३) सजिल्द ४॥) पोस्टेज आदि १।=)

[illegible]औषधगुणधर्म विवेचन अजिल्द ३) सजिल्द ४॥) पोस्टेज आदि १।=)

[illegible] विज्ञान (अप्राप्य)

[illegible]तन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह प्रथम-खण्ड, गुजराती सजिल्द १०) पोस्टेज पकिंग १॥।=)

[illegible]ांवोंमेंऔषधरत्न द्वितीय भाग मूल्य ३॥) सजिल्द ५) पोस्टेज पैकिंग १॥)

[illegible]ारतीय जनता का स्वास्थ्य मूल्य ॥) पोस्टेज पृथक् ।

[illegible]लोक का अमृत गाय का दूध मूल्य ।॥) पोस्टेज पृथक्

[illegible]ांवोंमें औषधरत्न तृतीय भाग मूल्य अजिल्द ४॥) सजिल्द ६) पो० पृथक्

रसतंत्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह द्वितीय-खण्ड गुजराती सजिल्द ८) पो० २)

कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन
कालेड़ा-कृष्णगोपाल (अजमेर)

जी. ए. जी. टी.

कृष्ण-गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय के

— प्रमुखतम उद्देश्य —

१. रोगियोंकी सेवाको ईश्वर सेवा मानकर निष्काम तथा सद्भाव पूर्वक
२. समीपके ग्रामोंकी जनताके चिकित्सार्थ तथा स्वास्थ्य रक्षाके लि चिकित्सालय (Moving Dispensary) का संचालन।
३. आतुरालय भवन निर्माण तथा उसका सम्यकरूपसे संचालन।
४. आयुर्वेदोक्त शास्त्रीय, विशुद्ध औषधियोंका निर्माण करके चिकित्स औषधालयमें आने वाले गरीब, असहाय, निराश्रित व पीड़ितोंकी बिना मूल्य चिकित्सा करना और उचित दवा मुफ्त देना। बाहरसे मंगाने वाले वै और सम्पन्न सज्जनोंको उचित तथा निश्चित मूल्यसे औषधियां भेजना।
५. आयुर्वेद शास्त्रकी समृद्ध्यर्थ नूतन आयुर्वेदिक ग्रन्थोंका आधुनिक शैलीसे सरल व सुगम भाषामें निर्माण करके सर्व साधारण जनता और वैद्य समाजमें कमसे कम मूल्यमें प्रचार करना।
६. आयुर्वेद प्रचार तथा स्वास्थ्य रक्षार्थ 'स्वास्थ्य' मासिक पत्रका प्रकाशन।
७. आयुर्वेद शिक्षा प्रचारार्थ आयुर्वेद महाविद्यालयकी स्थापना।
८. वनौषधि उद्यानके लिये कल्याण बागका निर्माण।
९. आयुर्वेदिक शास्त्रका संशोधन, आयुर्वेदिक औषधियोंका विश्लेषण एवं आयुर्वेदिक द्रव्योंका प्राचीन और अर्वाचीन विधि अनुसार गुण-धर्म निर्णय आदि कार्योंके लिये अनुसन्धानशालाकी स्थापना करना।
१०. आयुर्वेदिक ग्रंथ, पत्र, पत्रिकायें तथा प्रचार सामग्रीके प्रकाशनार्थ निजी मुद्रणालय (Printing Press) की योजना। इन सब उद्देश्योंमें से ६ उद्देश्योंकी कुछ सीमा तक पूर्ति हुई है। शेषकी पूर्ति होनेपर औषधालय पूर्णरूपेण सर्वाङ्गीण हो सकेगा।

इस औषधालयकी स्थापना सं १९३० ई० में जनताकी सेवाके लिए ही हुई है। इसकी सर्व संपत्ति जनताकी ही है। किसी व्यक्ति विशेषकी सम्पत्ति नहीं है। औषधालयका ट्रस्टबोर्ड रजिस्टर्ड गया है। और ट्रस्टबोर्ड द्वारा निष्काम भावसे संस्थाका संचाल रहा है। औषध पुस्तक बिक्रीसे जो नफा मिलता है उसका उप सेवा कार्यमें ही होता है। प्रतिवर्ष हिसाब ओडिट कराया जाता है ओडिट रिपोर्ट प्रकाशित होता रहता है।

विनीत

नाथूसिंह

मैनेजिंग ट्रस्टी